# प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय मे 'महाभारत' हिमालय के शुद्ध शिखर की तरह दूर से ही दिखाई देता है। इसकी उच्चता और शुभ्रता अनायास खीच लेती है अपनी ओर। इस हिम-शृग को देखते ही श्रान्ति दूर हो जाती है और प्राणो मे उत्साह और ओजस् का जैसे नया सचार होने लग जाता है।

अध्यात्म की मीमासा, धर्म का विवेचन तथा लोक-व्यवहार का दर्शन और इस सबका सुन्दर समन्वय 'महाभारत' मे हम एकत्र पाते हैं। बडे-बडे मनीषियो ने 'महाभारत' की महिमा का गान किया है, फिर भी पार नही पाया।

देश में और विदेशो मे भी 'महाभारत' पर काफी लिखा गया और शोध-कार्य हुआ है। इस वृहत्काय ग्रन्थ के अध्ययन के लिए लम्बे समय और धैर्य की आवश्यकता है, जबकि इस दौड-धूप के युग मे कहाँ तो इतना समय और कहाँ अवकाश और धैर्य। सामान्य इच्छा रहती है कि थोडे मे वहुत-सारा मिल जाय। 'महाभारत' के प्रमुख पात्रो पर लिखे गये अनेक निवन्ध और पुस्तकें, वासुदेवशरण अग्रवाल की भारत-सावित्री तथा अग्रेजी मे कमला सुब्रह्मण्यम् के संक्षिप्त महाभारत और सर्वाधिक लोकप्रिय राजाजी (चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) के साररूप 'महाभारत' ने इस दिशा मे वडा अच्छा काम किया है, थोडे मे अधिक चाहने वाले पाठको को वडा लाभ पहुचाया है।

इसी कोटि का एक और ग्रन्थ हमारे सामने प्रस्तुत है—'महाभारत-सार'। इसके रचयिता श्री सूरजमल मोहता हैं। मोहताजी द्वारा लिखित 'भागवत-कथा' ने हिन्दी-जगत् मे अच्छी ख्याति प्राप्त की है।

'महाभारत-सार' मे आदिपर्व, युद्धपर्व और शान्तिपर्व—इन तीनो पर्वों मे सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रमुख कथाओ और प्रसगो को कौशलपूर्वक

संकलित किया गया है—ऐसी कथाएँ और प्रसंग, जिनको मानवीय संस्कृति और आदर्श जीवन का मूलाधार कहा जा सकता है।

इसमे सदेह नही कि मोहताजी ने 'महाभारत' का अच्छा अध्ययन और चिन्तन किया है। 'महाभारत-सार' मे जिस सुबोध शैली और प्रवाहमयी भाषा का उपयोग उन्होंने किया है, वह सराहनीय है। मोहताजी औद्योगिक प्रवृत्तियो मे सलग्न रहते हुए भी आश्चर्य होता है कि अध्ययन और चिन्तन को लेकर इतना अच्छा लिखने के लिए वे कैसे समय निकाल लेते होंगे। किन्तु आश्चर्य नही होना चाहिए, क्योंकि धर्म-जिज्ञासा तथा भक्ति-भावना को अपने जीवन मे उन्होंने एक विशेष स्थान देने का प्रयास किया है।

आशा है, 'महाभारत-सार' का हिन्दी-जगत् मे वैसा ही स्वागत होगा जैसा कि 'भागवत-कथा' का हुआ है।

—वियोगी हरि

# दो शब्द

भारतीय संस्कृति मे रामायण और महाभारत दो अनुपम रत्न हैं, जिनके विषय मे प्रत्येक भारतीय कुछ-न-कुछ ज्ञान रखता है। वास्तव मे इन दोनो ग्रन्थो से पहले भारतीय साहित्य में केवल वैदिक वाङ्मय का अस्तित्व था। महर्षि वाल्मीकि के प्रथम छन्द को ही श्लोक की सज्ञा दी गई थी। अनन्तर महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास का प्रादुर्भाव हुआ। अप्रतिम कार्यों के कारण उन्हे भगवान का ही अवतार माना गया है। उन्होने वेदो का विभाग किया, जिससे उन्हें 'वेद-व्यास' कहा गया, ब्रह्मसूत्रो का सम्पादन किया और अन्त मे श्रीमद्भागवत का निर्माण किया। सासारिक प्राणी के लिए विनश्वर जीवन मे इतना लिखना असभव प्रतीत होता है, अत उनमे भगवत्ता का आरोप किया गया।

केवल महाभारत मे एक लाख श्लोक माने जाते हैं, जिनकी रचना मे कितना समय लगा होगा, कुछ कहा नही जा सकता। भरत के वश का वर्णन होने से इसका नाम 'भारत' तथा विशालता के कारण 'महाभारत' सज्ञा हुई। इसमे बडे युद्ध का वर्णन होने के कारण भी 'महाभारत' नाम हुआ होगा। महाभारत से श्रीमद्भागवत गीता, विष्णु सहस्रनाम जैसे उच्चकोटि के ग्रन्थ निकले है तथा कथावस्तु मे श्रीमद्भागवत भी महाभारत से ही अनुप्राणित प्रतीत होती है। महाभारत मे चार अग हैं: नीति, आध्यात्मिक, भक्ति और जप। गीता आध्यात्मिक विषयो का प्रतिपादन करती है। भागवत भक्ति तथा विष्णु सहस्रनाम हमे जप की ओर आकर्षित करते है, अत जो विषय मैंने भागवत कथा[1] मे लिख दिये, उन्हें महाभारत मे लिखने का साहस नही किया है। महाभारत, अठारह पुराण

---

1 लेखक द्वारा सक्षिप्त रूप मे अनूदित तथा 'सस्ता साहित्य मण्डल' द्वारा प्रकाशित।

और श्रीमद्भागवत की कथाओ मे एक ही चरित्र-नायक के चरित्र विविध रूपो मे मिलते हैं तथा तीनो ही महाग्रन्थो की भाषा म भी बहुत भेद मिलता है, जिससे प्रतीत होता है कि ये ग्रन्थ एक ही व्यक्ति के लिखे हुए नही होने चाहिए। एक ग्रन्थ मे जिस नाम के व्यक्ति का चरित्र साधारण रूप मे अकित हुआ है, दूसरे ग्रन्थ मे उसी व्यक्ति का चित्रण बहुत ही उदार रूप मे वर्णित किया गया है। भाषा और शैली का अन्तर भी स्थान-स्थान पर स्पष्ट प्रतीत होता है, जिससे एक ही लेखनी की रचना मानने मे बुद्धि को आपत्ति होती है। सम्भव है, महर्षि व्यास की रचना में अन्य विद्वानो ने क्षेपक मिला दिये हो। सम्भव है, व्यास पदवीधारी अन्य-अन्य विद्वानो ने अन्य-अन्य समय पर इनकी रचना की हो। सम्भव है, बाद मे भी नीति-कथायें जोड दी गई हो। इसका निर्णय करना तो विशिष्ट विद्वानो का काम है। मेरी बुद्धि इस विशाल ग्रन्थ पर अपने विचार प्रकट करने में असमर्थ है। अत इस ग्रथ की शुद्धि हेतु किसी सस्था द्वारा विद्वानो की सहायता से क्षेपको को हटाकर शुद्ध करने का कार्य सम्पन्न हो सके, तो समाज की बडी सेवा होगी। मैं तो मात्र इतना कह सकता हूँ कि केवल महाभारत में ही भाषा और शैली को देखते हुए कई स्थानो में अन्य लेखनी का चमत्कार प्रतीत होता है। महाभारत वस्तुत कौरव-पाडवो की कीर्ति का ही वर्णन करता है। भगवान श्रीकृष्ण के परिचय का उल्लेख पाण्डवो के साथ की घटनाओ तक ही सीमित है। श्रीमद्भागवत भगवान के अवतारो का विशद वर्णन करती है और भक्ति वढाने का उपदेश देती है। महाभारत का महत्व विशेषत नीति-शास्त्र के रूप मे ही है। भाषा की दृष्टि मे यह ग्रन्थ अद्वितीय और रोचक है। कहावत है कि जो मानव के हित की शिक्षा महाभारत में नही है, वह दूसरे किसी ग्रन्थ में भी नही। अत विद्वानो ने इस ग्रथ की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

श्रीमद्भागवत में विविध चरित्रो का चित्रण महाभारत से पूर्णतया भिन्न है, यथा, श्रीमद्भागवत के परीक्षित को जब शमीक मुनि के पुत्र से मिले शाप की सूचना प्राप्त हुई तो उन्होंने सोचा, "मेरे लिए वैराग्य का अवसर आ गया है, अब भगवान के चरण-कमलो की सेवा ही मेरे लिए

सर्वोपरि है ।" ऐसा विचार कर वह आमरण-अनशन व्रत लेकर गगातट पर जा वैठे और अनन्य भाव से श्रीकृष्ण के चरण-कमलो का ध्यान करने लगे । उनकी ऐसी अवस्था सुनकर वडे-वड़े ऋषि-मुनि वहाँ आ पहुँचे, जिनका यथेष्ट सत्कार कर राजा ने अपना निश्चय सुनाया और उनसे आशीर्वाद माँगा । जब परमहस श्री शुकदेवजी वहाँ पधारे तो राजा की प्रार्थना पर भगवत-कथा कहते हुए परम तत्व का उपदेश देने लगे । अन्त में राजा ने श्री शुकदेवजी की वडे आदर और श्रद्धा के साथ विधिवत् पूजा की । उनके चले जाने के बाद राजर्षि परीक्षित परमात्मा के चिन्तन में ध्यान-मग्न होकर ब्रह्म-स्वरूप हो गये । तक्षक के डसने के समय से पहले ही राजर्षि ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर चुके थे । अत उन्हे उसके दश का अनुभव ही नही हुआ ।

इस तरह परीक्षित का चित्रण बहुत ही उदात्त, निर्भीक और वीतराग के रूप मे किया गया है, जबकि महाभारत का परीक्षित ऋषि पुत्र के शाप से बहुत ही भयभीत हो गया है । उसने एक ऊँचा महल बनवाया, जिसमे एक ही खभा लगा था । वहाँ रक्षा के लिए आवश्यक प्रबन्ध किया गया, सब प्रकार की औषधियाँ जुटा ली गयी और वैद्यो तथा मत्रसिद्ध ब्राह्मणो को चारो ओर नियुक्त कर दिया गया । उस महल मे पूर्णतया सुरक्षित होकर राजा सब कार्य करने लगे । वहाँ कोई भी उनसे मिलने नही आता था । वायु को भी प्रवेश के समय रोका जाता था । सातवे दिन फल खाते समय राजा को फल पर छोटा-सा कीडा दिखायी दिया, जिसे देखकर राजा हँसकर बोले—सूर्यास्त हो रहा है । ऋषि-पुत्र के शाप से मैं अब मुक्त हो जाऊँगा । किन्तु वही कीडा तक्षक बनकर राजा को डसने लगा । और परीक्षित वज्र से आहत के समान पृथ्वी पर गिर पड़े ।

दोनो चित्रण पढ़ने के बाद यह तर्क-सगत नही प्रतीत होता है कि जिस लेखनी ने श्रीमद्भागवत के परीक्षित का चरित्र लिखा है, वही लेखनी महाभारत के परीक्षित की कथा लिख पाई है । दोनो चरित्रो के चित्रण में बहुत अन्तर मालूम देता है । श्रीमद्भागवत का परीक्षित जहाँ बहुत मनस्वी, दृढ प्रतिज्ञ और निर्भीक है, वहाँ महाभारत का अजितेन्द्रिय, भयभीत और ओछे मनवाला दिखाई देता है । अतः इस

पुस्तक में श्रीमद्भागवत वाला चरित्र ही अपनाया गया है।

वृत्रासुर की कथा भी दोनों ही ग्रंथों में वर्णित है। उसके वध की समस्या के समाधान के लिए दधीचि की अस्थियों से वज्र के निर्माण का भी वर्णन है। किन्तु श्रीमद्भागवत में वृत्रासुर को देवताओं के लिए जहाँ भयकर और प्रवल शत्रु चित्रण किया गया है, वहीं उसे परम भागवत भी वताया गया है। अन्तिम समय निकट जान उसने भगवान की जो स्तुति मुक्त कण्ठ से की है, वह आज भी भगवद्भक्तो के द्वारा प्रतिदिन परम आदर से गाई जाती है। वृत्रासुर ने युद्ध के समय असुरो के प्रति और इन्द्र के प्रति जो नीति वचन कहे हैं, वे भी अविस्मरणीय हैं। देवराज इन्द्र ने भी उन वचनो का आदर करते हुए वृत्रासुर की प्रशसा की है। किन्तु महाभारत मे ऐसा कुछ भी नही है। वृत्रासुर को भयकर असुर वताते हुए इन्द्र के वज्र से उसका वध मात्र दिखाया गया है।

इनके अतिरिक्त महाराज पृथु, राजा रन्तिदेव और दुष्यत-शकुन्तला आदि वहुत से चरित्रो के चित्रण मे अन्तर प्रतीत होता है, जिससे यही सिद्ध होता है कि भिन्न-भिन्न लेखको के द्वारा चरित्र लिखे गये हैं।

इसी सन्दर्भ मे महान् विचारक लोकमान्य श्री वाल गगाधर तिलक ने भी अपने 'गीता-रहस्य' की भूमिका में लिखा है

"कर्ण पर्व मे कर्ण-अर्जुन के युद्ध का वर्णन पढने मे दीख पडता है कि उसकी भाषा रचना अन्य प्रकरणो की भाषा रचना से भिन्न है।"[१]

इससे भी उपर्युक्त मत की पुष्टि होती है। वस्तुत महर्षि वेदव्यास ने महाभारत मे इतना लिख दिया है कि अन्य ग्रथो मे भी वहुत-सी वातें दोहरानी पडी हैं। वहुत से ऐसे प्रकरण हैं, जिनका पुराणो मे ही नही, श्रीमद्भागवत मे भी सन्निवेश आवश्यक माना गया है। इसलिए विद्वानो की मान्यता है

**धर्मे चार्थे च कामेच मोक्षे च भरतर्षभ।**
**यदिहास्तिवदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।**

"जो इसमे है वह दूसरी जगह भी मिल सकता है, जो इसमे नही है, वह

१ 'गीता-रहस्य' भूमिका, पृष्ठ ५१५

कही भी नही है।" इसी प्रकार लोकोक्ति है। "यन्न भारते तन्न भारते।" जो महाभारत ग्रथ मे नही है, वह भारत मे कही नही है। अत महाभारत के कई प्रकरण भागवत-कथा मे आ जाने के कारण इस पुस्तक मे नही लिखे गये है।

महाभारत के निर्माण-काल के विषय मे विद्वानो मे बहुत मतभेद है। किन्तु उच्चतम विद्वानों ने बहुत से प्रमाणो के आधार पर ईसा से पद्रह शताब्दी पूर्व इनका काल निश्चय किया है, जिसकी चर्चा हमने 'गीता-ज्ञान"[1] की भूमिका मे विशेष रूप से किया है। साधारणतया तो भगवान श्रीकृष्ण का समय और महाभारत युद्ध का समय ईसा के ५००० वर्ष पहले माना जाता है।

प्रसिद्ध ज्योतिषी तथा विद्वान प० इन्द्रनारायणजी द्विवेदी ने अपने, विस्तृत लेख मे ज्योतिष के अकाट्य प्रमाणो द्वारा महाभारत युद्ध को ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व सिद्ध किया है तथा महाभारत ग्रथ का निर्माण ३० वर्ष बाद माना है। प्रसिद्ध भारतीय विद्याविद् डा० पी० बी वर्तक महाभारत मे वर्णित ग्रहो की स्थिति को सही मानते हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास को यूरेनस, नेपच्यून और प्लैटो के बारे मे सम्पूर्ण जानकारी थी। उनकी यह भी मान्यता है कि महर्षि व्यास को पुष्य, रेवती, अश्विनी नक्षत्रो की स्थिति तथा 'सायन' पद्धति का पूर्ण ज्ञान था। उन्होने गणना करके बताया कि महाभारत मे वर्णित स्थिति ५५६१ ई० पू० की है। अत उनके अनुसार महाभारत का युद्ध १७ अक्तूबर ५५६१ ई० पू० आरम्भ हुआ। किन्तु हम इस विवाद मे नही पडना चाहते। कब लिखा है, किसने लिखा है, एक ने लिखा है या बहुतो ने लिखा है, कौरव-पाडव ऐतिहासिक व्यक्ति है या काल्पनिक, इत्यादि प्रपच का विवेचन हमारा विषय नही है। हम तो इस ग्रथ की नीति और शिक्षा के महत्व पर ही विशेष रूप से ध्यान देते है, जो सर्वथा विवादरहित है। महाभारत मे महाकाव्य की मधुरता, इतिहास की सार्थकता नीति-शास्त्र की गम्भीरता, राजनीति की गहनता, धर्मशास्त्र की मार्मिकता

१ गीता का लेखक द्वारा पद्य मे भावानुवाद

ही नही अपितु अध्यात्म दर्शन का परम तत्व-ज्ञान भी देखने को मिलता है। इसीलिए इसे पहले 'पचम वेद' भी कहा जाता था।

इसकी परम उपयोगिता को ध्यान मे रखकर ही इसका सक्षिप्त रूप प्रस्तुत कर पाठको की सेवा मे उपस्थित किया जाता है।

सूरजमल मोहता

# अनुक्रम



## आदि



## युद्ध

## शान्ति



□□

# महाभारत
# सार



नारायण नमस्कृत्य नरचैव नरोत्तमम्
देवी सरस्वती व्यास ततो जयमुदीरयेत्
व्यासाय विष्णु रूपाय व्यास रूपाय विष्णवे
नमो वै ब्रह्मविधये वसिष्ठाय नमो नम ।

# आदि-पर्व

## जनमेजय द्वारा सर्पयज्ञ

एक समय नैमिषारण्य में महर्षि शौनक के आश्रम में वेद-पुराणो के विद्वान् लोमहर्षण-पुत्र उग्रश्रवा आये। महर्षि शौनक के तपस्वियो ने विद्वान् उग्रश्रवा का भली भाँति स्वागत-सत्कार कर ज्ञानवर्धक कथाओ को कहने का आग्रह किया।

ऋषि उग्रश्रवा ने कहा—तपस्वियो! मैं बहुत से तीर्थों की यात्रा करता हुआ, परम पुण्य कुरुक्षेत्र मे गया, जहाँ कौरव-पाण्डव युद्ध हुआ था। वहाँ मैंने ऋषियों से सुना कि दशज्योति, शतज्योति और सहस्रज्योति से कुरु, यदु, भरत, ययाति और इक्ष्वाकु के वश चले हैं और वेदव्यासजी ने अत्यन्त पुनीत महाभारत महाकाव्य की रचना की है। इस महाकाव्य मे वेदों और अन्य शास्त्रों का सार संकलित है। चक्रवर्ती सम्राट महात्मा परीक्षित-नदन जनमेजय के सर्प-यज्ञ मे श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी ने महाभारत की जो कथा कही थी, उसे मैं आप लोगो को सुनाता हूँ।

राजा जनमेजय के तीन पुत्र थे— श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन। राजा जनमेजय ने दीर्घकाल तक पुण्य-भूमि कुरुक्षेत्र में यज्ञो का अनुष्ठान किया था। उसी समय सरमा का पुत्र सारमेय वहाँ आया। महाराजा जनमेजय के पुत्रो ने सारमेय को वहाँ से निकाल दिया। इस पर उसकी माता सरमा ने महाराजा जनमेजय को शाप दिया: 'तुम्हारे ऊपर अकस्मात भय उपस्थित होगा।' यह शाप सुन महाराजा जनमेजय बहुत दुःखी हुए। यज्ञो के समाप्त होने पर महाराजा जनमेजय हस्तिनापुर आये, और इस शाप-निवारण की चेष्टा करने लगे। एक दिन वे शिकार खेलने गये और श्रुतश्रवा ऋषि के आश्रम मे पहुँचे। उस ऋषि के पुत्र का नाम सोमश्रवा था। वह बड़ा

तपस्वी तथा स्वाध्यायी था।

जनमेजय के जिज्ञासा करने पर ऋषि श्रुतश्रवा ने कहा—मेरा पुत्र तुम्हारे शाप-निवारण मे समर्थ है। उनका यह कथन सुन, राजा जनमेजय ने सोमश्रवा को अपना पुरोहित बना लिया। उनके तीन शिष्य, उपमन्यु, आरुणि तथा वेद थे। सोमश्रवा ने अपने शिष्य वेद को गृहस्थ के कार्य मे लगा दिया। गुरुजी वेद की सेवा से सतुष्ट हो गये, उसने श्रेय और सर्वज्ञता प्राप्त कर ली और घर लौट गया। वेद भी अब तीन शिष्यो को शिक्षा देने लगे। जनमेजय और पौष्य ने आचार्य वेद को अपना उपाध्याय बना लिया। एक समय उपाध्याय ने अपने शिष्य उत्तक को अग्निहोत्र की सामग्री की व्यवस्था करने के लिए नियुक्त किया और स्वय बाहर चले गये। जब उपाध्याय वेद घर लौटे तब वे उत्तक की कार्यक्षमता पर बहुत प्रसन्न हुए और उसे घर लौटने की आज्ञा दे दी। उत्तक ने गुरु दक्षिणा अर्पण करने के लिए उनसे आग्रह किया। इस पर गुरुपत्नी ने उसे राजा पौष्य की पत्नी के कुण्डल लाने को कहा—'मैं आज से चौथे दिन उन कुण्डलो से सुशोभित हो ब्राह्मणो को भोजन परोसना चाहती हूँ। गुरुपत्नी की आज्ञा पाकर उत्तक राजा पौष्य के पास गया और गुरुपत्नी के लिए कुण्डल मांगे। राजा पौष्य ने उसे अपनी पत्नी के पास भेज दिया।

महारानी ने उत्तक की बात सुन, अपने दोनो कुण्डल उसे दे दिये और कहा—नागराज तक्षक इन कुण्डलो को लेने केलिए बहुत प्रयत्न करता है, अत आप उससे सावधान रहिये। उत्तक उन कुण्डलो को ले, गुरुकुल की ओर चला। मार्ग मे उन कुण्डलो को एक जलाशय के किनारे रख, जब वह स्नान करने लगा तभी क्षपणक शीघ्रता से आया और दोनो कुण्डलो को ले भागा। सरोवर से बाहर निकलने पर, उत्तक ने उन दोनो कुण्डलो को वहा न देख, बडे वेग से क्षपणक का पीछा किया। उसने क्षपणक को पकड लिया, जो वास्तव मे नागराज तक्षक ही था। वह

अपना वास्तविक रूप धारण कर एक कंदरा में घुस गया। उत्तंक भी तक्षक के पीछे-पीछे वहाँ गया। वहाँ उत्तक ने नागलोक का दर्शन किया और नागराज की स्तुति करने लगा। इस पर प्रसन्न हो नागराज ने उत्तक को वे दोनो कुण्डल दे दिये। उत्तक ने आश्रम में पहुँच, गुरुपत्नी को प्रणाम कर, वे कुण्डल भेंट किये। इस सफलता पर गुरुपत्नी ने उत्तक को अनेक आशीर्वाद दिये। तदनन्तर उत्तक ने गुरु को प्रणाम किया और जो दृश्य मार्ग में देखे थे, उनके बारे में जिज्ञासा की।

गुरुजी ने कहा—'वत्स! जो दो स्त्रियाँ तुमने देखी थी, वे धाता और विधाता थीं। काले और सफेद तंतु रात और दिन थे, जिसका वे कपडा वुन रही थी। बारह आरो से युक्त चक्र को जो छः कुमार घुमा रहे थे, वे बारह महीने और छ ऋतुए थीं। सवत्सर ही वह चक्र था। जो पुरुष तुमने देखा, वह इन्द्र और अश्वअग्नि थे। मार्ग में तुमने जो बैल देखा, वह गजराज ऐरावत था। तुमने बैल के जिस गोबर को खाया था, वह अमृत है, इसीलिए तुम नागलोक मे जाकर भी मरे नही। भगवान इन्द्र मेरे सखा हैं। यही कारण है कि तुम दोनों कुण्डल लेकर यहाँ लौट सके हो। उत्तंक! तुम अपने कार्य मे सफल हुए, अतः अब अपने घर चले जाओ।'

उत्तक तक्षक से प्रतिशोध लेने की इच्छा से हस्तिनापुर गया और राजा जनमेजय से बोला—'राजन्! तुम आवश्यक कार्य को छोड, अज्ञानवश दूसरा ही कार्य कर रहे हो। नागराज तक्षक ने आपके पिता की हत्या की है, अत. आप उस दुरात्मा सर्प से प्रतिशोध लीजिये। जो सर्प-यज्ञ धर्म-शास्त्र में लिखा है, उसका अनुष्ठान करने का यह उचित अवसर है। यद्यपि आपके पिता धर्मात्मा परीक्षित ने उसके प्रति कोई अपराध नही किया था, तो भी इस दुष्टात्मा सर्प ने उन्हें डँस लिया, जिससे वे काल के गाल में चले गये। कश्यप नामक एक वैद्य आपके पिता की रक्षा करने आ रहे थे, किन्तु इस पापाचारी ने उन्हे संतुष्ट कर लौटा दिया।

महाराज ! आप सर्प-यज्ञ का अनुष्ठान कर, प्रज्वलित अग्नि मे उस पापी को होम दीजिये।' उत्तक का यह कथन सुन, राजा जनमेजय तक्षक पर कुपित हो गये।

उन्होने उत्तक से पूछा—'ऋषिदेव ! मेरे पिता जब पूर्ण धर्मात्मा थे तब तक्षक ने उन्हे क्यो डॅसा, इसका पूर्ण विवरण मुझे सुनाइये।'

मुनि उत्तक—राजन् ! एक दिन राजा परीक्षित शिकार खेलने गये। वहाँ उन्हे तीव्र भूख और प्यास लगी, इसलिए पास के ही शमीक ऋषि के आश्रम मे गये। वहाँ आँखें बन्द किये वे मुनि आसन पर बैठे जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनो अवस्थाओ से परे, निर्विकार ब्रह्मरूप तुरीय अवस्था मे लीन थे। राजा परीक्षित ने उनसे जल माँगा। जब राजा को वहाँ बैठने को भी किसी ने न कहा, तब अपने को अपमानित मान, वे क्रोधान्ध हो गये। उन्होने धनुष की नोक से एक मरा साँप उठाकर ऋषि के गले मे डाल दिया और अपनी राजधानी लौट गये। उन शमीक मुनि का पुत्र बडा तेजस्वी था। जब उस बालक ने सुना कि राजा ने मेरे पिता के साथ दुर्व्यवहार किया है, तो उसने कौशिक नदी के जल से अपने वाणी-रूपी वज्र का यह कहकर प्रयोग किया, 'राजा परीक्षित ने मेरे पिता का अपमान किया है, इसलिए आज के सातवे दिन उसे तक्षक सर्प डॅस लेगा।'

आश्रम मे अपने पिता के गले मे साप देख उसे बडा दु ख हुआ और वह जोर-जोर से रोने लगा। शमीक मुनि ने पुत्र के रुदन को सुन, अपनी आँखें खोली और देखा कि उनके गले मे एक मृत सर्प पडा है। उसे फेक, उन्होने पुत्र से रोने का कारण पूछा। उसने सारी घटना कह सुनाई। ब्रह्मर्षि शमीक ने राजा के शाप की बात सुन, दु खित हो उससे कहा—'अरे मूर्ख बालक ! तूने बडा पाप किया है। खेद है कि तूने उनकी थोडी-सी भूल के लिए उन्हे इतना बडा दण्ड दिया। प्रतापी और धर्म-परायण राजा के न होने पर चोर आदि पाप-कर्म करने लगते है

तथा प्रजाजन की स्त्रियां और धन-सम्पत्ति लूट लेते है। सम्राट परीक्षित तो बड़े ही यशस्वी और धर्मधुरंधर है, वे कदापि शाप के पात्र नही।'

राजधानी पहुँचने पर राजा परीक्षित को बडा पश्चात्ताप हुआ। वे सोचने लगे कि मैंने ब्राह्मण के साथ बड़ा घृणित व्यवहार किया है, अवश्य ही मुझ पर घोर विपत्ति आयेगी, जिससे मेरे इस पाप का प्रायश्चित्त हो सकेगा। वह इस प्रकार चिता कर ही रहे थे कि उन्हें ऋषि-कुमार के शाप की सूचना मिली। अतएव उन्होंने सोचा—मेरे लिए वैराग्य का अवसर आ गया है। अब भगवान के चरण-कमल की सेवा ही सर्वोपरि है। ऐसा निश्चय कर, वे आमरण अनशन-व्रत ले, गगातट पर जा बैठे और अनन्य भाव से श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगे। उनकी ऐसी अवस्था जान बड़े-बडे ऋषि-मुनि वहाँ पहुँचे। उन ऋषियों का राजा ने यथायोग्य सत्कार किया और कहने लगे—'महर्पियो! स्वयं भगवान ही, ब्राह्मण-शाप के रूप में, मुझ पर कृपा करने पधारे है। यह वैराग्य उत्पन्न करने वाला है। अब मैंने अपने चित्त को भगवान के चरणों मे समर्पित कर दिया है। तक्षक आकर मुझे डँस ले, इसकी मुझे तनिक भी चिंता नही। आप लोग मुझ पर अनुग्रह कर, भगवान की रसमयी लीलाओं का वर्णन करे। मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरा भगवान श्रीकृष्ण के चरणो में अनुराग उत्पन्न हो, महात्माओ में विशेष प्रीति हो और जगत के समस्त प्राणियो के प्रति एक-सी मैत्री रहे। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।'

सभी महर्पियो ने परीक्षित के इस निश्चय की प्रशसा की। उन लोगो ने भगवान श्रीकृष्ण के गुणो से प्रभावित परीक्षित को अनेक उपदेशात्मक वचन कहे और निश्चय किया कि 'हम लोग तबतक यही रहेगे, जबतक भगवान के ये परम भक्त परीक्षित अपने नश्वर शरीर को छोड, दोष और शोक से रहित होकर भगवद्धाम को नही चले जाते।'

यह वार्ता हो ही रही थी कि परमहस श्री शुकदेव भी वहाँ आ पहुँचे। उनका वेश अवधूत का था। दिगम्वर वेश मे वह महान् तेजस्वी दीख रहे थे। मुनियो ने उन्हे देखते ही पहचान लिया और उनके सम्मान मे खडे हो गये।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी की वदना कर उनसे भगवान की लीला वर्णन करने का अनुरोध किया और मुनि का सम्पूर्ण उपदेश वडे ध्यान से सुना। तदनन्तर उन्होंने सिर झुका, अजलि बांध, वडे विनीत भाव से उनकी प्रार्थना की, 'भगवन्! आप करुणा के मूर्तिमान रूप हैं। आपने अनुग्रह कर मुझे भगवान श्रीकृष्ण की परमपावन मुक्तिदायिनी लीला-कथाओ का अमृत-पान करा दिया है। मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। ससार के दु ख-दावानल मे जलने वाले मुझ सरीखे प्राणियो पर आप जैसे महात्माओ का अनुग्रह करना स्वाभाविक ही है। अव मैं पूर्णत अभय हूँ। तक्षक अथवा किसी भी निमित्त से मृत्यु मुझे भयभीत नही कर सकती। आपकी आज्ञा मिलते ही अव मैं मौन हो जाऊँगा और चित्त को परमात्मा मे लीन कर प्राणो का विसर्जन कर दूंगा।'

ऐसा कह परीक्षित ने वडे प्रेम और श्रद्धा मे परमहंस शुकदेवजी की विधिवत् पूजा की। महर्षि शुकदेव के चले जाने के उपरान्त राजर्षि परीक्षित परमात्मा के चिन्तन मे ध्यानमग्न होकर ब्रह्म-स्वरूप हो गये।

जव मुनिकुमार शमीक का भेजा हुआ तक्षक उन्हे डसने के लिए वहाँ आया, तव रास्ते मे सर्वचिकित्सा-विशेषज्ञ कश्यप ब्राह्मण उसे मिले। उसने धन देकर उन्हे लौटा दिया। तक्षक के डसने के पहले ही राजर्षि परीक्षित ब्रह्म-स्थिति प्राप्त कर चुके थे, इसलिए उसके डसने के साथ ही विष की ज्वाला से उनका शरीर देखते ही-देखते जलकर भस्म हो गया।

राजा परीक्षित की मृत्यु के पश्चात मत्रियो ने जनमेजय को राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया और वे सर्प-यज्ञ करने मे सलग्न हो गये। उन्होने ऋत्विजो और विद्वान ब्राह्मणो को

बुलाकर विनयपूर्वक कार्य सिद्ध करने को कहा और विज्ञ ब्राह्मणों ने सर्प-यज्ञ को विधिपूर्वक आरम्भ कर प्रज्वलित अग्नि में आहुति देना प्रारम्भ किया। मन्त्रों के प्रभाव से सर्प प्रज्वलित अग्नि मे गिरने लगे। नागराज तक्षक सर्प-यज्ञ के भय से इन्द्र की शरण में गया। सर्पो का यह घोर विनाश देख शक्तिशाली वासुकी आस्तीक मुनि के पास गये और हिंसात्मक सर्प-सत्र बन्द कराने के लिए, उन्हे राजा जनमेजय के पास भेजा। वे यज्ञ- मण्डप में पहुँचे। राजा जनमेजय, ऋत्विज, सदस्यों तथा अग्निदेव का स्तवन करने लगे। मुनि आस्तीक के स्तुति करने पर राजा जनमेजय, ऋत्विज और अग्निदेव प्रसन्न हो गये, किन्तु नागराज तक्षक इन्द्र की शरण मे है, यह सुन उन्हे पुनः क्रोध आ गया। उन्होने ऋत्विजो से तक्षक सहित इन्द्र को भी यज्ञ-कुण्ड में मंत्रों द्वारा भस्म करने की याचना की। राजा की प्रेरणा से ऋत्विजो ने इन्द्र सहित तक्षक का अग्नि मे आवाहन किया, अतः इन्द्र ने तक्षक को अपनी शरण से मुक्त कर दिया।

ऋत्विजो ने तक्षक को अग्नि-कुण्ड की ओर आते देख राजा जनमेजय से कहा—'राजन्! अब आपका यज्ञ-कर्म सम्पन्न होने वाला है, अत. मुनि आस्तीक को प्रसन्न करे।'

राजा जनमेजय ने मुनि आस्तीक से कहा—'ऋषि! तुम अप्रमेय हो। तुम्हारी प्रतिभा की कोई सीमा नही है। मैं तुम जैसे तपस्वियो को प्रसन्न करना चाहता हूँ।'

आस्तीक मुनि बोले—'राजन्! तुम्हारा यह सत्र हिंसात्मक है, इसे बन्द कर दो।' इस पर ऋत्विजो ने भी आस्तीक मुनि के वचनो का आदर करते हुए राजा जनमेजय को सर्प-यज्ञ बन्द करने की सम्मति दी, और राजा ने यज्ञ की समाप्ति करा दी। यज्ञ से प्रसन्न हो जनमेजय ने शास्त्रीय विधि से द्रव्य, भोजन, वस्त्र आदि दान दिया और सब ऋत्विज एव विद्वानों को प्रसन्नतापूर्वक विदा किया।

वासुकी ने प्रसन्न होकर आस्तीक से कहा—'जो मनुष्य प्रसन्न चित्त से इस उपाख्यान का पाठ करेगा, उसे सर्पों से भय नही होगा।' यह सुन महात्मा आस्तीक को वड़ी प्रसन्नता हुई।

## कौरव पाण्डवों का जन्म

सूतजी वोले—शौनकजी! वेदव्यासजी की माता सत्यवती और पिता शक्तिनदन पाराशरजी थे। वेदव्यास जी को वचपन मे वेदो, अन्य शास्त्रो और परमतत्व का ज्ञान प्राप्त हो गया था, अत वे वेद-वेत्ताओ मे श्रेष्ठ हैं। उन्होने ही वेदो का विभाजन किया। व्यासजी परब्रह्म और अपरब्रह्म के ज्ञाता, कवि, महान यशस्वी, सत्यपरायण और परम पवित्र हैं। उनकी कीर्ति पुण्यमयी है। महाभारत इतिहास पाण्डवो के यश का वर्णन करने वाला है। जो पुण्यात्मा भगवान व्यास द्वारा रचित परम पावन महाभारत ग्रथ को सुनते हैं वे स्वर्ग के अधिकारी होते है। अव मैं तुम्हे व्यासजी द्वारा रचित महाभारत की कथा सुनाता हूँ।

एक समय महात्मा वसिष्ठजी ने आठ वसुओ को मृत्युलोक मे जन्म लेने का शाप दिया। जव वे मृत्युलोक आ रहे थे, तव उन्हे मार्ग मे गगाजी के दर्शन हुए। वसुओ ने मृत्युलोक मे जन्म लेने का वर्णन कर, गगाजी से अपनी माता वनने का अनुरोध कर कहा—'माता! जव हम जन्म ले, तव तुम हमे अपने जल के प्रवाह मे छोड देना, जिससे हमारी मृत्यु हो जायेगी और हम स्वर्ग मे लौट आयेंगे।' गगाजी ने उनका यह अनुरोध स्वीकार कर लिया। उन्ही दिनो राजा प्रतीप के पुत्र धर्मात्मा शान्तनु राजा हुए। वे वेद, शास्त्रो के ज्ञाता, धर्मज्ञो मे श्रेष्ठ और लोकरक्षा के कार्य मे तत्पर रहते थे। उन्होने एक सुन्दर युवती से विवाह किया, जो यशस्विनी गगाजी ही थी।

गगाजी ने शान्तनु से कहा—'राजन्! मैं भला करूँ या वुरा, उसके लिए आप मुझे रोकेंगे नही और कभी कोई अप्रिय वचन

भी नहीं कहेंगे। महाराजा शान्तनु ने यह आग्रह स्वीकार कर लिया। अब उत्तम शील स्वभाव, सदाचार, उदारता और सद्-गुणों से सम्पन्न राजा सुखपूर्वक अपनी पत्नी के साथ रहने लगे। महाराजा शान्तनु के आठ पुत्र हुए। जैसे-जैसे पुत्र उत्पन्न होते गये, वैसे-वैसे गंगाजी उन्हें जल मे प्रवाहित करती रही। यद्यपि पत्नी का यह व्यवहार राजा शान्तनु को अच्छा नही लगता था, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वे उन्हे कुछ नही कह सकते थे।

जब आठवे पुत्र का जन्म हुआ तब राजा ने गगा से कहा—'भद्रे! तू इस बालक का वध न कर। तू किसकी कन्या है और कौन है? तुझे पुत्र हत्या का यह अत्यन्त निन्दनीय कार्य नही करना चाहिए।'

गगा बोली—'राजन्! मैं तुम्हारी इच्छा से इस पुत्र का वध नही करूँगी, किन्तु अब मैं यहाँ नही रहूँगी। मैं गंगा हूँ और देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए ही तुम्हारे साथ रहती थी। तुम्हारे आठ पुत्र महा तेजस्वी वसु देवता हैं। उनको शाप-मुक्त करने के लिए ही मैंने मानव-शरीर धारण किया है। तुम इस आठवे पुत्र का पालन करो। यह महान व्रतधारी, अत्यन्त पराक्रमी और कुल की कीर्ति बढ़ाने वाला होगा। राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। 'ऐसा कह माता गंगा अंतर्धान हो गयी। शान्तनु ने अपने उस पुत्र का नाम देवव्रत रखा। वह बालक अस्त्र-अस्त्र की कला मे पारगत और बल, धैर्य एवं पराक्रम मे महान् था। उसने नीतिशास्त्र, राजधर्म और अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। महाराजा शान्तनु ने उस सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। एक दिन राजा शान्तनु यमुना तट पर गये। वहाँ उन्होने एक मल्लाह की सुन्दर कन्या देखी। राजा शान्तनु ने उसके रूप और माधुर्य को देख, निषादराज (मल्लाह) से उसे अपनी पत्नी के रूप मे माँगा।'

निषाद ने कहा—'पृथ्वीपते! इसके पुत्र को ही तुम्हे राजा

के पद पर अभिषिक्त करना होगा, अन्य किसी कुमार को नही।' निषादराज की यह दुष्कर माँग महाराजा शान्तनु ने नही मानी और वे अपनी राजधानी लौट गये। एक दिन जब महाराजा शान्तनु चिन्ता मे मग्न थे, उसी समय उनका यशस्वी पुत्र देवव्रत उनके पास आया और उनसे उनके दु:ख का कारण पूछा।

महाराजा शान्तनु—'बेटा! तुम इस विशाल वश मे मेरे एक ही पुत्र हो। तुम अस्त्र-शस्त्र के अभ्यास मे रत रह पुरुषार्थ के लिए सदैव उद्यत रहते हो। यदि किसी कारण तुम पर कोई विपत्ति आयी तो उसी दिन हमारा यह वश समाप्त हो जायेगा। हमारे वश का लोप न हो, इसके लिए मैं पुन. पत्नी की कामना करता हूँ। जिसे मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, वह एक धीवर की कन्या है। उसके पिता ने अपनी पुत्री का मुझसे विवाह करने के पूर्व यह आश्वासन माँगा है कि उसका पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा, अन्य कुमार नही। यह प्रस्ताव मुझे मान्य नही है।' यह सुन कुमार देवव्रत ने उस धीवर के पास जाकर वह कन्या अपने पिता के लिए माँगी।

धीवर ने कहा—राजकुमार! मेरी पुत्री सत्यवती को राजर्षि शान्तनु ने अपने लिए पहले भी माँगा था, किन्तु मैंने उनका वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। मैं कन्या का पिता और परम शुभचिन्तक हूँ, अत मैं चाहता हूँ कि उसका ही पुत्र राजा हो।' गगानन्दन देवव्रत ने पिता का मनोरथ पूर्ण करने के लिए निषाद का प्रस्ताव स्वीकार कर प्रतिज्ञा की कि मैं राजा नही बनूँगा और आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा। मैंने जीवन मे कभी असत्य वचन नही कहा है, अत. तुम पिताजी को अपनी कन्या दे दो। यह कठिन प्रतिज्ञा सुन, धीवर ने अपनी कन्या सत्यवती का विवाह महाराजा शान्तनु से कर दिया और तब से देवव्रत का नाम भीष्म पडा। इस कठिन प्रतिज्ञा पर महाराजा शान्तनु भी भीष्म से बडे प्रसन्न हुए और उन्होने उसे स्वैच्छिक मृत्यु का वरदान दिया।

सत्यवती चेदिराज वसु की पुत्री थी और निषादराज ने तो उसका पालन-पोषण मात्र ही किया था, यह जानकर राजा शान्तनु ने उससे विधिवत विवाह किया। कुछ काल के पश्चात शान्तनु के सत्यवती से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए, जो बड़े ही बुद्धिमान, पराक्रमी तथा श्रेष्ठ थे। नर-श्रेष्ठ विचित्रवीर्य की यौवन अवस्था के पहले ही महाराजा शान्तनु की मृत्यु हो गयी। उनके स्वर्ग चले जाने पर भीष्म ने चित्रांगद को राज-पद पर बैठाया, किन्तु एक यक्ष ने उसे युद्ध-भूमि मे मार डाला। यद्यपि विचित्रवीर्य बालक था, तथापि भीष्म ने उसे माता सत्यवती की इच्छा से राज्य सिंहासन पर अभि-षिक्त किया और उसकी रक्षा करने लगे। जब विचित्रवीर्य युवा-वस्था में पहुँचा तब बुद्धिमान श्रेष्ठ भीष्म वाराणसी गये। वहाँ काशीराज की तीन सुन्दर कन्याओ का स्वयंवर होने वाला था। निमन्त्रित राजाओं और घर वालों को देखते-देखते वीर भीष्म ने उन तीनों कन्याओं को बलात अपने रथ पर बैठा लिया और शीघ्रतापूर्वक चल दिये। कुछ राजा भीष्म से युद्ध करने लगे, किन्तु वे सब असफल रहे। जब शाल्वराज ने भीष्म पर आक्रमण किया, तब उन्होने शाल्व के घोडो सहित सारथी को मार डाला और उसके केवल प्राण ही छोड़े। यह देख अन्य नरेश युद्ध-स्थल से भाग गये। भीष्म ने अपने पराक्रम द्वारा हरण की हुई उन कन्याओ को माता सत्यवती को दे दिया।

उनमे से सबसे बडी बहन अम्बा भीष्म से बोली—'धर्मात्मन्! मैंने पहले से ही राजा शाल्व को पति के रूप में वरण किया था। वे भी मुझे पत्नी-रूप मे चाहते है। मेरे पिताजी की भी यही इच्छा थी कि मेरा विवाह राजा शाल्व से हो।' धर्मज्ञ! इन सब प्रश्नो पर विचार कर धर्मपूर्वक कार्य कीजिये। 'भीष्म ने माता सत्यवती की आज्ञा से अम्बा को राजा शाल्व के पास जाने की अनुमति दे दी। माता सत्यवती ने काशीराज की अम्बिका और अम्बालिका दो कन्याओ का अपने पुत्र विचित्र-

वीर्य से विधिपूर्वक विवाह कर दिया। राजा विचित्रवीर्य अब अपनी दोनो पत्नियो के साथ सुखपूर्वक रहने लगे, किन्तु कुछ ही समय मे रोग से पीडित हो यमलोक चले गये।

गगानन्दन महात्मा भीष्म को भाई की मृत्यु से शोका-कुल देख माता सत्यवती ने उनसे कहा—'बेटा! सदा धर्म में तत्पर रहने वाले महाराजा शान्तनु को पिण्ड देना और उनकी कीर्ति तथा यश बढाना अब तुम पर ही अवलम्बित है। तुम धर्म को जानते हो और वेदाग का भी तुम्हें पूर्ण ज्ञान है। तुम्हारी धर्म-निष्ठा और कर्तव्य-पालन से मैं भी परिचित हूँ, अत तुम राजा बन जाओ और जिससे वश चल सके, वह उपाय करो।'

धर्मात्मा भीष्म बोले—'माता! तुम्हारे वचन धर्मयुक्त है। पर मैं न तो राज्य के लोभ से राजा ही बनूंगा और न विवाह ही करूंगा। तुम तो मेरी प्रतिज्ञाओ को जानती ही हो।'

माता सत्यवती—'बेटा! मैं जानती हूँ कि तुम सत्यवादी हो। तुम्हारी सत्य मे दृढ निष्ठा है। फिर भी मेरा आग्रह है कि तुम आपद्धर्म का विचार कर अपने बाप-दादा का राज्य स्वीकार करो। परतप! जिस उपाय से तुम्हारे वश की परम्परा नष्ट न हो, धर्म की अवहेलना न हो, वही करो।' जब धर्मात्मा भीष्म ने माता की आज्ञा स्वीकार नही की, तब उसने व्यासजी का आवाहन किया, जो उनके ही प्रथम पुत्र थे। उनकी कृपा से अम्बिका मे धृतराष्ट्र, अम्बालिका मे पाण्डु और दासी मे धर्मात्मा तथा बुद्धिमानो मे श्रेष्ठ विदुर का जन्म हुआ। विदुर अर्थतत्व के ज्ञाता और काम-क्रोध से रहित साक्षात धर्मराज थे, किन्तु महात्मा माण्डव्य के शाप से विदुर के रूप मे उत्पन्न हुए थे।

जनमेजय ने पूछा—श्रेष्ठ धर्मराज ने ऐसा कौन-सा अपराध किया था, जिसके कारण उन्हे मृत्युलोक मे जन्म लेना पड़ा?

वैशम्पायनजी ने कहा—राजन्! पूर्वकाल मे माण्डव्य नाम के धैर्यवान, सब धर्मों के ज्ञाता, सत्य-निष्ठ एव तेजस्वी ब्राह्मण

थे। वे अपने आश्रम में मौनव्रत धारण कर कठिन तपस्या करते थे। एक दिन उनके आश्रम मे चोरी का धन लेकर बहुत से चोर आये, जिनका सैनिक पीछा कर रहे थे। उन्होने अपने प्राणो की रक्षा हेतु वह धन महर्षि के आश्रम मे रख दिया और वही छिप गये। सैनिको ने महर्षि से चोरो के बारे मे पूछा, किन्तु तपस्या के धनी महर्षि ने उनके प्रश्न का कोई भी उत्तर नही दिया। सैनिकों ने जब चोरो द्वारा चुराया हुआ धन और चोरो को भी उन्ही के आश्रम मे देखा, तब वे उन्हे चोरो के साथ बाधकर राजा के पास ले गये। राजा ने उन चोरो के साथ महर्षि को भी प्राण-दण्ड दिया। सैनिको ने मुनि सहित चोरो को शूली पर चढा दिया। महात्मा ब्रह्मर्षि अनाहार रहकर उस शूली पर चढे रहे, किन्तु उनकी मृत्यु नही हुई। महर्षि का यह प्रभाव देखकर अन्य ऋषि उनके समीप आये और राजा को धिक्कारने लगे। रक्षको ने यह सारा वृतान्त राजा को कह सुनाया।

श्रेष्ठ माण्डव्य मुनि का यह अपूर्व पराक्रम देख राजा ने उन्हे प्रसन्न करने का अत्यधिक प्रयत्न करते हुए कहा—'महर्षि! मैंने अज्ञानवश यह अपराध किया है, अतः आप मुझ पर क्रोध न करें और प्रसन्न हो।' राजा के विनयपूर्वक वचन सुनकर मुनि उन पर प्रसन्न हो गये। अपने अपराध को जानने की इच्छा से वे धर्मराज के यहाँ गये और उनसे पूछा—'मैंने कौन-सा पाप किया था, जिसका फल भोगने के लिए मुझे शूली पर चढना पडा?'

धर्मराज ने कहा—तपोधन! तुमने बाल्यावस्था मे एक पतगे के शरीर मे सीक घुसेड दी थी। उसी कर्म का यह प्रतिफल तुम्हे प्राप्त हुआ है। विप्रर्षे! जैसे थोडा-सा भी दान कई गुना फल देने वाला होता है, वैसे ही अधर्म भी प्रतिफल देता है।

महर्षि माण्डव्य बोले—धर्मराज! धर्मशास्त्र के अनुसार जन्म से लेकर बारह वर्ष की आयु तक बालक जो भी कार्य करता है, वह अधर्म नही माना जाता, क्योकि उसे धर्म-अधर्म का ज्ञान

नही होता। तुमने मेरे थोडे से अपराध के लिए मुझे बहुत बडा दण्ड दिया है, जो प्राणियो के वध से भी अधिक भयकर है। उस अपराध के लिए मैं शाप देता हूँ कि तुम मर्त्यलोक मे शूद्र योनि मे जन्म लोगे। इसीलिए धर्मराज, विदुर के रूप मे उत्पन्न हुए। वे धर्म और अर्थशास्त्र के विद्वान, लोभ और क्रोध से रहित, शान्ति-परायण थे तथा पाण्डव और कौरव वंश के हित मे तत्पर रहते थे। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के जन्म के बाद प्रजा सत्यव्रत के पालन मे तत्पर और धर्मानुकूल कर्मों मे सलग्न रहने लगी। लोगो के आचार-व्यवहार मे धर्म की ही प्रधानता थी। भीष्मजी के द्वारा सब प्रकार से धर्मपूर्वक शासन चलता था। धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा परम बुद्धिमान विदुर का भीष्म ने जन्म से ही पुत्र की भाँति पालन किया। धृतराष्ट्र अधे और विदुरजी दासी पुत्र होने से, राज्य न पा सके, अत सबसे छोटे भाई पाण्डु ही राजा हुए।

एक समय नीतिज्ञ पुरुषो मे श्रेष्ठ भीष्मजी ने तीनो भाइयो को न्यायोचित वचन कहे—'वत्स! हमारा यह कुल अनेक गुणो से सम्पन्न तथा जग-प्रसिद्ध है। पूर्वकाल मे धर्मज्ञ एव महात्मा राजाओ ने इसकी रक्षा की थी। तुम तीनो भाई इसके तंतु हो, अत तुम्हारे ही द्वारा अब इसकी प्रतिष्ठा सम्भव है। यह हमारा कुल जिस प्रकार बढता रहे, वही उपाय हम सबको करना चाहिए। मैंने सुना है कि यदुवशी शूरसेन की कन्या पृथा हमारे कुल के अनुरूप है। अत: उसका पाण्डु से, गाधार राजा सुबल की कन्या गाधारी का धृतराष्ट्र से, विवाह सम्बन्ध करना सर्वथा उचित है। भीष्म के नीतिपूर्ण वचन सुन, वे दोनो उनसे सहमत हो गये और दोनो का विवाह प्रसन्नतापूर्वक पूर्वोक्त कन्याओ से सम्पन्न हुआ। कुछ समय बाद मद्रास नरेश की कन्या महाराजा शल्य की बहन, माद्री का भी भीष्म ने पाण्डु के साथ विवाह कर दिया। गाधारी बडी पतिव्रता थी, इसलिए अपने पति को अधा देख, उन्होने भी रेशमी वस्त्र द्वारा अपनी

आँखे बाँध ली। देवी गान्धारी ने अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार एवं सद्व्यवहार द्वारा गुरुजनों को प्रसन्न कर लिया। शूरसेन के फुफेरे भाई कुन्तीभोज के संतान न थी, इसलिए उसने अपनी कन्या पृथा कुन्तीभोज को बचपन में ही दे दी। पृथा देवताओ का पूजन और अतिथियो का सत्कार किया करती थी। एक समय कठोर व्रत का पालन करने वाले दुर्वासा महर्षि राजा कुन्तीभोज के महल पर आये। पृथा उनकी सेवा करने लगी। यद्यपि दुर्वासा का हृदय कठोर था, फिर भी कुमारी पृथा ने अपनी सेवा द्वारा उन्हे प्रसन्न कर लिया। मुनि दुर्वासा ने पृथा पर प्रसन्न हो उसे एक वशीकरण-मंत्र की दीक्षा दी और कहा कि जिस देवता का तुम इस मंत्र द्वारा आवाहन करोगी, उसी के अनुरूप तुम्हे पुत्र की प्राप्ति हो जायेगी। कुन्ती के मन मे उस मंत्र के प्रति संदेह उत्पन्न हो गया, इसलिए मंत्र की परीक्षा लेने के लिए उसने सूर्यदेव का आवाहन किया। मंत्र ने अपना प्रभाव दिखाया और भगवान भास्कर वहाँ प्रकट हो गये। उनके वरदान से कुन्ती के एक पुत्र हुआ, जो जन्म से ही कवच और कुण्डल पहने हुए था।

भगवान सूर्य ने कुन्ती से कहा—'तुम्हारे बालक का यह कवच किसी अस्त्र-शस्त्र से नही टूटेगा। यह स्वाभिमानी, दानी होगा और कर्ण के नाम से जगत में विख्यात होगा।' 'उस नवजात कुमार को देख कुन्ती के मन मे लज्जा उत्पन्न हो गई। उसने कुल की अपकीर्ति को ध्यान में रखकर उस सुन्दर कुमार को नदी के जल मे प्रवाहित कर दिया। उस सुन्दर बालक को नदी के प्रवाह से सूतपुत्र अधिरथ अपने घर ले गया और अपनी पत्नी राधा की गोद में रख दिया। दोनो ने बड़े प्रेम से उसे पाला-पोसा और वसुसेण नाम रखा। सब प्रकार से अस्त्र-विद्या मे निपुण वह बलवान बालक। नित्य, प्रातःकाल भगवान सूर्य की उपासना किया करता था।

महाराजा पाण्डु दिग्विजय की इच्छा से एक महान सेना ले

पूर्व दिशा मे गये। वहाँ उन्होने अनेक राजाओ को परास्त किया। महाराजा शान्तनु की कीर्ति, जो इस समय तक फीकी पड गई थी, उसे महाराजा पाण्डु ने पुनर्जीवित कर दिया। वडे भाई धृतराष्ट्र की आज्ञा ले, महाराजा पाण्डु ने शत्रुओ से जीता हुआ धन-रत्न, माता सत्यवती और अन्य सुहृदो को भेंट किया। तदनन्तर भीष्म ने राजा देवक की कन्या से बुद्धिमान विदुर का विवाह किया, जिससे उसके ही समान गुणवान और विनय-शील पुत्र उत्पन्न हुए। राजा धृतराष्ट्र के गाधारी से सौ और दूसरी स्त्री से एक पुत्र हुआ। गाधारी के पुत्र कौरव कहलाये और दूसरी के पुत्र का नाम युयुत्सु था। गाधारी के एक कन्या भी थी, जिसका नाम दु शला था। गाधारी के सवसे वडे पुत्र का नाम दुर्योधन था। उसके जन्म के समय भयानक अपशकुन प्रकट हुए।

इस पर विद्वान ब्राह्मणो और बुद्धिमान विदुर ने राजा धृतराष्ट्र से कहा—'राजन्! आपके ज्येष्ठ पुत्र के जन्म लेने पर भयकर अपशकुन प्रकट हो रहे हैं, अत आपका यह पुत्र समूचे कुल का सहार करने वाला होगा। यदि इसका त्याग कर दिया जाये, तो सव विघ्न शान्त हो जायेंगे।' किन्तु पुत्र स्नेह के वन्धन मे वधकर राजा धृतराष्ट्र ने वैसा नही किया। उसके सव पुत्र शूरवीर, अस्त्र-विद्या मे निपुण और वेदो के ज्ञाता थे। राजा धृतराष्ट्र ने अपनी पुत्री दु शला का विवाह राजा जयद्रथ से किया।

महात्मा पाण्डु के कुन्ती से तीन और माद्री से दो पुत्र उत्पन्न हुए। कुन्ती के धर्मराज के अश से युधिष्ठिर, वायु से भीम, इन्द्र से अर्जुन और अश्विनीकुमारो से माद्री के नकुल और सहदेव हुए। इन पाण्डव-पुत्रो मे उन्ही देवताओ के गुण उपस्थित थे। कुछ समय पश्चात महात्मा पाण्डु वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर वन मे चले गये। उन्होने अपने सव आभूषण ब्राह्मणो को दिये और स्वय कठिन तपस्या मे निमग्न हो गये। उस महान रमणीय

वन में महाराजा पाण्डु अपने गुणवान पुत्रो के साथ प्रसन्नतापूर्वक निवास करते थे।

कालांतर में महात्मा पाण्डु काल के गाल में चले गये, तब उनकी स्त्री माद्री उनके साथ चिता में बैठने के पहले युधिष्ठिर और अन्य पुत्रों से बोली—'बच्चो ! कुन्ती देवी ही तुम सबकी वास्तविक माता हैं। मैं तो केवल तुम लोगो को दूध पिलाने वाली धाय थी। तुम्हारे पिता स्वर्ग में चले गये हैं, अत. बड़े भैया युधिष्ठिर ही धर्मतः तुम्हारे पिता हैं। तुम सब गुरुजनों की सेवा मे सलग्न रहना। सत्य एव धर्म के पालन से कभी मुँह न मोडना। ऐसा करने वाले कभी नष्ट नही होते।' तत्पश्चात माद्री ने ऋपियों तथा कुन्ती को प्रणाम कर, क्लान्त हो, कुन्ती देवी से दीनतापूर्वक कहा—'बहन ! तुम धन्य हो। तुम्हारे समान दूसरी कोई स्त्री नही है, जो अमित तेजस्वी और यशस्वी पाँचों पुत्रो का भरण-पोपण करोगी। तुम्ही इनका बल, पराक्रम, तेज, योगबल तथा महात्म्य देखोगी। देवी ! तुम मेरी गुरु और वदनीया हो। तुम मुझसे अवस्था में बड़ी और गुणो मे श्रेष्ठ हो। मुझे जिस प्रयत्न द्वारा धर्म, स्वर्ग और कीर्ति प्राप्त हो सके, वैसा आदेश दो।'

कुन्ती गद्गद वाणी से बोली—'बहन ! तुम मेरे पुण्य के प्रभाव से पति के साथ स्वर्ग प्रस्थान करो।' कुन्ती से आशीर्वाद मिलने पर यशस्विनी माद्री नरश्रेष्ठ पाण्डु के साथ चिता पर बैठ स्वर्ग चली गई और महारानी कुन्ती अपने पाँचो पुत्रो को ले हस्तिनापुर आ गई। उसने अपने पति की मृत्यु का समाचार वीर भीष्म, राजा धृतराष्ट्र एवं धर्मात्मा विदुर को सुनाया। वीर भीष्म और महात्मा विदुर पाण्डु पुत्रो को सब प्रकार की शिक्षा देने लगे।

# कौरवों और पाण्डवों की बाल्यावस्था

पाण्डव खेल मे अपने दल के प्रभाव से धृतराष्ट्र-पुत्रो से बढ-चढकर सिद्ध हुए। भीमसेन अकेला ही कौरवो का मान-मर्दन कर उन्हे अपने वश मे कर लेता था। दुर्योधन को जब विश्वास हो गया कि भीमसेन अत्यन्त बलशाली है, तब वह पाण्डवो के प्रति दुर्भाव रखने लगा। वह सदा धर्म से दूर रहता और पाप-कर्मो पर ही दृष्टि रखता था। उसने भाइयो से मन्त्रणा की कि भीमसेन को गगा मे फेंक दें और दूसरे पाण्डवो को बदी बना ले। इस अभिप्राय को पूर्ण करने हेतु उसने गगा तट पर एक विशाल गृह का निर्माण करवाया और पाण्डवो को लेकर गगा तट पर जल-विहार करने चला गया। वहाँ पहुँचकर कौरव और पाण्डव यथा-योग्य स्थानो पर बैठ गये और नाना प्रकार की सामग्रियो का उपभोग करने लगे। पापी दुर्योधन ने भीमसेन को मार डालने की इच्छा से, उसके भोजन मे विष डलवा दिया। भीमसेन उस भोजन के दोप से अपरिचित थे, अतः बिना किसी सकोच के उस विपैले भोजन को खा, जड के समान निश्चेष्ट हो, सो गये। दुर्योधन ने उन्हे लताओ के पाश से बाँधकर गगाजी के जल मे बहा दिया, जहाँ अनेक सर्प थे। गगा जल के स्पर्श और सर्पो के डसने से उनके ऊपर जो विप का प्रभाव था, वह कम हो गया और वे पुन स्वस्थ हो जल से बाहर निकले। दुर्योधन ने युधिष्ठिर मे झूठ कह दिया कि भीमसेन हस्तिनापुर पहले ही चला गया है। युधिष्ठिर धर्मात्मा थे, इसलिये उनके हृदय मे दुर्योधन के पाप-पूर्ण विचार का भान तक न हुआ। माता कुन्ती के पास पहुँचकर, उन्होंने भीमसेन के बारे मे पूछा, किन्तु वह भी इस प्रश्न से व्याकुल हो उठी। कुछ ही समय मे महाबली भीमसेन हस्तिनापुर माता के पास पहुँचे और दुर्योधन की कुचेष्टाए भाइयो को बता दी। इसी प्रकार दुर्योधन, शकुनि और दु शासन ने पाण्डवो को मार डालने के लिए अनेक प्रयास किये, पर ईश्वर की कृपा से वे

जीवित रहे। राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से कौरव और पाण्डु-पुत्र कृपाचार्य मे शस्त्र-विद्या की शिक्षा लेने लगे।

भरद्वाज-नंदन द्रोण और द्रुपद वचपन मे एक साथ भरद्वाज मुनि के गुरुकुल में निवास करते थे, अत गुरु भाई थे। द्रोणाचार्य ने भृगु-श्रेष्ठ परशुरामजी से पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। एक समय द्रोणाचार्य राजा द्रुपद के पास गये, किन्तु उन्होने उनका सत्कार नही किया। मित्र के व्यवहार से दुखित हो द्रोणाचार्य हस्तिनापुर चले गये और कृपाचार्य के गृह मे रहने लगे। उन्होने कृपाचार्य की वहन कृपी से विवाह किया, जिसने अश्वत्थामा को जन्म दिया। एक दिन कुछ वालक गाय का दूध पी रहे थे। उन्हे देख वालक अश्वत्थामा भी दूध पीने का आग्रह कर रोने लगा। यह देख द्रोणाचार्य की आखो के सामने अधेरा छा गया। उनकी पत्नी कृपी ने अपनी विवशता के कारण वालक अश्वत्थामा को जल मे आटा मिलाकर पिला दिया। बालक अश्वत्थामा ने उसे दूध ही समझा और आटे के जल को पी फूला नही समाया एवं हर्ष से नाचने लगा। भीष्म को जब पता चला कि द्रोणाचार्य,कृपाचार्य के घर मे ठहरे हुए है, तव वे उन्हें सत्कारपूर्वक अपने घर ले गये और कौरव एव पाण्डवों को उनके द्वारा धनुर्वेद की शिक्षा दिलवाने लगे।

पाण्डुनन्दन अर्जुन धनुर्वेद की जिज्ञासा, शिक्षा, बाहुबल और उद्योग की दृष्टि से सभी शिष्यों मे श्रेष्ठ एवं आचार्य द्रोण की समानता करने योग्य हो गये। आचार्य द्रोण उपदेश ग्रहण करने में अर्जुन को अनुपम प्रतिभाशाली मानते थे, अत. वे उनके बड़े प्रिय हो गये। तदनन्तर निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य आचार्य के पास धनुर्वेद की शिक्षा लेने आया, किन्तु उन्होने उसकी प्रार्थना स्वीकार नही की। एकलव्य द्रोणाचार्य के चरणों में प्रणाम कर वन में लौट गया और आचार्य की मिट्टी की प्रतिमा सामने रख, धनुर्विद्या का अभ्यास नियम के साथ करने लगा। आचार्य मे अनुपम श्रद्धा रखने के कारण उसने बाणो को छोड़ने,

लौटाने और सधान करने की शक्ति प्राप्त कर ली। एक समय कौरव और पाण्डव आचार्य के साथ वन में विहार करने निकले, जहाँ एकलव्य रहता था। कौरव और पाण्डवों को अपने स्थान पर आया देख, एक कुत्ता भौंकता हुआ उनकी ओर दौड़ा। यह देखकर एकलव्य ने कुत्ते के मुंह में एक ही साथ सात बाण मारे। कुत्ते का मुंह बाणों से भर गया, अत उसने भौंकना बन्द कर दिया। इस घटना से कौरव और पाण्डव बड़े विस्मित हुए। एकलव्य के हाथ की गति और शब्द के अनुसार लक्ष्य-भेदन की उत्तम शक्ति देखकर सब उसकी प्रशसा करने लगे। द्रोणाचार्य को अपने आश्रम मे आया देख, एकलव्य ने उन्हे श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। आचार्य द्रोण उसकी धनुर्विद्या प्राप्त करने की एकाग्रता पर प्रसन्न हो गये। उन्होने गुरु दक्षिणा के रूप मे उसके दाहिने हाथ का अँगूठा मांगा। द्रोणाचार्य का यह दारुण वचन सुन सत्य पर अटल रहने वाले एकलव्य ने प्रसन्न-मुख और उदार-चित्त हो, बिना सोचे-विचारे, अपना अँगूठा आचार्य को अर्पित कर दिया। इस कार्य पर आचार्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने एकलव्य को तर्जनी और मध्यमा के सयोग से बाण चलाने की शिक्षा दी।

द्रोणाचार्य के दो शिष्य, दुर्योधन और भीमसेन गदायुद्ध मे सुयोग्य निकले। अश्वत्थामा धनुर्वेद को जानता था। नकुल और सहदेव तलवार चलाने मे निपुण थे। यद्यपि कौरव-पाण्डव सभी को समान रूप से अस्त्र-विद्या की शिक्षा दी जाती थी, तथापि वीर अर्जुन सब प्रकार की युद्ध-कला मे अत्यन्त प्रवीण था। धृतराष्ट्र के पुत्र दुरात्मा होने के कारण, भीमसेन का बल और अर्जुन को अस्त्र-विद्या मे प्रवीण देख, उनके प्रति ईर्ष्या से जलते रहते थे। जब समस्त कुमार धनुर्विद्या और अस्त्र-सचालन की कला मे पारगत हो गये, तब नर-श्रेष्ठ द्रोण ने उनकी परीक्षा लेने का आयोजन किया। उन्होने एक कृत्रिम गृद्ध बनवाकर वृक्ष के अग्रभाग पर रखवा दिया और राजकुमारो को उस

लक्ष्यभेदन का आदेश दिया। सबसे पहले दुर्धर्ष वीर युधिष्ठिर धनुष-वाण हाथ मे लेकर लक्ष्य पर शस्त्र चलाने हेतु तत्पर हुए।

गुरु द्रोण ने उनसे पूछा—'तुम क्या-क्या देख रहे हो ?' उन्होने उत्तर दिया—'मैं वृक्ष, डाली पर बैठे गृद्ध तथा आप सबको देख रहा हूँ।' यह सुन द्रोणाचार्य ने दूसरे कुमारो को एक-एक कर लक्ष्य को ध्यानपूर्वक देखने को कहा। उन सबने भी वही उत्तर दिया, जो युधिष्ठिर दे चुके थे। अत में उन्होने अर्जुन से भी वही प्रश्न किया।

अर्जुन ने कहा—'मैं केवल गृद्ध के मस्तक को ही देखता हूँ, अन्य कुछ भी नही। अर्जुन के ऐसा कहने पर द्रोणाचार्य ने उसे वाण छोड़ने को आज्ञा दी। उसने अपने तीक्ष्ण बाण से गृद्ध का मस्तक काट गिराया। कुछ समय पश्चात आचार्य द्रोण अपने शिष्यों के साथ गगा मे स्नान कर रहे थे। जल मे गोता लगाते समय एक ग्राह ने द्रोणाचार्य का पैर पकड लिया। उन्होने अपने शिष्यों को ग्राह को मार डालने को आज्ञा दी। उनका आदेश पाकर अर्जुन ने अपने तीखे वाणो द्वारा उसे मार डाला। अन्य द्रोणाचार्य को पुकार सुन धैर्य खो बैठे और किंकर्तव्य-विमूढ हो गये। द्रोणाचार्य अर्जुन की कार्य-क्षमता पर बडे प्रसन्न हुए और उन्होने उसे ब्रह्मशिर नामक अत्यन्त कठिन अस्त्र के प्रयोग की विधि बताई।

जब कौरव पाण्डवो की अस्त्र-विद्या पूर्ण हो गई, तब वे कृपाचार्य, सोमदत्त, बाह्लिक, महात्मा भीष्म, विदुर, महर्षि व्यास और धृतराष्ट्र के पास गये और बोले—'राजन्! आपके कुमार अस्त्र-विद्या प्राप्त कर चुके है। आपकी अनुमति से वे उसका प्रदर्शन करना चाहते है। मैं इस आयोजन की व्यवस्था स्वय ही करूँगा।' राजा धृतराष्ट्र ने विदुरजी को उचित प्रबध करने को कहा। बुद्धिमान द्रोण ने रग-मण्डप के लिए वास्तु-पूजन कर, एक विशाल गृह का निर्माण करवाया। उसमे आमन्त्रित सुहृद वीर-समुदाय, राजा धृतराष्ट्र, माता गाधारी और कुन्ती

को उन्होने वैठाया। तदनन्तर आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा और वीर कुमारो ने अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो रगभूमि मे प्रवेश किया। शिष्यो ने आचार्य द्रोण और कृपाचार्य की पूजा की और अनेकानेक आशीर्वाद प्राप्त कर, प्रसन्न मन मे वे अपने-अपने आसन पर वैठ गये। तत्पश्चात पराक्रमी राजकुमार गुरु की आज्ञा पाकर परम अद्भुत अस्त्र-कौशल दिखलाने लगे, जिसको देखकर समस्त दर्शक आश्चर्यचकित हो गये।

द्रोणाचार्य ने दर्शको से कहा—'श्रेष्ठ दर्शको! अव आप कुन्ती-पुत्र अर्जुन का कौशल देखें, जो मुझे अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय है। यह महावीर भगवान नारायण के समान पराक्रमी है और सम्पूर्ण शास्त्रो मे निपुणता प्राप्त कर चुका है। यह कुन्ती-पुत्र तेजस्वी, कुरुवश का रक्षक, अस्त्र-विद्या के महारथियो मे सर्वोत्तम और धर्मात्माओ एव शीलवानो मे श्रेष्ठ है।' जव दर्शको का कोलाहल शान्त हो गया, तव अर्जुन ने अपनी अस्त्र-विद्या दिखानी आरम्भ की। उसने पहले आग्नेयास्त्र से अग्नि उत्पन्न की, फिर वरुणास्त्र से उसे शान्त कर दिया। वायव्यास्त्र से आंधी चला दी और पर्जन्यास्त्र से वादल उत्पन्न कर दिये। उसने भौमास्त्र से पृथ्वी और पार्वतास्त्र से पर्वत उत्पन्न किये। फिर अन्तर्धानास्त्र के द्वारा स्वय अदृश्य हो गया। अर्जुन ने अति शीघ्रता से सूक्ष्म और वडे लक्ष्य को भी वाणो द्वारा वीध डाला। उसने लोहे के चलते हुए सुअर के मुख मे पाँच वाण मारे। एक स्थान पर गाय के हिलते हुए सीग के छिद्र मे अनेक वाण डाल दिये। जव अस्त्र-कौशल दिखलाने का कार्य सम्पन्न हो गया, तव दर्शक, वीर अर्जुन और द्रोणाचार्य की प्रशसा करने लगे। दर्शको के मुख से तुमुल ध्वनि सुन कुन्ती के स्तनो से दूध और नेत्रो से स्नेह के आँसू वहने लगे।

धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा—'महामते! कुन्ती-रूपी अरणि से प्रकट पाण्डव रूपी अग्नि से आज मैं धन्य हो गया हूँ। इनके द्वारा मैं सर्वदा आश्वस्त और सुरक्षित रहूँगा।'

तभी वीर कर्ण ने उस विशाल रंग-मण्डप में प्रवेश किया। उसने सुन्दर कवच और कुण्डल धारण कर रखे थे, जो उसके शरीर के साथ ही उत्पन्न हुए थे। उसमे सिंह के समान बल, साँड के सदृश वीर्य और गजराज के समान पराक्रम था। उसमें सूर्य की-सी दीप्ति, चन्द्रमा की-सी कान्ति, अग्नि का-सा तेज था। वक्ताओ में श्रेष्ठ कर्ण ने द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को प्रणाम कर अर्जुन से कहा—'कुन्तीनन्दन ! तुमने जो अस्त्र-विद्या प्रदर्शित की है, उससे भी अद्भुत कार्य कर मैं दर्शको को दिखाऊँगा।' ऐसा कह जो-जो अस्त्र-कौशल अर्जुन ने प्रदर्शित किये थे, वे सब उसने कर दिखाये। इस पर दुर्योधन ने कर्ण को हृदय से लगाया। कर्ण ने कहा—'अर्जुन ! रग-मण्डप मे तो अनेक योद्धा अपनी विद्या का प्रदर्शन करते है। जो बल और पराक्रम में श्रेष्ठ होते है, वे ही राजा कहलाने योग्य है। साहस हो तो तुम मुझसे बाणों से बातचीत करो। मै आज गुरुजनो के समक्ष ही अपने बाणो द्वारा तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर देता हूँ।' तदनन्तर अर्जुन आचार्य द्रोण की आज्ञा ले, भाइयों से गले मिल, युद्ध के लिए कर्ण की ओर आगे बढे। दुर्योधन ने भाइयो सहित कर्ण का आलिंगन किया। धृतराष्ट्र के पुत्र, जिस ओर कर्ण था, उसी ओर खडे हो गये। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्म अर्जुन के पास खड़े थे। कुन्ती देवी अपने दोनों पुत्रों को जानती थी, अतः चिन्ता के कारण उन्हें मूर्च्छा आ गयी। जब वह सचेत हुई, तब उन्हे युद्ध में उद्यत देख व्याकुलता-वश रोकने का कोई उपाय उसे ध्यान मे नही आया।

कृपाचार्य ने कहा—'कर्ण ! कुरुवश का रत्न, अर्जुन कुन्तीदेवी का सबसे छोटा पुत्र है। तुम भी अपने माता-पिता और अपने वश का नाम बताओ। इसके पश्चात हम निश्चय करेंगे कि तुम दोनो में द्वन्द्व युद्ध होना चाहिए या नही।'

दुर्योधन बोला—'यदि अर्जुन राजा से भिन्न पुरुष के साथ लडना नही चाहता, तो मैं इन्हे अग देश के राजपद पर अभि-

षिक्त करता हूँ।' ऐसा कह उसने कर्ण के मस्तक पर तिलक लगा दिया और तब से वे दोनो घनिष्ठ मित्र बन गये।

तदनन्तर द्रोणाचार्य ने गुरु दक्षिणा हेतु शिष्यो को कहा—'शिष्यो! पाचाल-राज द्रुपद को वदी बनाकर मेरे पास ले आओ। यही मेरे लिए सर्वोत्तम गुरु-दक्षिणा होगी।' गुरु की आज्ञा सुन राजकुमारो ने द्रोणाचार्य के साथ पाचाल देश के लिए प्रस्थान किया। पाचाल-राज द्रुपद कौरवो के द्वारा आक्रमण की सूचना पाकर अपनी विशाल सेना और भाइयो सहित युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकले। वीर अर्जुन को विश्वास था कि कौरव राजा द्रुपद को वदी नही बना सकेंगे, इसलिए गुरुदेव की आज्ञा ले, वह युद्ध-स्थल से दूर ठहर गया। राजा द्रुपद ने कौरवो पर धावा कर अनेक वीरो को मूच्छित कर दिया। यद्यपि दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन, दु शासन और कर्ण, द्रुपद से युद्ध कर रहे थे, किन्तु कौरव उन्हे परास्त नही कर सके। द्रुपद ने अपने तीक्ष्ण बाणो से कर्ण के अगो को क्षत-विक्षत कर, दिया, इसमे भयभीत हो, वह युद्ध-भूमि से भाग गया। कौरव सैनिको का आर्त्तनाद सुन, पाण्डव द्रोणाचार्य को प्रणाम कर पाचाल नरेश द्रुपद से युद्ध करने लगे। पाण्डुनन्दन-अर्जुन राजा द्रुपद पर अपने तीक्ष्ण बाणो की वर्षा करने लगा और भीमसेन ने उनकी सेना का भीषण सहार करना आरम्भ कर दिया। सत्य-पराक्रमी सत्यजीत, द्रुपद की सहायता हेतु अर्जुन से युद्ध करने लगे, किन्तु अर्जुन ने सबको परास्त कर, राजा द्रुपद को बन्दी बना लिया।

उन्होंने भीमसेन से कहा—'भैया! राजा द्रुपद हमारे सम्बन्धी हैं, अत इनकी सेना का सहार न करो। गुरु दक्षिणा के रूप मे हमे गुरुजी को महाराज द्रुपद को ही समर्पित करना है।' यह कहकर पाण्डवो ने मन्त्रियो सहित द्रुपद को बन्दी बना द्रोणाचार्य को उपहार के रूप मे दे दिया।

द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद से कहा—'वीर! तुम शत्रुओ के

वश में हो। अब पुरानी मित्रता चाहते हो क्या ? हम क्षमाशील ब्राह्मण हैं। तुम बचपन में मेरे साथ खेला करते थे, अतः तुम्हारे ऊपर मेरा स्नेह है। नरेश्वर ! मैं पुन. तुमसे मैत्री के लिए प्रार्थना करता हूँ। मैं तुमसे तुम्हारा आधा राज्य लूंगा।'

द्रुपद—'आचार्य ! आप उदार, पराक्रमी और महात्मा है। मैं आपके साथ मैत्री और प्रेम चाहता हूँ।' द्रोणाचार्य ने उनका आधा राज्य ले आदर-सत्कार के साथ उन्हे छोड दिया। कुछ समय पश्चात राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को धृति, स्थिरता, सहिष्णुता, दयालुता, सरलता तथा अविचल सौहार्द्र आदि गुणों से सम्पन्न और प्रजा पालने योग्य जानकर युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। थोड़े ही दिनों मे कुन्तीनदन युधिष्ठिर अपने शील तथा सद्व्यवहार द्वारा प्रजा में महाराज पाण्डु से भी अधिक प्रिय हो गये। पाण्डुनदन भीमसेन नित्य खड्ग, गदा और रथ-युद्ध की शिक्षा बलराम मे लेते थे, अत शिक्षा समाप्त होने पर वे राजा द्युत्सेन के समान पराक्रमो हो गये। अर्जुन धनुर्विद्या मे निपुण निकले, इसलिए द्रोणाचार्य को विश्वास हो गया कि इसके समान अन्य योद्धा इस समय पृथ्वी पर नही है।

गुरु द्रोण ने कौरवो की सभा में अर्जुन से कहा—'भारत ! मेरे गुरु अग्निवेश नाम से विख्यात है। उन्होने पूर्वकाल मे महर्षि अगस्त्य से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी। मैं उसी महात्मा अग्निवेश का पुत्र हूँ। एक पात्र से दूसरे को विद्या प्राप्ति कराने के उद्देश्य से मैंने तुम्हे ब्रह्मशिर नामक अस्त्र प्रदान किया है। वह अमोघ अस्त्र वज्र के समान है। उसमें पृथ्वी को भस्म करने की शक्ति है। मुझे वह अस्त्र देते समय, गुरु अग्निवेश ने कहा था कि तुम यह अस्त्र मनुष्यों पर न चलाना। वीर अर्जुन ! यदि युद्ध-भूमि मे, मैं भी तुम्हारे विरुद्ध लड़ने आऊँ तो तुम निस्सकाच मेरा सामना करना।'

वीर अर्जुन ने अपने पराक्रम की परीक्षा हेतु सौवीर देश के राजा पर चढाई कर उसे पराजित कर दिया। उसने यवन

देश के राजा को भी अपने अधीन कर लिया, जिसे राजा पाण्डु नही जीत सके थे। वीर अर्जुन ने सौवीर निवासी सुमित्र का दमन किया। अर्जुन ने भीमसेन की सहायता से पूर्व दिशा के योद्धाओं को भी जीता। इसी प्रकार धनजय ने दक्षिण दिशा में भी विजय पाई और वहाँ के राजाओं से उन्हें प्रचुर धन प्राप्त हुआ। पाण्डवो ने दूसरे राष्ट्रों को जीतकर अपने राष्ट्र की वृद्धि की। उनके बल और पराक्रम की कीर्ति सुन राजा धृतराष्ट्र चिन्तित रहने लगे।

उन्होंने एक दिन राजनीति और अर्थशास्त्र के पण्डित तथा मन्त्रो के ज्ञाता कणिक से पूछा—'मुझे पाण्डवो से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए ?'

कणिक ने कहा—'राजन् ! राजा को पुरुषार्थी और सर्वदा दण्ड देने के लिए उद्यत होना चाहिए। उसे अपनी दुर्बलता प्रकट नही करनी चाहिए और शत्रु के छिद्र देखते हुए अनिष्ट करने वालो का वध करना चाहिए। यदि शत्रु दुर्बल हो तो भी उसकी उपेक्षा नही करनी चाहिए। राजन् ! पाण्डव बहुत बलवान हैं, अतः ऐसी नीति से काम लीजिये, जिससे आगे चलकर आपको पछताना न पड़े।'

## लाक्षागृह तथा बकासुर वध

तदनन्तर राजा दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण ने कुन्ती सहित पाण्डवों को आग मे जला डालने का निश्चय कर वारणावत में एक लाक्षागृह का निर्माण करवाया। तत्वज्ञानी विदुर को उनकी गुप्त मन्त्रणा का पता चल गया। वे सदा पाण्डवो के हित में सलग्न रहते थे। उन्होने एक सुदृढ नौका बनवाई और यशस्विनी कुन्ती को पुत्रो सहित वारणावत के लाक्षागृह से रात्रि के समय गगाजी की यात्रा करने को कहा। विदुरजी के आदेशानुसार पाण्डवों ने यात्रा करने के पश्चात उस नौका को गगाजी

में डुबो दिया और वन मे चले गये। इसी समय एक निषाद जाति की स्त्री अपने पाँचों पुत्रों के साथ उस लाक्षागृह मे ठहरी हुई थी। रात्रि मे वह बिचारी निरपराध अपने पुत्रो सहित उस गृह में जलकर भस्म हो गयी और पाण्डव मृत्यु से बच गये। वारणावत के नगरवासी लाक्षागृह को दग्ध हुआ देख, पाण्डवो के लिए शोक करने लगे। जब धृतराष्ट्र ने यह समाचार सुना, तब वह भी शोकाकुल हो गया। चलते-चलते पाण्डव भूख और प्यास से व्याकुल हो थक गये, अत: वन मे ही विश्राम करने लगे। भीमसेन जल लाने के लिए जगल में आगे वढे। उन्होने एक जलाशय देखा। उसने पहले स्नान कर अपनी थकान मिटाई, फिर जल लेकर जहाँ माता और भाई विश्राम कर रहे थे वहाँ गया। अपनी माता और भाइयो को पृथ्वी पर सोते हुए देख उसे बडा दु:ख हुआ। पाण्डवो के विश्रामस्थल से थोडी दूर पर हिडिम्ब नामक राक्षस रहता था। वह बडा क्रूर और मनुष्य-भक्षी था। देवेच्छा से उसकी दृष्टि उन महारथी पाण्डवो पर पडी। भूख से व्याकुल राक्षस हिडिम्ब पाण्डवो की ओर आया और भीमसेन पर टूट पडा। भीमसेन ने उस राक्षस को वल-पूर्वक पकड लिया और कुछ दूर घसीटकर ले गया। अब दोनो मे भीषण मल्लयुद्ध होने लगा। भीमसेन ने उस राक्षस को जोर से पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी।

हिडिम्ब की बहिन हिडिम्बा अलौकिक रूप धारण कर माता कुन्ती के पास आई और उन्हे प्रणाम कर बोली—'इस निर्जन वन मे, मैं और मेरा भाई हिडिम्ब रहते है। मेरा क्रूर भाई आपके पुत्रो की हत्या करने यहाँ आया था। मैं भी उसके साथ ही आई थी और मेरी दृष्टि महाबली भीमसेन पर पडी। मैंने अपने मन मे उन्हे पति के रूप मे वरण किया है, अत मेरी इच्छा आप पूर्ण करे। आप मुझे एक मूढ स्वभाव की स्त्री मान-कर या अपनी भक्त जानकर अथवा अनुचरी समझकर कृपा करिये। मैं आप लोगो का अभीष्ट ही करूँगी। मैं न तो यातुधानी

हूँ और न निशाचरी ही। मैं राक्षस जाति की सुशीला कन्या हूँ। मेरा नाम सालकटकंटी है। मैं आप सभी की सेवा मे निरतर सलग्न रहूँगी। आपकी आज्ञा से ही भीमसेन मुझे स्वीकार करेगे।'

कुन्ती देवी वोली—'पुत्रो! सालकटकंटी ने उत्तम धर्म का ही प्रतिपादन किया है। यदि इसकी हार्दिक भावना भी भीमसेन के प्रति दूषित हो, तो भी यह उसका क्या विगाड लेगी? तुम सबकी सम्मति हो तो यह भीमसेन की सेवा मे रहे, जवतक इसके पुत्र न हो जाये।' इस पर सव भाइयो ने माता के हितपूर्वक कथन का अनुमोदन किया। माता की आज्ञानुसार भीमसेन ने हिडिम्बा से विवाह किया और उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। कुछ काल पश्चात हिडिम्बा के भीमसेन से महान वलवान पुत्र उत्पन्न हुआ। उस वीर ने सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र मे वडी निपुणता प्राप्त की और घटोत्कच के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महामना इन्द्र ने कर्ण की अनुपम शक्ति का आघात सहन करने के लिए ही घटोत्कच की सृष्टि की थी। हिडिम्बा से विदा ले, महारथी पाण्डव वनस्थलियो और सरोवरो को देखते हुए यात्रा कर रहे थे। पाण्डवो के सिर पर जटाए थी और शरीर पर मृगचर्म। पाण्डव मत्र शास्त्रो के ज्ञाता थे, अत प्रतिदिन उपनिषद्, वेद-वेदाग तथा नीतिशास्त्र का स्वाध्याय किया करते थे। मार्ग मे उन्हे पितामह व्यासजी मिले।

पाण्डवो ने माता सहित उन्हे प्रणाम किया। व्यासजी ने कहा—'मैं तुम्हारे सकटो को जानता हूँ। धृतराष्ट्र-पुत्रो ने तुम्हे जिस प्रकार अधर्मपूर्वक राज्य से वहिष्कृत किया है, इसके लिए तुम्हे विषाद नही करना चाहिए। यह सव तुम्हारे भावी सुख के लिए ही हो रहा है। यद्यपि मेरे लिए पाण्डव और कौरव दोनों समान है, पर जो धर्म के मार्ग पर चलते हैं, उन पर मेरा अधिक स्नेह रहता है। यहाँ से पास ही एक रमणीय एकचक्रा नगर है, जहाँ आधि-व्याधि का भय नही है। तुम सव वही छिपकर रहो

और मेरे पुनः आने की प्रतीक्षा करो।' उन्होने कुन्ती को सान्त्वना दी और कहा—'तुम्हारे पुत्र धर्मपरायण है, अत. धर्म से पृथ्वी को विजित कर राजाओं पर शासन करेगे। भीमसेन और अर्जुन के बल से समुद्र पर्यन्त सारी वसुधा पाण्डवो के अधिकार में आ जायगी। वे राजसूय तथा अश्वमेघ यज्ञ करेंगे।' ऐसा कहकर व्यासजी ने उन्हे एकचक्रा नगर में एक ब्राह्मण के घर में ठहराया और उनसे विदा ले चले गये। पाण्डव ब्राह्मण के घर मे रहकर भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करते थे। उनके सद्‌गुणो के कारण वहाँ के नागरिक उनसे प्रेम करने लगे। प्रतिदिन रात्रि के आरम्भ मे जो भिक्षा वे लाते, माता कुन्ती उसे यथोचित सबमे बाँट देती थी, किन्तु भिक्षा का अधिक भाग भीमसेन को मिलता था। एक दिन किसी कार्यवश भीमसेन माता कुन्ती के साथ घर मे रहा। उस दिन ब्राह्मण के घर में सहसा आर्त्तनाद होने लगा।

ब्राह्मण परिवार को रोते और विलाप करते देख माता कुन्ती ने भीमसेन से कहा—'बेटा! हम लोग ब्राह्मण के घर में सुखपूर्वक निवास कर अपने दु ख और दैन्य को भूल गये है। मैं सदा सोचती रहती हूँ कि इस ब्राह्मण का कौन-सा प्रिय कार्य करूँ। जो किसी के ऊपर उपकार करता है, वही मनुष्य है। जो किये हुए उपकार का बदला चुकाता है, उसके पाप नष्ट हो जाते है। इस समय निश्चय ही इस ब्राह्मण पर कोई दु ख आ पडा है, जिसके कारण वह विलाप कर रहा है। यदि इसकी हम सहायता करे तो वास्तविक प्रत्युपकार हो सकता है।'

भीमसेन ने कहा—'माँ! तुम्हारी आज्ञा मिलने पर मैं इस ब्राह्मण का यदि अत्यन्त दुष्कर कष्ट होगा तो भी उसे निवारण करने का उद्योग करूँगा।' तदनन्तर माता कुन्ती ब्राह्मणी के पास गयी और उसके दु.ख का कारण पूछा।

ब्राह्मणी आर्त्त स्वर मे बोली—'पुण्येश्वरी! जगत के इस जीवन को धिक्कार है, क्योकि यह सारहीन, निरर्थक, दुःख की जड़, पराधीन और अप्रिय घटनाओ को भोगने वाला है। मनुष्य

को जीवन-काल मे बडी चिन्ता का सामना करना पडता है, अतः उसे दु ख की प्राप्ति होती है। मनुष्य के किये हुए कर्मों के अनुसार जीवात्मा अकेला ही धर्म, अथ और काम का सेवन करता है। कुछ लोग मोक्ष को सर्वोत्तम बताते है, किन्तु वह भी मेरे लिए किसी प्रकार से सुलभ नही है। मुझे ऐसा कोई उपाय नही दिखाई देता, जिससे इस समय आई हुई विपत्ति से मैं छुटकारा पा सकूँ। मैंने अपने पति से पहले ही दूसरे स्थान पर चले जाने का आग्रह किया था, जिससे हम सुखपूर्वक रह सकें, किन्तु उसने मेरी बात नही मानी। आज वह विनाश की घडी आ पहुँची है, जो मेरे लिए अत्यन्त दुःख का कारण है।'

ब्राह्मण बोला—'मैं अपनी सहधर्मिणी के साथ, जो इद्रियो को संयम मे रखने वाली है, और जो माता के समान मेरा भरण-पोषण करती है, अत्यन्त दु खी हूँ। यह सती-साध्वी कुलीन, सुशीला, और सतानवती है। इसने मेरा कभी अपकार नही किया, अतः इसे और अपने प्रिय पुत्र और पुत्री को मैं कैसे त्याग सकता हूँ ? जिस पर पुण्य-लोक, वश-परम्परा और सुख निर्भर है, उस निष्पाप बालक को मैं त्याग नही सकता। इनमे से किसी का भी त्याग, विद्वानो ने निन्दनीय बताया है। आज मैं कठिन विपत्ति में पड गया हूँ, जिससे पार होना मेरी शक्ति के बाहर है, इसलिए मैं मर जाना चाहता हूँ।'

ब्राह्मणी ने कहा—'आप विद्वान है, अत आपको साधारण मनुष्य की भाँति सताप नही करना चाहिए। ससार मे एक-न-एक दिन, सभी को मरना पडता है, इसलिए जो अवश्यम्भावी है, उसके लिए दु ख नही करना चाहिए। पत्नी, पुत्र और पुत्री आपके लिए अभोप्ट हैं, अत. मै राक्षस के समीप चलो जाऊँगी। पत्नी के लिए सबसे बडा कर्तव्य है कि वह अपने प्राणो को निछावर करके भी पति की भलाई करे। एक पुत्र और एक पुत्री मैं उत्पन्न कर चुकी हूँ, अत सतानोत्पत्ति से उऋण हो चुकी हूँ। आप इन दोनो सतानो का पालन-पोषण और सरक्षण करें।

आपके बिना मैं और ये दोनो बच्चे नष्ट हो जायेंगे, अतः आप अपने प्राणों को न त्यागिये। एक ओर सपूर्ण कुल हो और दूसरी ओर कुल की वृद्धि कराने वाला शरीर हो, तो उन दोनों की तुलना में पुरुष-शरीर भारी होगा , अतः आप मेरे द्वारा अभीष्ट कार्य की सिद्धि कीजिये और स्वय अपने को इस सकट से बचाइये। धर्मज्ञों ने नारी को अबध्य बताया है, इसलिए वह राक्षस भी मुझे स्त्री समझकर, सम्भव है, न मारे, और यदि मेरी मृत्यु हो भी गयी, तो मुझे दुःख न होगा। मेरी मृत्यु के पश्चात, आप दूसरी स्त्री प्राप्त कर, पुन गृहस्थ-धर्म प्रतिष्ठित कर ले।' ब्राह्मणी के ऐसा कहने पर ब्राह्मण देवता ने अत्यन्त दुःखित हो, आँसू बहाते हुए उसे हृदय से लगाया।

माता-पिता को दुःख में डूबे हुए देख कन्या बोली—'पिताजी ! एक-न-एक दिन आप दोनों को मेरा परित्याग करना ही पड़ेगा, तब आज ही मुझे त्यागकर इस कुल की रक्षा कर लीजिये और शोक सागर से पार हो जाइये। जो सतान अपने माता-पिता को दुर्गम सकट से पार लगाए अथवा मृत्यु के पश्चात भी उनका उद्धार करे, उसे ही विद्वान वास्तव में सतान मानते है। यदि आप लोग परलोकवासी हो गये, तो मेरा छोटा भाई भी बिना लालन-पालन के नष्ट हो जायेगा, तब पितरो को पिण्ड कौन देगा ? मैं पिता, माता और भाई की मृत्यु दुःख से निश्चित ही मर जाऊँगी। पुत्र तो पिता की आत्मा है, पत्नी मित्र है, किन्तु कन्या संकट ही कही गयी है। आप इस सकट से अपने को बचा लीजिये और मुझे भी धर्म मे लगाइये। पिताजी ! जो कार्य अवश्य करना है, उसका निश्चय करने मे आपको समय व्यर्थ नही खोना चाहिए। आप लोग इस दुःख से मुक्त हो जाइये और मैं अमरलोक में सुखी हो निवास करूँगी।' उनकी वार्ता सुन कुन्ती ने उन्हे सान्त्वना देते हुए कहा—'आप लोग मुझे अपने दुःख का कारण बताइये ?'

ब्राह्मण बोला—'साध्वी ! इस नगर के पास एक वन नामक

नरभक्षी अत्यन्त बलवान राक्षस रहता है, वह शक्तिशाली असुर-राज इस नगर की रक्षा करता है, इसलिए हमे हिंसक प्राणियो से भय नही होता। प्रत्येक गृहस्थ अपनी बारी आने पर एक मनुष्य और पशु भक्षण के लिए उसके पास भेजता है। जो गृहस्थ उससे छूटने का प्रयत्न करता है, वह राक्षस उसके परिवार को मारकर खा जाता है। आज हमारी बारी आई है, अत. मुझे उस राक्षस को कर के रूप मे नियत भोजन और एक मनुष्य की बलि देनी होगी। मुझे उस निशाचर से छूटने का कोई उपाय दिखाई नही देता, अतः मैं दु ख के महासागर मे डूबा हुआ हूँ।

ब्राह्मण का दु खपूर्ण कथन सुन कुन्ती बोली—'विप्र! आप शोक न करें। मेरे पाँच पुत्र हैं। उनमे से एक उस पापी राक्षस के पास बलि-सामग्री ले, चला जायगा।'

ब्राह्मण बोला—'मैं अपने अतिथि का प्राण-नाश अपने जीवन के लिए नही करूँगा। ऐसा निन्दनीय कार्य तो नीच और अधर्मी पुरुप भी नही करते। ब्रह्महत्या बहुत बडा पाप है, अतः आत्म-हत्या को ही मैं अच्छा समझता हूँ। महात्माओ ने कहा है कि मनुष्य को क्रूर और निंदित कर्म नही करने चाहिए। मेरा विनाश ही सर्वश्रेष्ठ होगा, किन्तु ब्राह्मण-वध की अनुमति मैं नही दूँगा।

कुन्ती ने कहा—'मैंने निश्चय किया है कि अपना पुत्र समर्पित कर तुम सबकी रक्षा करूँगी। चाहे किसी माता के सौ पुत्र भी क्यो न हो, उसे अपने सब पुत्र प्रिय लगते है। मेरे पुत्र का राक्षस विनाश नही कर सकता, क्योकि वह पराक्रमी, मत्र-सिद्ध और तेजस्वी है। आप मेरे इस कथन को किसी से भी नही कहेगे, अन्यथा वे मत्र सीखने के लोभ मे हमारी शाति भग करेगे।' कुन्ती देवी के इस कथन पर ब्राह्मण सपरिवार अत्यन्त प्रसन्न हुआ। भीमसेन जब राक्षस के पास बलि लेकर जाने लगे, उसी समय उनके भाई भिक्षा लेकर आ गये।

युधिष्ठिर ने भीमसेन को जगल मे राक्षस के पास जाते देख माता कुन्ती से कहा—'मा! आपने यह असह्य और दुष्कर साहस

क्यों किया है ? साधु पुरुष अपने पुत्र के परित्याग को अच्छा नही बताते। दूसरे के पुत्र के लिए आप अपने पुत्र को त्याग रही हैं, यह कार्य लोक और वेद दोनों के विरुद्ध है।'

माता कुन्ती बोली—'बेटा! तुम्हें भीमसेन के लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ब्राह्मण के घर में हम अत्यन्त सुख मे है। इस घर में हमारा जितना सत्कार हुआ है, उसके कारण हम पिछले दु ख को भूल गये। ब्राह्मण के उपकार से उऋण होने का मुझे यही उत्तम उपाय दिखाई देता है। मैने लाक्षागृह में भीमसेन का महान पराक्रम देखा है। हिडिम्ब का वध भी मेरे ही सामने हुआ था, अतः भीमसेन के बल पर मेरा पूरा विश्वास है। भीमसेन राक्षस को निश्चित ही मार डालेगा, यह मेरी मान्यता है। इस कार्य से ऋण चुक जायेगा और धर्म का पालन भी होगा।' माता का कथन सुन भीमसेन माता और बड़े भाई को प्रणाम कर राक्षस के पास चले गये और उसे पुकार-पुकारकर वह अन्न स्वय ही खाने लगे। यह देख नरभक्षी राक्षस भीमसेन को मार डालने की इच्छा से भयकर गर्जना करता हुआ उसकी ओर दौडा और एक विशाल वृक्ष द्वारा प्रहार किया, किन्तु विफल रहा। भीमसेन ने उसी विशाल वृक्ष द्वारा उसे गहरी चोट पहुँचाई। पसली की हड्डियो के टूट जाने पर, विशालकाय बकासुर प्राणहीन हो, पृथ्वी पर चीत्कार करता हुआ गिर पडा। बकासुर की मृत्यु के बाद, उसके कुटुम्बी भय से व्याकुल हो भाग गये और उस नगर के निवासी, सुख-पूर्वक जीवन-यापन करने लगे। बकासुर का वध करने के पश्चात पाण्डव उस ब्राह्मण के घर मे वेदो और उपनिषदो का स्वाध्याय करने लगे।

## द्रौपदी-स्वयंवर

राजा द्रुपद ने पुत्र की कामना से यज्ञ किया था। उनके मन में द्रोणाचार्य से प्रतिशोध लेने की भावना थी। महर्षि-श्रेष्ठ याज और

उपयाज ने इस यज्ञ का सचालन किया । यज्ञ की समाप्ति के कुछ समय बाद राजा द्रुपद के घर धृष्टद्युम्न और देवी कृष्णा ने जन्म लिया । धृष्टद्युम्न ने आचार्य द्रोण से अस्त्र विद्या की शिक्षा पाई । द्रौपदी के स्वयवर की बात सुन ब्राह्मण देवता से विदा ले, पाण्डव माता कुन्ती के साथ पाचाल देश गये । मार्ग मे वे गगा तट पर सोमाश्रयायन नामक तीर्थ मे पहुँचे । गधर्वराज चित्रसेन को वहाँ पाण्डवो का आगमन अच्छा नही लगा, अतः उसने वीर अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा । वीर अर्जुन ने उसे परास्त कर दिया, किन्तु कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने अर्जुन को उसका वध करने से रोक दिया । अब गन्धर्व चित्रसेन अर्जुन का मित्र बन गया और उसने उसे गधर्व विद्या सिखाई । तदनन्तर महर्षि देवल के छोटे भाई धौम्य मुनि को, जो वही तपस्या कर रहे थे, पाण्डवो ने पुरोहित बनाया । धौम्य मुनि के साथ पाण्डव द्रुपद की राजधानी मे पहुँचे और एक कुम्हार के घर में ठहर गये । महाराजा द्रुपद अपनी पुत्री कृष्णा का विवाह वीर अर्जुन के साथ करना चाहते थे, किन्तु उन्हे पाण्डवो का कही भी पता नही चला । महाराजा द्रुपद ने एक विशाल धनुष बनवाया, जिसे झुकाना अत्यन्त कठिन था । उन्होने एक यत्र भी बनवाया, जो घूमता रहता था और जिसके छिद्र मे लक्ष्य लगाया गया था । महाराजा ने घोषणा की थी कि जो वीर रग-मण्डप मे इस धनुष पर प्रत्यचा चढाकर बाण द्वारा यत्र के छेद से लक्ष्य को वेध डालेगा, उससे मै अपनी कन्या का विवाह कर दूँगा । इस घोषणा को सुनकर अनेक राजा, महामना द्रुपद की राजधानी मे आये । बहुत से ऋषि मुनि भी स्वयवर देखने आये थे । कुरुवशी दुर्योधन भी कर्ण के साथ वहाँ उपस्थित हुआ । भगवान श्रीकृष्ण भी यादव वीरो के साथ स्वयवर देखने आये । उन्होने पाण्डवो को जो अगो मे भस्म लपेटे हुए थे, देखते ही पहचान लिया । महामना द्रुपद ने सब अतिथियो की भलीभाँति सेवा-पूजा की । पाण्डव भी महाराजा द्रुपद की समृद्धि का अव-

लोकन करने ब्राह्मणों के साथ बैठ गये। उसी समय सुन्दर वस्त्र और आभूषणों में विभूषित, दो जयमाला लिये द्रुपद कुमारी उस रंगभूमि में आई।

धृष्टद्युम्न ने रगभूमि में कहा—'जो उत्तम क्षत्रिय कुल का भूपाल, इस धनुष और बाण द्वारा, यत्र के छेद के भीतर से लक्ष्य को बेध देगा, मेरी बहन कृष्णा उसकी धर्मपत्नी हो जायेगी।' इसके पश्चात धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी को आमन्त्रित राजाओ का परिचय दिया। द्रुपद कुमारी को पाने की इच्छा से रग-मण्डप में एक-एक राजा उठे और धनुप पर प्रत्यचा चढाने का उद्योग करने लगे। जब उनसे यह कार्य सफल नही हुआ, तब वे लज्जित हो अपने-अपने आसनो पर पुन बैठ गये। सब राजाओ की यह दशा देख धनुर्धारियो में श्रेष्ठ कर्ण ने उस धनुष को उठा लिया और प्रत्यचा चढा दी।

कर्ण को देख द्रौपदी ने उच्च स्वर मे कहा—'मैं सूत जाति के पुरुष का वरण नही करूँगी।' यह सुन अमर्पयुक्त कर्ण ने भगवान सूर्य की ओर देखा और उस विशाल धनुप को पृथ्वी पर डाल दिया। तब यमराज के समान बलवान, धीर, वीर, दमघोष का पुत्र शिशुपाल धनुष उठाने चला, किन्तु असफल रहा। राजा दुर्योधन को अपने बल का बडा अभिमान था, इसलिए वह भी धनुष को उठाने हेतु शीघ्रता से बढा, किन्तु धनुप उठाते समय पृथ्वी पर गिर पडा। जब निमन्त्रित राजा लक्ष्य-भेद करने में असफल हो गये तब ब्राह्मण वेशधारी वीर अर्जुन अपने आसन से उठा, धनुप की परिक्रमा की और उस पर प्रत्यंचा चढा दी। वीर अर्जुन बल मे इद्र और धैर्य मे हिमालय के समान दिखायी देता था। उसने भगवान शकर को मन-ही-मन प्रणाम किया और भगवान श्रीकृष्ण का चिन्तन कर दृढतापूर्वक खडा हो गया। उसने एक बाण हाथ मे लिया और लक्ष्य को वेधकर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। यह देख सभा में आनन्द की लहर दौड गई और पुरवासी अर्जुन के मस्तक पर फूलों की वर्षा

करने लगे। वीर अर्जुन का यह अपूर्व कार्य देखकर महाराजा द्रुपद के हर्ष की सीमा न रही, और सुन्दर फूलो की जयमाला को द्रौपदी ने अर्जुन के गले मे डाल दिया। स्वयंवर-सभा मे वीर अर्जुन द्रौपदी को लेकर बाहर निकलने लगे तब ब्राह्मणो ने उनका बडा सत्कार किया। राजा द्रुपद ने ब्राह्मण को अपनी कन्या दी है, यह विचार कर उपस्थित राजा क्रोधपूर्वक उसे मार डालने के लिए उद्यत हो गये। यह अनुचित कार्य महाधनुर्धर अर्जुन और पाण्डुनन्दन भीमसेन सहन न कर सके, अतः उनका सामना करने खड़े हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण ने दोनो पक्षो में युद्ध होने की सभावना मान-कर बलरामजी से कहा—'भैया! ये दोनो वीर अर्जुन और भीमसेन हैं। जो तीन श्रेष्ठ पुरुष ब्राह्मणो के साथ बैठे हैं, वे धर्म पुत्र युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव है। लाक्षागृह मे इनकी मृत्यु नही हुई है।' तदनन्तर कर्ण आदि को अपनी ओर आते देख अर्जुन ने रगभूमि का धनुष हाथ में ले लिया और भीमसेन ने एक वृक्ष उखाड़ लिया। अब कर्ण अर्जुन से और मद्रराज शल्य भीमसेन से भिड गये। महारथी कर्ण ब्रह्मतेज को अजेय मानकर युद्ध से विरक्त हो वहाँ मे चला गया। भीमसेन ने मद्रराज शल्य को पृथ्वी पर पटक दिया। भगवान श्रीकृष्ण ने सब राजाओ को अनुनय-विनय कर युद्ध करने से रोका।

तत्पश्चात पाँचों पाण्डव द्रौपदी के साथ कुम्हार के घर चले गये और द्वार पर खडे होकर जोर से पुकारा—'माँ! हम लोग अपूर्व भिक्षा लाये है।' कुन्तीदेवी ने घर के भीतर से ही कह दिया कि 'भिक्षा को सब मिलकर ग्रहण करो।' इसके बाद माँ ने बाहर आकर द्रौपदी को देखा और अपने कथन पर चिन्ता करने लगी। कुरुश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर बड़े बुद्धिमान थे। उन्होने माता कुन्ती की बात पर दो घडी तक विचार किया, फिर बन्धुओ से कहा—'कल्याणमयी द्रौपदी हम सबकी पत्नी होगी।' उसी समय भगवान श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ कुम्हार के घर

आये। उन्होंने माता कुन्ती और अजातशत्रु युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया। पाण्डवों ने उनसे यादवों का समाचार पूछा।

महामना युधिष्ठिर बोले— वसुदेवनन्दन ! हम सब तो यहाँ छिपकर रहते हैं, फिर आपने हमें कैसे पहचान लिया ?'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'आग को किसी प्रकार भी छिपाया नही जा सकता। पाण्डवो को छोडकर मनुष्यो में कौन ऐसा है, जो यह अद्भुत कर्म कर सके ? बडे सौभाग्य की वात है कि लाक्षाग्रह से आप सब जीवित बच गये।' पाण्डवों को दूसरे राजा पहचान न ले, यह सोच, भगवान श्रीकृष्ण बलदेवजी के साथ शीघ्र ही वहाँ से चले गये। जब पाण्डुनन्दन भीमसेन और अर्जुन कुम्हार के घर जा रहे थे, तब धृष्टद्युम्न ने गुप्त रूप से उनका पीछा किया। उसने देखा कि सभी पाण्डव, माता कुन्ती और द्रौपदी कुश बिछाकर पृथ्वी पर लेटे हुए दिव्य अस्त्रो की चर्चा कर रहे है। यह सब देख और उनका वार्तालाप सुन धृष्टद्युम्न अपने पिता राजा द्रुपद के पास गया। उसने पिता को जो देखा और सुना था वह सब बता दिया। उन वीरो की बाते सुनकर राजा द्रुपद अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने सब पाण्डवो को निमन्त्रण भेजा। माता कुन्ती, पाण्डव और सती-साध्वी कृष्णा राजा द्रुपद के रनिवास मे गये। वहाँ माता कुन्ती और पाण्डवो का राजा द्रुपद ने बडा आदर-सत्कार किया और उनका परिचय पूछा।

युधिष्ठिर बोले— राजन् ! हम क्षत्रिय वंश में महात्मा पाण्डु के पुत्र है। माता की आज्ञा से द्रौपदी सभी की पटरानी होगी।' राजा युधिष्ठिर से परिचय पाकर, राजा द्रुपद की आंखो में हर्ष के आंसू छलक आये और उसने द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवो से कर दिया। जब राजा धृतराष्ट्र और उनके दुरात्मा पुत्रो को पता चला कि पाण्डव जीवित हैं, तब वे दुःख से पीडित हो गये।

शकुनि बोला—'कुन्ती के सभी पुत्रो को नष्ट कर देना चाहिए। यदि हम ऐसा नही करेंगे तो ससार मे उपहास के भागी होगे और हमे अत्यन्त दु ख उठाना पडेगा।'

भीष्म ने कहा—'धृतराष्ट्र! मुझे तो पाण्डवो के साथ विरोध या युद्ध करना उचित नही लगता। उन वीरो को आधा राज्य दे दो, इसी मे सवका हित है।'

द्रोणाचार्य वोले—'मै सव प्रकार से भीष्मजी से सहमत हूँ। राजा द्रुपद के पास बहू के लिये वर पक्ष की ओर से धन और रत्न लेकर जाना चाहिए। पाण्डवो सहित द्रुपद मे सान्त्वनापूर्ण वचन कहकर पाण्डवो को आदरपूर्वक हस्तिनापुर मे लाना चाहिए।'

द्रोणाचार्य का कथन सुन विदुरजी वहुत हर्षित हुए। उन्होने भीष्म और द्रोणाचार्य के कथन का अनुमोदन करते हुए राजा धृतराष्ट्र से कहा—'राजन्! भीष्मजी और आचार्य द्रोण ने आपको जो हितकर और प्रिय वचन कहे है, उन्हे आपको धारण करना चाहिए। ये दोनो नर-श्रेष्ठ और बुद्धिमान हैं, अत· आपसे कोई कुटिलतापूर्ण बात नही कहेगे। ये दोनो धर्म के ज्ञाता, महापुरुष हैं, अतः स्वार्थ साधने के लिए किसी का पक्ष-पात नही करेंगे। जैसे दुर्योधन आदि आपके पुत्र है, वैसे ही पाण्डव भी है, अत परिवार मे कलह न हो, उसे ही मैं कल्याण-कारक मानता हूँ। कुन्ती के पुत्रो को जीवित सुनकर नागरिक उन्हे देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक है। उन सवका भी प्रिय कीजिये। श्रीकृष्ण और वलरामजी आदि सभी पाण्डवो से स्नेह करते है, अत जो कार्य शान्तिपूर्वक हो सकता है, उसे युद्ध के द्वारा क्यों सिद्ध करना चाहते हो?'

धृतराष्ट्र ने कहा—'विदुर! तुम अभी राजा द्रुपद के यहाँ जाओ और देवी कुन्ती, देवरूपिणी वधू कृष्णा के साथ पाण्डवो को सत्कारपूर्वक यहाँ ले आओ।'

विद्वान विदुर नाना प्रकार के धन-रत्नो की भेट लेकर राजा द्रुपद के यहाँ गये। राजा द्रुपद ने अति हर्ष से उनका आदर-

सत्कार किया। विदुर भगवान श्रीकृष्ण और पाण्डवों से मिले और सबको स्नेहपूर्वक हृदय से लगाया। उन्होने राजा द्रुपद को महाराज की आज्ञा सुनाई। 'राजन्! कुन्ती, द्रौपदी और पाण्डवों को शीघ्र हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दीजिये।' यह सुन, राजा द्रुपद ने सबको प्रेमपूर्वक विदा किया। राजा धृतराष्ट्र ने पाण्डव वीरो का आगमन सुन, कौरवो को उनकी अगवानी करने भेजा। हस्तिनापुर में पहुँचने पर नगरवासियो ने पाण्डवो का स्वागत-सत्कार किया। पाण्डवो ने राजा धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य तथा अन्य वदनीय पुरुषो के चरणो मे प्रणाम किया। दुर्योधन की रानी ने अन्य बधुओ के साथ द्रौपदी का स्वागत किया। द्रौपदी ने माता गाधारी को प्रणाम किया और उनसे अनेक आशीर्वाद प्राप्त किये। तदनन्तर कुन्ती देवी ने पाण्डवों और पाचाली कृष्णा को लेकर अपने महल मे प्रवेश किया।

## युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

जब पाण्डव स्थायी रूप से अपने महल मे निवास करने लगे, तब एक दिन राजा धृतराष्ट्र और भीष्म ने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर से कहा—'मेरी आज्ञा से पाण्डु ने इस राज्य को बढाया और पिता के समान इसका पालन भी किया। मेरे भाई पाण्डु बड़े बलवान थे, अत. वे हमारे हित के लिए सदा दुष्कर कार्य किया करते थे। मेरे दुरात्मा पुत्र दर्प और अहकार से प्रभावित रहते हैं, इसलिए बहुधा वे मेरी आज्ञा का पालन नही करते और अपने स्वार्थ-साधन मे ही लगे रहते है। मैं चाहता हूँ कि इन दुरात्माओं के साथ तुम्हारा झगड़ा न हो, अत तुम आधा राज्य लेकर खाण्डव-प्रस्थ मे निवास करो। विदुर! तुम शीघ्र राज्याभिषेक की सामग्री लाओ। मैं आज ही प्रजावर्ग के सामने कुरुकुलनन्दन युधिष्ठिर का अभिषेक करूँगा। राजा पाण्डु ने मुझे राज्य देकर,

जो उपकार किया था, उसका बदला मैं आज चुकाना चाहता हूँ।' राजा धृतराष्ट्र के वचनों का भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर और भगवान श्रीकृष्ण ने स्वागत किया। उसी समय वहाँ महर्षि व्यास पधारे। पाण्डव और कौरव जब उनकी पूजा कर चुके, तब भगवान व्यास ने सबकी सम्मति से अभिषेक कार्य सम्पन्न किया और राजा युधिष्ठिर को सबने अनेक आशीर्वाद दिये।

धृतराष्ट्र ने कहा—'युधिष्ठिर! तुम्हारा राज्याभिषेक हो गया है, जो सामान्य पुरुषो के लिए दुर्लभ है। नृपश्रेष्ठ पुरुरवा, आयु, नहुष तथा ययाति खाण्डवप्रस्थ मे ही निवास करते थे। कुछ समय बाद मुनियो ने बुध-पुत्र के कारण इसे नष्ट कर दिया था। तुम इस नगर को पुन बसाओ और अपने राष्ट्र की श्रीवृद्धि करो।' राजा धृतराष्ट्र की बात मान पाण्डवो ने उन्हे प्रणाम किया और खाण्डवप्रस्थ की ओर चल दिये, जो भयकर वन के रूप में परिणत हो गया था। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डवो ने उस स्थान को शोभायमान किया और वह स्थान इन्द्रप्रस्थ के नाम से विख्यात हुआ।

राजा युधिष्ठिर बोले—'निष्पाप माधव! आपकी ही कृपा से मैंने राज्य प्राप्त किया है। आपके ही प्रभाव से दुर्गम तथा निर्जन प्रदेश आज धनधान्य से सम्पन्न राष्ट्र बन गया है। आप ही हमारे माता-पिता और इष्टदेव हैं। पाण्डवो के लिए जो अभीष्ट हो, उसी कार्य को करने की आप हमे अनुमति दे।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—महाभाग! आपको अपने ही धर्म के प्रभाव से राज्य प्राप्त हुआ है। धृतराष्ट्र के पुत्र दुराचारी हैं, किन्तु जब आप धर्म की शरण में रहते हैं, तब वे आपका क्या बिगाड सकते हैं? आप धर्म-मर्यादा का अनुसरण करते हुए पृथ्वी का पालन और गुरुजनो की सेवा कीजिये।'

कुन्ती देवी बोली—'केशव! लाक्षागृह मे जाकर मैंने जो कष्ट भोगे हैं, उन्हें कोई नही जानता। गोविन्द! तुम्हारी ही सहायता से मैं इस दु ख-समुद्र से पार हुई हूँ। प्रभो! तुम अनाथों और दीन-

दुःखियों के रक्षक हो। तुम्हारे दर्शन से हमारे सब दुःख दूर हो जाते हैं। महामते ! इन पाण्डवों की तुम सदा रक्षा करना। ये तुम्हारे चिन्तन से ही जीवन धारण करते हैं।'

तदनन्तर कुन्ती देवी से विदा ले भगवान श्रीकृष्ण बलराम-जी के साथ द्वारिकापुरी चले गये।

सत्यप्रतिज्ञ महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर जब धर्मपूर्वक राज्य कर रहे थे, तब एक दिन देवर्षि नारद अकस्मात उनके पास आये। विप्रवर नारद सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्र के और अस्त्र-विद्या के ज्ञाता थे। वे ब्रह्मतेज से सम्पन्न, न्यायोचित वर्ताव करने वाले तथा नीति शास्त्र के सुविख्यात पंडित थे। उन्होने धर्म-बल से परात्पर परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किया था। वे शुद्धात्मा, शान्त, मृदु और सरल स्वभाव के थे। वे धर्म और सदाचार के सदा स्थिर रहने के कारण ससार-भय से रहित थे। राजा युधिष्ठिर ने उन्हे भाइयो सहित प्रणाम कर उत्तम आसन पर बैठाया।

नारदजी बोले—पाण्डवो ! यशस्विनी कृष्णा तुम सबकी एक ही धर्मपत्नी है, अतः तुम्हें एक नीति बनानी चाहिए, जिससे तुम्हारा परस्पर मतभेद न हो। मैं तुम्हे एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ—राजन् ! सुन्द और उपसुन्द नाम के दो असुर अवध्य भाई थे। वे दोनो क्रूर-हृदय सदा साथ रहते थे। तीनों लोको में उनकी बड़ी ख्याति थी। उनका निश्चय और आचरण एक ही होता था, मानो एक ही जीवात्मा दो शरीरो मे विभक्त हो। उन दोनो ने तीनो लोको पर विजय पाने की इच्छा से कठोर तपस्या की। उनकी उग्र तपस्या देखकर देवता डर गये और उनके तप को भग करने के लिए, अनेक प्रकार से विघ्न डालने लगे, पर असफल रहे। सम्पूर्ण लोको के हितैषी पितामह ब्रह्मा ने उन्हे वर माँगने को कहा, इस पर सुन्द और उपसुन्द हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से बोले—'भगवन् ! हमें ऐसा वरदान दीजिये जिसके प्रभाव से हम दोनों सम्पूर्ण मायाओ के ज्ञाता, अस्त्र-शस्त्र

के विद्वान और अमर हो जायें।'

ब्रह्माजी ने कहा—'महाबाहो ? अमरत्व के सिवाय तुम्हें याचना की हुई सारी सिद्धि प्राप्त हो जायेगी।'

सुन्द और उपसुन्द बोले— 'पितामह ! यदि आप हमें अमरत्व नही प्रदान कर सकते, तो ऐसा वर दीजिये कि हम दोनों को अन्य चर या अचर भूत से मृत्यु न हो।' ब्रह्माजी उन असुरों की प्रार्थना पर वैसा ही वरदान दे अन्तर्धान हो गये। यह अभीष्ट वर पाकर दैत्यराज सुन्द और उपसुन्द ने सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त कर ली और सबको पीड़ा देने लगे।

उन्होने अपने सेनापतियों से कहा--'वीरो ! राजर्षि और ब्राह्मण, यज्ञ और हव्य-कव्यो द्वारा देवताओ के तेज, बल और लक्ष्मी की वृद्धि किया करते है, अत असुरो के द्रोही है। तुम्हें उन सबका वध कर देना चाहिये। तुम शुद्धात्मा मुनियो के आश्रम मे जाओ और जो ब्रह्मचर्य का पालन और यज्ञ करते है, उनका वध कर दो।'

दैत्यो ने वैसा ही किया। इस दु ख से पीडित हो, महात्माओं ने उन्हे शाप दिये, किन्तु वरदान के प्रभाव से असुरो का कुछ न बिगडा। जब पत्थर पर चलाये हुए बाणो की भांति वे शाप, असुरो को पीडित नही कर सके, तब महात्मा, ऋषि, मुनि और अन्य साधु अपने-अपने स्थान से भाग गये, और सर्वत्र भय का आर्तनाद ही सुनाई पडने लगा। सत्पुरुषो की ऐसी स्थिति देख, ब्रह्माजी ने एक सुन्दर स्त्री की रचना की। वह मूर्तिमति काम-रूपिणी तिलोत्तमा, सबके मन को हरने वाली थी। ब्रह्माजी की आज्ञा से वह सुन्दरी महाबली सुन्द और उपसुन्द के पास गयी। उस सुन्दर अगो वाली स्त्री को देख दोनो असुर उससे प्रेम की याचना करने लगे। वे दोनो वरदान से उन्मत्त थे और अब काल उनके सिरो पर नाच रहा था। ऐसी दशा में उनमे उस स्त्री को लेकर विवाद आरम्भ हो गया। उस सुन्दरी को पाने के लिए अब वे परस्पर युद्ध करने लगे और कुछ ही समय मे दोनो धरा-

शायी हो गये। राजन्! सुन्द और उपसुन्द यद्यपि परस्पर सगठित और एकमत थे, किन्तु तिलोत्तमा के कारण एक-दूसरे से मारे गये। इस उपाख्यान को याद कर, तुम लोग ऐसा नियम बनाओ, जिससे द्रौपदी को लेकर तुम लोगो मे मतभेद न हो। नारदजी का नीतियुक्त कथन सुन पाण्डवो ने निश्चय किया कि पाप रहित देवी द्रौपदी प्रत्येक भाई के घर मे एक वर्ष निवास करेगी। द्रौपदी के साथ एकान्त मे बैठे हुए भाई को, उनमे से यदि एक भी देख लेगा, तो उसे एक वर्ष तक वन में निवास करना पडेगा। नारदजी की प्रेरणा से पाण्डवो ने यह नियम बना लिया और उसके प्रभाव से एक-दूसरे के विरोधी नही हुए।

## अर्जुन का वनवास तथा सुभद्रा-हरण

एक दिन चोरो ने एक ब्राह्मण की गौए चुरा ली। ब्राह्मण अत्यन्त दुःखी हो, इन्द्रप्रस्थ मे जाकर बोला—'पाण्डवो! मेरे गाँव के कुछ नीच, क्रूर और पापात्मा चोरो ने मेरी गाये चुरा ली है, इसलिए उन्हे दण्ड देकर मेरी गौए छुडा लाये। जो राजा प्रजा की रक्षा नही करता, वह पापाचारी है।' धनजय ने ब्राह्मण की बात सुनी और अस्त्र-शस्त्र लेने घर मे गया, जहाँ धर्मराज युधिष्ठिर कृष्णा के साथ एकान्त मे बैठे थे। उन्होने निश्चय किया कि यदि ब्राह्मण की गौओ की रक्षा नही करूँगा, तो जगत मे निन्दा और अधर्म प्राप्त होगे। उन्होने राजा युधिष्ठिर से पूछकर अपने अस्त्र घर से ले लिये और चोरो का विनाश कर ब्राह्मण का गोधन उसे लौटा दिया।

अर्जुन ने धर्मराज से कहा—'प्रभो! मैं प्रतिज्ञा के अनुसार प्रायश्चित्त करने वन मे जा रहा हूँ, आप मुझे आज्ञा दे।

धर्मराज युधिष्ठिर बोले—'वीरवर! तुमने घर के भीतर प्रवेश कर मेरा प्रिय कार्य ही किया है, अब वनवास का विचार त्याग दो।' किन्तु धनंजय ने अपना आग्रह नही छोड़ा और भाई

की आज्ञा ले वन को चला गया। हरिद्वार मे पहुँचकर जब वह गगास्नान कर रहा था, नागराज कन्या उलूपी से उसका मिलन हुआ। वीर अर्जुन के नागकन्या उलूपी से इरावान नामक महान बल-पराक्रम से सम्पन्न पुत्र हुआ। तत्पश्चात वे पूर्व दिशा को चले गये। उन्होने अग, बंग और कलिग के पवित्र मदिरो का दर्शन एव तीर्थों मे स्नान किया और मणिपुर पहुँच गये। मणिपुर के स्वामी धर्मज्ञ चित्रवाहन के चित्रागदा नाम की एक सुन्दर कन्या थी। वीर अर्जुन ने उसका पाणिग्रहण किया। कुछ समय पश्चात चित्रागदा ने बभ्रुवाहन को जन्म दिया। सती-साध्वी चित्रागदा से विदा ले वीर अर्जुन गोकर्ण तीर्थ गये। अमित पराक्रमी अर्जुन पुण्य तीर्थों और मदिरो का दर्शन करते हुए प्रभास-क्षेत्र पहुँचे। जब भगवान श्रीकृष्ण को पता चला कि वीर अर्जुन आये हैं, तब वे उन्हे द्वारिकापुरी मे ले गये। वहाँ के वासियो ने उनका बहुत आदर सत्कार किया। कुछ समय पश्चात रैवत पर्वत पर वृष्णि और अधक वश के लोगो का एक उत्सव हुआ। वहाँ उन्होने ब्राह्मणो को दान दिया और अनेक अभीष्ट कार्य किये। उत्सव मे वसुदेवजी की पुत्री सुभद्रा अपनी सहेलियो के साथ आई थी।

वीर अर्जुन ने उसे देखा और वे भगवान श्रीकृष्ण से बोले—'जनार्दन। मैं सुभद्रा को अपनी रानी बनाना चाहता हूँ। यदि आप सहमत हो, तो आपकी आज्ञा से इसे पाने का प्रयत्न अवश्य करूँगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ। क्षत्रियो के लिए स्त्रियों को पाने हेतु स्वयवर मे वरण या बलपूर्वक हरण का विधान है। स्वयवर मे कन्या को पाना अनिश्चित है, अत· तुम सुभद्रा का हरण कर लो।' अर्जुन ने दूत भेजकर महाराज युधिष्ठिर से भी सुभद्रा को प्राप्त करने की आज्ञा माँगी। उनकी स्वीकृति मिलने पर वे समय की प्रतीक्षा करने लगे। सुअवसर पर जब सुभद्रा देवताओं की पूजा कर महल मे लौट रही थी, वीर अर्जुन ने उसे

बलपूर्वक रथ पर बैठा लिया और अपने नगर की ओर चल दिये। सुभद्रा के रक्षकों ने जब उसके हरण का वृतान्त यदुवंशियों से कहा तब वे उत्तेजित हो गये।

भगवान वासुदेव धर्म और अर्थ से युक्त वचन बोले—'अर्जुन ने इस कुल का अपमान नहीं किया है, अपितु हम सबका गौरव बढाया है। उन्होंने क्षत्रिय-धर्म के अनुसार कन्या का हरण किया है। मेरी बुद्धि के अनुसार यह सम्बन्ध उचित है। आप लोग प्रसन्नता के साथ धनजय को यहाँ लौटा लाइये।' वासुदेव की आज्ञा सुन यादवो ने वैसा ही किया। उन्होने शक्तिशाली अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह विधिपूर्वक कर दिया। तदनन्तर अर्जुन और सुभद्रा इन्द्रप्रस्थ चले गये। वहाँ पहुँचकर सुभद्रा ने माता कुन्ती और द्रौपदी को प्रणाम किया। उन्होने भी प्रसन्नता से अनुपम वधू को अनेक आशीर्वाद दिये। कुछ काल के पश्चात सुभद्रा ने तेजस्वी अभिमन्यु को जन्म दिया। इस अवसर पर महाराजा युधिष्ठिर ने याचको और ब्राह्मणो को बहुत दान दिया। भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजी यह सुखद समाचार सुन, अर्जुन और सुभद्रा से मिलने के लिए, अनेक प्रकार की भेंट लेकर इन्द्रप्रस्थ गये। अभिमन्यु शास्त्रों के अध्ययन और शस्त्र-विद्या में बडा प्रवीण निकला। वह शूरता, पराक्रम, रूप तथा आकृति में भगवान श्रीकृष्ण के सदृश था। शुभलक्षणा द्रौपदी के भी पाँचों पतियो से पाँच श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए उनके नाम युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से श्रुतसोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतसेन थे। उन बालको ने धौम्य मुनि से वेदाध्ययन और अर्जुन से दिव्य अस्त्र-शस्त्रो का ज्ञान प्राप्त किया।

## खाण्डव-वन-दहन

कुछ समय पश्चात भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन यमुना

तट पर गये। उन दोनो के पास एक ब्राह्मण देवता आये, जिनकी कान्ति तपे हुए स्वर्ण के समान थी। वे प्रात कालीन सूर्य के समान तेजस्वी जान पडते थे। उन्हे देखते ही भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन अपने आसनों से खड़े हो गये।

ब्राह्मण देवता बोले—'महाबाहो! मैं अपरिमित भोजन करने वाला अग्निदेव हूँ। आप मुझे भोजन करा कर तृप्त कीजिये। मुझे अन्न की भूख नही है। मैं खाण्डव वन को जलाना चाहता हूँ, किन्तु इन्द्र इसकी रक्षा करते हैं। इन्द्र का सखा तक्षक नाग इसमे निवास करता है। आप दोनों अस्त्र विद्या के विद्वान है, अत. आप दोनो की सहायता से मै इस वन को जला डालूंगा। पुण्यकीर्ति राजाओ ने मुझे यज्ञ मे घृत की अमित आहुति दे तृप्त किया है, किन्तु उससे मेरी जठराग्नि मद हो गई है। अब मैं दूसरी हवि ग्रहण करना चाहता हूँ, जिससे घृत का पाचन हो जाये।'

वीर अर्जुन ने भगवान की आज्ञा ले अग्निदेव से कहा—'हे अनल! यद्यपि मेरे पास उत्तम अस्त्र हैं, किन्तु वे देवताओ को परास्त करने के लिए उपयुक्त नही हैं। तुम मुझे दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और अलौकिक रथ प्रदान करो, जिनकी सहायता से मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण कर सकूं।' अर्जुन के कथनानुसार अग्निदेव ने उसे दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और एक अपूर्व रथ दिया। रथ की ध्वजा पर सिंह और व्याघ्र के समान आकृतिवाला दिव्य वानर भी बैठा था। उसने भगवान श्रीकृष्ण को अद्वितीय चक्र भी दिया। वीर अर्जुन उन सब युद्ध की दिव्य सामग्रियो को लेकर बडे प्रसन्न हुए। उन्होने अग्निदेव को इच्छानुसार वन दहन करने को कहा। अग्निदेव ने तेजोमय रूप धारण कर खाण्डव वन को सब ओर से भस्म करना आरम्भ कर दिया। यह देख इन्द्र स्वय वहाँ आये और जल की धारा गिराने लगे। अग्नि के प्रभाव से वह धारा आकाश मे ही सूख गयी। जब खाण्डव वन नष्ट हो रहा था, तब नागराज तक्षक वहाँ नही था, किन्तु उसके बलवान

पुत्र अश्वसेन को इन्द्र ने उस सकट से मुक्त कर दिया। इन्द्र ने अपनी विफलता देख, उन दोनों वीरों को नर और नारायण ही माना और उनसे युद्ध करने का आग्रह छोड दिया। अग्निदेव ने सुखपूर्वक खाण्डव वन को भस्म कर दिया, पर मयदानव को उस भयकर अग्नि से भगवान श्रीकृष्ण ने बचा लिया।

वह विनीत भाव से उनके पास आया और प्रणाम कर बोला—'इस उपकार के हेतु मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

धनजय ने कहा—'असुरराज ! तुमने कृतज्ञता प्रकट की है, अतः तुम उऋण हो गये हो। हमारे लिए परस्पर स्नेह रखना ही श्रेयष्कर है।'

मायासुर बोला—'धनंजय ! आपने जो कहा है, वह आप जैसे महापुरुष के अनुरूप ही है। मै दानवो मे विश्वकर्मा हूँ, अत. बड़े प्रेम से आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'शिल्पियों में श्रेष्ठ दानवराज ! तुम महाराजा युधिष्ठिर के लिए एक अत्यन्त सुन्दर सभा भवन बना दो।' भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर मयदानव राजा युधिष्ठिर के लिए अद्वितीय सभा भवन का निर्माण करने लगा। अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने पिताजी के दर्शन के लिए उत्सुक हो, द्वारिका जाने के लिए, भुवा कुन्ती और महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम कर, विदा माँगी। उन्होने सुभद्रा और कृष्णा को विविध प्रकार की शिक्षा और आशीर्वाद दिये। उन्होने पाण्डवो को हृदय से लगाया और रथ पर आरूढ हो द्वारिका के लिए प्रस्थान किया। भगवान की विदाई मे सब पाण्डवो के नेत्रो मे प्रेमाश्रु बह रहे थे। मयदानव ने कुछ ही समय मे राजा युधिष्ठिर के लिए रमणीय सभा भवन का निर्माण किया। उसने भीमसेन को एक श्रेष्ठ गदा और वीर अर्जुन को देवदत्त नामक उत्तम शख भी भेंट किया। महाराजा युधिष्ठिर ने बड़ी धूमधाम के साथ सभा भवन मे प्रवेश किया। उन्होने ऋषि और ब्राह्मणो द्वारा उस भवन मे अनेक प्रकार से भगवान श्री हरि की पूजा की। याचकों को दान

दे, पाण्डवो ने मित्र राजाओ को सभा भवन मे आमन्त्रित किया। भगवान नारदजी, जो वेद और उपनिषदो के ज्ञाता, ऋषियो तथा देवताओ द्वारा पूजित और धर्म के तत्वों को जानने वाले थे, वहाँ आये।

पाण्डवो से बहुविध सत्कार पाकर, नारद मुनि उत्तम आसन पर बैठ गये और उनको सभासदो सहित उपदेश देने लगे—'राजन्! यद्यपि वेद के वचन परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते है, किन्तु वास्तव मे वे एक ही ज्ञान का प्रतिपादन करते है। उन वचनो का विवेचन प्रयोग के अनुसार करना चाहिए। यज्ञ करते समय अनेक कार्य उपस्थित हो जाते है, उनका यजमान के साथ जो सम्बन्ध होता है, उसे समवाय कहते हैं। किसी वस्तु का बोध कराने के लिए जो वाक्य का प्रयोग किया जाता है, उसमे पाँच लक्ष्य होते है—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपवचन और निगमन। निश्चय रूपी वाक्य को प्रतिज्ञा कहते है। समझाने के लिए उदाहरण दिया जाता है। जो वस्तु कही सम्भव हो सकती है, उसे उपवचन कहा गया है, और जिसे प्रत्यक्ष मे देखा है, वह निगमन है। वाक्य के अनुकूल तर्क को गुण कहते है, और प्रतिकूल को दोप।' तदनन्तर नारदजी ने पाण्डवो को धर्म, अर्थ और काम के विपय मे अनेक उपदेश दिये। उन्होने राजाओ के गुण और जीविका के उपाय भी पाण्डवो को वताये।

## राजसूय-यज्ञ

देवर्षि नारद के वचन सुन, महाराजा युधिष्ठिर ने अपने भाइयो और मंत्रियो की सम्मति लेकर, राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया। यह कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो, इसके लिए उन्होंने सर्व-शक्तिमान भगवान श्रीकृष्ण की शरण लेने द्वारिका एक दूत भेजा। उस दूत ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'महाबाहु हृषिकेश! धर्मराज युधिष्ठिर अन्य पाण्डव सभासद सहित आपका

दर्शन करना चाहते हैं। आप उन सबको अनुगृहीत करिये।' दूत के आग्रह पर भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान किया। उनके वहाँ पहुँचने पर पाण्डवों ने उनका समुचित सत्कार किया।

जब भगवान श्रीकृष्ण सबसे मिलकर उत्तम आसन पर बैठ गये, तब महाराज युधिष्ठिर ने उनसे कहा—'भगवन ! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ, वह जिस प्रकार पूर्ण हो सके, वह उपाय हमें बताइये। आप सर्वेश्वर है, अत: इस विषय में अन्तिम निश्चय आप पर ही निर्भर है। हमारे लिए जो हितकर हो, उसकी हमे आज्ञा दे।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'महाराज ! आपमें सभी सद्गुण विद्यमान है, अत: आप राजसूय यज्ञ करने योग्य है। किन्तु राजाओ ने सामूहिक रूप से यह नियम बना रखा है, कि जो उन्हे जीत लेगा वही सम्राट कहलायेगा। अभी-अभी भूपाल जरासध राजाओ को जीतकर सम्राट पद पर अभिषिक्त हुआ है, अत सारे राजा उसके वश में है। महाबली राजा शिशुपाल उसका सेनापति है। मायायुद्ध करने वाला पराक्रमी करूपराज दतवक्र जरासध का शिष्य है। अतुलित बलशाली हंस और डिम्भक सम्राट जरासध की शरण मे हैं। यदि आप इस यज्ञ को सम्पन्न करना चाहते है तो बंदी राजाओ की मुक्ति और जरासध के वध का प्रयत्न कीजिये। जरासंध का वध करने पर समस्त भूपालो पर विजय स्वत. ही हो जायेगी।'

महाराजा युधिष्ठिर ने कहा—'भगवन् ! आप परम बुद्धिमान है। आप ही समस्त सशयो को मिटा सकते है। जो दूसरो के प्रभाव को जानता है, वह अपनी प्रशसा नही करता। दूसरे पर विजय पाने से ही मनुष्य प्रशसनीय होता है, और उसीकी सर्वत्र पूजा होती है। मै तो मन और इन्द्रिय-सयम को सबसे उत्तम समझता हूँ। राजसूय यज्ञ के फलस्वरूप ब्रह्मलोक की प्राप्ति भी असम्भव है, फिर मोक्ष की तो बात ही क्या ' जरासन्ध ने हम भी '

भयभीत रहते है, किन्तु आपके ही वाहुवल का भरोसा है।'

भीमसेन बोले—'महाराज ! जो राजा उद्योग नही करता तथा जो दुर्बल होकर युक्ति से काम नही लेता, वह नष्ट हो जाता है। परन्तु जो आलस्य त्यागकर उत्तम नीति से काम लेता है, वह दुर्बल होने पर भी बलवान शत्रु को जीत लेता है। भगवान श्रीकृष्ण मे नीति, मुझमे बल और अर्जुन मे विजय की शक्ति है। हम तीनो मिलकर मगधराज जरासध के वध का कार्य पूरा कर लेगे। गोविन्द ! आपके बुद्धि-वल का आश्रय ले धर्मराज युधिष्ठिर सबकुछ पा सकते है।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन् ! अज्ञानी मनुष्य वड़े-बडे कार्य को आरम्भ तो कर देते है, पर उसके परिणाम को नही सोचते। हम लोग सेना लेकर जरासध से युद्ध मे विजय नही प्राप्त कर सकते, अत उसे द्वद्व-युद्ध मे ही मार सकेगे। जरासध ने छियासी राजाओ को बन्दी वना लिया है। वह चौदह राजाओं को और बन्दी बनाकर क्रूर कर्म मे प्रवृत्त होगा। जो उसको जीतकर इस कार्य मे विघ्न डालेगा, वह उज्ज्वल यश का भागी और निश्चय ही सम्राट होगा।'

युधिष्ठिर बोले—'भगवन् ! मैं स्वार्थ साधन मे तत्पर हो, केवल साहस के भरोसे आप लोगो को जरासध के पास कैसे भेजूं ? भीमसेन और अर्जुन मेरे नेत्र है और आपको मैं अपना मन मानता हूँ। अपने मन और नेत्रो को खो कर मेरा जीवन कैसे रह सकता है ? जरासध का पराक्रम भयानक है। युद्ध मे यमराज भी उसका सामना नही कर सकते, अत आप लोगो का प्रयत्न क्या कर सकता है ? इसलिए राजसूय यज्ञ की ओर मेरा ध्यान देना अनुचित जान पडता है।'

वीर अर्जुन ने कहा—'राजन् ! शस्त्र विद्या, पराक्रम, श्रेष्ठ सहायक, भूमि और यश की प्राप्ति बडी कठिनाई से होती है। महापराक्रमी राजा कृतवीर्य के कुल में जन्म ले, आप स्वय को निर्बल न समझें। शत्रुओं को जीतने में जिसकी प्रवृत्ति हो, वही सब

प्रकार से श्रेष्ठ क्षत्रिय है। जिसमें मानसिक दुर्बलता है, वह सर्वगुण-सम्पन्न होकर भी क्या करेगा? मनोयोग और प्रारब्ध के अनुकूल पुरुषार्थ ही विजय का हेतु है। यदि हम राजसूय यज्ञ की सिद्धि के लिए जरासध का विनाश और बदी राजाओ की रक्षा कर सके, तो इससे उत्तम कार्य क्या हो सकता है? यदि हम सब यज्ञ का आरम्भ नही करेगे, तो हमारी अयोग्यता और दुर्बलता प्रकट होती है।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! कुन्ती माता के पुत्रो की जैसी बुद्धि होनी चाहिए, वैसा ही परिचय अर्जुन ने दिया है। मृत्यु तो सबके सिर पर नाचती ही रहती है, चाहे वह घर में रहे या युद्ध मे, अतः वीर पुरुषों का कर्तव्य है कि नीति के अनुसार शत्रुओ पर आक्रमण करे। दैव के अनुकूल रहने पर ही नीति-पूर्वक किया हुआ कार्य सफल होता है। जरासध मगध देश के बृहद्रथ नाम के प्रसिद्ध राजा का पुत्र है। राजा बृहद्रथ बलवान, धनवान और अनुपम पराक्रमी थे। उनके उत्तम सद्‌गुणो की प्रशसा थी, किन्तु उनके कोई सन्तान न थी। एक दिन महात्मा चण्डकौशिक मुनि अकस्मात उनके नगर मे आये। राजा बृहद्रथ ने अपनी रानियो सहित उनका अपूर्व स्वागत किया। मुनि ने प्रसन्न होकर उन्हे पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया और कहा, 'यह तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण-भक्त, बलवान, युद्ध में पराक्रमी और अतिथियों का प्रेमी होगा। इसका शरीर उत्पन्न होते समय दो भागों मे विभक्त जान पडेगा, इसलिए उसी जगह से निर्बल होगा।' मगधराज का वही तेजस्वी बालक जरासध नाम से विख्यात हुआ। वह रूप, बल, सत्य और राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न है। जरासध सर्वदुखहारी महादेव शकर का भक्त है। इसके महापराक्रमी मत्री हंस और डिम्भक थे, किन्तु वे जमुना के जल मे डूबकर मर गये। मथुरा-नरेश वीर कस भी अपने सहायको सहित काल के गाल मे चला गया है। अब जरासध के नाश का उचित अवसर है। मैं, भीमसेन और अर्जुन तीनो

जरासंध से एकान्त में मिलेगे, तब वह द्वंद्व युद्ध करना स्वीकार कर लेगा। वह अपने बाहुबल के अभिमान और अपकीर्ति के भय से भीमसेन से ही युद्ध करेगा, जो जरासध के वध के लिए पर्याप्त है।'

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने कहा--'हे अच्युत! आप ही पाण्डवों के रक्षक और स्वामी हैं, हम आपकी आज्ञा के अनुसार चलेंगे। पुरुषोत्तम! आप वही कार्य कीजिये, जिससे जरासध का विनाश और राजसूय यज्ञ पूर्ण हो सके। आप अजेय हैं, अत संसार मे ऐसा कोई कार्य नही, जो आपके द्वारा पूर्ण न हो सके। उद्योगी मनुष्य आपकी ही शरण लेकर कार्य सिद्ध करते हैं।'

महाराजा युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर भगवान श्रीकृष्ण, वीर अर्जन और भीमसेन जरासध की राजधानी की ओर चले। वे तेजस्वी स्नातक ब्राह्मणो के वस्त्र पहन, अस्त्र-शस्त्रों को त्याग, मगधराज जरासध के द्वार पर पहुंचे।

तीनों महारथियो का मगध नरेश जरासंध ने विधिपूर्वक आतिथ्य-सत्कार किया और कहा—'ब्राह्मणो! स्नातक-व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण, विशेष निमित्त के बिना माला और चन्दन धारण नही करते। आपकी भुजाओ पर धनुष की प्रत्यचा के घर्षण का चिह्न स्पष्ट दिखाई देता है, अत सत्य बताइये, आप कौन हैं? राजाओ की सत्य से ही शोभा होती है। छद्मवेश धारण कर आपने अपराध किया है, इसका क्या कारण है? ब्राह्मणो के तो वचन मे ही वीरता होती है, कार्यों मे नही। आपने जो कार्य किये हैं, वे वर्ण तथा वेष से सर्वथा विपरीत हैं। यहाँ आने का आप लोगो का प्रयोजन क्या है?'

महामना श्रीकृष्ण गम्भीर वाणी मे बोले—'राजन्! स्नातक व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनो वर्णों के लोग होते हैं। इनमे विशेष नियमो का पालन करने वाले क्षत्रिय लक्ष्मी को प्राप्त करते है। हमने पुष्प धारण किया है, जहाँ लक्ष्मी का निवास है। क्षत्रिय का बल और पराक्रम उसकी

भुजाओं में होता है, वचनों में नहीं, इसलिए वे विनय-युक्त वचन कहते है। धीर मनुष्य शत्रु के घर में द्वार लाँघकर और मित्र के यहाँ द्वार से प्रवेश करते हैं। हम अपने कार्य से तुम्हारे घर आये हैं, अतः तुम्हारी पूजा ग्रहण नहीं कर सकते।'

जरासंध ने कहा---'ब्राह्मणो! मैंने तो आप लोगों के प्रति कोई अपराध नही किया है, अतः मैं शत्रु कैसे हुआ ? जो सत्कर्म करते है, वे धर्म को ही श्रेष्ठ मानते हैं, अन्य किसी कार्य को नही। मैं अपने मन को वश में रख स्वधर्म को ही श्रेष्ठ मानता हूँ और प्रजा पर अत्याचार नही करता। ऐसी दशा में आप लोग मुझे शत्रु या अपराधी क्यो बता रहे हैं ?'

भगवान श्रीकृष्ण बोले---'राजन्! तुमने अनेक निरपराध भूपालों को बंदीगृह में डाल रखा है और उन्हें रुद्रदेवता को भेंट चढाना चाहते हो। ऐसा क्रूर-कर्म करने पर भी तुम अपने को निरपराधी कहते हो ? भगवान शिव तो कल्याणकारी है, अतः उनकी पूजा हिंसा द्वारा क्यों करते हो ? तुम जाति-भाइयों की हत्या करना चाहते हो, और हम संकट में पड़े हुए दीन-दुखियों की रक्षा करने वाले है, अतः तुम्हारा वध करने के लिए यहाँ आये हैं। मैं तुम्हारा प्रसिद्ध शत्रु श्रीकृष्ण हूँ और ये दोनों पाण्डु-पुत्र भीमसेन और अर्जुन हैं। तुम हमसे युद्ध करो या समस्त राजाओं को छोड दो।'

जरासंध ने कहा—'मैंने इन राजाओ को जीता है, अत तुम्हारे भय से इन्हे नही छोड़ूँगा। मैं अकेला ही तुम सबसे बारी-बारी युद्ध कर सकता हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! हम तीनों में से किस एक व्यक्ति के साथ तुम युद्ध करना चाहते हो ?'

इस पर मगध नरेश ने भीमसेन के साथ युद्ध करने की इच्छा प्रकट की। ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्ति-वाचन सम्पन्न हो जाने पर वीर जरासंध युद्ध के लिए तैयार हो गया। भीमसेन भी भगवान श्रीकृष्ण का आशीर्वाद ले जरासंध के पास आ धमके। अब वे दोनो पन-

क्रमी वीर अत्यन्त हर्ष और उत्साह मे भरकर परस्पर भिड गये। उन दोनो मे ऐसा भयकर युद्ध हुआ, जिसे देख दर्शक डर से दूर भाग गये। कार्तिक मास की प्रथमा से चतुर्दशी तक युद्ध चलता रहा। चतुर्दशी को जरासध क्लेश से थककर, युद्ध से निवृत्त-सा दिखायी देने लगा। अपराजित शत्रु जरासध को थका हुआ जान भीमसेन ने उसके वध का निश्चय किया। भगवान श्रीकृष्ण ने सकेत द्वारा एक तिनके को भीमसेन को दिखाते हुए चीर डाला। भीमसेन भगवान के आशय को समझ गये। उसने जरासध को पृथ्वी पर पटक दिया और बीच से चीर डाला। जरासध को मार पाण्डु-कुमार भीमसेन ने वडी गर्जना की, जिससे मगधवासी भयभीत हो गये। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने वीर भीमसेन और अर्जुन के साथ जाकर समस्त राजाओ को कारागार से मुक्त कर राजसूय यज्ञ के लिए निमन्त्रण दिया। जरासंध का पुत्र सहदेव तीनो वीरो की शरण मे गया और उनसे अभयदान प्राप्त कर अपने महल मे लौट गया। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर महाराजा युधिष्ठिर को जरासध के वध की सूचना दी। महाराजा युधिष्ठिर आनन्द-विभोर हो, भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। जरासध की मृत्यु के पश्चात महाराजा युधिष्ठिर की आज्ञा से सब भाइयो ने दिग्विजय का निश्चय किया। वीर अर्जुन उत्तर, भीमसेन पूर्व, सहदेव दक्षिण और नकुल ने पश्चिम दिशा के राजाओ पर विजय प्राप्त करने के लिए शुभ मुहूर्त्त में प्रस्थान किया। यात्रा करने से पूर्व विद्वान ब्राह्मणो ने स्वस्ति-वाचन किया और महाराजा युधिष्ठिर ने याचको को दान दिया। वीर अर्जुन ने अनेक भूपालो को बिना रक्त बहाये ही वश मे कर लिया, किन्तु प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त से वीर अर्जुन का युद्ध हुआ। कुछ समय पश्चात राजा भगदत्त ने वीर अर्जुन से सधि कर ली और महाराजा युधिष्ठिर को कर देने लगा। वीर अर्जुन ने राजा वृहन्त, विश्वगश्व, लोहित, रोचमान और

चित्रायुध को परास्त कर अपना साथी बना लिया। वाह्लीक, कम्बोज और अन्य देशो के वीरों को भी परास्त कर और उनसे धन-रत्न ले वे इन्द्रप्रस्थ लौट आये। इसी प्रकार भीमसेन, नकुल और सहदेव ने पूर्व, पश्चिम और दक्षिण देश के राजाओ पर विजय पाई। वे भी बहुत धन-रत्न लेकर इन्द्रप्रस्थ लौटे। भगवान श्रीकृष्ण भी राजा युधिष्ठिर के लिए धन-रत्न ले इन्द्र-प्रस्थ पहुँच गये।

पाण्डवों ने उनका बहुत सम्मान किया और विनयपूर्वक बोले—'भगवन्! हमें आज्ञा दे, राजसूय यज्ञ का कार्य कैसे आरम्भ करना चाहिए? हम लोगों ने राजाओं से प्रचुर धन प्राप्त किया है, उसे अब विधिपूर्वक दान और यज्ञ के उपयोग में लगाना चाहते है। आप यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कीजिये, जिससे हम पापरहित हो जाये। आपकी उपस्थिति से यज्ञ की सिद्धि सुनिश्चित है।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज युधिष्ठिर! आप ही इस महान यज्ञ की दीक्षा ले, इससे हम सब कृतकृत्य हो जायेगे।' अनन्तर द्वैपायन व्यासजी बहुत से ऋत्विजो को ले वहाँ आये और यज्ञ का कार्य सचालन करने लगे। उन्होने शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ-स्थल का पूजन कर, अनेक राजाओं, विद्वानों और ऋषि-मुनियों को निमंत्रित किया। श्रेष्ठ ब्राह्मणो ने धर्मराज युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा दी। आमत्रित अतिथि, पाण्डवो से सत्कार पाकर, इन्द्रप्रस्थ में सुखपूर्वक रहने लगे। पाण्डु-पुत्र नकुल महाराजा धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, विदुर और कौरवो को श्रद्धापूर्वक इन्द्रप्रस्थ में ले आये। महाराजा युधिष्ठिर ने उन्हे प्रणाम किया और यज्ञ आरम्भ करने की आज्ञा मांगी। यदुवशी वीर भी उस यज्ञ में सम्मिलित हुए। इन्द्रप्रस्थ को ध्वजपताका और मालाओ से सजाया गया था। पितामह भीष्म की आज्ञा से भोजन परोसने की व्यवस्था दुःशासन ने की और स्वागत-सत्कार का कार्य अश्वत्थामा को सौंपा गया।

राजाओं की सेवा का कार्य संजय करते थे और ऊपर की देखरेख महात्मा भीष्म और आचार्य द्रोण ने की । सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता विदुर धन का व्यय करने के कार्य मे लगे और उन्होने श्रेष्ठ-पुरुषो को यथा-योग्य कार्यों मे लगाया । राजा दुर्योधन राजाओ से भेंट स्वीकार करने का कार्य करते थे। भगवान श्रीकृष्ण सबको सतुष्ट करने की इच्छा से विद्वान ब्राह्मणों तथा ऋषि-मुनियो के चरण पखारते थे ।

भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—'भरतकुल-भूषण ! यहाँ पधारे हुए राजाओ का यथा-योग्य सत्कार करो। आचार्य, ऋत्विज, सम्बन्धी, स्नातक, प्रिय मित्र तथा राजा, इनका पूजन योग्य है । इन सबमे जो सर्वश्रेष्ठ एवं शक्तिशाली हो, उसको सबसे पहले अर्घ्य समर्पित करो। मैंने तो भगवान श्रीकृष्ण को ही सबसे उत्तम तथा पूजनीय माना है।' भीष्म पितामह की आज्ञा से सहदेव ने भगवान श्रीकृष्ण का ही विधि-पूर्वक पूजन किया, किन्तु श्रीमाधव की यह पूजा राजा शिशुपाल नही सह सका। वह भीष्म और युधिष्ठिर को कटु वचन कह भगवान वासुदेव पर आक्षेप करने लगा ।

शिशुपाल बोला—'यहाँ उच्चकोटि के महात्मा और राजा हैं। उनके रहते श्रीकृष्ण अग्र-पूजा का अधिकारी कदापि नही है । पाण्डुकुमार ! तुमने स्वार्थवश विपरीत आचरण किया है। तुम धर्म का स्वरूप, जो अत्यन्त सूक्ष्म है, नही जानते । भीष्म बूढे हो गये हैं, अत इनकी स्मरण और समझने की शक्ति चली गई है। सभी जानते हैं कि श्रीकृष्ण राजा नही है । यहाँ राजा द्रुपद, द्रोणाचार्य, द्वैपायन व्यास, राजाधिराज दुर्योधन, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य, अश्वत्थामा और महाबली कर्ण बैठे है। इनके रहते हुए तुमने श्रीकृष्ण की पूजा क्यो की ? यदि इसकी ही तुम्हे पूजा करनी थी, तो विद्वानों और प्रतिष्ठित राजाओं को क्यो आमंत्रित किया ? तुम लोग बुद्धिहीन और कायर हो।' ऐसा कह, शिशुपाल कुछ राजाओ को साथ ले, सभा-भवन से

जाने को उद्यत हो गया।

यह देख राजा युधिष्ठिर शिशुपाल के पास गये और उससे शान्तिपूर्वक मधुर वाणी में बोले—'राजन्! तुमने जो कहा, वह कदापि उचित नही। किसी के प्रति कटु वचन कहना महा अधर्म है। भीष्म धर्म के ज्ञाता है, अतः इनका अनादर न करो। भगवान श्रीकृष्ण को यथार्थ रूप से जैसा भीष्म जानते है, वैसा तुम नहीं जानते।'

भीष्म ने कहा—'श्रीकृष्ण जगत मे सबसे बढ़कर पूजनीय और योद्धाओ में श्रेष्ठ हैं। मुझे एक भी भूपाल यहाँ दिखाई नही देता, जो श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी हो। हम इनके यश, शौर्य और विजय को भलीभाँति जानकर इनकी पूजा कर रहे हैं। श्रीकृष्ण में सर्वगुण विद्यमान है, अतः वे सर्वश्रेष्ठ है। जिसे मेरी की हुई पूजा अच्छी न लगी हो वह मेरे समक्ष आये।'

भीष्म के वचन सुन, शिशुपाल क्रोधित हो राजाओं से बोला—'मुझे आप अपना सेनापति मानो। हम पाण्डवो और यादवों मे युद्ध करेगे।' शिशुपाल के ऐसा कहने पर कुछ राजा उससे सहमत हो गये। भगवान श्रीकृष्ण और भीष्म के प्रति शिशुपाल के कटु वचन सुन, भीमसेन क्रोधाग्नि से जल उठे। वे शिशुपाल का वध करने उसकी ओर दौड़े पर भीष्म ने उन्हे पकड लिया। भीमसेन को अपने ऊपर आक्रमण करते देख शिशुपाल भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए उद्यत हो गया।

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'भूपालो! शिशुपाल यद्यपि यदुकुल कन्या का पुत्र है, तथापि वह हमसे शत्रुता रखता है। यादवों ने इसका कोई अपराध नही किया है, पर यह क्रूरात्मा उनके अहित मे ही सदा लगा रहता है। जब हम प्राग्ज्योतिषपुर गये थे, तब इसने द्वारिकापुरी मे आग लगा दी थी। मैं अपनी बुआ के सबध को स्मरण कर इसके अपराधो को सहन कर रहा हूँ। इसकी माता के याचना करने पर मैंने शिशुपाल के सौ अपराध

क्षमा करने का वचन दिया है। वे अपराध अब पूरे हो गये है। आज राजाओ के सामने मेरे साथ इसने जो दुर्व्यवहार किया है, इसके लिए मैं उसे क्षमा नही करूँगा।' इतना कह भगवान श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र द्वारा शिशुपाल का सिर धड से अलग कर दिया। शिशुपाल के शरीर से तेज निकलकर भगवान श्रीकृष्ण मे प्रविष्ट हो गया। अनन्तर राजसूय-यज्ञ विधि-विधान और सबकी सहानुभूति से पूर्ण हुआ। राजा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणो और ऋत्विजो को प्रचुर दक्षिणा दी। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण, देवेश्वर बलदेव तथा कुरुकुल-श्रेष्ठ भीष्म आदि की पूजा की और आमन्त्रित राजाओ और अतिथियो का सत्कार किया। राजाओ ने भी पाण्डवो की शुभकामना की और अपने-अपने देश चले गये। भगवान श्रीकृष्ण और अन्य यादवो ने भी पाण्डवो से विदा ले द्वारका के लिए प्रस्थान किया।

## पाण्डवों का बनवास

राजा दुर्योधन ने शकुनि के साथ पाण्डवो के सभा भवन का निरीक्षण किया। उसने स्फटिक मणिमय स्थल पर जल की आशका से वस्त्र ऊपर कर लिये और स्फटिक मणि के समान जल से भरी पुष्करणी को स्थल समझकर वह जल मे गिर पड़ा। यह देख भीमसेन हँसने लगे। दुर्योधन स्वभाव से ही अमर्षशील था, अत यह उपहास सहन न कर सका। इस प्रकार बार-बार धोखा खाकर राजा दुर्योधन अप्रसन्न-मन हो हस्तिनापुर लौट गया। पाण्डवो की राजलक्ष्मी देख, वह ईर्ष्या से सतप्त हो गया और मन-ही-मन उनके प्रति पाप-पूर्ण विचार रखने लगा।

उसने शकुनि से कहा—'पाण्डवो ने अपने बल के प्रभाव से राज्य का बहुत विस्तार किया है, अत उनका यह राजसूय-यज्ञ सब प्रकार से सम्पन्न हुआ है। यदुवश-शिरोमणि श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को मार डाला, पर कोई भी वीर उसका प्रतिशोध लेने

को तैयार नही हुआ। उनके ऐश्वर्य को देख मैं दिन-रात ईर्ष्या से जलता रहता हूँ। ससार में कौन ऐसा पुरुष होगा, जो शत्रुओ की श्रीवृद्धि और अपनी हीन दशा चुपचाप सहन कर ले। मै अपना जीवन नष्ट करने के लिए आग मे प्रवेश कर जाऊँ, विप खा लूँ या जल में डूबकर मर जाऊँ ? मै पाण्डवो की राजलक्ष्मी को हडप लेना चाहता हूँ, किन्तु मेरे पास ऐसा कोई योग्य सहायक नही है, जो इस कार्य को सम्पन्न कर सके।'

शकुनि बोला—'दुर्योधन तुम्हे युधिष्ठिर के प्रति ईर्ष्या नही रखनी चाहिए, क्योकि पाण्डव अपने भाग्य द्वारा प्राप्त वस्तुओं का ही उपभोग करते है। तुमने उन्हे वश मे करने के लिए अनेक अनुचित उपाय किये, किन्तु असफल रहे। उनकी समृद्धि का कारण महा-पराक्रमी श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्ण को देवता, असुर और मनुष्य मिलकर भी जीत नही सकते। पाण्डव अपने उद्देश्य से विचलित नही होते और अपने राज्य को समृद्धिशाली बनाने का निरतर प्रयत्न करते रहते है। तुमने अपने को असहाय बताया है, वह मिथ्या है, क्योकि तुम्हारे सब भाई तुम्हारी आज्ञा का पालन करते है। पराक्रमी द्रोणाचार्य और उनके पुत्र वीर अश्वत्थामा, कर्ण, कृपाचार्य और राजा भूरिश्रवा को लेकर तुम भी पृथ्वी पर विजय प्राप्त करो। यदि राजाओ से युद्ध कर लक्ष्मी और पृथ्वी प्राप्त करने का तुम में उत्साह नही है, तो युधिष्ठिर को द्यूत-क्रीडा के लिए बुलाओ। मै जूआ खेलने मे निपुण हूँ और वह इस खेल को नही जानता, अत मै उसे निश्चित रूप मे जीत लूँगा।' इस प्रकार आमंत्रित कर सुबलनन्दन शकुनि राजा धृतराष्ट्र के पास गया और बोला—'महाराज! दुर्योधन की कान्ति मद होती जा रही है। वह दुर्बलता को प्राप्त कर, दयनीय दशा मे पहुँच गया है, एवं दिन-रात चिन्ता मे डूबा रहता है। मेरी तो ऐसी धारणा है कि उसे शत्रुओ से कोई असह्य कष्ट प्राप्त हुआ है, उस पर आपको ध्यान देना चाहिए। यह सुन राजा धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से दु ख का कारण पूछा।

दुर्योधन ने कहा—'पिताजी ! मैं घटनाओ से समय के परिवर्तन को देख ईर्ष्या से जलता रहता हूँ । जो शत्रुओ को पराजित कर विश्राम लेता है, वही पुरुष कहलाता है । सतोप,लक्ष्मी और स्वाभिमान का नाश कर देता है। क्लेश और भय से युक्त मनुष्य कभी शान्ति नही पा सकता । पाण्डवो की प्रकाशमान राज्य लक्ष्मी को देख मेरी कान्ति नष्ट हो जाती है। युधिष्ठिर के महल मे अनेक विद्वान ब्राह्मण प्रतिदिन भोजन करते हैं । उसे यज्ञ मे जैसी धन की प्राप्ति हुई है, वैसी मैंने पहले न तो देखी है, न सुनी ही । मेरे मामा शकुनि द्यूत-विद्या को पूर्णतया जानते हैं, अत वे पाण्डवो की राज्य-लक्ष्मी का जूए मे अपहरण कर लेंगे । मेरी यह इच्छा विदुर के द्वारा पूर्ण करवाइये, नही तो मैं प्राण त्याग दूंगा ।' दुर्योधन के वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाया । जुए के दोपो को जानते हुए भी उन्होने पुत्र-स्नेह के वश हो उसका आयोजन किया ।

बुद्धिमान विदुर को जब इस सकल्प का पता चला तब उन्होने इसे विनाश का द्वार माना और राजा धृतराष्ट्र से बोले—'मैं आपके इस निश्चय का अनुमोदन नही करता । पुत्रो मे भेद होने पर निश्चय ही आपको कलह का सामना करना पडेगा । इससे मुझे समस्त कुल के विनाश का भय है ।'

धृतराष्ट्र बोले—'विदुर ! दैव के विधान को मिटाया नही जा सकता । तुम मेरी आज्ञा से कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को शीघ्र यहाँ बुलाओ ।'

राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर धर्मज्ञ विदुर राजा युधिष्ठिर के पास गये । पाण्डवो ने विदुर का यथायोग्य सत्कार कर उनके आगमन का कारण पूछा ।

विदुरजी ने कहा—'राजन् ! राजा धृतराष्ट्र पुत्र सहित कुशल हैं । पाण्डवो को उन्होने द्यूत क्रीडा करने हस्तिनापुर बुलाया है ।'

युधिष्ठिर बोले—'विदुरजी ! जुए का परिणाम तो भयकर होता है, अत कौन बुद्धिमान मनुष्य इसका आदर करेगा ? पाण्डव

तो आपकी आज्ञानुसार ही चलने वाले है।'

विदुर ने समझाया—'पाण्डुनन्दन ! जुआ अनर्थ की जड है। मैने इसे रोकने का प्रयत्न भी किया था। शकुनि पासा फेकने में सिद्धहस्त है, और द्यूत-विद्या के रहस्य का उसे ज्ञान है। मेरे विचार जानकर भी राजा धृतराष्ट्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। जो कल्याणमय हो, वही कार्य तुम करो।'

युधिष्ठिर ने कहा—'आपके कथन से बोध होता है कि दुर्योधन के यहाँ भयकर कपटी, धूर्त, जुआरी जुटे हुए है। यह सपूर्ण जगत दैव के अधीन है। मैं राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा का अवश्य पालन करूँगा, यद्यपि मै जुआ नही खेलना चाहता।' धर्मात्मा विदुर से ऐसा कह धर्मराज युधिष्ठिर भाइयो और स्त्रियो के साथ हस्तिनापुर गये। यात्रा करने के पहले उन्होने विद्वान ब्राह्मणों को दान दिया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की। हस्तिनापुर पहुँचने पर पाण्डवो ने राजा धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर, माता गाधारी आदि को प्रणाम किया और समस्त राजाओ से मिले।

युधिष्ठिर ने शकुनि से कहा—'राजन ! जुआ छल और पाप का कारण है, अत तुम क्रूर मनुष्यो की भाँति हमे जीतने की चेष्टा न करो। मुनिश्रेष्ठ असित देवल ने भी जुए को पाप कहा है। श्रेष्ठ पुरुष वाणी द्वारा किसी के प्रति अनुचित शब्द नही निकालते तथा कपटपूर्ण बर्ताव नही करते। शकुनि ! हम लोग जिस धन से अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणो की रक्षा करने का प्रयत्न करते है, उसको तुम हड़पने की चेष्टा न करो।'

शकुनि बोला—'यदि आपको जुए के खेल से भय लगता है, तो उससे निवृत्त हो जाइये।'

युधिष्ठिर ने कहा—'मै बुलाने पर पीछे नही हटता। दैव बलवान है, मैं दैव के वश हूँ।'

दुर्योधन बोला—'मेरी ओर से मामा शकुनि खेलेगे।'

विदुर ने धृतराष्ट्र को डांटते हुए कहा—'महाराज ! यदि

अपने कुल की रक्षा चाहते है, तो इस जुए के खेल को वन्द करवाइये। जुआ खेलना झगडे की जड है, जो वड़े भयकर फूट की सृष्टि करता है। कही ऐसा न हो, पाण्डवो के साथ अन्याय करने के कारण आपके पुत्रो के मत्री और सेना के साथ हम सभी को यमलोक जाना पडे। जो पुरुप मूर्ख मनुष्य का अनुसरण करता है, वह भयकर विपत्ति मे पड जाता है। दुर्योधन कुटिलता-पूर्वक पाण्डवो को जीत रहा है और तुम प्रसन्न हो रहे हो। आज का यह विनोद शीघ्र ही भयकर युद्ध मे परिणत होने वाला है।'

धर्मात्मा विदुर के वचन सुन दुर्योधन क्रोधित होकर बोला—'विदुर! तुम सदा हमारे शत्रुओ के सुयश की ही चर्चा और हमारी निन्दा करते रहते हो। तुम किसके हितैषी हो यह हम जानते है। तुम्हारा हृदय हमारे प्रति द्वेष और पाण्डवों के प्रति स्नेह से परिपूर्ण रहता है। जो शत्रु का पक्षपाती हो, अपनो से द्वेप रखता हो और अहित करने वाला हो, ऐसे मनुष्य को घर मे नही रखना चाहिये। अत तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ।'

विदुर राजा धृतराष्ट्र को सबोधित कर बोले—'राजन्! जो मन के प्रतिकूल, किन्तु हित-भरी शिक्षा देने मात्र से अपने हितैपी को त्याग देता है, वह परम मूर्ख है। दुर्योधन की वुद्धि वडी मन्द है, जो अपने को विद्वान और मुझे मूर्ख समझता है। ससार में मन को प्रिय वचन कहने वाला महापापी मनुष्य मिल सकता है, किन्तु अप्रिय, हितकर, वचन सुनने और सुनाने वाले मनुष्य दुर्लभ हैं। मै तुम्हे पुन. कहता हूँ कि तुम उन सर्पो को कुपित न करो, जो मुख और नेत्रो से विप उगलते है।' शकुनि ने पाण्डवो का जुए मे सारा धन हरण कर लिया। फिर उसने युधिष्ठिर, उनके चारों भाइयो और द्रौपदी को भी जीत लिया। शकुनि की विजय के द्वारा पाण्डवो को बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास भी करना पड़ेगा। यह देख बडे-बूढो के मुख से 'धिक्कार' की आवाज आने लगी। विदुर तो बेहोश हो गये।

भीष्म, संजय, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा और युयुत्सु मुख नीचा कर हाथ मलने लगे। राजा धृतराष्ट्र मन-ही-मन प्रसन्न हो उनसे पूछ रहे थे, 'क्या हमारे पक्ष की जीत हो रही है ?' वे अपनी प्रसन्नता की आकृति को छिपा न सके।

दुर्योधन ने कहा—'विदुर ! तुम जाकर पाण्डवो की प्रिय और मनोनुकूल पत्नी द्रौपदी को यहाँ ले आओ। वह पापा-चारिणी मेरे महल में दासियों के साथ झाड़ू लगायेगी।'

विदुर बोले—'ओ मूर्ख ! नीच के मुख से ही ऐसे वचन निकल सकते है। तू काल-पाश से बधा हुआ प्रलाप कर रहा है। तू एक साधारण मृग के समान होकर भयकर व्याघ्रो को अत्यन्त क्रुद्ध कर रहा है। द्रौपदी दासी नही हो सकती, क्योकि राजा युधिष्ठिर स्वय को हारकर द्रौपदी को दाँव पर रखने का अधिकार खो चुके हैं। तेरे सिर पर महान विषधर सर्प चढ़े हैं। तू उनका कोप न बढा और यमलोक में जाने के लिए उद्यत न हो। तू नरक के अत्यन्त भयकर द्वारो को नही देखता, तभी नीच पुरुषो के मार्ग का अनुसरण कर रहा है।' दुर्योधन गर्व से उन्मत्त हो रहा था। उसने महात्मा विदुर को सभा भवन में ही अपमानित किया और प्रतिकामी को द्रौपदी को वहाँ लाने की आज्ञा दी। दुर्योधन की आज्ञा से सूत प्रतिकामी सती द्रौपदी के पास गया और उसने जूए की घटनाएँ उसे सुनाई।

द्रौपदी ने कहा—'सूत-पुत्र ! निश्चय ही विधाता का ऐसा विधान है। जगत मे धर्म ही श्रेष्ठ है। यदि हम धर्म का पालन करेंगे तो हमारा कल्याण होगा। तुम सभा मे बैठे हुए धर्मात्मा, नीतिज्ञ और श्रेष्ठ पुरुषो से पूछो, मुझे क्या करना है ?' सती द्रौपदी का यह कथन सुनकर प्रतिकामी ने जाकर श्रेष्ठ पुरुषो से द्रौपदी के प्रश्नो का उत्तर माँगा, किन्तु वे सभी नीचे मुँह किये बैठे रहे और कुछ भी नही बोले। द्रौपदी को सभा-भवन में लाने के लिए दुर्योधन ने इस बार दुःशासन को भेजा।

वह लाल आँखे कर द्रौपदी के पास गया और बोला—

'तुम जुए मे जीती जा चुकी हो। हमने धर्म के अनुसार तुम्हे प्राप्त किया है, अत कौरवो की सेवा करो। अभी तुम सभा-भवन में चलो।' यह सुन द्रौपदी, कौरवो की स्त्रियाँ जहाँ बैठी थी, उसी ओर भागी, किन्तु क्रूर दु शासन ने उसके केश पकड लिये और रोती हुई आर्त्त द्रौपदी को बलात् सभा-भवन मे ले आया।

द्रौपदी ने दु.शासन से कहा—'अरे दुष्ट ! सभा मे महात्मा, विद्वान और मेरे पिता के समान गुरुजन बैठे हैं। मुझे उनके सामने खडा न कर। मुझे क्रूरता से न खीच और वस्त्रहीन न कर। मेरे पति पाण्डव तेरे इस अत्याचार को सहन नही करेगे।' सभा मे प्रवेश कर द्रौपदी ने कहा—'जान पड़ता है, द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, महात्मा विदुर तथा राजा धृतराष्ट्र शक्तिहीन हो गये है। वह सभा नही है, जहाँ वृद्ध पुरुष न हो, वे वृद्ध पुरुष नही है, जो धर्म की बात न कहे, वह धर्म नही है, जिसमे सत्य न हो और वह सत्य नही है, जो छल से युक्त हो।'

द्रौपदी की दुर्दशा देखकर भीमसेन को बड़ी पीड़ा हुई। वे युधिष्ठिर से बोले—'भैया! आपने जो धन, रत्न और राज्य दाँव पर लगाये, उसके लिए मुझे क्रोध नही हुआ, क्योंकि आप हमारे सर्वस्व के स्वामी हैं, किन्तु द्रौपदी को दाँव पर लगाना अनुचित हुआ है। आपके कारण ये नीच, नृशस और पापी कौरव द्रौपदी को नाना प्रकार के कष्ट दे रहे है।'

अर्जुन ने कहा—'भैया भीमसेन! तुमने पहले कभी बड़े भैया से ऐसी बाते नही कही थी। निश्चय ही क्रूरकर्मा शत्रुओ ने तुम्हारी धर्म-बुद्धि को नष्ट कर दिया है। भैया ! तुम्हे उत्तम धर्म का ही आचरण करना चाहिए।'

द्रौपदी अपने को सब प्रकार असहाय मान सर्वपापहारी विजयी भगवान श्रीकृष्ण को पुकारने लगी। वह मन-ही-मन चिन्तन करने लगी हे गोविन्द ! हे नारायण-स्वरूप कृष्ण ! हे आपत्तिकाल मे अभय देने वाले लोक-पितामह ! हे केशव !

कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, मेरा उद्धार करो। हे योगेश्वर ! हे विश्वात्मा ! मुझ शरणागत अबला की रक्षा करो।' इस प्रकार तीनों लोकों के स्वामी श्यामसुन्दर का चिन्तन कर द्रौपदी दु:खी हो, आंचल से मुख ढक, बिलख-बिलख कर रोने लगी। द्रुपदनन्दिनी की यह करुण पुकार सुन कृपालु श्रीकृष्ण गद्‌गद हो पैदल ही दौड़ पड़े। सती साध्वी 'कृष्णा' अपनी रक्षा के लिए श्रीकृष्ण, विष्णु, हरि और नर आदि भगवन्नामों को पुकार रही थी। इसी समय धर्म-स्वरूप श्रीकृष्ण ने अव्यक्त रूप से उसके वस्त्र में प्रवेश कर द्रौपदी को सुन्दर वस्त्रों द्वारा आच्छादित कर दिया। द्रौपदी के वस्त्र यद्यपि खींचे जा रहे थे, किन्तु उसी तरह के दूसरे अनेक वस्त्र प्रकट होने लगे। यह अद्‌भुत दृश्य देख उपस्थित राजा द्रौपदी की प्रशंसा और दु:शासन की निन्दा करने लगे। उस समय भीमसेन ने क्रोधपूर्वक भयंकर गर्जना के साथ प्रतिज्ञा की, 'नीच दु:शासन ! मैं युद्ध में तेरी छाती को फाडकर रक्त पीऊँगा।'

कर्ण ने कहा—'द्रौपदी ! तुम अब राजा दुर्योधन के परिवार की सेवा करो। अब तुम शीघ्र ही दूसरा पति चुन लो।'

'आओ, द्रौपदी यहाँ बैठो।' अपनी जंघा पर हथेली मारते हुए दुर्योधन ने कहा।

भीमसेन बोला—'मुझे सूत-पुत्र कर्ण पर क्रोध नहीं आता। मैं महासमर में दुर्योधन की इसी जाँघ को अपनी गदा से न तोड़ डालूं तो मुझे पुण्य-लोक की प्राप्ति न हो।'

भीमसेन की भीषण प्रतिज्ञा सुन राजा धृतराष्ट्र डर गये और बोले—'ए मद-बुद्धि दुर्योधन ! तू तो जीते जी ही मर गया। तूने सभा में अपने ही कुल की वधू, पाण्डवों की धर्म-पत्नी को लाकर पापपूर्ण कर्म किया है।' पुत्रों के भावी विनाश पर विचार कर धृतराष्ट्र ने सुकुमारी कृष्णा को सान्त्वना देते हुए कहा—'बहू द्रौपदी ! तुम मेरी बहुओं में सबसे श्रेष्ठ और धर्मपरायण सती हो, अतः अपनी इच्छानुसार मुझसे वर मांग लो।'

द्रोपदी ने कहा—'महाराज ! सम्पूर्ण धर्म के आचरण करने वाले मेरे पति, पाण्डव दास्यभाव से मुक्त हो जाये। पाण्डवों के अस्त्र-शस्त्र उन्हे दे दिये जाये।'

तदनन्तर पाण्डवो ने सुन्दर वस्त्र उतार दिये और मृगचर्म धारण कर लिया। वन मे जाने से पूर्व उन्होने महात्मा विदुर, भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण और अन्य गुरुजनो को प्रणाम किया। विदुर ने पाण्डवो से कुन्ती को अपने घर मे रहने की याचना की। इस पर पाण्डव हर्ष सहित राजी हो गये। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा---'तुम धर्म के ज्ञाता हो। तुम्हे देखकर सबको प्रसन्नता होती है। परलोक-विषयक ज्ञान का तुम कभी त्याग न करना। तुम उदारता एवं दान मे कुवेर का और सयम में वरुण का अनुसरण करना। तुम दूसरों के हित के लिए अपने आपको निछावर करना और दूसरो को जीवन-दान देना। तुम्हें कल्याण प्राप्त हो।' युधिष्ठिर के प्रस्थान करने पर कृष्णा ने यशस्विनी कुन्ती देवी से अत्यन्त दु ख से व्याकुल हो वन मे जाने की आज्ञा मांगी।

यह सुन माता कुन्ती अत्यन्त संतप्त हो उठी और बडी कठिनता से बोली---'बेटी ! तुम स्त्री-धर्म को जानती हो। तुम शील और सदाचार पालन करने वाली हो, इसलिए पतियोके प्रति तुम्हारा क्या कर्तव्य है, यह तुम्हे बताने की आवश्यकता नही। तुम्हारा जीवन विघ्न-बाधाओ से रहित हो। मेरे किये हुए शुभ कर्मों से तुम्हारा अभ्युदय हो। माता कुन्ती ने पाण्डवो से कहा—'पुत्रो ! तुम उत्तम धर्म का पालन करने वाले तथा सदाचार की मर्यादा रखने वाले होओ। तुम भगवान के दृढ-भक्त और देवाराधन मे सदा तत्पर रहने वाले होओ।' धर्मराज युधिष्ठिर जब वन की ओर बढे, तब नगरवासी दु ख से आतुर हो उन्हे देखने लगे। नगर-द्वार से निकलकर पाण्डवो ने द्रौपदी के साथ उत्तराभिमुख होकर यात्रा आरम्भ की।

धर्मात्मा धौम्य मुनि, जो पाण्डवो के पुरोहित थे, उन्ही के साथ वन में गये। उनकी आज्ञा से पाण्डवो ने भगवान भास्कर की आराधना की।

भगवान भास्कर ने प्रसन्न हो पाण्डवों को एक अक्षय पात्र दिया और कहा—'पुत्रो! तुम लोग इस पात्र मे भोजन बनाओ। इस पात्र में पडा भोजन, जबतक द्रौपदी स्वय भोजन न कर लेगी अक्षय रहेगा।' इतना कह सूर्य भगवान अतर्धान हो गये। उस दिव्य पात्र के प्रभाव से पाण्डव अतिथि और ब्राह्मणो को भोजन कराने लगे। जब सब भोजन कर लेते, तब अंत मे द्रौपदी भोजन किया करती थी और पात्र का अन्न समाप्त हो जाता था। यात्रा करते-करते पाण्डव काम्यक वन मे पहुँचे, जहाँ अनेक ऋषि-मुनि निवास करते थे।

'महात्मा विदुर पाण्डवो से मिलने वहाँ गये। उन्होने कहा—'राजा धृतराष्ट्र ने मुझे कुपित हो त्याग दिया है। तुम लोगो को भी शत्रुओ ने दु:सह दु.ख दिया है, अत अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करो। जैसे थोडी-सी भी आग घास-फूस के द्वारा प्रज्ज्वलित की जा सकती है, वैसे ही जो अपनी शक्ति और सहायकों को बढाता है, वह भविष्य में अपने कार्य मे सफल हो जाता है। जो मित्रो के साथ बैठकर समान अन्न का भोजन करता है, और उन सबके आगे अपनी प्रशसा नही करता वह उन्नतिशील होता है।'

विदुर के वन मे चले जाने पर राजा धृतराष्ट्र को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होने सजय से कहा—'मुझसे मेधावी विदुर के प्रति बड़ा अपराध हुआ है, अतः तुम उन्हे लाने के लिये शीघ्र जाओ।' सजय ने महात्मा विदुर के पास पहुँचकर उन्हे राजा धृतराष्ट्र का आदेश सुनाया। तदनन्तर पाण्डवो से विदा ले, विदुर राजा धृतराष्ट्र के पास गये और वे एक-दूसरे से अनुनय-विनय करके प्रसन्न हो गये।

विदुर को पुन आया देख दुर्योधन ने शकुनि, दु:शासन

और कर्ण से कहा—'पिताजी का यह मंत्री विदुर फिर लौट आया है। यह विद्वान पाण्डवों का सुहृद और उन्हीं के हित-साधन में सलग्न रहता है। यदि पाण्डव पुन यहाँ आ गये, तो मैं अपने शरीर का परित्याग कर दूंगा।'

तब सभी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—'पाण्डव सत्य-वचन का पालन करने वाले है। वे प्रतिज्ञा के अनुसार वन में गये हैं, अत उसे भंग नही करेगे। यदि वे निश्चित अवधि के पूर्व ही यहाँ आ जायेंगे, तो हम पुन. उन्हें जुए के द्वारा जीत लेंगे। यदि हम लोगो का यह विचार तुम्हें सतोष नही देता, तो उन पर आक्रमण कर देना चाहिए, जिससे कि उनकी मृत्यु हो जाये।'

जब वे सब इस प्रकार मत्रणा कर रहे थे, तब भगवान व्यास वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने राजा धृतराष्ट्र से कहा—'पाण्डवो को तुम्हारे पुत्रों ने छल से वन में भेजा है। तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर वे अवश्य युद्ध करेंगे। तुम्हारे पापात्मा पुत्र रोष मे भरकर पाण्डवों का वध करना चाहते है, किन्तु वे अपने ही प्राणो को खो बैठेंगे। स्वजनो के साथ कलह बढाना निंदनीय माना गया है। वह अधर्म एव अपयश बढाने वाला है। पाण्डवो के प्रति दुर्योधन के विचारो का यदि दमन न किया गया, तो अत्याचारो की सृष्टि होगी। भीष्म, द्रोण और विदुर की सम्मति से ही तुम्हारा कल्याण हो सकता है। तुम्हें पाण्डवों से मेल कर शान्ति स्थापित कर लेनी चाहिए। महात्मा मैत्रेय पाण्डवो से मिलकर यहाँ आ रहे है। वे जो कुछ कहे उसे नि संकोच करो, अन्यथा वे तुम्हारे पुत्रो को शाप दे सकते है।'

भगवान व्यास के प्रस्थान के पश्चात मैत्रेय मुनि वहाँ पधारे और धृतराष्ट्र से कहने लगे—'मैं पाण्डवो से मिलकर आया हूँ। तुम्हारे पुत्र बुद्धि-भ्रम के कारण अनीति मे प्रवृत्त हो रहे हैं। इन्हें नियत्रण मे रखो। तुम इनके घोर अन्याय की क्यो उपेक्षा कर रहे हो ? तुम पाण्डवों से प्रेम कर, अपने कुल तथा

प्रजा का प्रिय करो। पाण्डव सत्यव्रतधारी, शूरवीर, पराक्रमी और युद्ध-कुशल है। कौन मनुष्य युद्ध में उनका सामना कर सकता है?'

यह नीति-पूर्ण वचन सुन दुर्योधन ने उनका अपमान किया। इस अनादर पर वे कुपित हो गये और बोले—'तू युद्ध में अपने भाइयों और मित्रों सहित पाण्डवों द्वारा निश्चित ही मारा जायगा।' यह कह मैत्रेय मुनि वहाँ से चले गये।

पाण्डव काम्यक वन से आगे बढे, तब बक के भाई राक्षस कर्मीर ने पाण्डवों पर आक्रमण किया, किन्तु भीमसेन ने उस राक्षस का उसी क्षण वध कर डाला। भगवान श्रीकृष्ण और धृष्टद्युम्न ने सुना कि पाण्डवों को कौरवो ने छलपूर्वक' इन्द्रप्रस्थ से निकाल दिया है, तब वे उनसे मिलने वन में गये। द्रौपदी सहित पाण्डवो ने भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें सान्त्वना दी, तब देवी द्रौपदी करुण क्रन्दन करती हुई आर्त-स्वर मे बोली—'भगवन! पाण्डवों की उपस्थिति में दुष्ट दुःशासन, मुझे घसीटकर सभा-भवन में गुरुजनों के सामने ले गया और पापात्मा कौरवों ने मेरी हँसी उड़ाई। पाण्डवो, पाचालो और यादवों के जीते-जी वे मुझे बलपूर्वक दासी बनाना चाहते थे। पाण्डव उन नराधमो द्वारा अपमानित हुए और दु खद वचनो को सहन करते रहे। सत्पुरुषो ने कहा है कि निर्बल पुरुष को भी अपनी पत्नी की रक्षा करनी चाहिये। मेरे पति युद्ध मे अजेय है, इन्होने मुझ पर हुए अत्याचारो को सहन क्यो किया? उस समय आपने ही मेरी रक्षा की। द्रौपदी के वचन सुन भगवान द्रवित हो गये। उन्होने कहा—'पाण्डवो के हित मे जो कुछ भी सम्भव होगा, वह मैं अवश्य करूँगा। तुम शोक न करो। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण और धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवो से विदा ले, अपने-अपने राज्य मे चले गये। पाण्डव भी वहाँ से द्वैत-वन को चले गये। वहाँ उन्हें महर्षि मार्कण्डेय के दर्शन हुए। कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने उनको

यथोचित पूजा की ।

मार्कण्डेयजी बोले—'तात ! तुम्हारी यह विपत्ति देख मुझे सत्य-प्रतिज्ञ श्री रामचन्द्रजी का स्मरण हो आया है। पिता की आज्ञा से केवल धनुष हाथ मे ले लक्ष्मण और सीता के साथ वे वन में भ्रमण करते थे। जो युद्ध मे सर्वदा अजेय थे, उन्होने सम्पूर्ण भोगो का परित्याग कर, चौदह वर्ष तक वन मे निवास किया। इसलिए अपने को बल का स्वामी मान अधर्म का आदर नही करना चाहिए। वेदो मे अग्निहोत्र आदि कर्मों का विधान है, उसका अनुकरण करने के कारण सप्तर्षि देव-लोक मे प्रकाशित हैं। तुम्हे सत्य, धर्म और यथायोग्य व्यवहार आदि सद्गुणो का पालन करते रहना चाहिए। समय आने पर तुम अपनी राज्य-लक्ष्मी प्राप्त कर लोगे।'

मार्कण्डेयजी के विदा होने पर द्रौपदी, जो दु ख के समुद्र में डूबी हुई थी, युधिष्ठिर से बोली—'भगवन् ! उस धाता (ईश्वर) और विधाता को नमस्कार है, जिन्होने आपकी बुद्धि मे मोह उत्पन्न कर दिया है। कर्मों के अनुसार विविध योनियो की प्राप्ति बताई गई है, किन्तु मूर्ख लोभ से ही मोक्ष पाने की इच्छा रखते हैं। इस जगत मे धर्म, कोमलता, क्षमा, विनय और दया से कोई भी मनुष्य धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति नही कर सकता। यही कारण है कि आप पर यह दुस्सह सकट आ गया है। पाण्डवो ने धर्म से अधिक प्रिय किसी वस्तु को कभी नही समझा। उन्होने अपना राज्य और जीवन धर्म के लिए दिया। मैंने विद्वानो से सुना है कि धर्मात्माओं की रक्षा धर्म करता है, तब वह हमारी रक्षा क्यो नही कर रहा ? आप स्वाहा, स्वधा और पूजा के द्वारा देवताओ, पितरो और ब्राह्मणो की उपासना करते हैं। ब्राह्मणो और साधु-सन्यासियो की कामना आपने पूर्ण की है। आपने शान्ति-स्थापना के लिए भी पुण्य-कर्म किये हैं और यज्ञो द्वारा अनुष्ठान किये हैं। परन्तु उस कपटपूर्ण द्यूत-क्रीडा के समय आपकी बुद्धि विपरीत क्यों हो गयी, जिससे आपकी यह दशा हुई ?

आप सरल, उदार और सत्यवादी है, तब आपकी बुद्धि में जुआ खेलने का व्यसन क्यों आया ? इस विषय में विद्वान कहते हैं कि जीव ईश्वर के वश है। विधाता (ईश्वर) ही प्राणियो के पूर्व कर्मों के अनुसार सुख-दु ख और प्रिय-अप्रिय की व्यवस्था करता है। जैसे कठपुतली सूत्रधार से प्रेरित हो अपने अगो का सचालन करती है, उसी प्रकार प्राणी ईश्वर की प्रेरणा से विविध कर्म करते है। जीव स्वतत्र नही है, इसलिए उसका न दूसरो पर वश चलता है, न अपने ऊपर ही , अत: जीव अपने सुख-दु ख के विधान मे असमर्थ है। वह ईश्वर से प्रेरित होकर ही स्वर्ग एव नरक मे जाता है। जैसे क्षुद्र तिनके बलवान वायु के वश हो उडते-फिरते हैं, वैसे ही प्राणी ईश्वर के अधीन हो आवागमन करते है। कोई श्रेष्ठ कर्म करे, चाहे पाप-कर्म, ईश्वर सभी प्राणियो मे व्याप्त रहते हैं। यह क्षेत्र-शरीर ईश्वर का साधन मात्र है, जिसके द्वारा वे सर्वदा, शुभाशुभ कर्मो का अनुष्ठान करवाते है। जैसे बालक खिलौने से खेलता है, वैसे ही भगवान प्राणियों का सयोग-वियोग कराते रहते है। मै समझती हूँ कि ईश्वर प्राणियो के साथ सम-भाव नही रखते। वे मनुष्य की भाँति अनुचित व्यवहार भी करते हैं, क्योकि जो लोग श्रेष्ठ, शीलवान, सत्यप्रतिज्ञ है. वे कष्ट पा रहे है, और दुष्ट सुख भोगते है। यह देख मेरी यह धारणा पुष्ट होती है, और मै चिन्ता से व्याकुल हो रही हूँ। मैं आपकी आपत्ति और दुर्योधन की समृद्धि को देख विधाता की निन्दा करती हूँ, जो सज्जन को दु.ख और दुर्जन को सुख देने के पहले विचार नही करता। यदि किया हुआ कर्म; कर्त्ता का ही पीछा करता है, तो ईश्वर भी अपने अनुचित कर्म के द्वारा पाप मे लिप्त होंगे। यदि किया हुआ पाप कर्म कर्ता को नही प्राप्त होता, तो उसका कारण बल ही है। उस दशा मे दुर्बल मनुष्य के लिए मुझे शोक हो रहा है।'

द्रौपदी की दुःखपूर्ण बात सुनकर युधिष्ठिर बोले — धर्मज्ञे! तुम्हारी बात सुनने में सुन्दर है, किन्तु नास्तिक मत का प्रति-

पादन करती है। मैं कर्मों के फल की इच्छा रखकर अनुष्ठान नही करता, किन्तु कर्तव्य मानकर ही उन्हे करता हूँ। मैं धर्म का फल पाने के लोभ से धर्म का आचरण नही करता, किन्तु साधु-पुरुषो के आचरण और शास्त्रीय मर्यादा से चलने के कारण उसका पालन करता हूँ। मैं शास्त्रों के आधार पर कहता हूँ कि तुम धर्म पर सदेह न करो। मार्कण्डेयजी ने धर्म-पालन से ही चिरजीविता प्राप्त की है। व्यास, वसिष्ठ, मैत्रेय, नारद, शुक तथा अन्य महर्षि धर्म के पालन से ही शुद्ध हृदय वाले हुए है। वे दिव्य योग-शक्ति से सम्पन्न, शाप देने और अनुग्रह करने मे समर्थ तथा देवताओ से भी अधिक गौरवशाली है। जिनकी दृष्टि में धर्म नही है, उनके लिए न तो यह लोक है, न परलोक। जैसे समुद्र को पार करने के लिए जलयान की आवश्यकता है, वैसे ही स्वर्ग मे जाने के लिए धर्माचरण की। यदि धर्म के कार्य निष्फल हो जाते, तो जगत अधकार मे निमग्न हो जाता और मनुष्य मोक्ष नही पाते। जिस प्रकार धर्म निष्फल नही होता, उसी प्रकार अधर्म भी अपना फल दिये विना नही रहता। सत्कर्म और पाप-कर्म की उत्पत्ति और विनाश दैव ही जानता है। धर्म का फल शीघ्र दिखाई न दे तो भी धर्म एव देवता पर आशका न करो, किन्तु यत्नपूर्वक धर्म करते रहो।'

धर्मराज युधिष्ठिर ने वीर अर्जुन से कहा—'पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा धनुर्वेद के विद्वान है, अत शस्त्रो का प्रयोग और निवारण जानते है।' अन्य योद्धाओ से दुर्योधन अत्यधिक स्नेह रखता है और उन्हे सम्मानित और सतुष्ट भी करता है। इसलिए आचार्यगण उसके लिए सदा शान्ति का प्रयत्न करेंगे और उसकी शक्ति क्षीण नही होने देंगे। आज सारा राज्य दुर्योधन के वश मे है, अत हमारे उद्धार का भार तुम पर ही है। तात! तुम एकाग्रचित्त हो देवता इन्द्र को प्रसन्न करो। धनजय! इन्द्र को समस्त दिव्य अस्त्रो का ज्ञान है। वही तुम्हे दिव्य अस्त्र प्रदान करेंगे। धर्मराज की आज्ञा से धनजय ने

इन्द्र का दर्शन करने के लिए अग्नि-देव की आराधना की। उन्होंने ब्राह्मणो से स्वस्ति-वाचन कराए। धौम्य मुनि और बड़े भाइयों को प्रणाम कर उन्होने देवराज इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर घोर तपस्या आरम्भ कर दी। देवराज इन्द्र ने प्रसन्न हो उन्हे दर्शन दिया, तब धनजय ने इन्द्र से हाथ जोड़कर कहा, 'मैं आपसे सम्पूर्ण अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ, अत. मुझे यही वर दीजिये।'

देवराज इन्द्र ने कहा—'अर्जुन, तुम अब अस्त्र क्यो चाहते हो? तुम्हारी कठिन तपस्या से तुम्हे उत्तम लोको की प्राप्ति हुई है।'

अर्जुन ने कहा—'मै अपने भाइयों को वन में छोड वेर का प्रतिशोध लेने यहाँ आया हूँ, अत: मैं न तो देवत्व चाहता हूँ, न सुख और ऐश्वर्य ही। यदि मैं आपकी आज्ञा मानूं तो अपकीर्ति का भागी बनूगा।'

इन्द्र ने वीर अर्जुन को सात्वना देते हुए कहा—'तुम भगवान शिव की आराधना करो। उनके प्रसन्न होने पर तुम्हारी सभी कामना सिद्ध हो जायेगी।'

ऐसा कह इन्द्र अदृश्य हो गये। धनजय ने अब भगवान शिव की आराधना आरम्भ कर दी। सर्व-पापहारी भगवान शिव अर्जुन को दर्शन देने किरात का वेष धारण कर उस पहाड़ पर आये। उनके साथ भगवती उमा भी थी। वहाँ महापराक्रमी मूक नामक दानव सूअर का रूप धारण कर वीर अर्जुन को मारने की चेष्टा कर रहा था। वीर अर्जुन ने अपने बचाव के लिए गाण्डीव धनुष हाथ मे लिया और वाण द्वारा प्रहार करने को उद्यत हुआ ही था कि भगवान शकर ने आकर उन्हे रोक दिया और कहा—'इस सूअर को मैंने पहले से ही अपना लक्ष्य बना रखा है, अत तुम न मारो।' परन्तु वीर अर्जुन ने उनके वचन की अवहेलना कर उस पर प्रहार कर ही दिया। दोनों के वाण एक ही साथ मूक दानव के शरीर में लगे, जिससे वह तत्काल मर गया। वीर अर्जुन ने किरात रूपधारी [illegible]

पुरुष से उसका परिचय पूछा, किन्तु उसने कोई उत्तर नही दिया। इस पर क्रुद्ध हो अर्जुन ने उस पर अपने शस्त्रों का प्रहार किया, पर वे सब असफल रहे। किरात ने अर्जुन को एक ही वाण द्वारा मूच्छित कर दिया। मूर्च्छा से मुक्त होने पर अर्जुन भगवान शिव की स्तुति करने लगे। उन्होने पार्थिव शिव पर जो माला चढाई, वह किरात के सिर पर चली गयी। यह देख वे शकर के चरणों में गिर पड़े।

भगवान शिव प्रसन्न हो वोले—'अनघ! मैं तुम्हे पाशुपतास्त्र देता हूँ। इसके द्वारा तुम युद्ध मे शत्रुओ पर विजय पाओगे।' भगवान शिव से प्रसाद पाकर अर्जुन उनकी स्तुति करने लगे—'सर्व-देवेश्वर! देवदेव-महादेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप समस्त कारणों मे सर्वश्रेष्ठ कारण हैं। आप देवताओ के आश्रय हैं। यह जगत आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप भक्तो पर अभीष्ट कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं। हे मंगलकारक सृष्टिकर्ता! आपको मेरा नमस्कार है। आप मुझ पर प्रसन्न हो और मेरे अपराध क्षमा करे। प्रभो! मैंने अज्ञानवश आपसे युद्ध किया है, किन्तु अव मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरी धृष्टता क्षमा करे।'

भगवान शिव ने कहा—'मैंने तुम्हारा अपराध पहले ही क्षमा कर दिया है।'

भगवान शंकर के दर्शन से जो कुछ भी अर्जुन के शरीर मे अशुभ था, वह नष्ट हो गया और वे कृतकृत्य हो गये। भगवान शकर के अतर्धान होने पर देव-श्रेष्ठ इन्द्र कुबेर के साथ वहाँ आये।

देवराज इन्द्र बोले—'महावाहो कुतीनदन! तुम्हे उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है। तुम्हे अब देवताओ का कार्य सिद्ध करने स्वर्ग लोक मे चलना होगा। मातलि दिव्य रथ ले तुम्हारे पास आयेगा। तुम उस पर आरूढ हो जाना वह तुम्हे स्वर्ग ले जायेगा। वहाँ मैं तुम्हे दिव्यास्त्र प्रदान करूगा।' तदनन्तर इद्र का सारथी मातलि दिव्य रथ ले वीर अर्जुन के पास आया। वीर अर्जुन

ने वहाँ के ऋषियों को प्रणाम किया और भगवान के नामो का स्मरण करते हुए रथ पर आरूढ हो गये। वे शीघ्र ही सिद्धो से सेवित अमरावतीपुरी मे पहुँच गये। स्वर्ग में देवताओं, गधर्वो, सिद्धों और महर्षियों ने कुन्तीकुमार अर्जुन का स्वागत किया। अर्जुन ने भी सबको प्रणाम कर, आशीर्वाद ले, देवराज इन्द्र को प्रणाम किया। उन्होने उन्हे अपने पास के सिहासन पर बैठाया। चित्रसेन ने वीर अर्जुन को गीत, वाद्य और नृत्य की शिक्षा दी और इद्र ने उन्हें दिव्य अस्त्रो की दीक्षा दी। सत्य-पराक्रमी पाण्डुकुमार अर्जुन के काम्यक-वन से चले जाने पर सभी पाण्डव उनके लिए शोक और दु ख में मग्न रहने लगे। जैसे मणियों की माला टूट जाये और पक्षियो के पंख कट जाये, तब उन मणियों और पक्षियों की जो दशा होती है, वही दशा पाण्डवों की थी। उसी समय महर्षि वृहदश्व वहाँ पहुँचे। पाण्डवो ने उन महात्मा का श्रद्धापूर्वक पूजन किया।

पाण्डव अत्यन्त दीनतापूर्वक बोले—'भगवन् ! धूर्त जुआरियो ने अन्यायपूर्वक हमारे राज्य का अपहरण कर लिया है। दुष्टों ने गौरवशालिनी पत्नी द्रौपदी के केश पकडकर उसे भरी सभा में अपमानित किया। गाण्डीवधारी अर्जुन मे हम सबके प्राण बसते हैं, वे अस्त्र-विद्या सीख यहाँ कब लौटेगे ? उन्हे हम कब अपनी आँखों से देखेगे ? इन्ही चिन्ताओ को लेकर हम बहुत दुःखी है।'

वृहदश्व ने कहा—'पाडुनंदन ! तुम शोक न करो ! विधाता के विधान को कोई उलट नही सकता। तुम्हारे कष्ट अवश्य निवृत्त हो जायेंगे। मैं तुम्हे राजा नल का चरित्र सुनता हूँ।'

## राजा नल का चरित्र

वृहदश्व बोले—निषध देश मे वीरसेन का पुत्र नल एक प्रसिद्ध राजा था। वह उत्तम गुणो से सम्पन्न, रूपवान और अश्व-सचालन

की कला मे प्रवीण था। वह ब्राह्मण-भक्त,वेदवेत्ता,सत्यवादी और शूरवीर था। उन्ही दिनो विदर्भ देश में भीम नाम के पराक्रमी राजा के एक कन्या और तीन पुत्र थे। पुत्रो के नाम दम, दान्त, दमन और कन्या का नाम दमयती था। दमयती रूप, तेज और सर्व-गुण सम्पन्न थी। पथिक नल से दमयती की और दमयंती से नल की प्रशसा करते थे। इस प्रकार एक-दूसरे के गुणों को सुनते-सुनते दोनो मे बिना देखे ही परस्पर प्रेम उत्पन्न हो गया। एक समय राजा नल समीपवर्ती उपवन मे बैठे थे। इतने में उनकी दृष्टि सुन्दर हसो पर पड़ी। उन्होने एक हंस को पकड़ लिया।

हस बाला—'राजन्! आप मुझे न मारे। मैं दमयतीके निकट जा आपकी प्रशसा करूँगा।' राजा नल ने उसे छोड़ दिया और वह विदर्भ देश मे दमयती के पास चला गया। राजकुमारी दमयती उस अद्भुत पक्षी को देख बडी प्रसन्न हुई। हंस ने राजकुमारी से कहा—'सुन्दरी! निपध देश में नल नाम के एक प्रसिद्ध राजा है। यदि तुम उनकी पत्नी हो जाओ तो तुम्हारा जन्म सफल हो जायगा, क्योकि मेरी दृष्टि मे ऐसा गुणवान एव रूपवान मनुष्य, अभी तक नही आया है।'

दमयती बोली—'पक्षीराज! तुम राजा नल से भी मेरे सम्बन्ध मे ऐसा ही कहना।'

हस ने पुन राजा नल के पास जाकर दमयती के गुणो का वर्णन किया। कुमारी दमयती ने जब से हस के द्वारा राजा नल की प्रशसा सुनी, तब से उनके प्रति अनुरक्त रहने लगी। उसकी सखियो ने विदर्भ नरेश को यह दशा सुना दी। इस पर विदर्भ-नरेश ने कुमारी दमयती का स्वयवर रचाने की योजना की। स्वयंवर की सूचना मिलने पर बहुत से नरेश विदर्भराज भीम की राजधानी मे आये। महाबाहु राजा भीम ने उन नरेशो का यथा-योग्य स्वागत किया।

इसी समय देवर्षि नारद घूमते-घूमते इन्द्र-लोक मे पहुँचे।

भगवान इन्द्र ने उनसे कुशलमंगल पूछा। नारद बोले—'मघवन्! विदर्भनरेश भीम की पुत्री दमयंती का स्वयंवर होने वाला है। वह एक अद्भुत रत्न है, जिसे पाने की अभिलाषा सब राजा रखते है।' देवर्षि नारदजी की बात सुन कुछ मुख्य देव कुमारी दमयंती का स्वयंवर देखने विदर्भ देश मे गये। राजा नल भी दमयंती में अनुरक्त होकर विदर्भ देश गये। मार्ग मे देवता राजा नल से मिले और अपना परिचय देते हुए बोले—'हम इद्र, अग्नि, वरुण और यम हैं। तुम दमयती के पास जाओ और कहो कि हममें से किसी एक को वह पति के रूप में चुन ले।'

राजा नल हाथ जोडकर बोला—'देवो! मैं भी इसी प्रयोजन से विदर्भ-देश जा रहा हूँ, अतः मुझसे यह कार्य न हो सकेगा। देवेश्वरो! जिसके मन में किसी स्त्री को प्राप्त करने का सकल्प हो वही पुरुष, उस स्त्री को ऐसे वचन कैसे कह सकता है? अतः मेरी विवशता पर मुझे क्षमा करे।' इस पर देवताओ ने राजा नल को अपना कार्य करने के लिये बाध्य किया। तब वे उनका सदेश ले दमयंती के पास राजमहल मे गये और उसे सारा वृतान्त कह सुनाया। दमयंती ने श्रद्धा से देवताओ को प्रणाम कर राजा नल से विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

राजा नल ने कहा—'कल्याणी! लोकपालों के रहते हुए तुम एक मनुष्य को पति क्यो बनाना चाहती हो? मै तो उनके चरणो की रज के समान भी नही हूँ। देवताओ के विरुद्ध आचरण करने वाला नष्ट हो जाता है। उनके पास अपार शक्ति, अक्षय भोग और सुख के साधन हैं। उन्हे ही तुमको पति बनाना चाहिए।'

दमयंती बोली—'पृथ्वीपते! मैंने देवताओ को नमस्कार कर आपको अपना पति चुना है, अतः मुझे अधिक कष्ट न दे।'

राजा नल ने कहा—'भद्रे! मैंने देवताओ मे दूत का कार्य करने की प्रतिज्ञा की है, अत अपने स्वार्थ की बात तुमसे नही कह सकता। तुम ऐसा प्रयत्न करो, जिसमे मेरे धर्म और स्वार्थ की सिद्धि हो।'

दमयती बोली—'नरेश्वर ! मैं वही कार्य करूँगी, जिससे आप दोप के भागी न हो ।' कुमारी दमयती से विदा ले राजा नल देवताओं के निकट गया और उन्हे सारा वृतान्त कह सुनाया । अनन्तर उत्तम अवसर पर राजा भीम ने निमन्त्रित राजाओ को स्वयवर-गृह मे बुलाया । राजा नल भी चारों देवताओ के साथ स्वयवर-गृह मे सुन्दर आसन पर बैठ गये । देवताओ की आकृति राजा नल के सदृश थी । पाँचो का एक रूप देख विदर्भ कुमारी वास्तविक राजा नल को न पहचान सकी, इसलिए उन देवताओ की आराधना आरम्भ की । कुमारी दमयती की पूजा से प्रसन्न हो उन्होने वास्तविक राजा नल को उसे दिखा दिया । दमयती ने धर्म के अनुसार राजा नल का वरण किया ।

देवताओ ने प्रसन्न हो राजा नल को वरदान दिये ।

देवराज इन्द्र ने आशीर्वाद देते हुए कहा—'मैं तुम्हे यज्ञ मे प्रत्यक्ष दर्शन दूँगा और सद्गति प्रदान करूँगा ।'

अग्निदेव वोले—'जहाँ तुम चाहोगे, वही मैं प्रकट हो जाऊँगा ।'

धर्मराज ने कहा—'तुम्हारी धर्म मे निष्ठा वनी रहेगी और तुम्हारे वनाये हुए भोजन में उत्तम स्वाद उपलब्ध होगा ।'

वरुण ने कहा—'तुम्हारी इच्छानुसार जल प्रकट हो जायेगा । तुम्हारी पुष्प मालाएं उत्तम सुगध से सम्पन्न रहेगी ।' वरदान देकर देवता स्वर्ग सिधारे और निमन्त्रित राजा भी अपने-अपने स्थानो पर चले गये । तत्पश्चात् राजा नल विदर्भ नरेश भीम की आज्ञा ले, सती दमयती के साथ अपनी राजधानी गये और प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करने लगे । उन्होने अनेक यज्ञो का अनुष्ठान किया । सती दमयती ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया ।

कुछ समय वाद कलि ने राजा के मन को भ्रमित कर उसे अपने भाई पुष्कर से जूआ खेलने को प्रेरित किया । रानी दमयती ने शोक से भरे हुए नेत्रो द्वारा राजा नल को जूआ खेलने से रोका, किन्तु उसने उसकी वात न मानी । सती दमयती बुद्धि-मती थी । उसने विचारा कि राजा अपना सर्वस्व खो बैठेंगे, अत

अपने दोनों बालकों को कुण्डिनपुर पिता भीम के पास भेज दिया। सती दमयंती की पूर्व धारणा के अनुसार राजा नल का सारा धन जूए में उसके भाई पुष्कर ने जीत लिया। तदनन्तर अत्यन्त दु:खित हो राजा नल और सती दमयंती आभूषण उतार एक ही वस्त्र धारण कर राजभवन से निकले। नीच राजा पुष्कर ने नगर में घोषणा करवा दी कि जो राजा नल के साथ अच्छा व्यवहार करेगा, वह मेरे द्वारा मारा जायेगा। इस भय से नगरवासियों ने नल को आश्रय तक नही दिया। भूख-प्यास से पीडित वे एक जंगल में पहुँचे, जहाँ कुछ पक्षी बैठे थे। उन्होने अपने आधे वस्त्र से इन पक्षियों को ढक दिया। किन्तु वे पक्षी उस वस्त्र को लेकर उड गये।

नल बोले—'सतीसाध्वी रानी! मैं बडी विषम परिस्थितियो में पड गया हूँ। मै क्षुधा-पीड़ित हो जीवन-निर्वाह के लिए अन्न तक भी प्राप्त नही कर सकता। मेरे वस्त्र भी पक्षी लिए जा रहे है। यह विदर्भ-देश का मार्ग है, जिस पर महर्षियों के बहुत से आश्रम है और प्रचुर मात्रा में फल-फूल उपलब्ध हो सकते है।' राजा नल ने एकाग्रचित्त हो बडी आतुरता के साथ दमयती से उपर्युक्त बाते बारंबार कही।

दमयंती अत्यन्त दु:ख से पीडित होकर बोली—'महाराज! आपके मानसिक सकल्पों पर जब मैं विचार करती हूँ तब मेरे अंग शिथिल हो जाते है। आपका राज्य छिन गया, शरीर पर वस्त्र तक नही रहा और भूख तथा परिश्रम से आप कष्ट भी पा रहे है। ऐसी अवस्था में इस निर्जन वन मे आपको असहाय छोडकर मैं कैसे जा सकती हूँ। जब आप अपनी शोचनीय दशा देख अत्यन्त दु:खी हो जाते है, उस समय मैं सान्त्वना द्वारा आपके सताप का निवारण करती हूँ। दु:खो की शान्ति के लिए पत्नी के समान मित्र अथवा दूसरी औषध कोई नहीं है।'

नल ने कहा—'प्रिये! मैं अपने शरीर का त्याग कर सकता हूँ, किन्तु तुम्हे नही। तुम मेरे वचनों पर शंका क्यों करती हो?

दमयती बोली—'महाराज! आप मुझे त्यागना नही चाहते, किन्तु घोर विपत्ति ने आपके चित्त को भ्रमित कर दिया है। यदि आपकी सम्मति हो, तो हम दोनो विदर्भ-देश चले।

नल ने कहा—'साध्वी! इसमें संदेह नही कि राजा विदर्भ जैसे तुम्हारे पिता हैं, वैसे ही मेरे भी, किन्तु आपत्ति के समय मैं वहाँ नही जाऊँगा।'

राज्य का अपहरण, सुहृदो द्वारा त्याग और वन के क्लेशो से वे चिंतित हो रहे थे। उनके मन मे विचार था कि सती दमयती मुझ मे अनुरक्त होकर अत्यन्त दु ख उठा रही है। यदि यह मुझसे अलग हो जाये तो सम्भव है, स्वजनो के पास चली जाये। मेरे साथ रहकर तो यह मेरी भक्त और पतिव्रता नारी केवल दु ख ही भोगेगी। इस प्रकार विचार करते-करते राजा नल ने सोती हुई देवी दमयती का परित्याग कर दिया। मार्ग मे चलते समय उन्होने मन ही मन दमयती को अनेक आशीर्वाद दिये। राजा नल के चले जाने पर जब दमयंती की निद्रा टूटी, तव वह अपने पति को अपने पास न देख दु.ख से व्याकुल हो, दिलाप करने लगी।

उसने मन-ही-मन कहा—'महाराज! आप तो धर्मज्ञ एवं सत्यवादी हैं, तब न छोडने की प्रतिज्ञा कर मुझे जगल मे सोई हुई को छोड़कर क्यो चले गये? मैं तो आपकी सेवा मे तत्पर रहने वाली अनुरक्त भार्या हूँ और मुझसे आपके प्रति कोई अपराध भी नही हुआ है, अत. मुझे क्यो त्यागा? मुझे तो दुःख इसलिए है कि आप सोचनीय दशा में पड जायेंगे। जब सायकाल परिश्रम से थके, भूखे-प्यासे आकर आप विश्राम करेगे, उस समय मुझे अपने पास न पाकर आप दु खित हो जायेगे। इस प्रकार विलाप करती हुई दमयती अपने पति को जगल में खोज रही थी। वहाँ से थोडी ही दूर पर एक विशालकाय अजगर बैठा था। उस अजगर ने दमयंती पर आक्रमण किया। दमयंती का करुणक्रदन सुन एक व्याध ने अजगर को मार डाला। व्याध के दूषित मनो-

भाव को सती दमयंती समझ गयी, अतः वह रोषाग्नि से प्रज्वलित हो उठी। उसने व्याध को शाप दिया, जिसके प्रभाव से वह प्राण-शून्य हो पृथ्वी पर गिर पडा। तदनन्तर पति के विरह-रूपी सकट से सतप्त हो सती दमयती तपस्वी-महात्माओं के आश्रम में पहुँची। महात्माओं ने सती दमयंती का स्वागत-सत्कार किया। दमयंती ने अपना परिचय और विपत्ति मे पडने का कारण उन महात्माओं को सुनाया।

तपस्वी बोले—'भद्रे! तुम्हारा भविष्य परम कल्याणमय है। तुम्हें शीघ्र ही निषध-नरेश नल का दर्शन होगा। तुम्हारे पति दु.खों से मुक्त हो पुनः राज्य प्राप्त करेंगे।' उसी समय व्यापारियों का दल वहाँ आया। पतिदेव के दर्शन के लिए उत्सुक दमयती उस दल के साथ यात्रा करने लगी। रात्रि में जहाँ व्यापारी सोये हुए थे, वहाँ जगली हाथियों ने उन पर आक्रमण किया, जिससे वे प्रायः नष्ट हो गये। सती दमयती ने भी यह महान सहार अपनी आँखों से देखा। यात्रियों ने दमयंती पर उस भयकर सहार का दोष लगाया, और उसे मारने को उद्यत हो गये। सती दमयती उनसे भयभीत हो घनघोर जगल की ओर भागी, अत. उन्होने उसका पीछा करना छोड दिया। इस घटना पर सती दमयती मन-ही-मन शोक करने लगी। उसने निश्चय किया कि यह मेरे पूर्व-जन्म के पापों का फल है, जो मुझे अत्यन्त कष्ट पहुँचा रहा है। जिसकी मृत्यु नही आती, वह इच्छा होते हुए भी मर नही सकता। मनुष्य को सुख-दु.ख देने वाला विधाता ही है। दु:ख से आतुर हो पतिव्रता दमयती ने अनेक प्रकार से विलाप किया। तदनन्तर कुछ विद्वान ब्राह्मणो के साथ पुन' यात्रा करती हुई वह सत्यदर्शी चेदिराज सुबाहु की राजधानी मे पहुँची। राजमाता ने दीन-दुखिया दमयंती को पथ पर चलते देखा और अपने पास बुला उसका परिचय पूछा। भीमकुमारी दमयती ने नेत्र-भरे आँसुओ से अपनी करुण कहानी उन्हें सुनाई।

उसकी व्यथा सुन राजमाता स्वय भी दु.खी होकर बोली--

'कल्याणी! तुम मेरे पास रहो। मेरे सेवक तुम्हारे पति की खोज करेंगे।'

दमयंती बोली—'माता! मैं जूठा नहीं खाऊँगी, किसी के पैर नहीं धोऊँगी और किसी पुरुष से वार्तालाप नहीं करूँगी। यदि कोई मेरे साथ दुर्व्यवहार करेगा, तो उसे आप दण्ड देंगी। मैं अपने पति की खोज करने वाले ब्राह्मणों से ही मिलूंगी।' राजमाता ने प्रसन्नचित्त हो, उसकी सब बातें स्वीकार कर ली। राजकुमारी सुनंदा दमयंती को अपने भवन में ले गयी और वह वहाँ सुख-पूर्वक रहने लगी।

सती दमयंती को छोड जब राजा नल वन में आगे बढ़े, तब उन्होंने महान दावानल प्रज्वलित होते देखा। उन्होंने एक प्राणी का आर्त स्वर सुना, जो दावानल से अपने बचाव के लिए उन्हें पुकार रहा था। राजा नल ने जलते हुए वन के भीतर प्रवेश किया। उन्होंने वहाँ एक कर्कोट नामक नागराज को देखा, जिसने उनसे अपने को अग्नि से बचाने की याचना की। राजा नल ने उस नाग को सुरक्षित स्थान पर रख दिया, किन्तु उसने उन्हें डस लिया और कहा—'मेरे विष के प्रभाव से आपका स्वरूप बदल जायेगा, अत प्रजा आपको पहचान नहीं सकेगी। मेरे प्रभाव से आपको जन्तुओं और शत्रुओं से कभी भय नहीं होगा। आपको विष-जनित पीड़ा नहीं होगी और आप युद्ध में सदा विजय प्राप्त करेंगे। अब आप अपने को बाहुक नामक सूत बताते हुए राजा ऋतुपर्ण के यहाँ जाइये, जो द्यूत-विद्या में निपुण है। उसकी सहायता से आप सती दमयंती और अपने बालकों को पुन प्राप्त कर लेंगे। मैं आपको एक वस्त्र देता हूँ, उससे आच्छादित होने पर आप अपना पूर्व रूप प्राप्त कर लेंगे।

निषध-नरेश नल राजा ऋतुपर्ण के नगर में गये और बोले—'राजन्! मैं अश्वों को हाँकने की विद्या और स्वादिष्ट भोजन बनाना जानता हूँ।' यह सुन ऋतुपर्ण ने राजा नल को

अपना सारथी बना लिया। राजा ऋतुपर्ण की आज्ञा से वार्ष्णेय और जीवल दो सारथी नल की सेवा करने लगे। राजा नल दमयंती का निरंतर चिंतन करते थे और मन-ही-मन कहते थे—भूख-प्यास से पीडित, मंदबुद्धि पुरुष का स्मरण करती हुई, वह तपस्विनी अब किसकी शरण में रहती होगी?

एक दिन रात्रि के समय जब राजा इस प्रकार धीरे-धीरे एकालाप कर रहे थे, तब जीवल ने उनसे पूछा—'वाहुक! तुम प्रतिदिन किस स्त्री के लिए शोक करते हो?'

राजा नल बोले—'जीवल! किसी अल्प-बुद्धि पुरुष के एक अत्यन्त आदरणीया स्त्री थी। किसी विशेष प्रयोजन से विवश हो वह भाग्यहीन पुरुष अपनी पत्नी से बिछुड गया। रात्रि मे अपनी प्रिया का स्मरण कर वह उपर्युक्त वचन कहता रहता और निरंतर दुःख भोगता। वह नारी इतनी पतिव्रता थी कि संकट काल में भी उस पुरुष के पीछे-पीछे वन में चली गयी, किन्तु उसने उसे जंगल मे ही त्याग दिया। यदि वह जीवित है, तो उसके दिन बड़े कष्ट से बीतते होंगे। वह अकेली थी और मार्ग का भी उसे ज्ञान नही था। यदि वह जीवित भी हो, तो भी उसका जीवित रहना कठिन है।'

विदर्भराज भीम ने ब्राह्मणो को नल और दमयंती का पता लगाने यत्र-तत्र भेजा, किन्तु उन्हे उनका कही पता नही चला। एक दिन सुदेव नामक ब्राह्मण ने चेदिराज के महल मे विदर्भ-कुमारी दमयंती को देखा और उसके समीप जाकर बोले—'राजकुमारी। मैं तुम्हारे भाई का प्रिय सखा सुदेव हूँ। महाराजा भीम की आज्ञा से तुम्हे खोजने यहाँ आया हूँ। तुम्हारे माता-पिता, भाई और दोनो बच्चे कुण्डिनपुर मे सकुशल हैं। तुम्हारे बंधु-बाधव तुम्हारी ही चिन्ता मे मृतक तुल्य हो रहे हैं। तुम्हारी और राजा नल की खोज करने अनेक ब्राह्मण पृथ्वी पर घूम रहे हैं।'

द्विज श्रेष्ठ सुदेव को सहसा आया देख दमयंती फूट-फूट कर

रोने लगी। यह देख कुमारी सुनदा शोक मे व्याकुल हो उठी। तदनन्तर राजमाता ने द्विज-श्रेष्ठ सुदेव से दमयती का परिचय पूछा, और वे उसका यथार्थ वृत्तान्त बताने लगे। 'जैसे छिपी हुई अग्नि अपनी उष्णता से पहचान ली जाती है, उसी प्रकार यद्यपि देवी दमयती मलिन शरीर से युक्त है, तो भी इसके ललाटवर्ती तिल के चिह्न से ही मैंने इन्हे पहचान लिया।' श्रेष्ठ-ब्राह्मण के वचन सुन राजमाता और सुनदा रोने लगी और उन्होने दमयती को हृदय से लगाया।

राजमाता बोली—'बेटी! तुम मेरी बहन की पुत्री हो। तुम्हारे लिए जैसा पिता का घर है, वैसा ही मेरा। यह सारा ऐश्वर्य जैसा मेरा है, उसी प्रकार तुम्हारा।'

यह सुन दमयती ने प्रसन्न-मन से अपनी मौसी को प्रणाम किया, और अपने पिता के पास जाने की आज्ञा माँगी। मौसी से विदा हो दमयती विदर्भ-देश की राजधानी मे पहुँची। दमयती के आगमन से उसके माता-पिता आदि बहुत प्रसन्न हुए और सबने उसका स्वागत-सत्कार किया। अपने बच्चो को सकुशल देख यशस्विनी देवी दमयती प्रसन्न हो देवता और ब्राह्मणो का नित्य पूजन करने लगी।

उसने माता से कहा—'यदि मुझे जीवित देखना चाहती हो, तो मेरे पतिदेव का शीघ्र पता चलाओ।' राजा भीम ने ब्राह्मणो को पुन सब दिशाओ मे राजा नल को ढूँढने भेजा। दमयती ने ब्राह्मणो से कहा—तुम लोग जहाँ भी जाओ, इस वचन को कहते रहो—'ओ जुआरी प्रियतम! तुम वन मे सोयी हुई प्रिय पत्नी को छोड कहाँ चले गये? तुमने जिस दशा मे उसे छोडा था, उसी दशा मे वह आज भी है और विरहाग्नि मे जलती हुई, तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। वह शोक-सागर मे डूबी हुई है, अत दर्शन देकर कृपा करो।' जब आपको उपर्युक्त कथन का कोई सतोषजनक उत्तर मिले, तब मुझे सूचित करे। किन्तु यह न कहे कि मैंने आप लोगो को उनके पास भेजा है।

उत्तर देने वाला पुरुष धनी हो या निर्धन, समर्थ हो या असमर्थ, उसकी बात जानने की चेष्टा करियेगा। देवी दमयती के आदेशानुसार ब्राह्मण राजा नल को ढूँढने निकले।

दीर्घकाल के पश्चात पर्णादिक नामक ब्राह्मण दमयती के पास आया और बोला—'देवी! मै निषधराज नल को ढूँढता हुआ अयोध्या में राजा ऋतुपर्ण के दरबार में गया। मैने तुम्हारे बताए हुए वचन सबको सुनाये, किन्तु किसी ने भी मुझसे इन वाक्यो का स्पष्टीकरण नही कराया। जब मैं राजसभा से लौट रहा था, तब बाहुक नामक एक पुरुष, जो राजा ऋतुपर्ण का सारथी है, ने एकान्त में आकर तुम्हारी बातो के प्रति जिज्ञासा की। वह घोडों को शीघ्र हाँकने और स्वादिष्ट भोजन बनाने मे कुशल है, किन्तु कुरूप है।

'उसने मुझसे कुशल समाचार पूछकर अनेक वार रोदन किया और कहने लगा—उत्तम कुल की स्त्रियाँ वडे भारी सकट में पड कर भी स्वय अपनी रक्षा करती हैं, अत. सत्य और स्वर्ग पर उन्हे विजय मिल जाती है। श्रेष्ठ नारियाँ अपने पतियो से परित्यक्त होने पर भी क्रोध नही करती। वे शील और सदाचार के कवच से आवृत्त हो प्राणो को धारण करती है। उस पुरुष ने वड़े सकटों मे पड़कर जीविका के साधनो मे वचित होने पर ही पत्नी का परित्याग किया है। वह अनेक प्रकार की मानसिक चिन्ताओ से दग्ध हो रहा था। श्यामा को उस पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

यह सुनकर दमयती ने ब्राह्मण सुदेव को शीघ्रता से राजा ऋतुपर्ण के पास अयोध्या जाने का आग्रह किया। द्विज अयोध्या गये और राजा ऋतुपर्ण से बोले—'राजन्! भीमकुमारी दमयन्ती पुन स्वयवर करेगी। कल ही स्वयवर होने वाला है। यदि आपका वहाँ पहुँचना सम्भव हो तो शीघ्र जाइये।'

राजा ऋतुपर्ण ने मधुरवाणी से कहा—'अश्वविद्या में निपुण बाहुक! मैं दमयंती के स्वयवर में सम्मिलित होने के लिए एक

ही दिन मे विदर्भ देश की राजधानी पहुँचना चाहता हूँ ।' यह कथन सुन राजा नल महान दुःख-सागर मे डूब गये। वे सोचने लगे—क्या दमयती द्वितीय स्वयवर कर सकती है ? क्या उसने मुझे प्राप्त करने के लिए यह उपाय सोचा है ? या मुझ नीच और पाप-बुद्धि ने उसे धोखा दिया, इसलिए वह ऐसा निष्ठुर कार्य करने को उद्यत है ? क्या मेरे वियोग से उसका स्नेह मुझ पर कम हो गया है ? ससार मे स्त्रियो के स्वभाव की चचलता प्रसिद्ध है। मेरा अपराध भी भयकर है, अत. वह तपस्विनी अनुचित कार्य भी कर सकती है। उसने निश्चय किया कि द्विज सुदेव के कथन मे कितना सत्य है या असत्य, इसकी परीक्षा करने और अपने लिए भी, राजा ऋतुपर्ण की कामना पूर्ण करेगा। अश्व-विद्या मे निपुण राजा नल ने उत्तम घोडो को रथ मे जोता और राजा ऋतुपर्ण शीघ्र उस रथ पर आरूढ हुए। वाहुक ने घोडो को तीव्र गति से हाँका। वायु-वेग के समान जव रथ चलने लगा तव राजा ऋतुपर्ण विस्मित होकर सोचने लगा—क्या बाहुक इद्र का सारथी मातलि है, या आचार्य शालिहोत्र ? हो न हो, यह राजा नल है, क्योकि राजा नल जो विद्या जानते हैं, वह सव बाहुक मे है। बाहुक महापराक्रमी नल की अवस्था का है। बहुत से महात्मा प्रच्छन्न रूप धारण कर शास्त्रोक्त नियमो से युक्त हो, इस पृथ्वी पर विचरते रहते है। अत यह वाहुक सर्वगुण सम्पन्न राजा नल ही है। जव रथ तीव्र गति से चल रहा था, तव राजा ऋतुपर्ण का एक वस्त्र उड़ गया। उसने वाहुक को रथ रोककर वह वस्त्र लाने को कहा, किन्तु उसने उत्तर दिया कि महाराज, आपका वस्त्र इस स्थान से बहुत दूर गिरा है, अत वह अव लाया नही जा सकता। राजा ने वाहुक से प्रश्न किया—'विज्ञ ! क्या तुम इस वृक्ष मे कितने पत्ते और फल है, वता सकते हो ? मेरी समझ मे इसकी डालियो पर दो हजार फल है।'

वाहुक ने रथ को खडा कर कहा—'नरेश ! आपने जो सख्या

कही है वह अनुमान पर आधारित है। मैं इन डालियों को काट उनके फलों की गणना कर दूँगा।' राजा बोला—'बाहुक! यह समय विलम्ब करने का नही है। तुम मेरे कार्य में विघ्न न डालो। किन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोडा।' बाहुक ने उस डाली को काटा। फलों की गणना करने पर जब फल राजा के कथनानुसार निकले, तब उसने विस्मित होकर पूछा—'राजन्! आपकी गणित-विद्या की शक्ति अद्भुत है, मैं इसे सीखना चाहता हूँ।'

राजा बोले—'मुझे द्यूत-विद्या का मर्मज्ञ और गणित मे अत्यन्त निपुण समझो।' बाहुक की प्रार्थना पर राजा ने गणित और द्यूत विद्या उसे सिखाई। तदनन्तर राजा नल ने प्रसन्न चित्त से पुन: घोडो को हाँकना आरम्भ कर दिया। सायकाल के पूर्व ही सत्य पराक्रमी राजा ऋतुपर्ण विदर्भ-राज्य की राजधानी कुण्डिनपुर में जा पहुँचे। दर्शकों ने राजा भीम को उनके आगमन की सूचना दो। रथ के चक्को की घर्घराहट सुन सती दमयती बडी प्रसन्न हुई। उसे विश्वास था कि राजा नल ही पधारे है। उसने निश्चय किया कि यदि आज मै राजा नल को न देखूंगी, तो अपने प्राण विसर्जित कर दूंगी। विदर्भ-नरेश के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक आदर-सत्कार पा राजा ऋतुपर्ण को बडी प्रसन्नता हुई और उन्होने विश्राम के लिये भवन मे प्रवेश किया। वाहुक भी रथ को रथ-शाला मे ले गया और अश्वों की परिचर्या करने लगा। सती दमयती राजा ऋतुपर्ण और वाहुक को देख बडी चिन्ता मे पड गयी। उसे आगतुकों मे राजा नल नही दिखाई दिया, अत उसने चितित हो अपनी दासी केशिनी को वाहुक के पास वास्तविकता का पता लगाने भेजा। केशिनी वडी सावधानी से वाहुक के साथ वार्तालाप करने लगी।

केशिनी बोली—'विदर्भकुमारी दमयती जानना चाहती है कि आप लोगो ने अयोध्या मे कब प्रस्थान किया और यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?'

बाहुक बोला—'महात्मा कोशल-नरेश ने एक ब्राह्मण से सुना

है कि कल दमयती का द्वितीय स्वयंवर होने वाला है, अत. उन्होंने शीघ्रतापूर्वक कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान किया। इस यात्रा में मैंने ही उनका सारथ्य-कार्य किया है।'

केशिनी बोली—'क्या आप जानते है, राजा नल कहाँ है ?'

वाहुक बोले—'भद्रे ! राजा नल का पहला स्वरूप अदृश्य हो गया है। वे पृथ्वी पर गुप्त रूप मे विचरते है, अत कोई भी पुरुष उन्हे पहचान नही सकता। परमात्मा ही राजा नल को जानते है, दूसरा कोई नही। वे अपने लक्षणो और चिह्नो को दूसरे के सामने प्रकट नही करते।'

केशिनी बोली—'महामते! विदर्भ-कुमारी दमयती अपने पति को पाने के लिए दिन-रात शोक मे डूबी हुई रोती रहती है, अत' दमयती को प्रिय लगने वाली कोई बात कहिये। केशिनी के ऐसा कहने पर राजा नल के हृदय मे वडी वेदना हुई। उनकी दोनों आँखो से आँसुओ की धारा वहने लगी और वे अपने दु ख के वेग को रोक न सके। यह देख, केशिनी ने सारा वृत्तान्त सती दमयती को वता दिया और वाहुक के पास लौटकर चुपचाप वैठ गयी। वाहुक ने केशिनी से भोजन तैयार के लिए जल एव अग्नि माँगी, किन्तु केशिनी ने उनकी प्रार्थना पर कुछ भी ध्यान नही दिया। केशिनी के देखते-देखते खाली घडे जल मे भर गये, और अग्नि प्रज्वलित हो उठी। महाराज ऋतुपर्ण की फूलो की माला जो विकृत हो गयी थी, पुन उनके स्पर्श मात्र से विकसित और सुगधित हो गयी। दमयती ने पुण्य-कीर्ति महाराजा नल की-सी वाहुक की सारी चेष्टाओ को सुनकर निश्चय किया कि महाराजा नल ही वाहुक के रूप मे है। यह सोच वह दु ख के सागर मे डूवकर विलाप करने लगी। उसने केशिनी को अपने दोनो वच्चे देकर पुन वाहुक के पास भेजा। राजा नल ने इंद्रसेन और इद्रसेना को पहचान लिया और शीघ्रता से उन्हे अपनी छाती से लगाकर अत्यन्त दु ख मग्न हो रोने लगे।

वाहुक वोले—'भद्रे! ये दोनो बालक मेरे पुत्र और पुत्री के समान

हैं, इसलिए इन्हें देख सहसा मेरे नेत्रों से आँसू बहने लगे।' परम बुद्धिमान राजा नल के सम्पूर्ण आचरण को देख केशिनी ने आकर सारी बाते दमयंती को बता दी। पिता और माता की आज्ञा ले दमयती ने नल को राजभवन में जहाँ वह स्वयं रहती थी, बुलवाया। दमयती को सहसा देखकर राजा नल की आखों से दु:ख की अश्रुधारा बहने लगी। नल को उस अवस्था मे देख दु:खी दमयंती तीव्र शोक से व्याकुल हो गई।

दमयती बोली—'बाहुक! क्या तुमने उन धर्मज्ञपुरुष कोदेखा जो अपनी सोयी हुई निर्दोष पत्नी को वन मे अकेली छोड़कर चले गये थे? स्वयवर के समय देवताओ को त्याग कर मैंने उनका वरण किया था। मै उनकी अनुगत-भक्त, निरंतर उन्हे चाहने वाली और पुत्रवती हूँ, तो भी उन्होने मुझे क्यों त्यागा? मेरे साथ जीवन भर रहने की उन्होने विवाह के समय प्रतिज्ञा की थी वह सत्य उनका अव कहाँ चला गया?' जैसे-जैसे दमयती सब घटित बाते कह रही थी, वैसे-वैसे नल के नेत्रो से शोक-जनित आँसुओ की अटूट धारा बहती जा रही थी।

राजा नल वोले—'कल्याणी! मेरा राज्य नष्ट हो गया और तुम्हे त्याग दिया, यह सव कलियुग का ही प्रभाव था। अव तुम्हारी तपस्या से पापी कलियुग मुझे छोड़ कर चला गया है। तुम्हे प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं और राजा ऋतपर्ण यहां आये है।'

दमयती वोली—'निषध-नरेश! आपको मेरे चरित्र पर संदेह नही करना चाहिए। आपका पता लगाने के लिए ही मैंने ब्राह्मणो को सब दिशाओ में भेजा था। वे सभी स्थानो पर हमारी दुःखपूर्ण गाथा गाते थे। इसी योजना के अनुसार पर्णादक नामक विद्वान ब्राह्मण अयोध्यापुरी मे राजा ऋतपर्ण के पास गया और वहां से आकर मुझे आपकी सूचना दी। मैंने स्वयवर का आडंबर रचकर राजा ऋतुपर्ण को यहाँ बुलवाया है। मेरा यह निश्चय था कि अयोध्या नगरी यहाँ से सौ योजन दूर है। एक दिन में इतनी दूरी को पार करने मे आपके अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष समर्थ नहीं

है। मैंने आपके वियोग मे सदैव सदाचार का पालन किया है, इसके लिए मैं सत्य और आपके चरणो की शपथ खाती हूँ। गतिशील वायु और सूर्य देव सवके अत.करण मे स्थित रहकर प्राणियो के शुभाशुभ कर्म देखते रहते है। यदि मैंने पाप किया है, तो वे मेरे प्राण हर ले।'

राजा नल चौथे वर्ष अपनी प्रिय पत्नी से मिलकर अत्यन्त आनन्द मे निमग्न हो गये। उन्होने नागराज कर्कोट द्वारा दिया हुआ वस्त्र धारण किया, जिसके प्रभाव से उनका शरीर पूर्ववत सुन्दर हो गया। वे दमयती के साथ राजा भीम से मिले और उनकी पिता की भॉति वदना की। राजा नल ने राजा ऋतुपर्ण का अभिनन्दन करने के पश्चात देवताओ की आराधना की। राजा नल को पुन द्यूत-विद्या का ज्ञान समझाकर राजा ऋतुपर्ण अपनी राजधानी चले गये। कुछ समय तक कुण्डिनपुर रहकर राजा भीम की आज्ञा ले निपध-नरेश नल अपनी राजधानी मे गये। उन्होने जूए के खेल द्वारा अपना राज्य पुष्कर से पुन. जीत लिया।

उन्होने पुष्कर से कहा—'मैं तुम्हारे अपराधो को क्षमा करता हूँ, और तुम्हारे भाग का धन तुम्हे लौटा देता हूँ। तूम सुखपूर्वक जीवन-निर्वाह करो। तुम पर मेरा प्रेम पूर्ववत् वना रहेगा, क्योकि तुम मेरे भाई हो। इस प्रकार पराक्रमी राजा नल ने अपने भाई पुष्कर को सान्त्वना दे हृदय से लगाया। राजा पुष्कर उन्हे और सती दमयती को प्रणाम कर अपनी राजधानी को चला गया। राजा नल ने ब्राह्मणो का यथोचित सत्कार किया और देवताओ की यज्ञो द्वारा आराधना की।

राजा नल का आख्यान समाप्त होने पर वृहदश्व मुनि ने कहा—'युधिष्ठिर! राजा नल ने तो अकेले ही महान दु ख सहन किया था और उन्हें पुन अभ्युदय की प्राप्ति हुई। तुम तो अपने सभी भाइयो और सती द्रौपदी के साथ वन मे भ्रमण करते हुए धर्म का चिन्तन करते हो, अतः तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है।

वीर अर्जुन जो तपस्या करने गये है, उनके लिए तुम्हे शोक नही करना चाहिए ।'

## राजा सगर

कुछ समय पश्चात महा तेजस्वी महर्षि लोमश पाण्डवो के पास आये। उन्हे देखते ही पाण्डव और अन्य लोग उनके स्वागतार्थ खड़े हो गये। धर्मनन्दन युधिष्ठिर ने उनका यथा-योग्य पूजन कर वहाँ आने का प्रयोजन पूछा।

महर्षि लोमश ने कहा—'कुन्तीनन्दन! मैने एक दिन तुम्हारे भ्राता सव्यसाची अर्जुन को इन्द्र के साथ बैठे देखा। मुझे अर्जुन ने तुम लोगो के पास जाने का अनुरोध कर बताया कि उसने भगवान शकर से पाशुपत, देवराज इन्द्र से दिव्यास्त्र और विश्वावसु के पुत्र से नृत्य, वाद्य और गान की शिक्षा प्राप्त कर ली है। वे शीघ्र ही तुम लोगो के पास आयेगे। भरतनन्दन! तुम लोग अब श्रद्धापूर्वक सरल-चित्त हो तीर्थयात्रा करने जाओ और तपस्या मे अपने मन को लगाओ। जिसके मन और इन्द्रिया वश मे नही है, जो पापात्मा कुटिल है, जिसका मन धर्म मे नही लगता, जो सत्य-प्रतिज्ञ नही है, उसका सग त्याग दो। अधर्म द्वारा मनुष्य सुख, सम्पत्ति और शत्रुओ पर विजय पा सकता है, किन्तु अत मे नष्ट हो जाता है।'

मार्गशीर्ष की पूर्णिमा व्यतीत होने पर पुष्य-नक्षत्र मे पाण्डवो ने तीर्थयात्रा प्रारम्भ की। प्रथम वे नैमिषारण्य मे गये, अनन्तर अनेक तीर्थो मे होते हुए प्रयाग पहुँचे। उन्होने गगा-यमुना सगम मे स्नान किया और वहां के ऋषि, मुनि और ब्राह्मणो की पूजा की। इसके पश्चात् उन्होने गयातीर्थ के ब्रह्म-सरोवर मे स्नान किया और अगस्त्य ऋषि के आश्रम मे गये। महात्मा अगस्त्य ने लोपामुद्रा से विवाह किया था, जिससे उन्हे तेजस्वी दृढस्यु नामक पुत्र हुआ। बालक दृढस्यु बाल्यकाल

मे ही तपस्या मे संलग्न रहने लगा। एक समय महात्मा अगस्त्य दक्षिण दिशा को जा रहे थे। विन्ध्याचल पर्वत ने उन्हें प्रणाम किया।

उन्होने पर्वतराज से कहा—'जबतक मै न लौटूं तबतक इसी अवस्था मे रहना।' तब से पर्वतराज विन्ध्याचल उनके आने की प्रतीक्षा करता हुआ उसी प्रकार लेटा हुआ है। किन्तु महात्मा अगस्त्य उस मार्ग से नही लौटे। एक समय देवता महामुनि अगस्त्य के पास गये। उन्होने उनसे निवेदन किया, 'देवद्रोही कालेय नामक दानव समुद्र मे निवास करता है। यदि समुद्र सुखा दिया जाये, तो उस दानव को मारने में हम समर्थ हो जायेंगे।' यह सुन मित्रावरुण-नन्दन भगवान अगस्त्य समुद्र का जल पोने लगे। यह देख दानव कालेय भयभीत हो देवताओ से युद्ध करने लगा, किन्तु कुछ ही समय मे वह उनके द्वारा मारा गया।

धौम्य मुनि ने कहा—'राजन्! इक्ष्वाकु वंश मे सगर नाम से रूप, धैर्य और वल से सम्पन्न एक राजा था। उसके कोई पुत्र न था। उसके दो पत्नियाँ थी। राजा सगर अपनी पत्नियो के साथ पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से तपस्या करने लगा। उन्होने भगवान त्र्यम्बक को प्रसन्न कर लिया। भगवान शिव की कृपा से उनके पुत्र उत्पन्न हुए। पराक्रमी राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ करने की दीक्षा ली। उनका पुत्रो द्वारा सुरक्षित यज्ञ-अश्व समुद्र के तट पर चला गया। वहाँ महात्मा कपिल तपस्या कर रहे थे। काल मे प्रेरित सगर-पुत्रो ने भगवान कपिल को अश्व का चोर समझकर उनका अनादर कर दिया। इससे मुनि-श्रेष्ठ कपिल कुपित हो उठे। उन्होने अपने तेज से मन्द-बुद्धि सगर-पुत्रो को भस्म कर दिया।

जब राजा सगर को इस घटना की सूचना प्राप्त हुई, तब वे अपने पौत्र अशुमान से बोले—'तात! मेरे अमित तेजस्वी पुत्र महर्षि कपिल की क्रोधाग्नि से भस्म हो गये हैं, उनका उद्धार करने

और यज्ञ-अश्व लाने के हेतु तुम महात्मा कपिल के पास जाओ।' राजा सगर की आज्ञा शिरोधार्य कर अशुमान महामुनि के पास गया और उन्हे प्रसन्न कर लिया। महात्मा कपिल ने यज्ञ-अश्व जो समीप ही विचरता था, अंशुमान को बता दिया और कहा—'तुम्हारा पौत्र भगवान शकर को प्रसन्न कर जब पवित्र गगा को यहाँ ले आयेगा, तब उसके जल-स्पर्श से सगर-पुत्रो का उद्धार होगा।' पुण्यकीर्ति अशुमान अश्व को राजा सगर के पास ले गया और उन्होंने यज्ञ को पूर्ण किया। राजा सगर अपने पौत्र का राज्याभिषेक कर तपस्या हेतु वन चले गये। धर्मात्मा अशुमान भी अपने पितामह सगर के समान ही वसुधा का पालन करते थे। उनका पुत्र दिलीप विख्यात राजा हुआ। उसने गंगाजी का भूतल पर लाने के लिए कठोर तपस्या की, किन्तु असफल रहा। राजा दिलीप का पुत्र सत्य-परायण महात्मा भगीरथ हुआ। उसने भी अपने पितरो का उद्धार करने के लिए अनेक वर्षो तक घोर तपस्या की, जिससे प्रसन्न हो माता गगा ने उसे दर्शन दिया।

भगीरथ बोले—'माता! मेरे पितामह महात्मा सगर के पुत्र भगवान कपिल द्वारा भस्म हो गये है। जबतक तुम्हारे जल का उन्हे स्पर्श नही होगा, तबतक उनकी सद्गति नही होगी। महा-भागे! मैं उन्हीके के उद्धार के लिए तुमसे याचना करता हूँ।'

गगाने कहा—'राजन्! तुम्हारी प्रार्थनानुसार जब मैं स्वर्ग से पृथ्वी पर आऊँ, तब मेरे वेग को रोकने वाला कोई होना चाहिए। अत. तुम भगवान शिव को सतुष्ट करो, क्योकि वे ही मुझे अपने मस्तक पर धारण कर सकते हैं। भगवान शकर तुम्हारा मनो-रथ अवश्य पूर्ण करेंगे।' महाराजा भगीरथ भगवान शकर की आराधना करने लगे। उन्होंने उन्हें प्रसन्न कर लिया और वे गगा को अपने मस्तक पर धारण करने हेतु प्रसन्न हो गये। अब महाराजा भगीरथ ने एकाग्रचित्त हो पुण्य-सलिला गगाजी का चिन्तन किया। राजा की स्तुति से पावन गगा आकाश से [illegible]

लगी और भगवान शिव की जटाओ मे समा गई। भगवान शिव की जटा से पवित्र हो गगाजी पृथ्वी पर आई। राजा भगीरथ आगे-आगे चलते जा रहे थे और माता गगा उनके पीछे-पीछे चलती थी। राजा भगीरथ जहाँ महात्मा सगर के पुत्रो के शरीर भस्म हुए थे, वहाँ पहुँचे। पावन गगा ने राजा सगर के पुत्रो को पवित्र कर दिया, जिससे उनकी सद्गति हो गयी। महाराजा भगीरथ की कथा समाप्त होने पर पाण्डव पुन. तीर्थों की यात्रा करने लगे। वे कौशिकी नदी मे स्नान कर गगासागर तीर्थ पहुँचे और वहाँ स्नान कर उन्होने ऋषि-मुनियो की पूजा की। सागर-तटवर्ती तीर्थों से होकर वे प्रभास क्षेत्र पहुँचे। वहाँ पाण्डवो ने देवताओ और पितरो का तर्पण किया। भगवान श्रीकृष्ण और बलदेवजी यादवो सहित पाण्डवो से मिलने प्रभास क्षेत्र मे आये और उनकी दयनीय दशा देख दु खी हुए।

बलदेवजी बोले——'श्रीकृष्ण कभी-कभी आचरण मे लाया हुआ धर्म भी प्राणियो को अभ्युदय की ओर नही ले जाता, किया हुआ अधर्म भी उनको कष्ट नही पहुँचाता। तभी तो पाण्डव महान क्लेश भोगते रहे हैं और अधर्म-परायण दुर्योधन पृथ्वी का शासन कर रहा है। अत मद-बुद्धि वाले यही समझेंगे कि धर्म-परायण होने की अपेक्षा अधर्म करना ही श्रेष्ठ है। राजा धृत-राष्ट्र, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण तथा कृपाचार्य कौरव पुत्रो के आचरण का अनुमोदन करते है, इसलिए भरत-कुल के इन प्रधान व्यक्तियों को धिक्कार है। राजा धृतराष्ट्र को इह और परलोक में भी पाण्डवो को अनीतिपूर्वक कष्ट देने से कैसे सुख एवं शान्ति मिलेगी ? वेगशाली भीम भयकर बनवास के दु खो का स्मरण कर जब शत्रुओ पर आक्रमण करेगा, उस समय कौरवो का विनाश निश्चित ही हो जायेगा।'

सात्यकि बोले——'प्रभु बलरामजी ! अब विलाप करने का समय नही है। हमे आगे क्या करना है, उस पर विचार कीजिए। जो सहायक अपने विचारो द्वारा मित्रो के कष्टो को दूर करते है, वे

ही श्रेष्ठ हैं। यदुवंशी कौरवो को युद्ध में परास्त करने में समर्थ है।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'सात्यके! तुम्हारे वचन सार्थक हैं, किन्तु कुरु-श्रेष्ठ युधिष्ठिर हमारे द्वारा कौरवो से जीता हुआ राज्य ग्रहण नही करेंगे।'

युधिष्ठिर बोले—'सात्यके! तुमने जो हमारे हित के लिए वचन कहे है, वे उत्तम है। किन्तु मै सत्य की रक्षा को ही प्रधान मानता हूँ। जब भगवान श्रीकृष्ण युद्ध का अवसर समझेंगे, तभी तुम कौरवों पर पराक्रम प्रकट करना।' तत्पश्चात यादवो से विदा ले पाण्डव तीर्थों मे विचरने लगे। वे उत्तराखण्ड के पुण्यतीर्थ हृषिकेश मे पहुँचे, जहाँ गगाजी सात धाराओ से सुशोभित हो रही थी। पाण्डवो ने गगाजी की सप्तधाराओ में स्नान किया और वहाँ के निवासी ऋषि-मुनियो की यथाविधि पूजा की। तदनन्तर वे बदरिकाश्रम तीर्थ गये। वहाँ उन्होने नर-नारायण का स्थान देखा, जो देवता और देवर्षियो से पूजित है तथा अलकनन्दा गगा से सुशोभित था। अलकनन्दा मे स्नान कर उन्होने वहाँ के देवस्थानो का दर्शन और ऋषि-मुनियो का पूजन किया।

## भीमसेन को हनुमानजी का दर्शन

बदरिकाश्रम में प्रचण्ड वायु एक दिव्य सहस्त्र-दल मनोहर कमल को कही से उडा लाई। शुभलक्षणा द्रौपदी ने उसे देखा और उसी प्रकार के अनेक अत्यन्त सौगन्धिक पुष्प लाने के लिए भीमसेन से अनुरोध किया। महाबली भीम अपनी प्रिया की इच्छा पूर्ण करने सामने के शैल शिखर पर गन्तव्य स्थान की ओर अग्रसर हुए। जैसे पिता को पुत्र का स्पर्श सुखद जान पड़ता है, वैसे ही पर्वतीय शीतल वायु भीमसेन की सारी थकावट दूर करती थी। निरन्तर झरने वाले झरनो से वह पर्वत कण्ठ में मोतियो के हार-सा पहने सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उन पर्वतो पर भीमसेन ने एक रमणीय जलाशय मे स्नान किया और आगे बढे।

हनुमानजी भीमसेन का हित करने एक संकुचित मार्ग पर बैठ गये और अपनी पूँछ को पृथ्वी पर फटकारने लगे। उस ध्वनि को सुन भीमसेन उसके कारण को जानने हेतु आगे बढे। उन्होने एक विशाल शिला पर वानर-श्रेष्ठ हनुमानजी को देखा, जो अपनी कान्तिमान आँखो से इधर-उधर देख रहे थे।

हनुमानजी बोले—'भाई! मैं तो रोगी हूँ, इसलिए यहाँ सो रहा हूँ। तुमने मुझे क्यो जगा दिया? जो मनुष्य बुद्धिमान होते है, वे सब जीवो पर दया करते हैं। तुम अज्ञान-वश जीवो को क्यो कष्ट पहुँचाते हो? मेरी धारणा है कि तुमने विद्वानो की सेवा नही की है, इसलिए यह दूपित कार्य करते हो। तुम कौन हो और यहाँ किसलिए आये हो? यहाँ से आगे जाना तो सिद्ध पुरुषो के अतिरिक्त मनुष्यो के लिए असभव है।'

भीमसेन ने कहा—'मैं चद्रवशी कुरुकुल का क्षत्रिय हूँ। मेरी माता कुन्ती और पिता का नाम पाण्डु है। मुझे भीमसेन कहते हैं। मेरे हाथो से तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट नही उठाना पडेगा। निर्गुण परमात्मा समस्त प्राणियो के शरीर मे व्याप्त है, अत मैं उनका उल्लघन नही करूँगा। यदि मुझे शास्त्रो के द्वारा उनका ज्ञान नही होता तो मैं भी जैसे हनुमानजी समुद्र को लाँघ गये थे, वैसे ही इस पर्वत को पार कर जाता। वानर श्रेष्ठ! हनुमानजी मेरे बड़े भाई हैं। वे अपने सद्‌गुणो के कारण जीवो के लिए वदनीय है। वे सर्वदा बल, बुद्धि, धैर्य एव उत्साह से युक्त रहते हैं, अत. पवित्र रामायण मे उनकी बडी ख्याति है।'

हनुमानजी बोले—'अनघ! बुढापे के कारण मुझमे उठने की शक्ति नही है, सो मेरी पूँछ हटा कर निकल जाओ।' इस पर भीमसेन ने महाकपि की पूँछ दोनो हाथो से उठाने के लिए पकडी, किन्तु उसे हिला भी न सके।

इससे उनका मुख लज्जा से झुक गया और उन्होने हनुमान जी के चरणो मे प्रणाम कर हाथ जोड कहा—'मुझे क्षमा कीजिये। मुझ पर प्रसन्न होइये। मै आपकी शरण मे आया हूँ

और शिष्य-भाव से पूछता हूँ कि आप कौन है ?'

हनुमानजी बोले—पाण्डुनन्दन ! मैं ही वायु-पुत्र हनुमान हूँ। यह सुन भीमसेन के मन मे बड़ा हर्ष हुआ। उन्होने बड़े प्रेम से अपने बड़े भाई हनुमानजी को प्रणाम कर मधुर वाणी मे कहा—आपके दर्शन से मुझे बडा सुख मिला है। समुद्र लाँघते समय आपने जो अनुपम रूप धारण किया था, उसका दर्शन मै करना चाहता हूँ। हनुमानजी ने विहँसकर भीमसेन को अपना वह रूप दिखाया। उनके उस विराट रूप को देख भीमसेन को वडा आश्चर्य हुआ। उसने डर से अपनी आँखे बन्द कर ली और कहा—आप तो सूर्य के समान उदित हो रहे हैं। आप अप्रमेय तथा दुर्धर्ष है, अत. मै आपकी ओर देख भी नही सकता। भीमसेन ने महावली हनुमानजी को पुन. प्रणाम किया और उनसे आज्ञा ले वे सौगन्धिक वन की ओर चले। कुछ ही समय मे उन्होने कुवेर का उपवन देखा जो यक्षों और राक्षसो से सुरक्षित था। भीमसेन ने हनुमानजी के कथनानुसार कुवेर देव की भक्ति-भाव से आराधना की। देवप्रिय कुबेर ने भीमसेन को इच्छानुसार कमल के फूल प्रदान किये। उन फूलो को उन्होने द्रौपदी और महाराज युधिष्ठिर को अर्पण कर दिया। पाण्डव उत्तम व्रत का पालन करते थे। उनमें सत्य एव धैर्य विद्यमान थे, अत. गधर्व और महर्षिगण उनसे मिलने आते थे। अव उनके मन मे वीर अर्जुन से मिलने की प्रवल इच्छा जागृत हुई। वीर अर्जुन स्वर्ग मे पाँच वर्ष तक रह दिव्य अस्त्रो की शिक्षा प्राप्त कर भाइयो के पास लौट आये। उन्होने महर्षि धौम्य और युधिष्ठिर के चरणो का स्पर्श किया। सभी पाण्डवों ने वीर अर्जुन को हृदय से लगाया।

## जटासुर

एक दिन भीमसेन की अनुपस्थिति मे पापात्मा, दुष्टबुद्धि जटासुर नामक राक्षस धर्मराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को आश्रम से उठा कर ले गया। वह ब्राह्मण के वेष मे प्रतिदिन उनके साथ रहता था और अपने को शास्त्रज्ञो मे श्रेष्ठ, मन्त्र-कुशल ब्राह्मण बतलाता था। वह पाण्डवो के शस्त्रो और द्रौपदी का अपहरण करने के लिए सदा अवसर ढूंढता था। पाण्डव उसके असली स्वरूप को नही पहचान सके।

युधिष्ठिर ने उससे कहा—'अरे मूर्ख! विश्वासघात करने से तो तेरे धर्म का ही नाश हो रहा है। राक्षस तो धर्म का ज्ञान रखते हैं, अत उन्हे उचित है कि विना अपराध के किसी को कष्ट न दे। तेरे प्रति हम लोगो की ओर से थोड़ा-सा भी अपराध नही हुआ है। हमने तुझे अन्न और आश्रय दिया है अत जिनका अन्न खायें और जो आश्रय दे, उनके साथ द्रोह या विश्वासघात नही करना चाहिए। ऐसा करने से ससार मे तुझे अधर्म और अपकीर्ति ही प्राप्त होगी।' उसी समय गदा हाथ मे लिए भीमसेन दिखाई दिये।

महाबली भीमसेन ने कुपित हो राक्षस से कहा—'तू हमारे यहाँ ब्राह्मण-अतिथि के रूप मे रहता था, इसलिए मैंने तेरा वध नही किया। आज निश्चय ही तेरी आयु पूरी हो चुकी है, तभी तो काल रूपी डोरे से लटकाया हुआ कांटा तूने निगल लिया है।' काल की प्रेरणा से अन्य पाण्डवो को छोड वह भीमसेन से युद्ध करने लगा। अव उन दोनो में वड़ा भयकर युद्ध हुआ। वे दोनों वीर एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए परस्पर आघात करने लगे। तदनन्तर भीमसेन ने उस राक्षस को पृथ्वी पर पटक कर पीस डाला। इस प्रकार जटासुर को मारकर भीमसेन ने सवकी रक्षा की।

जब पाण्डवो के वनवास के दस वर्ष आनन्दपूर्वक व्यतीत

हो गये, तब भीमसेन ने भाइयों से कहा—'हमें इस स्वर्ग-तुल्य प्रदेश से चलना चाहिए। हम अपने पूर्वजो के राज्य को प्राप्त करके ही सत्कर्म करने योग्य हो सकते है, अतः अब हमें अपराधी शत्रुओ को दण्ड देने का ही निश्चय करना चाहिये। हमारा कार्य सिद्ध करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण और वीर सात्यकि अत्यन्त प्रयत्न करेगे। जिससे हमें धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति हो, उसी लक्ष्य की ओर हमे बढना होगा। शत्रुओ से भिडकर ही हमारा वैर शान्त होगा। भीमसेन का कथन सुन पाण्डव वहाँ के ऋषि-मुनियों को प्रणाम कर पहाडो से नीचे उतरे।

एक दिन धौम्य तथा महर्षि तृण विन्दु की आज्ञा से पाण्डव द्रौपदी को अकेली आश्रम मे छोड वन मे कद-मूल-फल लाने चले गये। उसी समय सिंधु देश का राजा जयद्रथ विवाह करने शाल्व देश की ओर जा रहा था। उसने दूर से यशस्विनी द्रौपदी को देखा, और: उसके मन में दूषित भावना जागृति हो गयी।

उसने अपने साथी कोटिकास्य से कहा—'सौम्य! जाओ और पता लगाओ, यह किसकी स्त्री है और इस वन मे क्यों रहती है? यदि मै इस सुन्दरी को प्राप्त कर सकूं तो कृतार्थ हो जाऊंगा।

कोटिक द्रौपदी के पास गया और वोला—'तुम किसकी स्त्री हो? क्या तुम्हे जगल मे डर नही लगता? यहाँ तुम क्या कार्य करती हो? मैं राजा जयद्रथ की आज्ञा से तुम्हारे पास उपर्युक्त वाते पूछने आया हूँ।'

द्रौपदी ने कहा—'तुम राजा सुरथ के पुत्र हो, अतः मैं तुम्हे पहचानती हूँ। मैं राजा द्रुपद की पुत्री कृष्णा हूँ। मेरे पति पाण्डव हैं, जो खाण्डवप्रस्थ मे रहते थे। वे इस समय वन में गये हैं और शीघ्र ही लौटेंगे। तुम कुछ समय के लिए विश्राम करो और उनका आदर-सत्कार ग्रहण कर अपने देश को चले जाना।

इतने में जयद्रथ भी द्रौपदी के पास मन मे दुर्भावना लेकर आ पहुँचा और बोला— पाण्डवो के पास धन और राज्य नहीं

रहा। वे दीन और उत्साहहीन हो गये है, अतः उनका अनुगमन तुम्हे नही करना चाहिये। विदुषी स्त्रियाँ निर्धन पति की उपासना नही करती, अत मेरे रथ पर बैठो और अखण्ड सुख का भोग करो।'

जयद्रथ के मुख से हृदय-कंप करने वाला कथन सुन द्रौपदी ने उससे क्रोधपूर्वक कहा—'तुम्हे निंदित कथन करते समय लज्जा आनी चाहिये थी। तुम्हारा जन्म तो धर्मात्माओं के कुल में हुआ है, पर तुम अधर्मी हो। पाण्डवो का क्रोध भयंकर विष वाले सर्पों के समान है। क्या तेरे हितैषी नही है, जो तुझे मृत्यु के हाथ से वचा ले?'

जयद्रथ वोला—'तुम्हारे निर्वल पतियो को मैं जानता हूँ। मैं सर्वगुण सम्पन्न हूँ, अत मैं उन्हे अपने से हीन मानता हूँ। तुम्हारे सामने दो ही मार्ग हैं—या तो सीधी-सीधी मेरे रथ पर बैठ जाओ, अथवा पाण्डवो के हार जाने पर विलाप करती हुई मुझसे कृपा की भीख माँगो।'

द्रौपदी ने कहा—'रे मूर्ख! मेरे रक्षक भगवान श्रीकृष्ण और पाण्डव हैं। अर्जुन के गाडीव धनुष से छूटे हुए वाण जव तुम्हे वीधेंगे, तव तू अपने कुकर्म को स्मरण कर पश्चात्ताप करेगा।' जयद्रथ द्रौपदी को पकड़कर वलात् अपने रथ पर वैठा कर चल दिया। कुछ ही समय पश्चात जव पाडव आश्रम मे लौटे तव उन्हे द्रौपदी की दासी छात्रेयिका ने रोते हुए कहा—'जयद्रथ ने द्रौपदी का अपहरण किया है। आप लोग शीघ्र शत्रुओ का पीछा कीजिये।' यह सुनकर पाडव जयद्रथ को पकडने के लिए शीघ्रता से आगे वढे। उन्होने द्रौपदी को जयद्रथ के रथ पर वैठा देखा। जयद्रथ ने साथी राजाओ को पाडवो से युद्ध करने करने के लिए उत्साहित किया। जयद्रथ ने अनेक अस्त्र-शस्त्रो से पाडवो पर आक्रमण किया, किंतु उन्होने उसकी सेना और योद्धाओ का भयकर सहार कर डाला। अपने वीरो के मारे जाने पर जयद्रथ द्रौपदी को रथ पर ही छोडकर भाग गया।

अमर्ष में भरे महाबली भीमसेन ने वेग से दौड़कर उसके केश पकड़ लिये और घूसो से मारने लगे। अर्जुन ने भीमसेन से कहा— 'दुःशला के वैधव्य का विचार कर इसे जीवन-दान दे दो और महाराज युधिष्ठिर के पास ले चलो।' महाराज युधिष्ठिर और द्रौपदी ने करुणा कर जयद्रथ को मुक्त कर दिया और वह हरिद्वार चला गया। उसने वहाँ उमापति शकर की तपस्या की। त्रिनेत्रधारी महादेवजी ने प्रसन्न हो उसे वर दिया कि एक दिन अर्जुन के अतिरिक्त तुम चारों पाण्डवो को युद्ध में आगे बढने से रोक सकोगे। इतना कह भगवान शकर अतर्धान हो गये।

## धर्म व्याध

कुछ समय पश्चात मार्कण्डेय मुनि पाण्डवो के रहने के स्थान पर आये। पाडवों और द्रौपदी ने उनसे विनयपूर्वक पूछा, 'भगवन्! आप हमे माता-पिता की सेवा और पतिव्रत-धर्म का उपदेश दे।'

मार्कण्डेयजी बोले—भरत श्रेष्ठ! कुछ लोग माता का गौरव बडा मानते है, तो कुछ पिता का। परतु माता सतानों को पाल-पोषकर बडा बनाती है, यह उसका कठिन कार्य है। माता-पिता अपनी सतानो के लिए यश, कीर्ति, ऐश्वर्य, सतान तथा धर्म की शुभकामना करते है। जो उन दोनो की आशा को सफल करता है, वही पुत्र धर्मज्ञ है। जिसके माता-पिता सतान से सतुष्ट रहते है, उसे इह और परलोक मे अक्षय-कीर्ति और धर्म की प्राप्ति होती है। सतानो को देव-पूजा, तितिक्षा, दान और अन्य उपायो द्वारा श्री हरि को प्रसन्न करना चाहिए।

राजन्! पतिव्रत धर्म के बारे मे मै तुम्हे एक आख्यान सुनाता हूँ। तपस्या का धनी, धर्मात्मा और वेद का अध्ययन करने वाला कौशिक नाम का एक ब्राह्मण था। वह एक दिन वृक्ष के नीचे बैठ वेद-पाठ कर रहा था। उस वृक्ष की डाली

पर एक वगुली वैठी थी। उसने ब्राह्मण देवता पर वीट कर दी। यह देख ब्राह्मण क्रोधित हो गया, जिसके प्रभाव से वह मृत हो पृथ्वी पर गिर पडी। तदनतर वह ब्राह्मण गाँव मे गया और एक गृहस्थ से भिक्षा माँगी। भीतर से किसी स्त्री ने उत्तर दिया—ठहरो! अभी लाती हूँ। वह पति-परायण स्त्री पति को भोजन करा रही थी, अत ब्राह्मण को भिक्षा देने मे कुछ विलब हो गया। इस पर ब्राह्मण क्रोध से सतप्त हो उठा।

देवी ने वडी शाति से कहा—विद्वान! मेरे लिए सबसे वडे देवता पति है। मैं अहकार और इच्छाओ का दमन कर पति की सेवा करती हूँ। मैं उनसे अप्रिय नही कहती। मैं निर्लज्ज की भाति कही न खडी होती हूँ, न देखती ही हूँ और दुराचारियो से वार्तालाप भी नही करती। मै पति को भोजन कराने से पूर्व भोजन नही करती। पति जव घर पधारते है, तव आलस्य को छोड उनका अभिनन्दन और स्वागत करती हूँ। मै मन और इद्रियो को सयम मे रख पति के लिए शुद्ध एव स्वादिष्ट भोजन वनाती हूँ और किसी अपरिचित स्थान पर अकेली नही जाती। जो वस्तु पति को अप्रिय है उसे त्याग कर पति का हर समय डर मानती हूँ। मैं पति के साथ ऐसा व्यवहार करती हूँ कि वे प्रसन्न होकर मुझे हृदय से लगा लें। पति के जो शत्रु उपेक्षणीय, अहितकारक और छल-कपट करने के लिए उद्यत रहते हैं, उनसे सदा दूर रहती हूँ। अत्यत क्रोधी, नशा और चोरी करने वाली दुष्ट और चचल स्वभाव की स्त्रियो से भी मैं दूर रहती हूँ। मैं देवताओ की पूजा, अतिथियो का सत्कार, भृत्यो का भरण-पोषण और सास-ससुर की सेवा मे सर्वदा तत्पर रहती हूँ और मन एव इद्रियो पर निरतर सयम रखती हूँ। मैंने आपको भिक्षा देने मे विलम्ब किया है अत आप क्रोध न करे। क्रोध मनुष्य का शत्रु है। मनस्वी ब्राह्मण तो देवता के समान होते हैं। मैं वगुली नही हूँ, जो आपकी **क्रोध भरी दृष्टि से भस्म हो जाऊँगी।** मैं ब्राह्मणो के तेज और

महत्व को जानती हूँ। धर्मज्ञ पुरुष सत्य और सरलता को सर्वोत्तम धर्म बताते है और धर्म सदा सत्य मे प्रतिष्ठित रहता है। आपको धर्म की सूक्ष्म व्याख्या के लिए मिथिलापुरी में धर्म व्याध के पास जाना चाहिए, जो माता-पिता के सेवक, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं। यदि मैंने कोई अनुचित कार्य किया हो, तो उसके लिए मुझे क्षमा करे, क्योकि धर्मज्ञ पुरुषो की दृष्टि में स्त्रियाँ अदण्डनीय हैं।

ब्राह्मण बोला—शुभे! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा धर्म और सदाचार उच्चकोटि का है। साध्वी-स्त्री से विदा ले द्विज-श्रेष्ठ कौशिक आत्म-निदा करता हुआ धर्म व्याध के पास मिथिलापुरी गया। कौशिक ने धर्म-व्याध को वाधिक-गृह में माँस बेचते देखा। ब्राह्मण को देख उसने उसके चरणो में प्रणाम किया और अपने घर ले गया।

कौशिक ने कहा—तात! मॉस वेचने का कार्य तुम्हारे योग्य नही है, अतः मुझे इस घोर कर्म से सताप हो रहा है।

व्याध बोला—यह कार्य मेरे वाप-दादो के समय से ही चला आ रहा है और मैंने भी इसे अपनाया है, अत. आप मुझ पर क्रोध न करे। विधाता ने इस कुल मे जन्म दे मेरे लिए जो कार्य प्रस्तुत किया है, उसका पालन करता हुआ मैं अपने बूढे माता-पिता की सेवा करता हूँ। मैं सत्य वोलता हूँ, किसी की निंदा नही करता और अपनी शक्ति के अनुसार दान भी करता हूँ। देवताओ, अतिथियो, परिजनो तथा सेवको को भोजन देने के पश्चात जो बच जाता है, उसीसे अपने जीवन का निर्वाह करता हूँ। मैं स्वय किसी जीव की हिंसा नही करता, दूसरे के मारे हुए जीवो का ही मांस बेचता हूँ। मैं किसी का अहित नही करता, न दुर्व्यसनो मे आसक्त ही रहता हूँ। यदि अज्ञानवश मुझसे कोई पाप हो जाता है तो उसका निवारण करने के लिए मैं प्रायश्चित्त करता हूँ। जैसे सूर्य के उदय होने पर अधकार नष्ट हो जाता है, वैसे ही निष्काम भाव से शुभ-

कर्म करने से पापो से मुक्ति मिल जाती है। जो काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और कुटिलता से दूर रहता है और धर्म को ही अपनाता है, वह शिष्ट-पुरुष है। शिष्टाचारी पुरुषो मे गुरु-सेवा, अहिंसा, प्राणियो के प्रति हित-भावना, वेदाध्ययन, तपस्या, क्षमा, सरलता, शौच, त्याग, सत्यभाषण तथा दान ये सद्‌गुण सदा विद्यमान रहते है। मनुष्य को नास्तिक व अधर्म करने वालो का सहयोगी नही होकर धर्मात्मा पुरुषो की सेवा करनी चाहिए।

मार्कण्डेयजी ने कहा—'युधिष्ठिर! कौशिक ब्राह्मण ने धर्म व्याध का उपदेश सुन उसकी परिक्रमा की और वहाँ से प्रसन्न-चित हो चला गया।'

## कौरवों का बन्दी होना

राजा धृतराष्ट्र ने जब सुना कि पाण्डव वन मे दुर्बल हो कष्ट भोग रहे है, तब वे इसे अपने ही कार्यों का परिणाम समझकर विलाप करने लगे। दु.शासन, कर्ण, शकुनि और दुर्योधन ने जब पाण्डवो की यह दशा सुनी, तब वे उन्हे और दु ख देने हेतु बृहत सेना के साथ द्वैत-वन गये। उन्होने देखा कि पाण्डव एक अत्यन्त निर्मल सरोवर के निकट निवास कर नित्य यज्ञ का अनुष्ठान करते है। गधर्वराज भी अपने सेवको के साथ उसी सरोवर के पास रहते थे। दुर्योधन ने अपने सैनिको को गधर्व-राज के अनुचरो को मार भगाने की आज्ञा दी। यह सुन गधर्व-राज चित्रसेन के सेवक कौरवो से भिड गये। कौरव गधर्वों से भयभीत हो युद्ध स्थल से भाग गये, किन्तु दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दु शासन को गधर्वो ने बदी बना लिया। धर्मात्मा युधिष्ठिर ने भीमसेन और अर्जुन से कौरवो को मुक्त कराने को कहा। भीमसेन और अर्जुन ने गधर्वराज चित्रसेन को महात्मा युधिष्ठिर की आज्ञा सुना दी, किन्तु उसने पाण्डवो के आग्रह

को अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर गधर्वो और पाण्डवो मे भयकर युद्ध होने लगा। सव्यसाची अर्जुन के वाणो से बहुत-से गधर्व मारे गये। गधर्वराज चित्रसेन वीर अर्जुन के सखा थे, अतः वे उनके पास गये और युद्ध बन्द करने को कहा।

अर्जुन ने कहा—'चित्रसेन ! दुर्योधन हम लोगो का भाई है, अतः धर्मराज युधिष्ठिर के आदेशानुसार कौरवों को छोड़ दो।' यह सुन गधर्वराज चित्रसेन ने कौरवो को मुक्त कर दिया। तदनन्तर राजा दुर्योधन अजातशत्रु युधिष्ठिर को प्रणाम कर भाइयो सहित हस्तिनापुर चला गया। राजा दुर्योधन गधर्वो द्वारा अपमानित और पाण्डवो के पराक्रम से दु:खित हो आमरण अनसन-व्रत लेकर बैठ गया। इस पर वीर कर्ण ने उसे सात्वना देते हुए प्रतिज्ञा की—'जब तक अर्जुन मेरे हाथों से मारा नही जाता, तब तक मैं दूसरो से पाँव नही धुलवाऊँगा, केवल जल से उत्पन्न पदार्थ नही खाऊँगा और किसी के कुछ भी माँगने पर 'नही' नही कहूँगा।' उस दिन से कौरव पाण्डवो को पराजित ही मानने लगे। वीर कर्ण की प्रतिज्ञा सुन धर्मपुत्र युधिष्ठिर उद्विग्न हो उठे और काम्यक वन को चले गये। अव वनवास का थोडा ही समय शेष रह गया था, उसी समय महायोगी व्यासजी पाण्डवो के पास आये। पाण्डवो ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और उत्तम आसन पर बैठाया।

## दुर्वासा

व्यासजी बोले—'युधिष्ठिर ! मनुष्य को जीवन मे सुख और दुःख दोनो का सेवन करना पडता है। जगत मे ऐसा कोई नही है, जिसके सुख का अत न हो। बुद्धिमान मनुष्य सुख-दुःख को दैव का विधान समझकर हर्ष और शोक नही करते। तप से बढ़कर आत्मा की उन्नति का अन्य कोई साधन नही है। जो लोग अधर्म करते है, उन्हे समय आने पर दुःख उठाना ही पडता है।

तुम लोग सभी धर्म के पथ पर चलने वाले हो, अत. शील और सदाचार को ही अपनाना।' व्यासजी पाण्डवो को उपदेश दे वहाँ से चले गये। जब दुर्योधन ने सुना कि पाण्डव वन मे आनन्द से रहते हैं तब उसने उनका अनिष्ट करने का पुन निश्चय किया।

उसने महर्षि दुर्वासा को प्रसन्न कर कहा—'महामुने! धर्मात्मा युधिष्ठिर बडे गुणवान और सुशील है। जिस प्रकार आप मेरे अतिथि हुए है, उसी तरह शिष्यो के सहित उनके भी अतिथि हो उन पर भी कृपा कीजिये।' दुर्योधन की विनय से दस हजार शिष्यो सहित दुर्वासा ऋषि पाण्डवो के पास वन मे गये। पाण्डवो ने उनका विधिवत सत्कार कर भोजन के लिए निमन्त्रित किया। यह सुन निष्पाप मुनि शिष्यो के साथ नदी में स्नान करने चले गये। उस समय तक पाण्डवो और सती द्रौपदी ने भोजन कर लिया था, अत. अन्न के लिये कृष्णा बडी चिन्ता मे पड गयी। जब अन्न प्राप्त करने का कोई साधन उसे नही सूझा, तब वह भगवान श्रीकृष्ण का चिन्तन करने लगी। द्रौपदी की स्तुति करने पर भगवान वही प्रकट हो गये। द्रौपदी ने उन्हे दुर्वासा मुनि के यहाँ अनायास ही आने और भोजन करने का समाचार सुनाया।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, 'कृष्णे! मुझे बडी भूख लगी है। पहले तू मुझे भोजन करा, फिर अन्य प्रबन्ध करती रहना।' यह सुन द्रौपदी बडी चिन्ता मे पडी।

द्रौपदी बोली—'भगवन्! सूर्य नारायण ने जो पात्र हमे दिया है, उसमे तभी तक भोजन मिलता है, जब तक मैं भोजन कर लेती हूँ। देव! आज तो मैं भी भोजन कर चुकी हूँ, अत अब और भोजन उसमे नही बचा है।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—'मैं तो भूख और थकावट से व्याकुल हो रहा हूँ, इसलिए वटलोई लाकर मुझे दिखा। भगवान श्रीकृष्ण के आग्रह पर द्रौपदी बटलोई लाई, जिसके गले में

थोड़ा-सा शाक लगा था। उसे भगवान श्रीकृष्ण ने खा लिया और सहदेव को मुनियों को बुलाने भेजा। भगवान श्रीकृष्ण के खाते ही सब मुनि पूर्ण तृप्त हो गये।

दुर्वासा बोले—'शिष्यो! राजा युधिष्ठिर के यहाँ रसोई बनवाकर हमने उनका अपराध किया है। राजा अम्बरीष के प्रभाव को याद कर मैं भक्त पाण्डवो से डरता रहता हूँ, अतः उन्हे बिना पूछे ही तुरन्त भाग चलो।' गुरु दुर्वासा के कहने पर उनके शिष्य भयभीत हो गये। सहदेव ने जब मुनियों को नदी पर नही देखा, तब उन्होने सब वृतान्त महात्मा युधिष्ठिर को कह सुनाया।

महात्मा युधिष्ठिर ने कहा—'गोविन्द! तुम्हें अपना सहायक और सरक्षक पाकर हम दुस्तर विपत्तियो से उसी प्रकार पार हुए है, जैसे महासागार में डूबते हुए मनुष्य जलयान का अवलम्ब ले पार हो जाते है।' भगवान श्रीकृष्ण ने पाण्डवो के कल्याण की कामना की और द्वारकापुरी चले गये।

## सावित्री-सत्यवान

मार्कण्डेय मुनि बोले—'राजन्! देव के विधान को कोई नही जानता। कभी-कभी सत-पथ पर चलने वाले पुरुषो को भी कष्ट उठाना पडता है। इस विषय मे मैं तुम्हे एक आख्यान सुनाता हूँ। मद्र देश मे एक धर्मात्मा, सत्य-प्रतिज्ञ, ब्राह्मण-भक्त और जितेन्द्रिय अश्वपति नाम का राजा था। उसके कोई सन्तान नही थी। उसने कई वर्षों तक गायत्री-मन्त्र द्वारा अनुष्ठान किया। इस पर सावित्री देवी प्रसन्न हो गई। राजा द्वारा सतान-प्राप्ति का वर माँगने पर एक कमलनयनी कन्या ने उनके यहाँ जन्म लिया। ब्राह्मणो ने उसका नाम सावित्री रखा। वह राजकन्या मूर्तिमय लक्ष्मी के समान थी और यथासमय उसने युवावस्था मे प्रवेश किया। जब किसी वर ने देव-

स्वरूपिणी कन्या के लिये याचना नही की, तव मद्रनरेश को बडी चिन्ता हुई। राजा ने सावित्री से कहा—'तू ही वर की खोज कर ले, जो गुणो मे तेरे समान हो। जिस पुरुप को तू पति-रूप में वरण करना चाहेगी, उसीके साथ मैं तेरा विवाह कर दूँगा।' पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर मनस्विनी सावित्री राज-मन्त्रियो के साथ पति प्राप्त करने की इच्छा मे विभिन्न देशो मे गई। कुछ समय पश्चात सावित्री अपने पिता के घर लौटी।

महाराजा अश्वपति को नारदजी के साथ वैठे देख शुभ-लक्षणा सावित्री ने दोनो के चरणो मे प्रणाम किया और कहा—'पिताजी! शाल्व-देश मे द्युमत्सेन नामक एक धर्मात्मा अधे राजा राज्य करते थे। उनके पूर्व शत्रु राजा ने वुद्धिमान नरेश का राज्य हर लिया। अब वे अपनी पत्नी के साथ वन मे व्रतो का पालन करते हुए तपस्या करते है। उनके सत्यवान नाम का योग्य पुत्र है, जिसका मैंने मन ही मन वरण किया है।'

नारदजी बोले—'राजन्! सावित्री ने विना विचारे ही अपना अनिष्ट किया है। राजकुमार के माता-पिता सदा सत्य वोलते है अत ब्राह्मणो ने इस वालक का नाम सत्यवान रखा है। यह मिट्टी के अश्व वनाया करता था, इसलिए इसे चित्राश्व भी कहते है। सत्यवान अपनी शक्ति केअनुसार दानी, ब्राह्मण-भक्त, रूपवान, शूरवीर और जितेन्द्रिय है, किन्तु आज से एक वर्ष होते ही उसकी मृत्यु हो जाएगी।'

यह सुन राजा ने वेटी सावित्री को दूसरे पुरुष का वरण करने को कहा। सावित्री बोली—'पिताजी! कन्या एक ही बार विवाह मे दी जाती है और धर्मात्मा-दानी दान देने का वचन दे, उसे निश्चय ही पूर्ण करना है। सत्यवान दीर्घायु हो या अल्पायु, गुणवान हो या गुणहीन, मैं उन्हे चुन चुकी हूँ, अत. अब दूसरे पुरुष का वरण नहीं करूँगी। जो विचार मन मे निश्चय कर वाणी द्वारा कहकर कार्य-रूप मे परिणत किया

जाता है, उसका मन ही प्रमाण है।' सावित्री का वचन सुन राजा अश्वपति द्युमत्सेन के आश्रम मे गये। वहाँ उन्होने नेत्रहीन नरेश को शाल-वृक्ष के नीचे एक कुश की चटाई पर बैठे देखा। राजा अश्वपति ने राजर्षि द्युमत्सेन का यथायोग्य सत्कार कर अपने आने का उद्देश्य कह सुनाया।

द्युमत्सेन बोले—'महाराज! हम राज्य से वचित है और वन मे सयम-नियम के साथ तपस्वी-जीवन विताते है, आपकी यह कन्या वनवास का कष्ट सहन नही कर सकेगी।'

अश्वपति ने कहा—'राजन् सुख और दु ख तो उत्पन्न और नष्ट होने वाले है। मै यह निश्चय कर आपके पास आया हूँ कि इस कन्या को आप सत्यवान की पत्नी और पुत्रवधू के रूप मे ग्रहण कर लीजिये।' द्युमत्सेन ने राजा अश्वपति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और आश्रम मे रहने वाले ब्राह्मणों ने सावित्री सत्यवान का विवाह विधिवत् सम्पन्न कराया। तत्पश्चात राजा अश्वपति प्रसन्नतापूर्वक अपनी राजधानी लौट गये। उस सर्व-सद्गुण सम्पन्न भार्या को पाकर सत्यवान को बडी प्रसन्नता हुई और सत्यवान को पति के रूप मे वरण कर सावित्री को भी आनन्द हुआ। पिता के चले जाने पर सावित्री ने अपने सब आभूषण उतार दिये, वल्कल तथा गेरुआ वस्त्र पहन लिये और अपने शील मे सबको प्रसन्न करने लगी। इस प्रकार आश्रम मे रहकर तपस्या करते-करते कुछ काल व्यतीत हो गया। अब सत्यवान की मृत्यु का दु खदायी समय निकट आ पहूँचा। उस समय को स्मरण कर सावित्री कठोर व्रत का पालन करने लगी। वह ब्राह्मणो, बडे-बूढो और सास-ससुर को प्रणाम कर उनके सामने हाथ जोडकर खडी हुई, अत. उस तपोवन मे रहने वाले गुरुजनो और तपस्वियो ने सावित्री को सौभाग्यवर्द्धन आशीर्वाद दिये।

सास-ससुर ने कहा—'बेटी! तुमने शास्त्र के अनुसार अपना व्रत पूरा कर लिया है, अब पारण करो।

सावित्री बोली—'सूर्यास्त होने पर जब मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा, तभी मैं भोजन करूँगी, यह मेरा सकल्प और प्रतिज्ञा है।' उसी समय सत्यवान कधे पर कुल्हाडी रख फल-फूल समिधा आदि लाने वन को चले। सावित्री भी उनके साथ वन चलने को उद्यत हुई।

सत्यवान बोला—'वन का मार्ग वडा दु खदायक है। तुम व्रत और उपवास करने के कारण निर्बल हो रही हो। ऐसी दशा मे पैदल कैसे चल सकोगी ?'

सावित्री बोली—'उपवास के कारण मुझमे किसी प्रकार की शिथिलता नही है। आपके साथ वन चलने का मुझमे पूर्ण उत्साह है, अत आप मुझे वन मे जाने से न रोके।' यह कह सावित्री सत्यवान के साथ वन मे चली गयी। नारदजी के वचनो का स्मरण कर दृढ विश्वास हो गया था कि उसके पति की मृत्यु अवश्यम्भावी है।

सत्यवान ने फल-फूल-समिधा से टोकरी भरने के पश्चात सावित्री से कहा—'मेरे सिर मे वेदना है, मुझमे खडे रहने की शक्ति नही है अत मैं सोना चाहता हूँ।' यह सुन सावित्री अपने पति का सिर गोद मे लेकर बैठ गयी और नारदजी के वचन स्मरण कर उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगी। दो घड़ी पश्चात एक दिव्य-पुरुष प्रकट हुआ, जिसके शरीर पर लाल वस्त्र थे। सूर्य के समान तेजस्वी धर्मराज मूर्तिमान सूर्य ही जान पडते थे। उनके हाथ मे पाश था और वे सत्यवान के पास खडे थे।

उन्हे देखते ही सावित्री हाथ जोडकर आर्त्त स्वर मे बोली—'देवेश्वर ! आप कौन है। यहाँ क्यो आये है ?'

यमराज बोले—'मैं यमराज हूँ। सत्यवान की आयु समाप्त हो गयी है, अत मैं उसके प्राण ले जाऊँगा। तू पति के ऋण से उऋण हो चुकी है, इसलिए इसके शरीर का मोह छोड दे।'

सावित्री ने कहा—'जहाँ मेरे पति ले जाये जायेगे, मै भी

वही जाना चाहूँगी। यही सनातन धर्म है। तपस्या, गुरु भक्ति, पति प्रेम, व्रत पालन और आपकी कृपा से मैं भी उनके साथ ही जा सकूँगी। विद्वानो का कथन है कि सात पद साथ मे चलने मात्र से मैत्री स्थापित हो जाती है, जिसे धर्मज्ञ पुरुष निभाते है और सत्पुरुष धर्म को ही श्रेष्ठ मानते है।'

यमराज ने कहा—'तू मेरे साथ न चल। सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त मुझसे अन्य वर माँग ले।'

सावित्री बोली—'भगवन् ! मेरे श्वसुर का राज छिन गया है और वे दृष्टिहीन भी है, अत आपकी कृपा से वे सूर्य के समान तेजस्वी हो जाये और पुन राज्य प्राप्त कर ले।'

यमराज बोले—'अनिदिते ! तुम जो चाहती हो वैसा ही होगा। अब तू लौट जा, जिससे तुझे अधिक कष्ट न हो।'

सावित्री बोली—'जहाँ मेरे पतिदेव रहेगे, मैं भी वही रहूँगी। सत्पुरुषो का एक बार का समागम भी अत्यन्त अभीष्ट होता है। उसका सग निष्फल नही होता।'

यमराज ने कहा—'भामिनी ! तेरा कथन यथार्थ है, अत सत्यवान के जीवन के अतिरिक्त और वर माँग ले।'

सावित्री ने कहा—'देव ! आपका यम नाम सर्वत्र विख्यात है। मन, वाणी और क्रिया द्वारा किसी प्राणी से द्रोह न करना, सब पर दया-भाव रखना, दान देना, साधु पुरुषो का सनातन धर्म है। आप जैसे महात्मा शरण मे आये हुए शत्रुओ पर भी दया करते है, अतः हम जैसे दीन मनुष्यो पर दया क्यो नही करेगे ? मेरे पिता पुत्रहीन है उन्हे आप उत्तम गुण वाले पुत्र प्रदान कर दीजिये।'

यमराज ने कहा—'तेरी यह कामना भी पूर्ण होगी। अब तू लौट जा।'

सावित्री ने कहा—'आप विवस्वान के प्रतापी पुत्र है, इस-लिये विद्वान आपको वैवस्वत कहते है। आप प्रजा के साथ समता-पूर्वक धर्मानुसार आचरण करते है, इसलिये धर्मराज कहलाते

हैं। मेरे और सत्यवान के सयोग मे कुल की वृद्धि कराने वाले वल और पराक्रम से पूर्ण अनेक पुत्र होने चाहिये, यह मेरी अतिम प्रार्थना है।'

धर्मराज ने कहा—'एवमस्तु। अव तू लौट जा।'

सावित्री वोली—'सत्पुरुषो की वृत्ति निरतर धर्म मे ही लगी है। मनुष्य का सत पुरुषो से समागम निष्फल नही होता। मनुष्य सतो से भय नही करते। सत्य के वल से सूर्य के कर्तव्य का सचालन होता है। सत्य से पृथ्वी चराचर को धारण करती है। सत्य ही भूत, भविष्य और वर्तमान का आश्रय है। सत्य से ही सनातन सदाचार चलता है। आपने मुझे जो पुत्र-प्राप्ति का वर दिया है, वह दाम्पत्य-संयोग विना नही हो सकता। पति के विना अन्य उपायो से पुत्र-मुख मिल सकता है, तो वह मुझे नही चाहिये। पतिदेव के विना मुझे धन-सम्पत्ति और स्वर्गलोक मे जाने की भी इच्छा नही है। मैं उनके विना जीवित भी नही रहूँगी। सत्यवान यदि जीवित नही होगे तो मुझे पुत्रो की प्राप्ति कैसे होगी? अत उन्हे जीवित कर अपना वचन सत्य कीजिये।'

धर्मराज वोले—'भद्रे! मैं तुम्हारे धर्मयुक्त वचनो द्वारा अत्यन्त सतुष्ट हूँ, अत सत्यवान अव निरोग और सफल-मनोरथ हो जायेगा। यह दीर्घायु और विश्वविख्यात भगवत भक्त होगा।' सावित्री को वरदान दे धर्मराज अतर्धान हो गये। तदनन्तर पुन चेतना-शक्ति प्राप्त कर सत्यवान सावित्री की ओर देखते हुए प्रेमपूर्वक वोले—'प्रिये! खेद है, मैं वहुत देर तक सोता रहा। तुमने मुझे जगाया क्यो नही? जो मुझे खीच रहे थे, वे श्याम-वर्ण के पुरुष कहाँ है?'

सावित्री वोली—'नरश्रेष्ठ! आप मेरी गोद मे अस्वस्थ होने के कारण वहुत समय से सो रहे है। वे श्याम-वर्ण के पुरुष प्रजा को सयम मे रखने वाले साक्षात भगवान यम थे। अव वे यहाँ से चले गये हैं। रात्रि वहुत हो गयी है। यदि शक्ति हो तो

उठिये और आश्रम पर चलकर माता-पिता के दर्शन कीजिये।' पति का हित चिन्तन करने वाली सावित्री ने सत्यवान को सहारा दिया।

सत्यवान ने कहा—'हमे शीघ्र घर चलना चाहिए। मैं स्वस्थ और बलवान हूँ और माता-पिता को देखने के लिए उत्सुक हूँ। वे हमारे बिना दो घडी भी जीवित नही रह सकते। हम ही उनकी दृष्टि है तथा हम पर ही वश प्रतिष्ठित है। हमे न देख वे किस दशा मे पहुँच गये होगे ? मै माता-पिता के विना जीवित नही रह सकता।' यह कह धर्मात्मा एव गुरुभक्त सत्यवान और पुण्यमयी सावित्री शीघ्रता से आश्रम मे पहुँचे। सत्यवान ने देखा कि उसके माता-पिता की आँखे स्वस्थ हो गई है और वे उनके लिये अत्यन्त विलाप कर रहे है। सावित्री ने सारी घटना उन्हें सुना दी। द्युमत्सेन और माता शैव्या सावित्री और सत्यवान को देखकर अत्यधिक हर्षित हुए। शल्व देश की प्रजा ने शत्रुओ को मार भगाया और राजा द्युमत्सेन का पुन राज्याभिषेक कर दिया। मद्रराज अश्वपति के भी महारानी मालवी से अनेक वलशाली पुत्र हुए।

## यक्ष के प्रश्न

द्वैतवन में पाण्डव सती द्रौपदी के साथ फलाहार द्वारा जीवन-निर्वाह करते थे। एक समय भूख-प्यास से पीड़ित पाण्डव वरगद की शीतल छाया मे वैठे थे। युधिष्ठिर ने नकुल से कहा—'हम सब अत्यन्त प्यासे है। यदि पानी समीप ही कही हो तो पता लगाओ ?'

नकुल बोले—'राजन् ! मैं ऐसे बहुतेरे वृक्ष देख रहा हूँ, जो जलाशय के तट पर ही होते है। मुझे सारसो के स्वर भी सुनाई देते है, अत: नि:सन्देह निकट ही कोई जलाशय है।'

युधिष्ठिर ने कहा—'तुम शीघ्र वहा जाओ और तरकसो

मे पानी भर लाओ। नकुल भाई की आज्ञा मान वहाँ गया, जहाँ जलाशय था। स्वच्छ जल देखकर उसे पानी पीने की इच्छा हुई। इतने मे ही उसे एक यक्ष की वाणी सुनाई दी, 'तात ! मेरे प्रश्नो का उत्तर दिये विना पानी पीने का साहस न करना।'

नकुल बहुत प्यासा था, अत यक्ष के वचनो की अवहेलना कर उसने शीतल जल पी लिया और अचेत होकर भूमि पर गिर पडा। नकुल के लौटने मे जब विलम्ब हो गया, तब कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिर ने सहदेव से जल लाने को कहा। सहदेव भी उसी ओर गये, जिस मार्ग से नकुल गया था। उसने जलाशय के तट पर प्रिय नकुल को पडे देखा। भाई के शोक से उसका हृदय सतप्त हो उठा, किन्तु वह पानी के अभाव में अत्यन्त कष्ट पा रहा था।

उसने सुना—'पानी पीने का साहस न करना। पहले तुम मेरे प्रश्नो का उत्तर दो, तत्पश्चात इच्छानुसार जल पीओ।' प्यासा सहदेव उस वाणी की अवहेलना कर ठडा जल पीने लगा और अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। यही दशा वीर अर्जुन और भीम की भी हुई। तदनन्तर पुरुषरत्न युधिष्ठिर जल की खोज मे सरोवर के पास पहुँचे। उन्होने अपने भाइयो को सरो-वर के तट पर मृत देखा। यह दृश्य देख वे विलाप करने लगे। महाबाहु युधिष्ठिर देश और काल के तत्व को जानते थे, तो भी अपने भाइयो की मृत्यु का कारण उनकी समझ मे नही आया। इस प्रकार चिन्ता करते-करते उन्होने जलाशय के जल का स्पर्श किया। इतने मे ही उन्हे अमोघ वाणी सुनाई दी—'मैंने ही तुम्हारे छोटे भाइयो को स्वर्गलोक भेजा है, मेरे प्रश्नो का उत्तर दिये बिना यदि तुमने जल पी लिया तो तुम्हे भी स्वर्ग मे जाना पडेगा।'

युधिष्ठिर बोले—'हे देव ! तुम्हारा क्या नाम है? तुमने मेरे बलवान भाइयो को क्यों मारा है ? तुम क्या चाहते हो ?

मैं विनयपूर्वक पूछता हूँ कि तुम कहाँ विराजमान हो ?'

यक्ष ने कहा—'मैं यक्ष हूँ। मैंने तुम्हारे भाइयों को पानी पीने से बराबर मना किया था, किन्तु ये बलपूर्वक जल पीना चाहते थे, अतः मैंने उन्हें मार डाला है। तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर ही जल पी सकोगे।'

युधिष्ठिर बोले—'मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा।'

यक्ष ने पूछा—'सूर्य को उदित और अस्त कौन करता है ? उसके चारों ओर कौन चलते है ? उसमें कौन प्रतिष्ठित है ?'

युधिष्ठिर बोले—'ब्रह्म उसे उदित करता है, धर्म उसे अस्त करता है, देव उसके चारों ओर चलते है, सत्य उसमें प्रतिष्ठित है।'

यक्ष ने पूछा—'मनुष्य श्रोत्रिय किससे होता है ? वह महत्पद किसके द्वारा प्राप्त करता है ? वह किसके द्वारा द्वितीय-मान होता है और किससे बुद्धिमान ?'

युधिष्ठिर बोले—'वेदाध्ययन द्वारा मनुष्य श्रोत्रिय होता है, तप से महत्पद प्राप्त करता है। धैर्य से द्वितीयमान (दूसरे साथी से युक्त) होता है। सज्जनों की सेवा से बुद्धिमान बनता है।'

यक्ष ने पूछा—'ब्राह्मण कौन है ? उसे कौन-से तत्व जानने चाहिए ? ब्राह्मण में देवत्व क्या है ? उनमें सत्पुरुषों का धर्म क्या है ? उसका मनुष्य-भाव क्या है ? और उनमें असत्पुरुषों का आचरण क्या है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरता का अभाव, तपस्या और दया हो, वही ब्राह्मण है। जानने योग्य तत्व ही परब्रह्म है। उसे जानकर मनुष्य सुख-दुःख से परे हो जाता है। ब्राह्मण जब तक वेद का स्वाध्याय न कर ले, तब तक वह शूद्र के समान है। यदि उपर्युक्त लक्षण ब्राह्मण में नहीं है, तो वह भी शूद्र है और यदि शूद्र उन लक्षणों से युक्त है तो

उसे ब्राह्मण ही कहना चाहिए। इसलिए तत्वदर्शी विद्वान शील को ही प्रधानता देते है और उसे ही अभीष्ट मानते हैं। वेदाध्ययन करने पर यदि उसे सदाचार की उपलब्धि हो, तब ही वह ब्राह्मण है। वेदो का स्वाध्याय ही ब्राह्मणो मे देवत्व है। तप सत्पुरूषो का धर्म है। मरना मनुष्य-भाव है। निन्दा करना असत्पुरुषो का आचरण है।'

यक्ष ने पूछा—'क्षत्रियो मे देवत्व क्या है? उनमे सत्पुरुषो का धर्म क्या है? उनका मनुष्य-भाव क्या है और उनमे असत्पुरुषो का आचरण क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'शस्त्र-विद्या क्षत्रियो का देवत्व है। यज्ञ उनका सत्पुरुष का धर्म है। भय मानवीय भाव है और शरण मे आये हुए दुखियो का परित्याग करना उनमे असत्पुरुषो का आचरण है।'

यक्ष ने पूछा—'कौन एक वस्तु याज्ञीय साम और यजु है? कौन एक वस्तु यज्ञ का वरण करती है? किसका यज्ञ अतिक्रमण नही करता?'

युधिष्ठिर बोले—'प्राण ही याज्ञीय साम है। मन ही यज्ञ-सम्बन्धी यजु है। ऋचा ही यज्ञ का वरण करती है और उसीका यज्ञ अतिक्रमण नही करता।'

यक्ष ने पूछा—'किसान के लिये कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है? बोने वालो के क्या श्रेष्ठ है? प्रतिष्ठा प्राप्त धनियो के लिये क्या श्रेष्ठ है। तथा पिता के लिये क्या श्रेष्ठ है?'

युधिष्ठिर बोले—'किसान के लिये वर्षा, बोने वालो के लिये बीज, उत्तम धनियो के लिये गौ और पिता के लिये पुत्र श्रेष्ठ है।'

यक्ष ने पूछा—'ऐसा कौन पुरुष है जो श्वास लेता हुआ भी वास्तव मे जीवित नही है?'

युधिष्ठिर बोले—'जो देवता, अतिथि, कुटुम्बीजन, पितर और आत्मा का पोषण नही करता, वह श्वास लेने पर भी

जीवित नही है।'

यक्ष ने पूछा—'पृथ्वी से भारी, आकाश से ऊँचा, वायु से वेगवान और गणना मे तिनको से अधिक क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'माता-पिता का स्नेह पृथ्वी से भारी एवं आकाश से ऊँचा है। मन वायु से भी तेज चलने वाला है। चिन्ता तिनकों से गणना मे अधिक और अनत है।'

यक्ष ने पूछा—'कौन कभी आँख नही मूंदता? कौन उत्पन्न होकर भी चेष्टा नही करता? किसमे हृदय नही है? कौन वेग से बढता है?

युधिष्ठिर बोले—'मछली आँख नही मूंदती, अण्डा उत्पन्न होकर भी चेष्टा नही करता। पत्थर मे हृदय नही है और नदी वेग से बढती है?'

यक्ष ने पूछा—'यात्रा के समय मित्र कौन है? गृहस्थ का मित्र कौन है? रोगी का मित्र कौन है? पुरुप का मित्र कौन है?'

युधिष्ठिर बोले—'साथ मे यात्रा करने वाला यात्री का, पत्नी गृहस्थ का, वैद्य रोगी का और दान मनुष्य का मित्र है।'

यक्ष ने पूछा—'प्राणियो का अतिथि कौन है? सनातन धर्म क्या है? अमृत क्या है? जगत क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'अग्नि प्राणियो का अतिथि है। अविनाशी नित्य धर्म ही सनातन धर्म है। गौ का दूध अमृत है और वायु जगत है।'

यक्ष ने पूछा—'अकेला कौन विचरता है? एक वार उत्पन्न होकर पुन. कौन उत्पन्न होता है? शीत की औपधि क्या है? महान क्षेत्र क्या है?'

युधिष्ठिर वोले—'सूर्य अकेला विचरता है। चन्द्रमा वार-वार जन्म लेता है। अग्नि शीत की औपधि है। पृथ्वी महान क्षेत्र है।'

यक्ष ने पूछा—'धर्म, यश, स्वर्ग और सुख का मुख्य स्थान क्या है? किस कर्म के आचरण से सर्वोत्तम गति प्राप्त होती है?'

युधिष्ठिर बोले—'धर्म का मुख्य स्थान दक्षता, यश का दया, स्वर्ग का सत्य और सुख का शील है। सतपात्र को दान देने से सत्य और प्रिय वचन बोलने वाले से, अहिंसा-धर्म मे स्थित रहने से मनुष्य उत्तम-गति पा सकता है।'

यक्ष ने पूछा—'मनुष्य की आत्मा क्या है? उसका दैव कृत सखा कौन है? उसके जीवन का सहारा और परम आश्रय क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'मनुष्य की आत्मा पुत्र, स्त्री दैवकृत सहचरी, मेघ जीवन का सहारा और दान परम आश्रय है।'

यक्ष ने पूछा—'धन्यवाद के योग्य पुरुषो मे उत्तम गुण क्या है? धनो मे उत्तम धन क्या है? लाभो मे प्रधान लाभ क्या है? सुखो मे उत्तम सुख क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'दक्षता ही उत्तम गुण है। धनो मे शास्त्र-ज्ञान प्रधान है। लाभो मे आरोग्यता श्रेष्ठ है। सतोष ही उत्तम सुख है।'

यक्ष ने पूछा—'लोक मे श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फल वाला धर्म क्या है? किसे वश मे रखने से मनुष्य शोक नही करते? किनके साथ की हुई मित्रता नष्ट नही होती? मनुष्य को निश्चित रूप से मिलने वाला फल किस प्रकार देखने मे आता है?'

युधिष्ठिर बोले—'दया श्रेष्ठ धर्म है। वेदोक्त धर्म नित्य-फल देने वाला है। मन को वश मे रखने से मनुष्य शोक नही करते। सत्पुरुषो के साथ की हुई मित्रता नष्ट नही होती। अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीवो मे तीन प्रकार की गतियाँ देखी जाती हैं—स्वर्गलोक की प्राप्ति, मनुष्य योनि मे जन्म और पशु-पक्षी आदि योनियो मे उत्पन्न होना।'

यक्ष ने पूछा—'किस वस्तु को त्याग करमनुष्य प्रिय, अर्थ-वान और सुखी होता है और शोक नही करता? मन और बुद्धि का उत्तम लक्षण क्या है?'

युधिष्ठिर बोले—'मनुष्य मन को त्यागने से प्रिय और काम के त्याग से अर्थवान और लोभ के त्याग से सुखी होता है, वह क्रोध को त्यागने से शोक नही करता। आत्मा की मुक्ति और मोक्ष का सम्पादन ही बुद्धि का प्रयोजन है तथा आत्मा का आश्रय लेकर ही बुद्धि विषयों की ओर जाती है। बुद्धि तो कार्य से प्रकट होती है और मन सदैव प्रकट रहता है।'

यक्ष ने पूछा—'ब्राह्मण, नट और नर्तक, सेवक और राजा को क्यों दान दिया जाता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'ब्राह्मण को धर्म, नट और नर्तक को यश, सेवको को भरण-पोषण और राजा को भय के कारण दान दिया जाता है।'

यक्ष ने पूछा—'जगत किस वस्तु से ढका हुआ है ? किसके कारण यह प्रकाशित नही होता ? मनुष्य मित्रो को क्यों त्याग देता है ? स्वर्ग में किस कारण नही जाता ?'

युधिष्ठिर बोले—'जगत अज्ञान से ढका है। तमोगुण से प्रकाश नही होता। लोभ के कारण मनुष्य मित्रो को त्याग देता है और आसक्ति के कारण वह स्वर्ग मे नही जाता।'

यक्ष ने पूछा—'मनुष्य को क्यो मृत कहते हैं ? राष्ट्र की मृत्यु क्या है ? श्राद्ध किस प्रकार मृत हो जाता है ? यज्ञ कैसे नष्ट होता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'दरिद्र मरे के समान है। श्रेष्ठ राजा के अभाव में राज्य नष्ट हो जाता है। श्रोत्रीय ब्राह्मण के अभाव में श्राद्ध मृत हो जाता है। दक्षिणा रहित यज्ञ नष्ट हो जाता है।'

यक्ष ने पूछा—'दिशा, जल, विष क्या है और श्राद्ध का समय क्या है।'

युधिष्ठिर बोले—'सत्पुरुष दिशा, आकाश जल, कामना विष और ब्राह्मण ही श्राद्ध का समय है।'

यक्ष ने पूछा—'तप का क्या लक्षण है? दम किसे कहा

गया है ? उत्तम क्षमा क्या है और लज्जा किसे कहते हैं ?'

युधिष्ठिर बोले—'अपने-अपने धर्म मे तत्पर रहना तप है। मन के दमन का नाम दम है। शीत उष्ण आदि द्वन्द्वो को सहन करना क्षमा और अयोग्य कार्य से दूर रहना लज्जा है।'

यक्ष ने पूछा—'ज्ञान, शम और सरलता किसे कहते है ? उत्तम दया क्या है ?'

युधिष्ठिर बोले—'परमात्म तत्व का बोध ही ज्ञान, चित्त की शान्ति ही शम और समदर्शी रहना ही सरलता है, सबके सुख की इच्छा ही उत्तम दया है।'

यक्ष ने पूछा—'मनुष्य का दुर्जय शत्रु कौन है ? अनन्त व्याधि क्या है ? साधु और असाधु किसे कहते है ?'

युधिष्ठिर बोले—'क्रोध शत्रु है। लोभ व्याधि है। समस्त प्राणियो का हित करने वाला साधु और निर्दयी असाधु है।'

यक्ष ने पूछा—'मोह, मान, आलस्य और शोक किसे कहते है ?'

युधिष्ठिर बोले—'धर्ममूढता मोह, आत्माभिमान मान, धर्म का पालन न करना आलस्य और अज्ञान को ही शोक कहते हैं।'

यक्ष ने पूछा—'स्थिरता, धैर्य, परम-स्नान और दान किसे कहते हैं ?'

युधिष्ठिर बोले—'धर्म में स्थिर रहना, स्थिरता, इन्द्रिय निग्रह, धैर्य, मानसिक मलो का त्याग, परम-स्नान है, प्राणियों की रक्षा, दान है।'

यक्ष ने पूछा—'पण्डित एव नास्तिक कौन है ? काम और मत्सर क्या है ?'

युधिष्ठिर बोले—'धर्मज्ञ पण्डित, मूर्ख नास्तिक, वासना काम और हृदय की दाह ही मत्सर है।'

यक्ष ने पूछा—'अहकार, दम्भ, दैव किसे कहते हैं और पैशुन्य किसका नाम है ?'

युधिष्ठिर बोले—'महा अज्ञान अहकार, अपने को झूठे ही धर्मात्मा कहना दम्भ, दान का फल दैव और दूसरो पर मिथ्या दोषारोपण पैशुन्य (चुगली) है।'

यक्ष ने पूछा—'धर्म, अर्थ और काम एक-दूसरे के विरोधी है। इनका एक स्थान पर सयोग किस प्रकार सम्भव हो सकता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जब धर्म और भार्या मनुष्य के वश रहते है, तब अर्थ और काम का साथ रहना भी सहज हो जाता है।'

यक्ष ने पूछा—'अक्षय नरक किसे प्राप्त होता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जो दीन याचक को बुलाकर नाही कह देता है, जो धर्मशास्त्र, ब्राह्मण, देवता और पितृधर्मो मे मिथ्या-बुद्धि रखता है, जो धनी लोभ वश दान से रहित है, वह अक्षय नरक मे जाता है।'

यक्ष ने पूछा—'कुल, स्वाध्याय, आचरण और शास्त्र-श्रवण इनमे किससे ब्रह्मणत्व सिद्ध होता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'ब्राह्मणत्व का हेतु आचार है, जिसका आचार नष्ट हो गया वह स्वय भी नष्ट हो जाता है। पण्डित वही है जो अपने कर्तव्य का पालन करता है, अन्य सब मूर्ख है। जो जितेन्द्रिय है वही ब्राह्मण है।'

यक्ष ने पूछा—'मधुरभाषी, सोच-विचार कर काम करने वाले, वहुत से मित्र वनाने वाले और धर्मनिष्ठ को क्या मिलता है ?'

युधिष्ठिर बोले—'मधुरभाषी को सबका स्नेह, सोच-विचार कर काम करने वाले को सफलता, वहुत से मित्र वनाने वाले को सुख और धर्मनिष्ठ को सद्गति प्राप्त होती है।'

यक्ष ने पूछा—'सुखी कौन है ? आश्चर्य, मार्ग और वार्ता क्या है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जो उऋण है वह घर मे आधा पेट भी साग खाना हो वह सुखी है, ससार मे मृत्यु नित्य प्राणियो को

प्राप्त होती है, इस पर भी जो अपने को अनश्वर मानता है, इससे वढकर आश्चर्य क्या है ? जिन नियमो का सत्पुरुष पालन करते है, वही मार्ग है। काल सव प्राणियों को मोह-रूपी कढाई मे सूर्य-रूपी अग्नि से दिन-रात दग्ध करता है, वही वार्ता है।'

यक्ष ने पूछा—'सबसे बडा धनी कौन है ?'

युधिष्ठिर बोले—'जिस मनुष्य की कीर्ति स्वर्ग और पृथ्वी पर व्याप्त रहती है, वही उत्तम पुरुष धनी है। द्वद्वो से रहित, भूत, भविष्य और वर्तमान विषयो की ओर से नि.स्पृह, शान्त-चित्त सुप्रसन्न और सदा योगयुक्त रहता है, वही धनी है।'

यक्ष ने पूछा—'तुमने मेरे प्रश्नो का उचित उत्तर दिया है अतः तुम्हारे एक भाई को मैं जीवित कर सकता हूँ।'

युधिष्ठिर बोले—'मैं महाबाहु नकुल के जीवन की याचना करता हूँ, क्योकि लोगो की दृष्टि मे मैं धार्मिक हूँ, अतः धर्म का त्याग नही करूँगा, नही तो वह मुझे भी नष्ट कर देगा। नकुल के जीवित होने से मेरी दोनो माताओ के प्रति मेरा समभाव रह सकेगा।'

यक्ष बोले—'तुमने अर्थ और काम से भी अधिक दया और समानता का आदर किया है, अत तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायेगे।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'प्रभो ! आप कौन है ?'

यक्ष बोले—'मैं तुम्हारा जन्मदाता धर्मराज हूँ। यश, सत्य, दम, शौच, सरलता, लज्जा, अचचलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य मेरे शरीर हैं। अहिसा, समता, शान्ति, दया और अमत्सर मुझ तक पहुँचने के द्वार हैं। सौभाग्यवश तुम्हारा शम, दम, उपरति तितिक्षा और समाधान इन साधनो पर अनुराग है। तुमने द्वद्वो को जीत लिया है। तुम्हारा मगल हो। जो मनुष्य मेरे भक्त है उनकी दुर्गति नही होती। तुम्हे क्या वर चाहिये, कहो ?'

युधिष्ठिर ने कहा—'अज्ञातवास के समय हमे कोई पहचान न सके। मैं लोभ, मोह और क्रोध को जीत सकूँ तथा दान, तप

और सत्य मे सदा मेरा मन लगा रहे।'

धर्मराज बोले—'तुम तो धर्मस्वरूप ही हो, तथापि तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।' इतना कह धर्मराज अतर्धान हो गये। सभी पाण्डव आश्रम में लौट आये।

## अज्ञात-वास

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने आश्रम मे आकर भाइयो से कहा—'अब बारह वर्ष बीत रहे है, तेरहवे वर्ष मे गुप्त रूप से रहकर हमे कष्ट और कठिनाइयो का सामना करना पड़ेगा, अतः हमे कोई उत्तम निवास स्थान चुनना चाहिये, जहाँ रहकर शत्रुओ को हमारा पता न चल सके।' पाण्डवो ने मिलकर निश्चय किया कि मत्स्य देश के राजा विराट बलवान, धर्मात्मा, वृद्ध, उदार एव हमारे हितैषी है, इसलिए उनका कार्य करते हुए उन्हीके नगर मे रहेंगे। अब सब अपने-अपने भावी कार्यो का निर्णय बताने लगे।

युधिष्ठिर बोले—'मैं पासा खेलने की विद्या जानता हूँ। राजा विराट को भी यह खेल प्रिय है। अत मैं कक नाम का ब्राह्मण बन उनका सभासद हो उनको मन्त्रियो तथा वधुओ सहित पासों के खेल से प्रसन्न रखूंगा। उनके पूछने पर मैं कहूँगा कि महाराजा युधिष्ठिर का मैं प्रिय सखा था।'

भीमसेन ने कहा—'मै पाकशास्त्र का पारगत विद्वान हूँ और मेरा नाम वल्लभ होगा। मैं उत्तम व्यजनो से राजा को सतुष्ट कर दूंगा। इससे राजा के सेवक मेरा सम्मान करेगे, अत मैं इच्छानुसार खाद्य पदार्थों का उपभोग कर सकूंगा। राजा के पूछने पर मैं कहूँगा कि मैं राजा युधिष्ठिर के यहां हाथियो और वृषभो का भी नियत्रण किया करता था।'

अर्जुन ने कहा—'मै राजा को अपना परिचय नपुसक के रूप मे दूंगा। यद्यपि मेरी भुजाओं मे धनुष की डोरी के निशान है

तथापि मैं आभूषणोसे इन्हे ढक लूंगा। मै कानो मे कुण्डल, हाथो मे चूडियाँ धारण कर चोटी गूथ लूंगा और अपना परिचय वृहन्नला नाम से दूंगा। स्त्री स्वभाव से अपने वास्तविक स्वरूप को छिपा पूर्ववर्ती राजाओ के चरित्रो का गान कर राजा विराट तथा अत पुर की स्त्रियो का मनोरजन करूँगा। मैं नगर की स्त्रियो को गीत, नृत्य तथा वाद्य की शिक्षा दूंगा। प्रजा के उत्तम आचार-विचार और सत्कर्मो का वर्णन करता हुआ अपने यथार्थ स्वरूप को छिपाये रखूंगा। राजा विराट के परिचय पूछने पर कहूँगा कि मैं पहले महारानी द्रौपदी की परिचारिका थी।'

नकुल ने कहा—'मेरा नाम ग्रथिक होगा। मैंने राजा युधिष्ठिर के अश्वो की कुशलतापूर्वक देखभाल की है, अत मैं राजा विराट के घोडो की देखभाल कर सकूंगा।'

सहदेव ने कहा—'मैं गौशालाध्यक्ष होकर रहूँगा। मै गायो का दूध निकालने और उनकी पहिचान के काम मे निपुण हूँ। मेरा नाम अरिष्टनेमि होगा।'

द्रौपदी वोली—'ससार मे ऐसी वहुत-सी स्त्रियाँ है जो शिल्प कार्यो द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करती है, उन्हे सैरध्री कहते है। मैं भी अपने को सैरध्री कहूँगी। यदि राजा मुझसे मेरा परिचय पूछेगा तो कहूँगी कि मैं महारानी द्रौपदी की परि-चारिका थी। मैं अपनी रक्षा स्वय कर सकूँगी।' सव भाइयो

कक—धर्मराज का पर्यायवाचक है, धर्म ही युधिष्ठिर के रूप मे अवतीर्ण हुए थे।

परागु-वायु—उसका पुत्र होने के कारण पैरागव नाम सत्य एव सार्थक है।

वल्लभ—रसोइया। पण्ढक—नपुसक। बृहन्नल—नरश्रेष्ठ।

ग्रथिक— नकुल और सहदेव देवताओ के वैद्य अश्विनीकुमारो के पुत्र हैं,अत वे चिकित्सक और वीरो के प्रधान हैं। सहदेव—अरिष्ट नेमि। तन्तिपाल—आज्ञा का पालन करने वाला, वैलो को वांधने की रस्सी को सुरक्षित रखने वाला।

और द्रौपदी का कथन सुन युधिष्ठिर को बडी प्रसन्नता हुई।

युधिष्ठिर बोले—'विराट के यहां रहकर जो-जो कार्य हमें करने है, वे सब हमने सुने है, किन्तु हमे सावधान रहकर सदा द्रौपदी की रक्षा करनी होगी। राजमहल में अज्ञात-वास के समय निवास करना अत्यन्त कठिन है, क्योकि वहाँ अपमान या अनादर सहना पडेगा, इसलिये कुछ नियमो का हमे पालन करना होगा। जिन-जिन स्थानो पर बैठने से दुराचारी मनुष्य सन्देह करते हो, वहाँ कभी न बैठे, हम विना पूछे राजा को कभी कर्तव्य का उपदेश न दे, मौन भाव से ही सबकी सेवा करे और उपयुक्त अवसर पर राजा की प्रशसा करे। हमें रानियो से ज्यादा मेल-जोल नही करना चाहिये और जो राजा का अहित चाहने वाले है, उनसे मैत्री स्थापित न करे। राजा को अग्नि के समान दाहक मानकर उसके अत्यन्त निकट न रहे और उसे देवता के समान निग्रह तथा अनुग्रह मे समर्थ जानकर उसकी कभी अवहेलना न करे। सभी विषयो मे राजा के अनुकूल रहें और ऐसी बाते न कहे जो उसे अप्रिय एव अहितकर प्रतीत होती हो। जो अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होने पर हर्षित नही होता अथवा अपमानित होने पर व्यथा का अनुभव नही करता और सदा मोह रहित हो, विवेक से काम लेता है, वही राजा के यहाँ सुखपूर्वक रह सकता है। जो सचिव सदा राजा अथवा राजकुमार की प्रशसा करता है, वही राजा के यहाँ दीर्घकाल तक टिक सकता है। अपने मन को वश में रखकर पूर्वोक्त नीति से इस तेरहवे वर्ष को हमे व्यतीत करना चाहिये।'

तदनन्तर पाण्डवो ने विराटनगर के निकट घनघोर जगल मे जो श्मशान भूमि के पास था, अपने शस्त्र एक विशाल वृक्ष के ऊपर रख दिये। युधिष्ठिर ने क्रमशः पाँचो भाइयो के जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्वल गुप्त नाम रखे।

राजा विराट के नगर में प्रवेश करते समय युधिष्ठिर ने मन ही मन त्रिभुवन अधीश्वरी दुर्गादेवी का स्तवन किया, 'हे

पुण्यमयी देवी ! तुम सबका कल्याण करने वाली हो। जो तुम्हारा स्मरण करते है, तुम उन्हे दु ख से उबार लेती हो। इच्छानुसार वर देने वाली ! तुम्हे मेरा नमस्कार है। हे ब्रह्म-स्वरूपा ! तुम तीनो लोको को पवित्र करने वाली हो। हे देवेश्वरी ! मुझ पर प्रसन्न होओ और मुझे विजय प्रदान करो। हे जया, विजया, काली, महाकाली ! जो तुम्हारा अनुसरण करते है, तुम उन्हें मनोवाछित वर देती हो। हे दुर्गे ! तुम मनुष्यो के लिये परमगति और प्राणियो को सकट से मुक्त करने वाली हो। हे महादेवी ! मैं तुम्हारे चरणो मे मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ और तुम्हारी शरण मे आया हूँ। मेरा तुमको बारबार प्रणाम है।'

युधिष्ठिर की स्तुति करने पर देवी दुर्गा ने उन्हे दर्शन दिया और कहा—'युधिष्ठिर ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हे सग्राम मे विजय प्राप्त होगी। तुम्हे सुख और आरोग्य सुलभ होगा। पाण्डवो को कौरव और अन्य नही पहचान सकेगे।' यह कह वरदायिनी-देवी दुर्गा अतर्धान हो गयी। युधिष्ठिर अब कमण्डलु हाथ मे ले पगडी धारण कर त्रिपुण्डधारी ब्राह्मण बन गये। इसी प्रकार अन्य पाण्डव और सती द्रौपदी ने भी अपनी इच्छा के अनुरूप वेष बना लिये। तदनन्तर चौसर की गोटियो सहित पासो को कपडे मे बाँध बगल मे दबा राजा युधिष्ठिर विराट की राज्य-सभा मे पहुँचे। पाण्डुनन्दन को आते देख राजा विराट की दृष्टि उन पर पडी।

राजा विराट के पास पहुँचकर युधिष्ठिर ने कहा—'महाराज ! मैं ब्राह्मण हूँ। मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया है अत. मैं जीवन-निर्वाह के लिए आपके पास आया हूँ। जैसी आपकी इच्छा होगी उसी प्रकार मैं कार्य करूँगा। मेरा नाम कक है। मैं राजा युधिष्ठिर के साथ चौसर खेलता था।'

राजा विराट बोले—'ब्राह्मण ! मुझे द्यूत क्रीडा मे निपुण मनुष्य प्रिय है, अत. आप मेरे पास सुखपूर्वक रहिये।'

युधिष्ठिर ने कहा—'नरनाथ ! मैं किसीसे विवाद नही

करूँगा और मुझसे पराजित होने वाला मनुष्य हारे हुए धन को मुझे दे देगा।' युधिष्ठिर की दोनों बातें राजा विराट ने स्वीकार कर ली और वे आदर-सत्कार के साथ सुखपूर्वक वहाँ रहने लगे।

तदनन्तर भीमसेन राजा विराट के दरबार में पहुँचे उनके हाथ में मथानी, करघी और शाक काटने के लिये तेज धार वाला चाकू था। वे काले वस्त्र पहने थे। राजा विराट के परिचय पूछने पर उन्होने कहा—'मुझे वल्लभ कहते है। मैं उत्तम व्यंजन बना सकता हूँ अतः मुझे इस कार्य के लिये रख लीजिये।'

विराट बोले—'अपनी रुचि के अनुसार तुम मेरी पाकशाला में अग्रणी होकर रहो।' तदनन्तर मलिन वस्त्र धारण कर सैरन्ध्री का वेश बनाये दीन-दुखियों की भाँति द्रौपदी को राजभवन के निकट भटकती देख विराट की रानी सुदेष्णा की दृष्टि द्रुपद-कुमारी पर पड़ी। रानी ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा—'तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो ?'

द्रौपदी बोली—'मैं सैरन्ध्री हूँ और जीविका का साधन खोज रही हूँ।'

सुदेष्णा ने कहा—'तुम तो रानी जैसी जान पड़ती हो। क्या तुम नगर की अधिष्ठात्री देवी विद्याधरी या देव-पत्नी हो ?'

द्रौपदी बोली—'रानीजी आपने जो कहा है वह मैं नही हूँ। मैं तो आपकी सेवा करने आई हूँ। मै केशो का शृंगार करना, फूलों के सुन्दर हार गूँथना जानती हूँ। मेरा नाम मालिनी है।'

सुदेष्णा ने कहा—'सुन्दरी, मुझे भय है कि कही तुम्हारी सुन्दरता देख राजा तुम पर आसक्त न हो जाये और मुझे छोड़ दे। जैसे कोई मूर्ख आत्महत्या के लिये वृक्ष पर चढ़े, उसी प्रकार तुम्हें राजमहल में रखना मेरे लिये अनिष्टकारी हो सकता है।'

द्रौपदी बोली—'आप चिन्ता न करें। मुझे कोई भी नहीं

पा सकता। मेरे पाँच शक्तिशाली गधर्व पति हैं, जो मेरी हर समय रक्षा करते है। मैं भी दुर्धर्ष हूँ। मैं जूठा अन्न नही खाती, न किसी के पैर ही धोती हूँ, जो मुझे बलात् प्राप्त करना चाहेगा,' वह उसी रात्रि स्वर्ग-लोक चला जायेगा।'

सुदेष्णा ने कहा—'आनन्ददायिनी! तुम मेरे यहाँ सुखपूर्वक रहो। तेरा कोई अनिष्ट नही करेगा। तदनन्तर सहदेव भी ग्वालो का वेष बना राज-भवन की गौशाला के पास खडे हो गये। राजा विराट ने उन्हे अपने पास बुलवाकर पूछा—'तुम कहाँ से आये हो? क्या करना चाहते हो?'

सहदेव ने कहा—'राजन्! मेरा नाम अरिष्टनेमि है। मैं गौओ की देखभाल और गणना मे निपुण हूँ। मै जीविका चलाने के उद्देश्य से यहाँ आया हूँ।'

विराट बोले—'आज से तुम मेरी पशुशाला के अध्यक्ष हुए।'

तदनन्तर रूप-सम्पदा में सम्पन्न एक स्त्री दिखाई दी जिसका डील-डौल ऊँचा था। उसने कानो मे कुण्डल, हाथो मे चूड़ियाँ और बाँहो मे आभूषण धारण कर रखे थे। उसके लबे-लबे केश खुले थे और हथिनी की चाल से वह राज-सभा के निकट आकर खडी हो गयी।

विराट ने उसे बुलाकर कहा—'तुम शक्ति और धैर्य से युक्त देवपुरुष से प्रतीत होते हो, अत. हाथ मे चूडियाँ और आभूषण क्यो पहन रखे हैं?

अर्जुन ने कहा—'मैं नपुसक हूँ। मैं सुन्दर फूलो की वेणी, कुण्डल, हार और कपड़े की चादरे बनाना जानती हूँ। मैं नृत्य और सगीत की शिक्षा निपुणता से दे सकती हूँ। मुझे बृहन्नला कहते हैं।'

विराट बोले—'नपुसक का भेप तुम्हारे योग्य नही है। तुम क्लीव होने योग्य भी नही हो। तुम्हारा वेष भगवान भूत-नाथ की भाँति अशुभ है। जैसे बादलो की घटाओ से आच्छा-

दिन आकाश में अंशुमाली सूर्य मण्डल सुशोभित होता है, उसी प्रकार इस क्लीव भेष में भी तुम पौरुष से प्रकाशित हो रहे हो। तुम मेरे यहाँ रह मेरी पुत्री उत्तरा को नृत्य और सगीत की शिक्षा दो ?'

तदनन्तर शक्तिशाली नकुल वेग से आये और राजा के घोड़ों को देखने लगे। राजा विराट ने उन्हे अपने पास बुलाकर पूछा—'तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ?' नकुल बोले—'मैं घोडों की शिक्षा देने में और सारथी के कार्य मे निपुण हूँ। मैं घोडों की जाति पहचानता हूँ और उनकी चिकित्सा भी पूर्ण रूप से जानता हूँ। मुझे ग्रन्थिक कहते है।' विराट बोले—'ग्रन्थिक ! आज से तुम मेरे घोडो की देख-भाल करो।'

इस प्रकार भगवान धर्मराज और माता दुर्गा के प्रसाद से पाण्डव विराट नगर में अज्ञातवास के दिन सुखपूर्वक व्यतीत करने लगे। महाराजा युधिष्ठिर प्रजा के प्रिय हो गये। वे राजा विराट को प्रसन्न रखते थे। अर्जुन अत.पुर मे नृत्य और सगीत की शिक्षा देकर सबका मनोरजन करते थे। सहदेव गोओ और नकुल घोड़ों की बड़ी सावधानी से देखभाल करते थे। कुछ समय पश्चात मत्स्य देश में ब्रह्माजी की पूजा का उत्सव मनाया गया। हजारों विशालकाय बलशाली मल्ल राजधानी में आये। राजा विराट ने उन सबका स्वागत सत्कार किया। उन्होने अपने रसोइये वल्लभ से एक अत्यन्त बलशाली प्रतियोगी के साथ मल्ल युद्ध करने को कहा। भीमसेन ने राजा का मान रखने के लिए रगभूमि मे प्रवेश किया। अब बलशाली जीमूत और भीमसेन मे मल्लयुद्ध होने लगा। विपुल पराक्रमी भीमसेन ने गर्जना करते हुए जैसे सिंह हाथी पर झपटता है, उसी प्रकार जीमूत को पृथ्वी पर गिराकर मार डाला। इस पर महामनस्वी राजा विराट ने अत्यन्त हर्षित हो वल्लभ (भीमसेन) को बहुत धन दिया। जब अज्ञातवास का एक वर्ष पूरा होने में कुछ ही समय शेष रह गया, तब एक दिन राजा विराट के महाबली

सेनापति कीचक ने द्रुपद कुमारी को देखा।

देवकन्या के समान कान्तियुक्ता द्रौपदी को देखकर वह अपनी बहन रानी सुदेष्णा से बोला—'यह सुन्दरी कौन है और कहाँ से आयी है ? यह दासी का काम करने योग्य नही है। मैं चाहता हूँ कि यह मेरी गृहस्वामिनी हो। वहाँ यह अत्यन्त सुख प्राप्त कर सकेगी।'

उन दोनो की वार्ता सुन द्रौपदी कीचक को डाँटती हुई बोली—'सूतपुत्र ! तुमने अपनी बहन से मेरी याचना की है, यह तुम्हारे योग्य नही है। मैं मलिन वेषधारी, हीन कुल की, केश सँवारने का काम करने वाली तुच्छ सैरन्ध्री हूँ। बुद्धिमान पुरुष अपनी स्त्री मे अनुराग रख कल्याण का भागी होता है। मनुष्य को चाहिए कि वह पाप मे लिप्त न हो और अपयश का पात्र न बने। लम्पट पुरुष का कभी कल्याण नही होता। मैं दूसरे की स्त्री हूँ, इस पर धर्मानुकूल विचार कर तुम्हे मुझमे मन नही लगाना चाहिए। अकरणीय कर्मों को त्यागना ही श्रेष्ठ है। विषयो मे आसक्त पापात्मा मनुष्य को भयकर कष्ट उठाना पडता है।' सैरन्ध्री के समझाने पर भी दुर्बुद्धि कीचक ने द्रौपदी को पाने का हठ नही छोडा।

कीचक बोला—'सैरन्ध्री ! मेरी प्रार्थना को ठुकरा कर तुम्हे पश्चात्ताप करना होगा। मैं ही इस राज्य का सच्चा स्वामी हूँ। पृथ्वी पर मेरे समान रूप, यौवन, सौभाग्य, बल और पराक्रम वाला कोई नही है। कल्याणि ! जब सम्पूर्ण मनोरथो से सम्पन्न अनुपम भोग मेरे पास सुलभ है, तब तुम दासी का काम क्यो करती हो ?'

सैरन्ध्री बोली—'तू काल के मुँह मे न जा। मेरे महाबली पाँच गधर्व पति नित्य मेरी रक्षा करते है। तू इस पाप-बुद्धि को त्याग दे और अपना सर्वनाश न कर। तू मेरा अपमान कर रहा है, अत बन्धु-बान्धवो सहित आज ही नष्ट हो जायेगा। जैसे कोई रोगी काल-रात्रि का आवाहन करे, उसी प्रकार मुझे

प्राप्त करने के लिये तू क्यों दुराग्रह कर रहा है ?' भावी कष्ट का अनुमान कर द्रौपदी ने सूर्य का मन ही मन स्मरण किया। इस पर उन्होंने एक देव को द्रौपदी की रक्षा हेतु नियुक्त कर दिया।

सुदेष्णा बोली—'भाई! यह सैरन्ध्री मेरी शरण मे आयी है। मैंने इसे अभय दे रखा है, अतः इसे कोई पुरुष मन मे दूषित भाव लेकर नही छू सकता। यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो इस सैरन्ध्री को अपने मन से हटा दो। तुम महापाप की बात कह रहे हो, अतः तुम्हारी आयु निश्चित ही समाप्त हो गयी है। तू तो यमलोक मे जायेगा ही, किन्तु अपने निरपराध स्वजनो को भी साथ ले जायेगा।'

इतना कह सुदेष्णा शोक से अत्यन्त व्यथित हो रोने लगी। तदनन्तर कीचक ने द्रौपदी को बलपूर्वक पकडना चाहा किन्तु वह शीघ्रतापूर्वक राजसभा की ओर दौडी। कीचक ने भागती हुई द्रौपदी का पीछा किया और राजा के देखते-देखते उसके केश पकड पृथ्वी पर गिराकर लात मारी। कीचक के पद-प्रहार से द्रौपदी के मुख से रक्त बहने लगा। यह देख सद्गुण-सम्पन्न सभासद और ब्राह्मण हाहाकार करने लगे। युधिष्ठिर और भीमसेन भी सभा मे बैठे थे। वे द्रौपदी पर हुए अत्याचार को सह न सके। इतने में भगवान सूर्य ने जिस देव को द्रौपदी की रक्षा हेतु नियुक्त किया था, उसने कीचक को पकडकर बडे वेग से पृथ्वी पर गिरा दिया।

द्रौपदी ने कहा—'राजन्! आप प्रजा की रक्षा तथा धर्म और सत्य मे सदा स्थित रहते है, अत आपको चाहिए कि आश्रित-जनो का पालन और सरक्षण धर्मपूर्वक करें। जो राजा धर्मासन पर बैठ प्रत्येक कार्य पर समभाव से विचार करते है, उन्हे पुण्य प्राप्त होता है। मुझ निरपराध अबला पर आपके देखते-देखते दुरात्मा कीचक ने लात मारी है, यह घोर पाप है। जो राजा अधर्मयुक्त कार्य देखता है या करता है, उस दुरात्मा

को शत्रु शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं। आप सत्यवादी धर्मपरायण राजा है, अत नरेश्वर ! मैं आपकी शरण लेती हूँ। आप मुझे इस पापी कीचक से वचाइये। पुरुपाधम कीचक यहाँ मुझे असहाय जानकर मार रहा है और धर्म की ओर नही देखता। यहाँ के सभासदो को धिक्कार है, जिन्होने यह अत्याचार देखकर भी कुछ नही किया। कीचक तो पापात्मा है ही, पर राजा और उसके सभासद भी धर्मज्ञ नही हैं।'

द्रौपदी के विलाप करने पर भी राजा विराट कीचक के भय से उस पर नियन्त्रण करने मे असमर्थ रहे और उसे उचित दण्ड नही दे सके। उन्होने मीठे शब्दो द्वारा ही उसे समझा-बुझाकर सभा-भवन से विदा किया।

तदनन्तर सैरन्ध्री रोती हुई सुदेष्णा के समीप गई। सुदेष्णा वोली—'भद्रे ! तुम क्यो रोती हो, तुम्हे किसने मारा है ?'

द्रौपदी वोली—'आप सव कुछ जानते हुए भी मुझसे पूछ रही है। कीचक ने राजमभा मे महाराज के देखते-देखते मुझ पर पद-प्रहार किया। अव शीघ्र ही अपने पापो के फलस्वरूप वह पापी निश्चय ही मारा जायेगा।' अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करने के लिये रात्रि मे वह भीमसेन के भवन मे गयी और वोली—'आर्यपुत्र ! तुम जीते जी आज नीद कैसे ले रहे हो ? तुम्हारे जीवित रहते हुए महापापी कीचक ने मुझ पर पद से आघात किया।'

भीमसेन वोला—'जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वही मैं करूँगा। तुम मुझे वह कार्य वताओ और शीघ्र अपने भवन मे चली जाओ।'

द्रौपदी ने कहा—'राजा विराट का सेनापति कीचक उनका साला है। वह दुष्टात्मा प्रतिदिन आकर मुझे अपनी पत्नी वनने के लिये कहता है। वह पापी मार डालने योग्य है, अत: कीचक के मस्तक को कुचल डालो। यदि कीचक सूर्योदय

का दर्शन कर लेगा तो मैं जीवित नहीं रहूँगी।'

भीमसेन बोला—'कृष्णे ! जिस समय विराट की सभा मे कीचक ने तुम्हें लात मारी थी, उसी समय मैं सहार मचा देता, किन्तु धर्मराज ने नेत्रों से सकेत कर मुझे ऐसा करने से रोका। शुभे ! तुम वड़ी वुद्धिमती हो, अत धर्म को न छोडो और क्रोध को त्यागो। यदि राजा युधिष्ठिर तुम्हारी करुण-कथा सुन लेगे तो प्राण त्याग देगे। प्राचीन काल मे भृगुनन्दन महर्षि च्यवन तपस्या करते-करते वावी के समान हो गये थे तो भी उनकी कल्याणमयी पत्नी मुकन्या उनकी सेवा-सुश्रूपा में लगी रहती थी। नारायणी चद्रसेना अपने सौन्दर्य के कारण विख्यात थी। उसने अपने बृद्ध पति मुद्गल ऋषि की निरतर सेवा की। सीता ने वन में अपने पति श्री रामचन्द्रजी का अनुसरण किया। उसने दीर्घकाल तक राक्षसो के वदीगृह में रहकर कष्ट उठाते हुए भी अपना धर्म नही छोडा। युवावस्था और अनुपम सौन्दर्य से सम्पन्न राजकुमारी लोपामुद्रा ने सम्पूर्ण अलौकिक सुखो पर लात मारकर अपने पति महर्षि अगस्त्य का ही अनुसरण किया। मनस्विनी सावित्री अकेली ही अपने मृत पति सत्यवान के पीछे-पीछे यमलोक गयी। कल्याणि ! इन पतिव्रता नारियो का जैसा आदर्श वताया गया है, उसी प्रकार तुम भी सभी सद्गुणो से सम्पन्न हो। अब तुम कुछ समय के लिये शान्त रहो, फिर सब कष्टों से मुक्त हो जाओगी। तुम्हे श्रेष्ठ स्त्रियो के समकक्ष अपना आदर्श उपस्थित करना चाहिये।'

द्रौपदी बोली—'प्राणनाथ भीम ! दु खो को सहन करने में असमर्थ एव आर्त होकर ही मैंने अश्रु बहाये है। मै राजा युधिष्ठिर को उलाहना नही दूगी।'

ऐसा कह द्रौपदी भीमसेन के वक्षस्थल पर मस्तक टेक फूट-फूटकर रोने लगी। भीमसेन ने उसे हृदय से लगा वहुविध सान्त्वना देकर कीचक को मारने के लिये प्रस्थान किया। कीचक उस समय नृत्यशाला में अकेला था। भीमसेन छिपकर कीचक

की इस प्रकार प्रतीक्षा करने लगे, जैसे सिह अदृश्य रहकर मृग की घात मे लगा रहता है। कीचक को देखते ही भीमसेन ने उसे पकड लिया। अव दोनो वीरो मे भयकर युद्ध होने लगा। भीमसेन ने दोनो हाथो से कीचक की छाती पर वडे वेग से प्रहार किया, जिससे आहत हो वह अपनी शक्ति खो वैठा। उसे निर्वल एव अचेत देख भीमसेन उसकी छाती पर वैठ गये और अपने पावो से उसके मस्तक को रौदने लगे। कीचक फूटे नगारे के समान विकृत स्वर मे पुकारने लगा। कुछ ही समय मे उसकी चेतना-शक्ति लुप्त हो गयी और वह मर गया। कीचक को मार भीमसेन पुन अपने स्थान पर चले गये। प्रातः काल नृत्यशाला के रक्षको ने जव कीचक को मृत देखा, तव उन्हे विश्वास हो गया कि गधर्वो ने ही उसे मारा है। कीचक की मृत्यु का समाचार सुन उसके भाई-वधु नृत्यशाला में आये और उसके शव को देख उन्हे भी विश्वास हो गया कि कीचक की मृत्यु गधर्वो के हाथो ही हुई है। गधर्वो के भय से वे दसो दिशाओ की ओर भाग गये। कीचक के मारे जाने पर राजा विराट महाराज युधिष्ठिर के प्रति आदर भाव रखने लगे।

(द्रौपदी) सैरन्ध्री ने रानी सुदेष्णा से कहा—'भद्रे राजा विराट ने गधर्वो का वडा उपकार किया है, अत., वे सदा उनके प्रति कृतज्ञ वने रहते हैं। वे साधु स्वभाव के है, अत किये हुए उपकार का प्रतिफल निश्चय ही देगे।'

सुदेष्णा वोली—'जव तक तुम्हारी इच्छा हो यहाँ रहो किन्तु मेरे पति और पुत्रो की रक्षा करना।'

पाण्डवो का पता लगाने कौरवो के गुप्तचर नगरो और देशो मे घूमकर पुन. हस्तिनापुर लौट जाते थे, और खोज के प्रयास का वृतान्त दुर्योधन को सुना देते थे। जव गुप्तचरो द्वारा पाण्डवो का कही पता नही चला, तब दुर्योधन ने इस विषय में सभासदो से परामर्श किया।

द्रोणाचार्य ने कहा—'पाण्डव शूरवीर, विद्वान, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और अपने वडे भाई की आज्ञा मानने वाले है। ऐसे महापुरुष न तो नष्ट हो सकते है न किसी से तिरस्कृत ही। उसमे धर्मराज तो नीति, धर्म और अर्थ को जानने वाले सत्य-परायण है। जो इस प्रकार विनयशील और महात्मा है, उनका भगवान भला क्यो नही करेगा ? मेरे विचार से तो पाण्डव अनुकूल समय की प्रनीक्षा कर रहे है। वे सभी तपस्या मे आवृत है, अत उन्हें पाना और पहचानना कठिन है।'

भीष्म पितामह ने कहा—'सब विषयो के तत्वज्ञ आचार्य द्रोण ने ठीक ही कहा है। वास्तव में पाण्डव शुभ लक्षणो से सम्पन्न, साधु पुरुषो के नियमों और व्रतो मे तत्पर, श्रुतियों के ज्ञाता और वडे-बूढो के आदेश का पालन करने वाले है। वे अज्ञातवास के नियत समय को जानते है। वे धर्म मे नित्य अनुरक्त रहकर भगवान श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाले है। युधिष्ठिर नीतिज्ञ है, अत जिस राष्ट्र मे वे निवास करते होगे, वहाँ के मनुष्य मधुर भाषी, जितेन्द्रिय और सत्यपरायण होगे। वहाँ वेद-ध्वनि, यज्ञ, दान होते होगे। इसलिये जहाँ ऐसे लक्षण हो, वही युधिष्ठिर का अज्ञात निवास-स्थान हो सकता है।'

कृपाचार्य ने कहा—'राजन् ! मैं वयोवृद्ध पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण के विचारों से सहमत हूँ। तुम्हे अपनी बुद्धि से अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लेना चाहिये।'

दुर्योधन बोले—'शास्त्रो के ज्ञानी, वीर और पुण्यात्मा पुरुषो के सिद्धान्तो के विषय मे जो बाते मैने सुनी है, उन पर दृष्टि डालने से मै इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि इस समय पृथ्वी पर आत्मबल-सम्पन्न, पराक्रमी और धैर्यवान चार ही पुरुष अग्रगण्य है—बलदेवजी, भीमसेन, मद्रराज शल्य और कीचक। इनमे कीचक का चौथा स्थान है। अत मेरा विश्वास है कि पाण्डव अवश्य जीवित है। सैरन्ध्री को मै द्रौपदी समझता हूँ और उसीके लिये विराटनगर में भीससेन ने कीचक का वध किया है।

पितामह ने युधिष्ठिर के निवास के प्रभाव से देश और जन समुदाय मे जो गुण वताये है, उनमे से अनेक मत्स्य-राष्ट्र की जनता मे विद्यमान है, अत वहाँ की रण-यात्रा करनी चाहिये। हम विराटनगर को नष्ट-भ्रष्ट कर उनके गोधन को ले आयेगे। ऐसी दशा मे यदि पाण्डव वहाँ है, तो हमसे युद्ध करने को वे वाध्य हो जायेगे और उन्हे वारह वर्ष पुन. वन मे जाना पडेगा।'

त्रिगर्त देश के राजा महावली सुशर्मा ने कहा—'मत्स्य तथा शाल्व देश के राजाओ ने चढाई कर हमें अनेक कष्ट दिये है। अव मत्स्यराज का सेनापति कीचक मारा गया है, अतः हम राजा विराट को परास्त कर प्रतिशोध लेने मे समर्थ हैं। राजा विराट के पास नाना प्रकार के रत्न और धन है। उनके ग्राम तथा सम्पत्ति को जीतकर हम परस्पर वाँट लेगे।'

वीर कर्ण ने कहा—'सुशर्मा की नीति उत्तम है। पाण्डव छिपे हो या यमराज के घर पहुँच गये हो, हमे तो उद्वेग-शून्य होकर विराटनगर की यात्रा करनी ही चाहिये।' राजा दुर्योधन ने सूतपुत्र कर्ण की राय के अनुसार, कृष्ण पक्ष की सप्तमी को विराटनगर पर चढाई की। छद्मवेशी पाण्डवो का तेरहवाँ वर्ष व्यतीत हो चुका था। सुशर्मा ने आक्रमण कर राजा विराट की वहुत-सी गौओ को अपने अधीन कर लिया।

जव राजा विराट और उनके साथी गौओ को छुडाने के लिये रणभूमि मे जा रहे थे, तव महाराज युधिष्ठिर (कक) ने कहा—'मैंने भी धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की है, अत मैं भी कवच धारण कर आपके साथ युद्धभूमि में चलूँगा। आपका रसोइया वल्लभ भी वलवान एव शूरवीर दिखाई देता है, उसे, गौशाला के अध्यक्ष और अश्वो की शिक्षा देने वाले गथिक को भी अस्त्र देकर रथ पर विठा दीजिये। वे गौओ के लिये युद्ध अवश्य करेंगे।' कक के ऐसा कहने पर राजा के छोटे भाई शतानीक ने उन सवको अस्त्रो से सुसज्जित कर दिया। चारो पाण्डव यथार्थ स्वरूप को छिपाकर राजा विराट के पीछे-पीछे चले। नगर से

निकलकर सूर्य के ढलते-ढलते उन्होंने त्रिगर्तों को पकड लिया। दोनों सेनाओं के छोडे हुए बाणों से ऐसा प्रतीत होता था, मानो अन्तरिक्ष चमचमाते हुए जुगनुओं से भर गया हो। सूर्यास्त के वाद अंधकार का निवारण करने चंद्रदेव उदित हुए, अतः युद्ध चलता ही रहा। त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा ने राजा विराट की सेना को मथ डाला और उन्हे पकड लिया। यह देख भीमसेन राजा सुशर्मा पर बाणो की वेगपूर्ण वर्षा करने लगे। त्रिगर्तराज अपनी सेना को पीडित देख युद्ध से पीठ दिखा भागा। भीमसेन रथ से कूद पड़े और सुशर्मा के केश पकड़ उसे पृथ्वी पर दे मारा। भीमसेन के आघात से राजा सुशर्मा मूर्छित हो गया और उन्होंने उसे बदी वना लिया। यह देख त्रिगर्त-सेना भय से व्याकुल हो इधर-उधर भाग गयी। सुशर्मा को पशु सम बधा देख महाराज युधिष्ठिर को उस पर दया आ गयी और उन्होंने उसे बधन से मुक्त कर दिया। तत्पश्चात राजा विराट ने महा पराक्रमी कुन्ती-पुत्रो का धन और मान द्वारा सत्कार किया।

जिस समय ा रगौओ ।'को ।र छुडाकर व राजार विराट राजधानी की ओर लौट रहे थे, उसी समय कौरवो ने विराट देश पर चढाई कर दी। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, शकुनि, दु शासन अश्वत्थामा, विविशति, विकर्ण, चित्रसेन, दुर्मुख और दु शल दुर्योधन के साथ थे। इन सबने राजा विराट के गोधन को वलात् हस्तिनापुर की ओर हाँकना आरम्भ कर दिया। गौओं के रक्षको ने भयभीत हो राजा विराट को इसकी सूचना दी। राजकुमार उत्तर वही बैठा था।

उसने कहा—'मैं युद्ध के लिये प्रस्थान करूँगा। मेरे लिये रथ और योग्य सारथी की व्यवस्था होनी चाहिये।'

राजकुमारी दौपदी बोली—'यह वृहन्नला पाण्डुनन्दन अर्जुन की प्रिय सारथी रह चुकी है, अत. तुम उसे सारथी वना लो। यह महाबली अर्जुन की शिष्या है, अतः धनुर्विद्या में भी

उनसे कम नहीं है। जिन दिनो अर्जुन की सहायता से अग्निदेव ने खाण्डव-वन को भस्म किया था, उस समय इसी ने वीर अर्जुन के श्रेष्ठ घोडो की वागडोर सम्भाली थी। इसीके सहयोग मे कुन्ती पुत्र अर्जुन ने खाण्डव-प्रस्थ मे विजय पायी थी। यदि यह सारथी का कार्य करने को स्वीकार कर ले तो नि.सदेह तुम कौरवो पर विजय प्राप्त कर लोगे।'

उत्तरा वृहन्नला के पास गई और वोली—'वृहन्नले! हमारे राष्ट्र की गौओ को कौरव लिये जा रहे हैं, अत उन्हे परास्त करने के लिये मेरे भैया प्रस्तुत है। वे एक योग्य सारथी ढूँढ रहे है। सैरन्ध्री ने वताया है कि तुम अश्व-विद्या मे निपुण हो और अर्जुन के प्रिय सारथी भी रह चुके हो। वृहन्नले! तुम प्रसन्न होकर मेरे भाई के सारथी का कार्य भली प्रकार करो। यदि आज तुम मेरी वात नही मानोगी तो मै प्राण त्याग दूँगी।' अर्जुन उत्तरा की प्रार्थना स्वीकार कर सवको प्रसन्न करने के लिए उत्तर के समक्ष अनभिज्ञतापूर्वक कवच पहनने लगे, जिसे देख राजकुमारियाँ हँसने लगी। उत्तर ने उन्हे कवच पहनाया और स्वय भी सूर्य के समान कान्तिमान हो रथ पर वैठकर वृहन्नला को सारथी के कार्य मे नियुक्त किया। तदनन्तर वहुत-से दिव्य धनुष और वाण ले उत्तर ने वृहन्नला के साथ युद्ध के लिये प्रस्थान किया। उस समय उत्तरा और उनकी सखियो ने विनोदपूर्वक कहा—'वृहन्नले! तुम युद्ध भूमि से कौरवो के सुन्दर वस्त्र हमारी गुडियो के लिये ले आना।'

वृहन्नला ने कहा—'यदि राजकुमार उत्तर रणभूमि मे उन महारथियो को परास्त कर देगे तो मैं अवश्य उनके वस्त्र ले आऊगी।' ऐसा कहकर वीर अर्जुन ने कौरवो की ओर घोडो को शीघ्रता से हाँका। थोडी ही दूर जाने पर विराट्-पुत्र उत्तर ने कौरवो की विशाल सेना देखी। श्मशान भूमि के निकट पहुँचकर वे दोनो समी-वृक्ष के समीप खडे हो गये। कौरव-वाहिनी समुद्र के समान जान पडती थी। उसके पैरो की धूल से

अन्तरिक्ष आच्छादित था। सभी महारथी उसकी रक्षा कर रहे थे।

उसे देख विराट पुत्र उत्तर भय से व्याकुल हो वृहन्नला से बोला—'मुझमें कौरवो के साथ युद्ध करने का साहस नही है। इस सेना में बड़े-बड़े योद्धा है, जिन्हे परास्त करना देवताओ के लिये भी अत्यन्त कठिन है। इस विशाल वाहिनी में प्रवेश करना तो दूर, मैं तो इसके सम्वन्ध में सोच भी नही सकता। यहाँ भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य इत्यादि सब के सब महान तेजस्वी धनुर्धर युद्ध-कला मे प्रवीण है, ऐसे शूरवीर कौरवो को युद्ध में जीतने के लिये मैं दुर्बुद्धि बालक कहाँ आ गया?' मूर्ख उत्तर एक साधारण मनुष्य था और छद्मवेशधारी सव्यसाची अर्जुन अद्वितीय वीर थे। अर्जुन के प्रभाव को न जानने के कारण उत्तर विलाप कर रहा था।

वृहन्नला ने कहा—'तुम भय के कारण दीन हो रहे हो। अभी तक तो शत्रुओ ने युद्ध-भूमि मे पराक्रम प्रकट भी नही किया है। तुम स्त्रियो के बीच कौरवो को हराने की प्रतिज्ञा कर युद्ध के लिये निकले थे, अत· उन आततायी कौरवो के समीप मैं तुम्हे ले चलती हूँ। मैं अब गौओ को लौटाये बिना नगर मे प्रवेश नही करूँगी। सैरन्ध्री ने मेरी बहुत प्रशसा की है, अत: मैं भी कौरवों के साथ युद्ध करूँगी।'

उत्तर बोला—'बृहन्नले! कौरव भले ही हमारा धन इच्छानुसार हर ले और मेरा उपहास करे, किन्तु मैं इनसे युद्ध नही करूँगा।'

ऐसा कह अभिमान को त्याग शस्त्रो को रथ पर छोड राजकुमार भयभीत हो भाग चला। धनजय भी रथ से कूद पडे और दौडकर उसे पकड लिया। दौडने के कारण उनकी चोटी खुल गई। यह देख कौरव सैनिक हँसने लगे। वे कहते थे कि वीर अर्जुन के अतिरिक्त कौन इस पृथ्वी पर है, जो हम लोगों का सामना कर सके। विलाप करते हुए उत्तर को अर्जुन रथ

के पास ले आये और कहा—'यदि तुममे शत्रुओ के साथ युद्ध करने का उत्साह नही है, तो मैं शत्रुओं से युद्ध करूँगी, तुम घोडो की वागडोर सम्भालो।' तत्पश्चात अर्जुन ने युद्ध की कामनाओ से रहित भय से व्याकुल राजकुमार उत्तर को भली-भाँति समझा-बुझाकर सारथी के स्थान पर विठा दिया और शमी वृक्ष पर चढकर वहाँ रखे हुए शस्त्र उतार लाने को कहा। उत्तर वृहन्नला के भय से वृक्ष पर चढ गया और एक विशाल गठरी, जो शस्त्रो से भरी थी, उतारकर वृहन्नला को दे दी।

उत्तर ने पूछा—'वृहन्नले! ये किसके शस्त्र हैं?'

अर्जुन ने कहा—'ये पाण्डवो के शस्त्र है। अज्ञातवास के पूर्व उन्होने इन्हे यहाँ छिपा दिया था। मैं अर्जुन हूँ। अभी वार्ता का समय नही है, अत शीघ्रता से रथ को कौरव सेना के पास ले चलो। तुम स्वस्थ चित्त हो जाओ और इस सग्राम-भूमि मे मुझे शत्रुओ के साथ भयकर युद्ध करने दो।'

उत्तर वोला—'मेरे मन मे अव भय नही है। अव मैं आपकी सहायता से देवताओ का भी सामना कर सकता हूँ। नरपुगव! जैसे भगवान वासुदेव का सारथी दारुक है और इद्र का मातलि, उसी प्रकार मुझे भी आप सारथी के कार्य मे पूर्ण शिक्षित मानिये।'

तदनन्तर पराक्रमी अर्जुन ने हाथो से कड़े और चूडियाँ उतार दी और हथेलियो मे कवच धारण कर लिये। फिर उन्होने अपने केशो को श्वेत वस्त्र से वाँध लिया और पूर्व की ओर मुख कर एकाग्रचित्त हो सम्पूर्ण अस्त्रो का ध्यान किया। उन्होने वडे वेग से गाण्डीव धनुप पर प्रत्यचा चढाकर टकार की। उस टंकार-ध्वनि को सुन कौरवो ने समझा, कही विजली टूट पडी है।

अर्जुन ने उत्तर से कहा—'अव तुम रथ पर अच्छी तरह से वैठ जाओ, घोडे की रास दृढतापूर्वक पकडे रहो क्योकि युद्ध शीघ्र ही आरम्भ होगा।

द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा—'मेरा तो विश्वास है कि गाण्डीवधारी अर्जुन युद्धस्थल मे हम लोगो पर आक्रमण करने आ रहा है। मुझे सब शकुन विपरीत दिखाई देते है; अतः अपनी पराजय अवश्यम्भावी है।'

दुर्योधन बोला—'यदि अज्ञातवास पूर्ण होने के पहले ही अर्जुन आ गया, तो पाण्डवों को पुनः बारह वर्ष वनवास मे निवास करना होगा। इनके तेरहवे वर्ष की समाप्ति में कुछ कमी है या वह पूर्ण हो चुका, यह भीष्मजी ही जानते है। राजा विराट की सेना में से कोई महापराक्रमी योद्धा अगुआ बनकर हमें जीतने आया हो, यह भी सभव है। राजा विराट अथवा अर्जुन ही उनकी ओर से आया हो, तो भी हमें उससे युद्ध करना ही है। हमारे श्रेष्ठ महारथी भ्रान्त-चित्त हो क्यों चुपचाप बैठे है? युद्ध के अतिरिक्त हमारा कल्याण नही है। मैं आप सब आयुष्मानों को भयभीत एव त्रस्त देखता हूँ। आप लोगो का मन युद्ध मे नही लग रहा है, यह मुझे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है।'

द्रोणाचार्य ने क्रोधपूर्वक कहा—'पाण्डवो ने अनेक वीरता-पूर्ण कार्य किये है, बताओ तुमने कितने किये? तुम क्रोध में भरे हुए विपधर सर्प के मुख मे अपना दाहिना हाथ डालना और तर्जनी अगुली से उसके दाँत उखाडना चाहते हो। तुम शरीर मे घृत पोत कर प्रज्वलित अग्नि के भीतर से निकलना चाहते हो। तुमने अस्त्र-शस्त्र की पूर्ण शिक्षा प्राप्त नही की और कुन्ती-पुत्र अर्जुन जैसे बलवान वीर से युद्ध करना चाहते हो? अत तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। कौरवो ने पाण्डवो को तेरह वर्ष तक वन मे रखकर इनके साथ कपट-पूर्ण व्यवहार किया है, अब वे प्रतिज्ञा के बधन से मुक्त हो गये है। बधन से छूटे हुए सिंह की भाँति क्या वे हमारा नाश न कर डालेगे? अर्जुन के पास हम अज्ञानवश आ पहुँचे है, इसलिये भारी सकट मे पड गये है।'

अश्वत्थामा बोला—'दुर्योधन! जैसे सूर्य मौन रहकर ही

प्रकाशित होते हैं, पृथ्वी चुप रहकर ही चराचर को धारण करती है, इसी प्रकार विद्वान पुरुष युद्ध मे विजय तथा धन राशि पाकर भी अपनी बडाई नही करते। धृतराष्ट्र के पुत्रों का सहार करने के लिए ही धनजय प्रकट हुए है और प्रतिशोध लेने के लिये हम लोगो का सहार कर डालेगे। जैसे गरुड जिस-जिस वृक्ष पर पैर रखते है उसे अपने वेग से गिराकर चले जाते हैं, उसी प्रकार अर्जुन जिस-जिस महारथी पर आक्रमण करेगे, उसे नष्ट करके ही आगे वढेगे।'

भीष्मजी वोले—'आचार्य द्रोण और अश्वत्थामा का कथन ठीक है। परस्पर विरोध का यह समय नही है, जवकि अर्जुन युद्ध के लिये उपस्थित है। मनीषी पुरुषो ने विनाश करने वाले जितने मार्ग वताये हैं, उनमे फूट ही सवसे प्रधान है। मेरी गणना के अनुसार पाण्डवो के वनवास को तेरह वर्ष पाँच महीने और वारह दिन हो चुके है।'

भीष्मजी के वचन सुन दुर्योधन ने आचार्य द्रोण से क्षमा-याचना की। उधर अर्जुन राजा दुर्योधन के पास पहुँच गये, जो हस्तिनापुर की ओर गौएँ लेकर जा रहा था। वे उस पर शीघ्रता से टिड्डी-दल की भाँति वाणो की वर्षा करने लगे। युद्ध मे वाणो से आहत हो कौरव सेना धराशायी हो रही थी। अर्जुन ने गौओ को शत्रुओ से छुडा लिया और वे मत्स्य देश की राजधानी की ओर स्वत भाग गयी।

जव अर्जुन दुर्योधन से युद्ध कर रहा था तव कृपाचार्य ने अपने सेनापतियो से कहा—'हमें राजा दुर्योधन की रक्षा करनी चाहिये। राजा दुर्योधन पार्थ-रूपी जल में पुरानी नाव की भाँति डूव रहा है। कृपाचार्य का आदेश पाकर कर्ण, विकर्ण, चित्रसेन, सग्रामजित, शत्रुसह, शत्रुतप तथा जय आदि महा-रथी दुर्योधन की रक्षा के लिये पहुँचे। अर्जुन के वाणो से पीडित हो विकर्ण युद्ध-भूमि से भाग गया, किंतु राजा शत्रुतप मारा गया। अर्जुन ने कर्ण के छोटे भाई सग्रामजित का मस्तक

धड़ से अलग कर दिया। जैसे गरुड किसी नाग पर टूट पडता है वैसे ही वीर अर्जुन ने कर्ण पर आक्रमण किया। अब दोनो मे घमासान युद्ध होने लगा। कर्ण को अर्जुन का पराक्रम असह्य हो उठा और वह रणभूमि से भाग गया। जैसे सूर्य अनन्त किरणो द्वारा पृथ्वी को आच्छादित कर देते है, उसी प्रकार अर्जुन ने वाणो द्वारा कौरव-सेना को ढक दिया और प्रलयकालीन अग्नि के समान शत्रुओ को भस्म करने लगे। पार्थ का अद्वितीय पराक्रम देख कौरव मानने लगे कि अर्जुन के रूप मे साक्षात काल ही सबका सहार कर रहा है। कृपाचार्य बल और पराक्रम से सम्पन्न थे उन्होने पूर्ण बल का प्रयोग कर अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन ने उनके शस्त्रो का प्रतिकार कर उन पर साधारण बल से वाणो की वर्षा की, किंतु कृपाचार्य उनके आघात से पीडित हो रथ से पृथ्वी पर गिर पडे। अर्जुन ने उनके गौरव की रक्षा करने के लिये उन पर और आघात नही किया। कौरव सैनिक कृपाचार्य को युद्धभूमि से हटा ले गये। अब द्रोणाचार्य ने अर्जुन पर आक्रमण किया। अर्जुन उन्हे प्रणाम कर युद्ध करने लगे। महापराक्रमी द्रोण ने अर्जुन के रथ को वाणो से आच्छादित कर दिया। पार्थ ने आचार्य के वाणो को नष्ट कर उन पर अपने शस्त्रो से कोमल आघात किया। वे दोनों दिव्यास्त्रों द्वारा धर्म-युद्ध कर रहे थे। कुछ ही समय में आचार्य के कवच और ध्वज छिन्न-भिन्न हो गये और वे स्वय भी आहत हो गये, अत युद्ध स्थल से भाग निकले। तदनन्तर अश्वत्थामा और दु.शासन अर्जुन से युद्ध करने लगे। किन्तु वे भी रणभूमि छोड भाग गये। शान्तनुनन्दन पितामह भीष्म अपने पक्ष के योद्धाओ का सहार होता देख अर्जुन से युद्ध करने लगे। भीष्म पितामह ने अनेक बाणो द्वारा अर्जुन पर आघात किया, किन्तु अर्जुन ने उन शस्त्रों का निवारण कर भीष्म की ध्वजा काट पृथ्वी पर गिरा दी। इस प्रकार कुछ समय तक सम्पूर्ण दिव्य अस्त्रो के ज्ञाता भीष्मजी और अर्जुन का युद्ध

चलता रहा। तदनन्तर अर्जुन ने तेजस्वी भीष्म का धनुष काट उन्हे निश्चेष्ट कर दिया। ऐसी दशा मे भीष्मजी की प्राण-रक्षा के उद्देश्य से उनका सारथी उन्हें संग्राम भूमि से दूर ले गया। महारथी कुन्तीकुमार ने अपने अस्त्रो से जब सब योद्धाओ को एक-एक कर परास्त एव तिरस्कृत कर दिया, तब वे सब मिल-कर उससे युद्ध करने लगे। वीर अर्जुन ने सबको अपने अस्त्रो से मूर्च्छित कर दिया और उत्तर ने उन वीरो के शरीर से कुछ वस्त्र उतार लिये।

जब दुर्योधन को चेतना-शक्ति आई, तब वह भीष्म के पास जाकर बोला—'पितामह! पार्थ आपके हाथो से कैसे बच गया? आप इसे शीघ्र मार डालिये।'

भीष्मजी ने हँसकर कहा—'जब तुम अचेत पडे थे, तब तुम्हारा पराक्रम और बुद्धि कहाँ चली गयी थी? वीर अर्जुनने हमसे पाप-पूर्ण एव निर्दय व्यवहार नही किया है। वह त्रिलोकी के राज्य के लिये भी अपना धर्म नही छोड़ता। यही कारण है कि उसने हम सबके प्राण नही लिये हैं। तुम शीघ्र ही कुरु-देश को लौट जाओ, इसीमे सबका कल्याण है। पितामह के हितकर वचन सुन राजा दुर्योधन ने युद्ध की इच्छा त्याग दी और सब वीरो ने हस्तिनापुर लौटने का निश्चय किया। कौरव-वीरो को वहाँ से प्रस्थान करते देख प्रसन्न-मन अर्जुन ने भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण और अन्य गुरुजनों को प्रणाम किया। युद्ध मे कौरवो को जीत वीर अर्जुन विराट का गोधन लौटा लाये। उन्होंने पूर्ववत् सिर पर वेणी धारण कर ली और घोड़ो की रास सभालकर प्रसन्नतापूर्वक राजधानी मे प्रवेश किया। जब वीरवर विराट सिंहासन पर बैठे थे, उस समय कुन्ती-पुत्रो के साथ अन्य महारथी राजा की सेवा के लिये वहाँ उपस्थित थे। इसी समय ग्वालो ने उन्हे उत्तर के विजयी होने की सूचना दी।

युधिष्ठिर बोले—'महाराज! सौभाग्य की बात है कि कुमार उत्तर ने गौएँ जीत ली और कौरवो को भगा दिया।

जिसका सारथी वृहन्नला हो, उसकी विजय तो निश्चित ही होनी चाहिये। वृहन्नला की समानता इद्र का सारथी मातलि भी नही कर सकता।'

राजा विराट कुपित हो बोले—'अधम ब्राह्मण ! तुम मेरे पुत्र के पराक्रम मे अधिक वृहन्नला की प्रशसा करते हो ? तुम मित्र हो, अत. तुम्हारे अपराधो को मै क्षमा करता हूँ।'

युधिष्ठिर ने कहा—'जहाँ द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण और दुर्योधन हो, उन सगठित वीरो का वृहन्नला के अतिरिक्त कौन सामना कर सकता है ? वृहन्नला जैसा सहायक होने पर राजकुमार उत्तर विजयी क्यों न होगा ?'

यह सुन राजा विराट पुन कुपित हो उठे। उन्होने एक पासा युधिष्ठिर के मुख पर दे मारा। पासे के आघात से युधिष्ठिर की नाक से रक्त की धारा बह चली। सती-साध्वी द्रौपदी ने युधिष्ठिर की नाक से जो रक्त बह रहा था, उसे स्वर्ण-पात्र में ले लिया। तदनन्तर राजकुमार उत्तर ने सभा-भवन में प्रवेश कर पिता विराट और कक को प्रणाम किया। उत्तर ने देखा निरपराध कक की नाक से रक्त बह रहा है और सैरन्ध्री उनकी सेवा कर रही है।

उत्तर ने पूछा—'पिताजी ! इन्हे किसने मारा है ?'

विराट बोले—'मैंने ही इस कुटिल को मारा है, क्योकि जब मैं तुम्हारे शौर्य की प्रशसा कर रहा था, तब यह उस हिजडे की बडाई करने लगा।'

उत्तर बोला—'राजन् ! आपने इन्हे मारकर बडा अनुचित कार्य किया है। शीघ्र ही इन्हे मनाइये, अन्यथा ब्राह्मण का भयकर क्रोध-विष आपको जड-मूल सहित भस्म कर देगा।'

पुत्र का यह हितकर वचन सुन राजा विराट ने युधिष्ठिर से क्षमा माँगी। जब युधिष्ठिर की नाक से रक्त बन्द हो गया, उस समय वृहन्नला ने राजसभा मे प्रवेश कर राजा विराट

और कंक को प्रणाम किया।

उत्तर ने कहा—'पिताजी ! मैंने शत्रुओ पर विजय नही पायी है। यह सब कार्य तो किसी देव कुमार ने किया है। मैं तो डरकर भाग रहा था, किन्तु वह देव-पुत्र मुझे लौटाकर स्वय ही रथी बन बैठा। उसने कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भीष्म पितामह और दुर्योधन को अस्त्रो के द्वारा युद्ध-भूमि से भगा दिया।'

विराट बोले—'बेटा ! वह यशस्वी देवपुत्र अब कहाँ है ? मैं उस महापराक्रमी वीर को देखना और उसका सत्कार करना चाहता हूँ।'

उत्तर बोले—'वह महाबली देवपुत्र अतर्धान हो गया है, किन्तु शीघ्र ही वह यहाँ प्रकट होगा।' इस प्रकार सकेतपूर्वक बताने पर भी राजा विराट अर्जुन को न पहचान सके। विराट की आज्ञा से वृहन्नला रूपी अर्जुन ने उत्तरा को वे वस्त्र जो महारथियो से उतारे थे, दे दिये। तदनन्तर तीसरे दिन महारथी पाण्डव आभूषणो से विभूषित प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो राजसभा मे पहुँचे।

वीर अर्जुन ने सर्वप्रथम कक का परिचय देते हुए कहा—'ये ही कुरुवश मे सर्वश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर हैं। ये बुद्धिमान, तपस्या के परम आश्रय और मूर्तिमान धर्म है। महाराज ! ये जो वल्लभ नामधारी आपके रसोइये हैं, ये अत्यन्त बलशाली भीमसेन है। ये माद्री के पुत्र महारथी वीर नकुल और सहदेव है। यह विकसित कमल दल के समान विशाल नेत्रो वाली सैरन्ध्री महारानी द्रौपदी है, जिसके धर्म की रक्षा के लिये भीमसेन ने दुरात्मा कीचक का वध किया था। मैं भीम से छोटा भाई कुन्ती-पुत्र अर्जुन हूँ। राजन् ! हम लोगो ने बड़े सुख से आपके महल मे अज्ञातवास का समय बिताया है।' पाण्डव वीरो के परिचय के पश्चात विराट कुमार उत्तर ने कहा—'ये ही वे

देव-पुत्र हैं, जिन्होने शत्रु को पराजित किया है। पाण्डव महान पराक्रमी, सर्वश्रेष्ठ, पूजनीय और सम्मान के योग्य है।' राजा विराट ने सब पाण्डवो को हृदय से लगाया और धनजय से अपनी कन्या उत्तरा को अपनी पत्नी रूप में स्वीकार करने के लिये आग्रह किया। वीर अर्जुन ने उत्तरा को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने की अनुमति दी। उन्होने कहा—'यह कन्या मुझे पिता और आचार्य की भाँति मानती आयी है। मै पुत्र-वधू और पुत्री में कोई भेद नही मानता, अत हम दोनो की पवित्रता भी स्पष्ट हो जायेगी। मेरा पुत्र अभिमन्यु आपका सुयोग्य जमाता और उत्तरा का उपयुक्त पति होगा।' इस प्रस्ताव के अनुसार राजा विराट ने उत्तरा का विवाह बडी धूमधाम से सुभद्रा-कुमार वीर अभिमन्यु से कर दिया।

विवाह विधिपूर्वक सम्पन्न होने के पश्चात भगवान श्रीकृष्ण ने सभा में एकत्रित राजाओ से कहा—'शकुनि ने पाण्डवो का राज्य छल से हरण किया था और पाण्डवों ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वनवास मे निवास किया है। पाण्डव सदा सत्य पर दृढ रहते है। इनमे पृथ्वी को जीतने की शक्ति है, किन्तु ये शान्तिप्रिय है। जिस उपाय से धर्मराज युधिष्ठिर और राजा दुर्योधन का हित हो, उस पर विचार कर आप लोग अपना निर्णय दे। धर्म के विरुद्ध देवताओ का राज्य भी पाण्डव नही चाहेगे। कौरवो के लोभ और युधिष्ठिर के धर्म-ज्ञान को ध्यान में रखते हुए सब अपना-अपना मत प्रकट करे। मेरे विचार से कोई धर्मशील, कुलीन पुरुष दूत बनकर कौरवो के पास जाये और उन्हें युधिष्ठिर को आधा राज्य देने के लिये हम सबकी सम्मति सुनाये। भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुन सभी आमत्रित राजाओ ने उनका अनुमोदन किया और कहा—'यदि कौरव यह प्रस्ताव नही मानेगे तो हम सब मिलकर पाण्डवो का पक्ष ले उनसे युद्ध करेगे।'

तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण और अन्य राजा अपने-अपने राज्यों को चले गये। राजा द्रुपद ने सबकी सम्मति के अनुसार वयोवृद्ध विद्वान पुरोहित को कौरवों के पास भेजा। इधर पाण्डव धन और सेना का संग्रह करने लगे।

# युद्ध

वैशम्पायनजी ने कहा—'जनमेजय ! पाण्डव युद्ध मे उनके सहायक होने के लिये राजाओ को यत्र-तत्र निमन्त्रण भेजने लगे। कुन्तीपुत्र परमश्रेष्ठ धनजय स्वय ही द्वारिका मे भगवान श्रीकृष्ण के पास गये। राजा दुर्योधन को अपने गुप्तचरो द्वारा पाण्डवो की सारी चेष्टाओ का पता रहता था। जब उसने सुना कि अर्जुन द्वारिका मे भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध के लिये सहायता माँगने जा रहा है, तब वह भी शीघ्रगामी रथ पर सवार हो द्वारिका की ओर चल दिया। द्वारिका के राजमहल में एक साथ दोनो ने प्रवेश किया। उस समय भगवान श्रीकृष्ण शयन कर रहे थे। अर्जुन भगवान के शयनागार मे प्रथम प्रवेश कर वडी नम्रता के साथ हाथ जोड उनके चरणो की ओर खडा हो गया। इसके वाद दुर्योधन ने भी शयनागार मे प्रवेश किया और एक सिहासन पर जो भगवान के सिरहाने पर रखा हुआ था, वैठ गया। जगने पर भगवान ने पहले अर्जुन को देखा और उसके आगमन का कारण पूछा।

वीच में ही दुर्योधन ने कहा—'माधव! मै आपके महल मे पहले आया हूँ। श्रेष्ठ पुरुषो के सदाचार का अनुसरण करने वाले पहले आये प्रार्थी की ही सहायता करते है। जनार्दन! आप ससार के सत्पुरुषो मे श्रेष्ठ है और सभी सर्वदा आपको सम्मान की दृष्टि से देखते है, अत आप सत्पुरुषो का आचार पालन कर मुझे ही सहायता प्रदान करे।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! इसमे सदेह नही कि आप ही मेरे यहाँ पहले आये है, परन्तु मैने पहले अर्जुन को

देखा है। दुर्योधन ! मैं दोनो की ही सहायता करूँगा। शास्त्र की आज्ञा है कि बालको को पहले उनकी अभीष्ट वस्तु देनी चाहिये, अत अर्जुन अवस्था मे आपसे छोटा होने के कारण वस्तु पाने का प्रथम अधिकारी है।'

फिर उन्होने अर्जुन से कहा—'हे अर्जुन ! एक ओर मेरे पास अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित विशाल सेना है और दूसरी ओर मैं नि शस्त्र अकेला रहूँगा और युद्ध नही करूँगा। इन दोनो मे कोई एक जो तुम्हे प्रिय जान पडे उसे चुन लो।' यह सुन अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण को ही चुना। इस पर राजा दुर्योधन ने हर्ष सहित यादवो की विशाल सेना स्वीकार की और मन-ही-मन अर्जुन को अत्यत मूर्ख समझा। तदनन्तर राजा दुर्योधन ने महाबली बलरामजी के पास जा युद्ध के लिये सहायता माँगी।

बलरामजी दुर्योधन से बोले—'राजन ! मैंने श्रीकृष्ण से कहा था कि हमारे लिए दोनो पक्ष ही समान रूप से सबधित है, इसलिए किसी का भी पक्ष हमे नहीं लेना चाहिए, किन्तु श्रीकृष्ण ने मेरी राय नही मानी। मै श्रीकृष्ण को छोड एक क्षण भी अन्यत्र नही ठहर सकता, अत मैं न तो अर्जुन की सहायता करूँगा न तुम्हारी ही।' तत्पश्चात राजा दुर्योधन हर्षित हो यादवों की विशाल सेना के साथ हस्तिनापुर लौट गया।

राजा दुर्योधन के चले जाने पर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा—'पार्थ ! मैं तो युद्ध करूँगा नही, फिर क्या सोचकर तुमने मुझे चुना है ?'

अर्जुन बोला—'भगवन् ! आप नि शस्त्र भी सबको नष्ट करने मे समर्थ है। आप जहाँ भी रहेगे, यश आपका ही अनुसरण करेगा। आपकी कृपा से मै सब शत्रुओ का सहार कर सकूगा। मेरे मन मे बहुत दिनो से अभिलाषा थी कि अपने जीवन-रथ की बागडोर आपके हाथ सौप दूँ। मेरी इस चिरकालिक अभिलाषा को अब आप पूर्ण करे।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'अर्जुन ! मै तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करने के लिए तुम्हारा सारथ्य करूँगा।' यह सुन अर्जुन हर्षित हो भगवान श्रीकृष्ण से विदा ले राजा युधिष्टिर के पास आ पहुँचे और उन्हें सारा वृतान्त कह सुनाया।

पाण्डवों से उनके साथ सम्मिलित होकर युद्ध करने का निमत्रण मिलने पर राजा शल्य विशाल सेना ले हस्तिनापुर की ओर चला। राजा दुर्योजन ने महारथी राजा शल्य का आगमन सुन स्वय ही मार्ग मे उनका सत्कार करना आरम्भ कर दिया। वहाँ उसने अलौकिक वस्तुएँ शल्य को भेट की। उनसे अत्यन्त प्रसन्न हो, उसने सेवको से पूछा—'मैं किसका आतिथ्य ग्रहण कर रहा हूँ ? मैं अपने सम्मान से उसका ऋणी हूँ, इसलिए मै प्रसन्नतापूर्वक उसकी आशा पूर्ण करूँगा।'

फिर दुर्योधन मामा शल्य के पास गया और उससे अपनी सेना के अधिनायक होने की प्रार्थना की, 'राजन् ! आपके लिये जैसे पाण्डव है, वैसा ही मैं हूँ। प्रभो ! मैं आपका भक्त हूँ, अतः मुझे आप अपनाइये।'

शल्य बोले—'राजन् ! तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही मैं करूँगा। अब मैं युधिष्ठिर से मिलकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आऊँगा।'

पाण्डु-पुत्रो से मिलकर महाबाहु शल्य ने उनके द्वारा दिये हुए पाद्य और अर्घ्य को ग्रहण किया। तत्पश्चात मद्रराज शल्य ने प्रसन्नता के साथ राजा युधिष्ठिर और अन्य पाण्डवों को हृदय से लगा आशीर्वाद दिये। द्रौपदी, सुभद्रा तथा अभिमन्यु ने राजा शल्य को प्रणाम किया।

राजा युधिष्ठिर ने दोनों हाथ जोडकर शल्य से कहा—'राजन् ! आपका स्वागत है। आपका परिवार कुशल तो है ?'

शल्य ने इन प्रश्नो का यथा-युक्ति उत्तर दिया और कहा—'नरेश ! यह बडे सौभाग्य की बात है कि वनवास के कष्टों से तुम्हारा छुटकारा हो गया। तुम लोगो ने निर्जन वन में अज्ञात

वास कर अत्यन्त दुष्कर कार्य सम्पन्न किया है। जो अपने राज्य से वचित हो जाता है, उसे कष्ट ही उठाना पडता है। नरेश्वर ! तुम्हें लोकतत्र का सम्यक् ज्ञान है, इसलिये तुम सदा तपस्या, दान और सत्य मे ही सलग्न रहते हो तथा लोभ-जनित कोई भी विचार मन मे नही आने देते। राजन ! तुम मे तो क्षमा, इद्रिय-सयम, कोमलता, उदारता, ब्राह्मण-भक्ति और बहुत से धर्म प्रतिष्ठित हैं, इसलिए युद्ध में विजय प्राप्त करोगे।' तदनन्तर राजा शल्य ने दुर्योधन से मिलने, उससे सेवा-सुश्रूषा ग्रहण करने और उसे वरदान देने की सारी बातें पाण्डवों को कह सुनायी।

युधिष्ठिर बोले—'महाराज ! आपने प्रसन्नचित्त होकर दुर्योधन को सहायता देने का जो वचन दिया, वह अच्छा ही किया। किन्तु पृथ्वीपते ! आप भगवान श्रीकृष्ण के समान सग्राम मे सारथी का काम करने योग्य है, इसलिए कर्ण और अर्जुन के युद्ध मे यदि आपको कर्ण के सारथी का कार्य करना पड़े तो अर्जुन की रक्षा करनी होगी। आपको कर्ण का उत्साह भग करते रहना होगा, यही हमारी प्रार्थना है।'

शल्य ने कहा—'पाण्डुनदन ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी इच्छा मैं यथाशक्ति अवश्य पूर्ण करूँगा। इसके अतिरिक्त और भी जो कुछ मुझसे हो सकेगा, वह प्रिय कार्य तुम्हारे लिये मैं अवश्य करूँगा। तुम्हारे सभी दु ख भविष्य मे सुख के रूप मे परिवर्तित हो जायेगे। विधाता का विधान अति प्रबल है, इसलिए महापुरुषों ने समय-समय पर कष्ट उठाया है। इस विषय मे तुम्हे एक पूर्वकाल मे घटित इतिहास सुनाता हूँ

'पूर्वकाल मे त्वष्टा नाम के एक प्रजापति थे। उस महान तपस्वी ने इन्द्र से द्रोह हो जाने के कारण,एक तीन सिर वाला पुत्र उत्पन्न किया, जिसका नाम विश्वरूप था। विश्वरूप तपस्वी, जितेन्द्रिय और कोमल स्वभाव वाला था तथा धर्म और तप मे सलग्न रहता था। उस तेजस्वी बालक का सत्य और तपोबल देख अपने आसन से च्युत होने के भय से इन्द्र चिंतित

रहने लगे। उन्होंने त्रिशिरा के वध का निश्चय कर उसे अपने वज्र से मार डाला। त्रिशिरा के मारे जाने पर भी वह अपने तेज से जीवित-सा दिखाई देता था। उस ऋषिकुमार की हत्या का क्रूर कर्म करने से इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लग गया। इन्द्र ब्रह्महत्या से मुक्ति पाने के लिए कठिन व्रत तथा तपस्या मे संलग्न हो गये। जब त्वष्टा प्रजापति ने सुना कि इन्द्र ने उनके पुत्र त्रिशिरा को मार डाला है तब उनकी आँखे क्रोध से लाल हो गयी। वे सोचने लगे कि मेरा पुत्र तो सदा क्षमाशील, संयमी और जितेन्द्रिय रहकर तपस्या मे सलग्न रहता था, तथापि बिना किसी अपराध के इद्र ने उसकी हत्या की ? अत उसके विनाश के लिए मैं वृत्रासुर को उत्पन्न करूँगा। ऐसा कह तपस्वी और महायशस्वी त्वष्टा ने वृत्रासुर को उत्पन्न किया और उससे कहा—वत्स ! तुम इन्द्र को मार डालो ! त्वष्टा की आज्ञा से वृत्रासुर ने इद्र को पकड लिया, तब इद्र ने भगवान विष्णु की आराधना की।

'हे सुर श्रेष्ठ ! वृत्रासुर ने सम्पूर्ण जगत को आक्रान्त कर लिया है। उसे मारने का कोई उपाय बताइये ?'

भगवान विष्णु बोले—'देवराज इद्र ! इस समय तुम ऋषियो और गधर्वो को भेज वृत्रासुर से सन्धि कर लो। समय आने पर वृत्रासुर मारा जायेगा।'

इद्र ने ऋषियों और गधर्वो को वृत्रासुर के पास सन्धि का प्रस्ताव देकर भेजा। वृत्रासुर ने कहा—'यदि आप सब मुझे वरदान दे कि मै देवताओ के द्वारा न सूखी, न गीली वस्तु से, न पत्थर से, न लडकी से, न शस्त्र-अस्त्र से, न दिन, न रात मे ही मारा जाऊँ, तब तो मै इद्र के साथ सन्धि कर लूँगा।' वृत्रासुर की बात सुन, ऋषि-मुनि और गधर्वों ने उसे वह वरदान दे दिया। इन्द्र और वृत्रासुर मे सधि स्थापित होनेके पश्चात वे दोनो हर्षित हो परस्पर मिलने लगे, किन्तु इद्र वृत्रासुर के वध की ही चिन्ता किया करते थे।

इद्र ने सध्याकाल मे सोचा कि अब न रात्रि है, न दिन, समुद्र का फेन न सूखा है, न गीला, न वह अस्त्र है न शस्त्र है, अत विष्णु भगवान का स्मरण कर उसने समुद्र के फेन से वृत्रासुर का सहार कर दिया। वृत्रासुर के मारे जाने पर विश्वासघात के सताप से इद्र मन-ही-मन बहुत दुखी हुए। अत. ब्रह्महत्या की आत्मग्लानि से वे अज्ञात स्थान मे छिप गये। देव-राज इद्र के अदृश्य हो जाने पर, अराजकता के कारण भयभीत हो, ऋषि-मुनि और देवताओ ने राजा नहुष को इन्द्र-पद पर अभिषिक्त कर दिया, किन्तु राजा नहुष विषय-लोलुप निकला। एक दिन उसकी दृष्टि इन्द्राणी शची पर पड़ी। दुष्टात्मा नहुष ने इन्द्र की महारानी शची देवी को अपनी सेवा करने की आज्ञा दी। यह सुन वह दुखी हो महामुनि बृहस्पति से बोली—'ब्रह्मर्षे ! मैं आपकी शरण मे आ गयी हूँ, आप नहुष से मेरी रक्षा कीजिये।' जब राजा नहुष ने सुना कि इन्द्राणी महात्मा बृहस्पति की शरण मे गई है, तब वह क्रोधित हो ऋषियो को आगे कर उनके स्थान पर पहुँचा और शची देवी को माँगा।

महात्मा बृहस्पति ने कहा—'राजन् ! आप इस हठ को त्याग दीजिये। शची देवी दूसरे इन्द्र की पत्नी है। परायी स्त्री का स्पर्श पाप-कर्म है। अत उससे मन को हटा लीजिये और प्रजा का पालन धर्मपूर्वक कीजिये।' राजा नहुष ने गुरुदेव बृहस्पति के वचन को अस्वीकार कर दिया और रुष्ट हो वहाँ से चला गया।

राजा नहुष के प्रस्थान के बाद महर्षि बृहस्पति ने शची को जो दु ख के सागर मे गोते लगा रही थी, आश्वासन दिया—'इन्द्राणी ! मैं शरणागत का त्याग नही करूँगा।'

जब देवता महर्षि बृहस्पति के पास शचीदेवी को पुन. माँगने आये, तब उन्होने कहा—'तुम सब उस समय तक प्रतीक्षा करो, जबतक कि शचीदेवी नहुष को अपना पति स्वीकार करने पर राजी न हो जाय। देवता और ऋषियो से महर्षि बृहस्पति

का सन्देश सुन नहुष प्रसन्न हो गया। शचीदेवी ने ब्रह्मर्षि की आज्ञा से भगवान विष्णु की आराधना आरम्भ कर दी—'भगवन्! आप ही हमारे आश्रय, सम्पूर्ण जगत के पूर्वज तथा प्रभु है। प्रभो! यदि मैंने दान दिया हो, हवन किया हो, गुरुजन को सतुष्ट रखा हो तथा मुझ मे सत्य विद्यमान हो, तो मेरा पतिव्रत-धर्म सुरक्षित रहे। मेरे स्वामी ब्रह्महत्या के भय से कही छिप गये है। भगवन्! उन्हे इस पाप से मुक्त कर दीजिये और पुनः इन्द्र-पद पर स्थापित होने का वरदान दीजिये।' देवी शची की प्रार्थना मे भगवान उस पर प्रसन्न हो गये। तदनन्तर श्रुति देवी मूर्तिमती हो साध्वी शची के पास गई और उसे इन्द्र का दर्शन कराया। शची ने इन्द्र की स्तुति करने के पश्चात नहुष की कुचेष्टा का वर्णन किया—'प्रभो! यदि आप मेरी रक्षा नही करेंगे तो वह पापी मुझे अपने वश मे कर लेगा। इस पाप पूर्ण विचार वाले नहुष को आप शीघ्र ही मार डालिये।'

इन्द्र ने शची से कहा—'देवी! अभी पराक्रम का समय नही है। ऋषियो ने हव्य और कव्य के द्वारा उसकी शक्ति को बहुत बढा दिया है, अतः मैं नीति से काम लूँगा। तुम भी उसी नीति का पालन करो। तुम नहुष के पास एकान्त मे सदेश भेजो कि आप दिव्य ऋषियान पर बैठकर मेरे पास आइये। ऐसा होने पर मै प्रसन्नतापूर्वक आपके वश मे हो जाऊँगी।' देवराज के आदेश से शची देवी ने यह प्रस्ताव नहुष को भेजा।

नहुष ने उत्तर दिया—'शची ने जो यह अपूर्व वाहन बताया है, वह मुझे भी अभीष्ट है। मै तपस्वी, बलवान, भूत, भविष्य और वर्तमान कालो का स्वामी हूँ। मैं उसकी इच्छा का पालन करूँगा। सप्तर्षि और ब्रह्मर्षि मेरी पालकी ढोयेगे।' ऐसा निश्चय कर नहुष ने ऋषि-मुनियो को अपनी पालकी ढोने की आज्ञा दी। देवर्षि बृहस्पति ने शची को आश्वासन देकर कहा कि यह दुष्टात्मा नहुष अब अपने पापो द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा।

जो ऋषिगण नहुष की पालकी ढो रहे थे, वोले—'राजन् ! तुम अधर्म मे प्रवृत्त हो रहे हो। किन्तु नहुष ऋपियो से विवाद करने लगा और उसने ऋपियो के मस्तक पर पैर से प्रहार किया। इससे नहुष का सारा तेज नष्ट हो गया। ऋपियो ने उसको शाप दिया—तुम तेजस्वी ऋपियो को वाहन वनाकर, उनसे अपनी पालकी ढुलवा रहे हो और उनके सिर पर लात भी मार रहे हो, अत तुम स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर गिरो।'

तदनन्तर इन्द्र शची को ढूँढता हुआ ब्रह्मर्षि वृहस्पति के पास पहुँचा। वृहस्पति ने इन्द्र को सम्वोधित कर कहा—'शचीपते ! ब्रह्महत्या का पाप अव नष्ट हो गया है, अत आप इन्द्र-पद पर पुन वैठ तीनो लोको की रक्षा करे।' तत्पश्चात इन्द्र स्वर्गलोक का पालन करने लगे। वहाँ उन्होने मुख्य देवताओं और महर्षियो की पूजा की।

शल्य ने कहा—'हे युधिष्ठिर ! जिस प्रकार पापात्मा नहुष ऋषियो के शाप से नष्ट हो गया, उसी प्रकार तुम्हारे शत्रु दुर्योधन आदि शीघ्र ही विनाश के मुख मे चले जायेंगे। दुर्योधन के पाप से, तथा भीमसेन और अर्जुन के वल से क्षत्रियो के सहार का अवसर उपस्थित हो गया है। शल्य की वात सुन महावाहु युधिष्ठिर ने मद्रराज का विधिपूर्वक पूजन किया। तदनन्तर शल्य अपनी सेना के साथ दुर्योधन के यहाँ चले गये। उनके चले जाने के पश्चात युयुधान (सात्यकि), चेदिराज धृष्टकेतु, मगधवीर जयत्सेन, जरासध का महावली पुत्र सहदेव, द्रुपद तथा विराट विशाल सेना के साथ युधिष्ठिर के पास आये।

# संजय का पाण्डवों के पास जाना

द्रुपद का पुरोहित राजा धृतराष्ट्र की सभा मे पहुँचा और बोला—'राजन् आप तथा पाण्डु दोनो एक ही पिता के पुत्र है। पैतृक सम्पत्ति मे दोनों का समान अधिकार है, इसलिए पाण्डवो को उनकी पैतृक सम्पत्ति क्यो न प्राप्त हो ? यद्यपि दुर्योधन आदि कौरवो ने अनेक बार पाण्डवो को नष्ट करने का प्रयत्न किया है, पर उनकी आयु शेष थी, इसलिए वे इन्हे यमलोक न पहुँचा सके। फिर पाण्डवो ने अपने बाहुबल से नूतन राज्य की स्थापना की, परन्तु शकुनि और आपके पुत्रो ने उनका वह राज्य भी छल से हरण कर लिया। आपने भी उन सब कुचालो का अनुनोदन किया और पाण्डवो को तेरह वर्ष तक वनवास के लिये विवश किया। द्रौपदी को भरी सभा मे क्रूरता से क्लेश पहुँचाया गया। इन सब अत्याचारो को भुलाकर भी पाण्डव कौरवो के साथ मेलजोल ही चाहते है। पाण्डवों के सुव्यवहार तथा दुर्योधन के अत्याचारो को देख सुहृदो का कर्तव्य है कि वे दुर्योधन को समझावे। दुर्योधन अपनी शक्ति को बहुत महत्व देता है, किन्तु उसे जान लेना चाहिये कि पाण्डव कौरवो से बलिष्ठ है, अत प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डवो को आधा राज्य लौटा दीजिये, नही तो कौरव कुल का नाश निश्चित है।'

भीष्म पितामह ने कहा—'पाण्डव सन्धि की इच्छा रखते है, यह सौभाग्य की बात है। मै पुरोहित से सहमत हूँ। पाण्डवो को उनकी सारी पैतृक-सम्पत्ति दे देनी चाहिये। पाण्डव सत्य-प्रतिज्ञ, धर्मात्मा और बली है और भगवान श्रीकृष्ण उनके साथी है, अत. युद्ध मे उनकी ही विजय होगी।'

कर्ण ने राजा दुर्योधन की ओर देखकर क्रोधपूर्वक कहा—'राजा दुर्योधन भय से राज्य का कुछ भी भाग पाण्डवो को नही देगे, पर निज-इच्छा से वे शत्रु को समूची पृथ्वी भी दे सकते है। कुरु-श्रेष्ठ वीरो से भिडने पर ही पाण्डवो को उनके बल का

पता चलेगा।'

तव भीष्म बोले—'राधानन्दन ! तुम पार्थ का वह पराक्रम भूल गये जव उसने विराट नगर के युद्ध मे अकेले ही तुम सहित छ. महारथियो को मार भगाया था। यदि हम ब्राह्मण-देवता के कथनानुसार पाण्डवो से सधि नही करेगे तो हमे अर्जुन के हाथो से आहत हो धूल खानी पडेगी।'

धृतराष्ट्र ने कर्ण को डाँटते हुए कहा—'मैं इस विषय पर सोच-विचार करूँगा।' उन्होने ब्राह्मण का सत्कार कर विदा किया और सजय को पाण्डवो के पास जाने के लिये वुलाया और कहा—'सजय ! पाण्डव सत्यवादी, परोपकारी तथा साधु-पुरुष हैं। वे धर्म का परित्याग नही करते। दुर्योधन मूर्ख है। वह कुकर्मों को भी सुकर्म ही मानता है। युद्ध होने के पूर्व ही पाण्डवो को उनका राज्य दे देने मे हमारी भलाई है। मेरे पुत्रो ने पाण्डवो के साथ वैर ठान रखा है, क्योकि वे सदा अमर्ष से भरे रहते हैं। हमारी सेना सव प्रकार से परिपूर्ण है, पर वह पाण्डवो का सामना नही कर सकती। मैं राजा युधिष्ठिर के रोप से सदा भयभीत रहता हूँ क्योकि वह महान तपस्वी है। उसके मन मे जो सकल्प होगा, वह सिद्ध होकर ही रहेगा। तात ! तुम पाण्डवो की कुशल-क्षेम पूछकर वताना कि धृतराष्ट्र उनसे सन्धि चाहता है।'

सजय राजा धृतराष्ट्र से विदा ले पाण्डवो के पास पहुँचा और उनसे कुशल-क्षेम पूछी।

युधिष्ठिर ने कहा—'सजय ! दीर्घकाल के वाद तुमसे अपने स्वजनो का कुशल समाचार सुन मैं अति प्रसन्न हूँ। मेरे चाचा धृतराष्ट्र और पूज्य पितामह जो मनस्वी, परमज्ञानी और समस्त धर्मो के ज्ञाता हैं, वे कुशल से तो हैं न ? हमारे पूज्य श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य और कृपाचार्य स्वस्थ तो है न ? मूढ राजा दुर्योधन और उनके अधीन रहने वाले कर्ण कुशल तो हैं न ? पूज्य गुरु द्रोणाचार्य वीर कृपाचार्य और परम पूज्य पितामह

हम लोगों पर दोषारोपण तो नही करते ? कर्ण की कुमत्रणा से धृतराष्ट्र के पुत्रों की द्वैतवन मे पराजय, उनका बन्दी किया जाना तथा भीम और अर्जुन द्वारा उनकी मुक्ति क्या उन्हे स्मरण है ?'

संजय बोले—'पाण्डुनन्दन ! आपने जिन श्रेष्ठ कुरुवशियों के कुशल समाचार पूछे हैं, वे सभी मनस्वी स्वस्थ और सानन्द है। राजन् ! राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रो को आपसे द्वेप रखने की आज्ञा नही देते, अपितु आपके प्रति उनके द्रोह की बात सुन कर अत्यंत सतप्त हो शोक किया करते है। मेरा यह विश्वास है कि मनुष्य का भविष्य जब तक सामने नही आता तब तक किसी को उसका ज्ञान नही होता, क्योकि आप जैसे स्वधर्म-सम्पन्न पुरुष भी अत्यंत क्लेश में पड गये थे। आप ही इस सघर्ष की शान्ति का कोई सरल उपाय सोचिये, जिससे कि कौरव, पाण्डव और अन्य क्षत्रिय कल्याण के भागी हों। युद्ध से न धर्म की सिद्धि होने वाली है न अर्थ की, इसलिये आप लोग वही कार्य कीजिये जिससे सबका भला हो। संधि पूज्य भीष्म पितामह और राजा धृतराष्ट्र को भी अभीष्ट है। आपके उद्योग से वह उत्तम शाति प्राप्त हो सकती है।'

राजा युधिष्ठिर ने कहा—'सजय ! मैने कभी युद्ध की इच्छा व्यक्त नही की। यदि कार्य किये बिना ही मनुष्य का सकल्प सिद्ध हो जाता है, तब उसे कार्य करने की आवश्यकता नही पडती। युद्ध किये बिना ही यदि मुझे थोडा भी लाभ प्राप्त हो जाये, तो उसे मै बहुत समझूँगा। हम लोग धर्म के विपरीत कार्य नही करना चाहते। हम वही सुख चाहते है, जो धर्म की प्राप्ति कराने वाला हो। जो पुण्यात्मा नही है, वह सग्राम मे विजयी नही हो सकता। पुण्यात्मा कभी अपना यशोगान नही सुनते। मैं बहुत सोचने और विचार करने पर भी ऐसा कोई उपाय नही देखता, जिससे कौरवों और पाण्डवो का कल्याण हो। हमारे पैतृक राज्य पर कौरवो का जो ममत्व है, उसे हटाने

के लिये हमे युद्ध-भूमि मे उतरना ही पडेगा। कौरवो को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि पाण्डवो को उनका पैतृक-राज्य दिये विना कुशल नही है। मैं तुम्हारे वचनो का आदर करते हुए कौरवो के अपराधो को क्षमा कर दूंगा, यदि वे मेरी वात स्वीकार कर ले और हमारा राज्य हमे लौटा दे।'

सजय वोले—'पाण्डुनन्दन! आपकी प्रत्येक चेष्टा धर्म के अनुसार ही होती है। यद्यपि यह जीवन अनित्य है, तथापि इससे महान सुयश की प्राप्ति हो सकती है। आप जीवन की उस कीर्ति को नष्ट न होने दें। मनुष्य का जीवन दु खमय और चचल है, इसलिये आप युद्धरूपी पाप न कीजिये। धर्माचरण मे विघ्न डालने वाली कामनाएँ प्रत्येक मनुष्य को अपनी ओर खीचती है, अत जो वुद्धिमान पुरुष अपनी कामनाओ को नष्ट करता है वह जग मे निर्मल कीर्ति का भागी होता है। ससार मे धन की तृष्णा ही वधन मे डालने वाली है। जो उसमे फँस जाता है उसका धर्म भी नष्ट हो जाता है। धर्म, अर्थ और काम तीनो मे धर्म को प्रधान मानने वाला ही पुण्यात्मा है। जो धर्म से हीन है, वह मनुष्य सारी पृथ्वी को पाकर भी असतुष्ट ही रहता है। आपने योगाभ्यास, स्वाध्याय, व्रह्मचर्य, दान और यज्ञो का अनुष्ठान किया है, अत आप पाप-कर्मो मे आसक्त न हो।'

ससार मे पुण्य और पाप कर्मों का नाश नही होता। पहले कर्ता के पुण्य और पाप परलोक मे जाते हैं, तत्पश्चात् कर्ता जाता है। इस शरीर से ही सत्कर्म किया जा सकता है, मृत्यु के पश्चात् नही। स्वर्ग-लोक मे जाकर मनुष्य मृत्यु, वृद्धावस्था तथा भय त्याग देता है, पर पुण्य क्षीण होने पर उसे पुन पृथ्वी पर आना पडता है, इसलिये मोक्ष के लिये निष्काम-कर्म अथवा ज्ञान-योग का ही साधन करना चाहिये। पाण्डुकुमार! अज्ञानी अथवा पापी मनुष्य भी युद्ध द्वारा सपत्ति प्राप्त कर लेते हैं और वुद्धिमान अथवा धर्मज्ञ पुरुष दैवी-वाधा के कारण

पराजित हो जाते है, अतः विजय सशयात्मक है। राज्य के लिये शान्तनुनन्दन भीष्म और आचार्य द्रोण की हत्या करना महापाप होगा। राजन् ! सारी पृथ्वी को पाकर भी आप जरा-मृत्यु, सुख-दुख, प्रिय-अप्रिय से पिण्ड नही छुडा सकते, अत. मेरी प्रार्थना है कि आप युद्ध न करे और वानप्रस्थ ग्रहण करे। अपने कुटुम्ब का वध कर उत्तम मार्ग से भ्रष्ट न हो।'

युधिष्ठिर ने कहा—'सजय ! सब प्रकार के कर्मो मे धर्म ही श्रेष्ठ है, पर मै धर्म पर हूँ या अधर्म पर इस पर विचार कर मेरी आलोचना करो। कही अधर्म ही धर्म का रूप धारण कर लेता है, कही पूर्णतया धर्म अधर्म का। विद्वान पुरुष ही अपनी बुद्धि से उसके सत्य रूप को देखते है। आपद्धर्म का क्या स्वरूप है उसे भी तुम जानो। जीविका के साधन का सर्वथा लोप हो जाने पर जिस कर्म का आश्रय लेने से जीवन की रक्षा एव सत्कर्मो का अनुष्ठान हो सके, जीविकाहीन मनुष्य उसे अवश्य अपनाने की इच्छा करेगा। जो स्वाभाविक स्थिति मे रहकर आपद्धर्म का आश्रय लेता है, वह निन्दनीय है। जो विपत्तिग्रस्त होने पर जीविका नही चला सकता, वह कुटुम्ब की रक्षा न कर सकने के कारण पाप का भागी होता है। सजय ! पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक का धन और वैभव भी मै अधर्म से नही लूँगा। यहाँ धर्म के स्वामी, कुशल नीतिज्ञ, ब्रह्मलोक का धन और वैभव भी मैं अधर्म से नही लूँगा। यहाँ धर्म के स्वामी, कुशल नीतिज्ञ, ब्राह्मण-भक्त और मनीषी भगवान श्रीकृष्ण बैठे है। यदि मै सधि का परित्याग कर निन्दनीय मार्ग अपनाऊँ तो वसुदेव-नन्दन अपने विचार प्रकट करे, क्योकि ये दोनों पक्षो का हित चाहने वाले है। भगवान श्रीकृष्ण प्रभावशाली और विद्वान है। ये प्रत्येक कर्म का अतिम परिणाम जानते है, इसलिए मै इनकी आज्ञा का उल्लघन नही कर सकता।'

युधिष्ठिर के नीति-वचन सुनकर भगवान श्रीकृष्ण बोले—'सजय ! मैं पाण्डवो और कौरवों का अभ्युदय चाहता

हूँ। मेरी अभिलाषा है कि दोनो पक्षो मे शान्ति वनी रहे। किन्तु,सजय,राज्य के प्रश्नो को लेकर दोनो पक्षो मे शान्ति वनी रहेगी, यह अत्यत दुष्कर जान पडता है। राजा युधिष्ठिर से धर्म का लोप होना असम्भव है। वे स्वधर्म का सर्वदा पालन करते है। तुमने उनके किस अपराध पर धर्म-लोप की चर्चा या आशका की ? जो विद्या कर्म का सपादन करती है, उसी का कर्म-फल दृष्टिगोचर होता है, विद्या का नही। इसी प्रकार प्यासा मनुष्य जल पीकर ही तृप्त होता है, जल को देखकर नही। ज्ञान का विधान भी कर्म को साथ लेकर ही है अत ज्ञान मे भी कर्म विद्यमान है। जो कर्म से कर्मो के त्याग को श्रेष्ठ मानता है वह अज्ञानी है। देवता कर्म के प्रभाव से ही स्वर्गलोक मे प्रतिष्ठित है। सूर्य देव कर्म द्वारा ही दिन-रात का विभाजन करते हुए प्रतिदिन उदित होते है। चद्रमा कर्म द्वारा ही मास, पक्ष तथा नक्षत्रो का योग प्राप्त करते है। इन्द्र, कुवेर, यम आदित्य और वसुओ ने सत्कर्मो के वल से ही देवताओ मे उच्च स्थान प्राप्त किया है। राजा युधिष्ठिर वेद-शास्त्रो के ज्ञाता है, इसलिए विना युद्ध ही यदि अपने राज्य की प्राप्ति का कोई दूसरा उपाय जान लेगे तो धर्म का ही सम्पादन करेगे। पाण्डव अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए यदि दैववश मृत्यु को भी प्राप्त करेगे तो इनकी वह मृत्यु उत्तम ही मानी जायेगी। कौरवो ने पाण्डवो के साथ जो अन्याय किये हैं, उन्हे भुलाकर क्या तुम पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश देना चाहते हो ? यदि मैं पाण्डवो का स्वार्थ नष्ट किये विना ही कौरवो से सधि कराने मे सफल हो सकूँ तो यह परम पवित्र कार्य होगा। मै कौरवो के पास जाकर धर्म और अर्थ से युक्त वाते कहूँगा। क्या वे मेरी वातो पर विचार करेगे ? यदि ऐसा नही हुआ तो युद्ध अवश्यम्भावी है। सजय ! धर्म का आचरण करने वाले पाण्डव शान्ति के लिये तैयार है और युद्ध के लिए भी समर्थ है। तुम दोनो अवस्थाओ को राजा धृतराष्ट्र से कह देना।'

तदनन्तर सजय पाण्डवो से विदा लेकर राजा धृतराष्ट्र के पास गये और उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण और पाण्डवो का सदेश उन्हे सुनाया—'राजन् ! पाण्डवो ने बडी प्रसन्नता एव श्रद्धापूर्वक आप और सब गुरुजनो को प्रणाम कहलाया है और सबकी कुशल पूछी है। पाण्डव विशुद्ध भाव से धर्म और अर्थ का सेवन करने वाले, मनस्वी, विद्वान, दूरदर्शी और शीलवान है। वे दया को परम धर्म और धन-सग्रह की अपेक्षा धर्म-पालन को ही श्रेष्ठ मानते है। राजा युधिष्ठिर शान्तिपूर्वक अपना राज्य और धन लेना चाहते है। आपका कर्म अत्यन्त भयकर, अवर्णनीय और भविष्य में दु ख की प्राप्ति कराने वाला है। धर्म और अर्थ से श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करते है, उससे सर्वथा विपरीत पथ पर आप चल रहे है। इसी के कारण इस लोक मे आपकी निन्दा हो रही है और परलोक मे आपको नरक का दु.ख भोगना पड़ेगा। आप इस समय अपने पुत्रो के वश मे होकर पाण्डवो की सारी सपत्ति रखना चाहते है, पर यह सम्भव नही है। आपको श्रेष्ठ मन्त्रियो की सलाह उपलब्ध है और स्वय भी बुद्धिमान है, तब आप धर्म और नीति के विरुद्ध कार्य क्यो करते है ? कर्ण, शकुनि आदि बुद्धिहीन नीच-कुल मे उत्पन्न और क्रूर है और वे ही कौरवो के भावी विनाश के कारण होगे। पाण्डव कुलीन, बलवान, यशस्वी, विद्वान और मन को वश मे रखने वाले है। शौर्य, विद्या आदि गुण भी उनमे विद्यमान है। ये सब गुण पूर्व-कर्मो के अनुसार ही प्राप्त होते है। प्राणियो की उन्नति और अवनति भी काल के ही अधीन है। इस समय आपकी और आपके पुत्रो की बुद्धि काल ने विपरीत कर रखी है, इसलिए आप भरतवश मे विरोध फैलाना चाहते है जो कौरवो के विनाश का कारण होगा।'

सजय की बात सुनकर धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुर को बुलाया और कहा—'तात ! मै चिन्ता मे जला जा रहा हूँ। तुम मेरे हितैषी, धर्म और अधर्म के ज्ञान में निपुण हो। तुमसे मैं

कल्याण की बात सुनना चाहता हूँ क्योकि तुम विद्वानो मे भी मान्य हो।'

विदुरजी बोले—'राजन्! आप धर्मात्मा होते हुए भी पाण्डवो को पहचान नही सके। युधिष्ठिर मे क्रूरता का अभाव, दया, धर्म, सत्य तथा पराक्रम है। वे आपमे पूज्य भाव रखते है। आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण तथा दु शासन जैसे अयोग्य व्यक्तियो से कल्याण की आशा क्यो करते है? जिसे अपने स्वरूप का ज्ञान है, जिसमे उद्योग, दु:ख सहने की शक्ति और धर्म की स्थिरता है, वही पडित है। जो अच्छे कर्म करते है और बुरे कर्मों से दूर रहते है, आस्तिक और श्रद्धालु है, वे सद्गुणी है। क्रोध, गर्व, उद्दडता तथा आत्मश्लाघा से जो दूर रहते है, वे पुरुषार्थ से भ्रष्ट नही होते। जो अपने कर्तव्य को जानते है, भोगो से अनासक्त है तथा धर्म-युक्त अर्थ का ही उपार्जन करते है, वे बुद्धिमान है। जिसके कार्य मे सर्दी-गर्मी, भय-अनुराग तथा सम्पत्ति-विपत्ति विघ्न नही डालते, वह साधु-स्वभाव का व्यक्ति है। जो सोच विचार एव निश्चय कर कार्य को आरम्भ करता है, मर्यादा का उल्लघन नही करता और समय को व्यर्थ नही जाने देता, वह पुरुष उत्तम है। जो अशिक्षित होकर भी विद्वान होने का गर्व करता है, विना परिश्रम किये ही धन पाने की इच्छा रखता है, जो कर्तव्य को नही समझता, जो शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु समझता है, जो पितरो का श्राद्ध और देवताओ का पूजन नही करता, जो स्वय दोपी है पर दूसरो पर दोष का आक्षेप करता है और असमर्थ होते हुए भी व्यर्थ का क्रोध करता है, वह मूर्ख है। जो अपने वल को न समझकर न पाने योग्य वस्तु की इच्छा करता है, जो अनधिकारी को उपदेश देता है और कृपण का आश्रय लेता है, वह मूर्ख है। विष पीने वाले को और शस्त्र आघात लगने वाले को ही मारते है, पर कुयोग्य शासक प्रजा और राज्य का विनाश कर देता है। काम, क्रोध और लोभ आत्मा का नाश करने वाले नरक के द्वार

है, अतः इन्हें त्यागना चाहिये। उपर्युक्त उत्तम लक्षण वालो को सिद्धि प्राप्त होती है और अधम को दुःख उठाना पडता है। जैसे वस्त्र जिस रग मे रगा जाये वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि सज्जन दुर्जन की सगति करता है, तो उस पर उसी का रग चढ जाता है। आपने पाण्डवो के साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया है, अतः वे युद्ध मे आपके मूर्ख पुत्रो का नाश कर डालेगे। क्रूरतापूर्वक उपार्जित लक्ष्मी नश्वर होती है, इसलिए तृष्णा को त्याग दीजिये। जो मोह वश बुरे कर्म करता है, वह जीवन से हाथ धो बैठता है, इसलिए निरर्थक कलह, बुद्धिमान मनुष्य को त्याग देना चाहिए। यदि देश का शासन जुआरी, क्रूर और पापियों के हाथ मे हो तो उस देश का नाश हो जाता है। समय के विपरीत यदि विद्वान भी बोले तो वह मूर्ख कहलाता है। राजन्! दुर्योधन के जन्म लेते ही मैने आपको उसे त्यागने के लिये कहा था, जिससे कि आपके सौ पुत्रो का नाश न हो। जो भविष्य मे नाश का कारण बने, उसे त्यागना ही उचित है। जिसका अनावश्यक द्रोह करने का स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और पापी है, वह साथ रखने के अयोग्य और निंदित माना गया है। आप समर्थ है अत वीर पाण्डवो पर कृपा और अपने दुष्ट पुत्रो पर नियन्त्रण रखिये। आप पाण्डवों अथवा अपने पुत्रों का वध सुनकर सताप करेंगे, अत इस प्रश्न पर पहले ही विचार कर लीजिये। जो बीत गया सो बीत गया, वर्तमान पर विचार कर उचित कर्तव्य का अनुसरण बुद्धिमान मनुष्य को करना चाहिये। जो आने वाले दु ख को रोकने का प्रयत्न करता है, वह मनुष्य कभी दुर्गति को प्राप्त नही होता। उद्योग, सयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, सोच-विचार कर कार्य करना ही उन्नति का मूलमत्र है। आपने पाण्डवो को बचपन से ही पाला और शिक्षा दी है। वे भी आपकी आज्ञा का पालन करते है, अत उन्हे उनका न्यायोचित राज्य दे, आप अपने पुत्रो के साथ सुखपूर्वक जीवन निर्वाह कीजिये।'

दूसरे दिन कौरव-सभा मे सजय ने धृतराष्ट्र से कहा—'महाराज ! धीर-वीर अर्जुन ने जो सदेश भेजा है, वह मैं आपसे कहता हूँ। यदि दुर्योधन महाराज युधिष्ठिर का राज्य लौटाना नही चाहता है तो निश्चित ही धृतराष्ट्र के पुत्रो के पूर्व-जन्मो का पाप प्रकट हुआ है। वे पाण्डवो से युद्ध करना चाहते है, इसलिये उन्हे कह देना कि तुम युद्ध भूमि मे ही उतरो। युद्ध के परिणामरूप दु खदायिनी और अनर्थकारिणी मृत्यु की शय्या पर उन्हे सोना पडेगा। अन्यायपूर्ण व्यवहार करने वाले दुरात्मा दुर्योधन को उचित है कि ज्ञान, तपस्या, इद्रिय-सयम, शील आदि गुणो से सम्पन्न हो महात्मा युधिष्ठिर पर सत्य से प्रभाव डाले। हमारे महाराजा युधिष्ठिर नम्रता, सरलता, तप, इद्रिय-सयम, धर्म-रक्षा और वल सभी गुणो मे सम्पन्न है। वे वहुत दिनो से अनेक प्रकार के क्लेश उठाते हुए भी सत्य ही वोलते हैं और कौरवो के कपट-पूर्ण व्यवहार को सहन करते रहते हैं। परन्तु महात्मा युधिष्ठिर के क्रोधित और उत्तेजित होने पर भयानक कौरव-पाण्डव युद्ध होगा। जैसे ग्रीष्म ऋतु मे प्रज्वलित अग्नि धधक उठती है और जगलो को भस्म कर देती है, उसी प्रकार क्रोधित होने पर महाराजा युधिष्ठिर कौरवो को दृष्टि-पात-मात्र से नष्ट कर देंगे। जिस समय दुर्बुद्धि दुर्योधन भीमसेन को गदा लिये कौरव-दल का नाश करते देखेगा, तव उसे अत्यधिक पश्चाताप होगा। जैसे घास-फूस के झोपडे आग से जलकर राख हो जाते हैं, उसी प्रकार धृतराष्ट्र के सभी पुत्र और उनकी सेना भीमसेन की क्रोधाग्नि मे जलकर भस्म हो जायेगी। सुख भोगने योग्य वीर नकुल और सहदेव ने दीर्घकाल तक वन मे रहकर दु ख शय्या पर शयन किया है। उस दु ख-मय जीवन का स्मरण कर वे क्रोध से भरे हुए है और विषैले सर्प की भाँति कौरवो को डसकर उन्हे यमलोक पहुँचा देगे। धर्मराज से युद्ध का आदेश पाने पर हमारे सहायक तेजस्वी नरेश जव कौरव-सेना पर आक्रमण करेंगे तव दुर्योधन को युद्ध

के लिये अत्यन्त पश्चाताप करना पड़ेगा। अभिमन्यु साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण के समान पराक्रमी तथा अस्त्र-विद्या मे निपुण है। जब वह शत्रु-पक्ष के वीरों का सहार करने लगेगा, तब दुर्योधन के मन में वहुत ही सताप होगा। सदा क्रोध के वश में रहने वाला अल्प-बुद्धि मूढ दुर्योधन जब भाई और सेना सहित आहत होकर काँपने लगेगा, उस समय उसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो जायेगा। भगवान श्रीकृष्ण युद्ध न करके भी जिस पक्ष का विजय-अभिनन्दन करेगे, वह पक्ष अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेगा। जो युद्ध मे तेजस्वी भगवान श्रीकृष्ण को जीतने की इच्छा रखता है, वह मूर्ख है, उसकी इच्छा अपार समुद्रो को तैर कर पार करने वाले की सी है। वह अपने दोनो हाथो से प्रज्वलित अग्नि को बुझाना और चन्द्र-सूर्य की गति को रोकना चाहता है। शान्तनुनन्दन महाराज भीष्म, आचार्य द्रोण, गुरुभाई अश्वत्थामा और कृपाचार्य को प्रणाम कर मै राज्य पाने की इच्छा से अवश्य युद्ध करूँगा। जो पाप-बुद्धि मनुष्य पाण्डवो से युद्ध करेगा उसकी मृत्यु निकट आ गयी है। हम दीर्घकाल से कष्ट भोग रहे हैं, ऐसी दशा मे कौरव अपने पदों पर प्रतिष्ठित रहकर कैसे आनन्द भोगते रहेगे? यदि मनुष्य का किया हुआ पाप-कर्म निष्फल नही होता और पुण्य-कर्मों का फल मिले बिना नही रहता, तब मैं दुर्योधन के भूत और वर्तमान पाप-कर्मों पर विचार कर निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि कौरवो की पराजय अनिवार्य है। तथापि मैं चाहता हूँ कि पितामह भीष्म, गुरुदेव द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान चाचा विदुर सब मिलकर जैसा कहेगे, उसी मार्ग पर हम चलेगे।'

सजय के कथन के पश्चात शान्तनुनन्दन भीष्म ने दुर्योधन से कहा—'राजन्! एक समय ब्रह्माजी ने देवताओ और गुरु बृहस्पति जी से कहा था—बृहस्पते! नर और नारायण अपने तेज से प्रज्वलित और कान्ति से प्रकाशित ब्रह्मलोक में आये है। इनका धैर्य

और पराक्रम महान है और ये अपनी तपस्या और सत्कर्मों से अत्यन्त प्रभावशाली है। एक समय नर ने हजारो दानवो का सहार किया था। इस जन्म में नर-स्वरूप श्रेष्ठ अर्जुन ने खाण्डव वन दाह के समय समस्त शत्रुओ को जीत अग्निदेवको पूर्णतः तृप्त किया है। इसी प्रकार नारायणस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण भी महान पराक्रमी हैं। दुर्योधन! तुम अच्छी तरह समझ लो कि महा-रथी अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण नर और नारायण ही है। इन्हे सम्पूर्ण देवता और असुर भी नही जीत सकते। लोक-हित के लिये जब-जब और जहाँ-जहाँ अवसर आता है, ये अवतार ग्रहण कर दुष्टो का दमन और साधु-पुरुषो एव धर्म का सरक्षण करते है। ये सारी बाते वेदो के ज्ञाता नारदजी के मुख से मैंने सुनी थी। यदि तुमने मेरी बात नही मानी तो कौरवो का विनाश अवश्य होगा। तुम्हारी बुद्धि धर्म और अर्थ से भ्रष्ट हो गयी है, तभी तो कर्ण, नीच शकुनि एव पापात्मा दु शासन के मत का अनु-सरण करते हो। कर्ण, दु शासन और अन्य वीर पाण्डवो के पराक्रम की समानता नही कर सकते। पाण्डवो ने जैसे दुष्कर पराक्रम किये है, वैसा कौन-सा पुरुषार्थ इन कौरव वीरो ने किया है? विराटनगर मे जब धनजय ने अकेले ही समस्त कौरवो पर आक्रमण किया था और उन्हे मूर्छित कर उनके वस्त्र छीन लिये थे, उस समय यह डीग मारने वाला कर्ण कही परदेश चला गया था क्या? घोप यात्रा के समय जब गधर्व कौरवो को बदी बनाकर ले जा रहे थे, तब पाण्डवो ने ही उन्हे छुडाया था, उस समय निज को धनुर्धरो में अग्रगण्य कहने वाला सूतपुत्र कहाँ था?'

भीष्मजी के वचनो की प्रशसा करते हुए द्रोणाचार्य बोले—'राजन्! भीष्मजी कहते है, वही करिये। जो अर्थ और काम के लोभी है, उनकी बात आपको नही माननी चाहिये। मैं पाण्डवो से सधि करना ही अच्छा समझता हूँ। अर्जुन ने सजय के द्वारा जो सदेश भेजा है, उसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना है। पाडु-

नन्दन अर्जुन ने जो कहा है वह वैसा ही करेगा, क्योंकि इस समय पृथ्वी पर उसके समान कोई धनुर्धर वीर नही है।' वीर भीष्म और द्रोणाचार्य के कथन सार्थक और सार गर्भित थे, किन्तु राजा धृतराष्ट्र ने उन पर ध्यान नही दिया, अतः समस्त कौरव अपने जीवन से निराश हो गये।

धृतराष्ट्र ने कहा—'सजय ! मुझे क्रोध से भरे हुए अमर्षशील भीमसेन से बडा डर लगता है। मै उससे भयभीत हो रात-भर जागता रहता हूँ। महाबाहु भीम इन्द्रके समान तेजस्वी है। मैं अपनी सेना मे किसी को भी नही देखता जो भीम का सामना कर सके। कुन्तीकुमार भीम असहनशील तथा वैर को दृढता-पूर्वक पकडने वाले है। वह युद्ध मे मेरे मद-बुद्धि पुत्रो को यमराज की भॉति अवश्य मार डालेगा। जैसे बलवान सिह मृगों के यूथो मे निःशक विचरता है, उसी प्रकार भीमसेन मेरी विशाल वाहिनी मे निसंकोच विचरेगा। बाल्यकाल मे भी मेरे सब पुत्रो से एकमात्र भीमसेन ही पराक्रमी, अधिक खाने वाला, कौरवो के प्रतिकूल चलने वाला तथा अत्यन्त वेगवान था। दुर्योधन आदि कौरव बचपन मे जब उसके साथ खेलते थे, तब वह गज-राज की भॉति इन सबको कुचल देता था। कौरव सदा ही उसके बल-पराक्रम से पीडित रहते थे। वह अस्त्र-विद्या में द्रोणाचार्य तथा अर्जुन के समान है और वेग मे वायु के सदृश। जब वह क्रोध करता है, तब मुझे वह महेश्वर के तुल्य जान पडता है, अत युद्ध मे उसको कौन परास्त कर सकता है ? मैने भीम के बाल्यकाल मे ही व्यासजी के मुख से उसके पराक्रम का वर्णन सुना था। भीमसेन योद्धाओ मे सर्वश्रेष्ठ एव दुर्गम अपार समुद्र है। मै चीखता-चिल्लाता रह जाता हूँ किन्तु मेरे मूर्ख पुत्र मेरी बात नही सुनते। वे वृक्ष की ऊँची शाखा मे शहद के छत्ते को ही देखते है, पर वहॉ से गिरने का जो भय है, उसकी ओर उनका ध्यान नही जाता। जैसे मृग सिह से भिड जाय, उसी प्रकार जो योद्धा उस मनुष्य रूपी यमराज भीम से लडने के

लिये युद्ध-भूमि मे उतरेगा, उसे विधाता मृत्यु के लिये प्रेरित करके ही भेजेगा। जव भीमसेन मेरी सेना मे घुसकर उसे खदेडेगा, तव वहाँ प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित कर देगा और मेरे पुत्र तथा सहायक नरेश विभिन्न दिशाओ मे भाग जायेंगे। जैसे विषधर सर्प वहुत दिनो से सचित विप को किसी पर उगलता है, उसी प्रकार भीमसेन दीर्घकाल से सचित अपने क्रोध को रणभूमि मे मेरे पुत्रो पर उतारेगा और उनका सहार कर डालेगा। मनुष्य का भाग्य वडा प्रवल है, इसलिये मैं पाण्डवो की विजय मानकर भी अपने पुत्रो को युद्ध से नही रोक सकता। मैं तो यह मानता हूँ कि ज्ञान दु ख का नाश नही करता, अपितु प्रवल दु ख ज्ञान का नाश कर देता है। इस महान सकट मे पडा मै क्या करूँ? मुझे तो कौरवो का विनाश ही दिखायी देता है। सजय! जिसके मुँह से कभी झूठी वात निकलती ही नही, उस धर्मराज युधिष्ठिर के पक्ष मे भीम और धनजय जैसे योद्धा है। उन्हे तीनो लोको का राज्य भी प्राप्त हो सकता है। मुझे युद्ध मे गाण्डीवधारी अर्जुन का सामना करने वाला वीर भी अपने पक्ष मे नही दिखाई देता। वलवानो मे श्रेष्ठ, अस्त्र-विद्या मे पारगत युद्ध मे कभी पराजित न होने वाले, मनुष्यो मे अग्रगण्य, वीर द्रोणाचार्य और कर्ण अर्जुन पर विजय प्राप्त नही कर सकते, क्योकि कर्ण मिथ्याभिमानी और द्रोण वृद्ध एव अर्जुन के गुरु है। अर्जुन आलस्यरहित, समर्थ और वलवान है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के साथी है, अत उसकी विजय निश्चित है, किन्तु मेरे मूर्ख पुत्र इस वात को नही समझते। सजय! यदि युद्ध हुआ तो समस्त कुरुकुल का विनाश अवश्यम्भावी है, अत पाण्डवो के साथ युद्ध न होना ही अच्छा है, इसी से मेरे मन को शान्ति मिलेगी। युधिष्ठिर हमे क्लेश मे पडे देख हमारी उपेक्षा नही करेगा।'

धृतराष्ट्र के वचन सुनकर दुर्योधन ने कहा—'महाराज! आपने जो पाण्डवो के वल-पराक्रम की चर्चा कर असमर्थ की

भाँति विलाप किया है वह सब व्यर्थ है। आप डरे नही। प्रभो ! हम बलवान, पराक्रमी और समर-भूमि मे शत्रुओ को जीतने की शक्ति रखते है। तात ! श्रीकृष्ण हमारा सर्वनाश कर कौरवों का राज्य युधिष्ठिर को सौंपना चाहते है। ऐसी स्थिति मे हम उनके चरणो में गिरे या प्राणो का मोह छोड़ सामना करे। युद्ध होने पर हमारी पराजय सभव है, क्योकि हमारे स्वजन भी हमसे घृणा करते है। यदि कर्तव्य समझकर आचार्य द्रोण, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, अश्वत्थामा मन, वचन और कर्म द्वारा उत्साहपूर्वक युद्ध मे उपस्थित हो तो पाण्डव हमे जीतने मे असमर्थ होगे। इनमे से एक-एक वीर भी समस्त शत्रु राजाओ को जीतने की शक्ति रखता है। यदि ये सब साथ मिल जाये, तो क्षण भर मे पाण्डवो को यमलोक पहुँचा देंगे। युधिष्ठिर तो मेरे प्रभाव तथा मेरी सेना से इतने डर गये है कि आधा राज्य लेने की बात छोड अब पाँच गाँव माँगने लगे है। गदा-युद्ध मे मेरी समता करने वाला इस पृथ्वी पर न तो कोई है, न भूत काल मे कोई हुआ, न भविष्य मे ही कोई होगा। युद्ध मे मेरी गदा से आहत होकर भीमसेन प्राण-शून्य हो पृथ्वी पर गिर पडेगा। भीष्म, द्रोण और कृप इन तीनों के समान पराक्रमी तो अकेला कर्ण ही है। इन्द्र ने कर्ण से अपनी स्त्री शची के लिये कुडल माँग लिये किन्तु देवराज ने उनके बदले उसे एक भयकर अमोघ शक्तिदी है। उस अमोघ शक्ति से सुरक्षित कर्ण अर्जुन का वध करने मे समर्थ है। हम लोगो के पक्ष मे जो विशिष्ट योद्धा है, उनकी सख्या पाण्डवो के सहायको से अधिक है। हमारे पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है, जबकि शत्रु-पक्ष के पास केवल सात। राजन् ! शत्रुओ का बल हमारी अपेक्षा सब प्रकार से हीन है, ऐसी स्थिति मे आप व्याकुल एव अधीर न हो। हम अवश्य जीतेगे।'

धृतराष्ट्र बोले—'दुर्योधन तुम युद्ध से निवृत्त हो जाओ। श्रेष्ठ पुरुष किसी भी दशा मे युद्ध की प्रशसा नही करते। वीर !

तुम पाण्डवो को उनका यथोचित राज्य दे दो। तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिये तो आधा राज्य ही पर्याप्त है। समस्त कौरव यही चाहते है कि तुम पाण्डवो के साथ शान्ति-स्थापन कर लो। न तो मैं युद्ध करना चाहता हूँ, न भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, सजय, सोमदत्त, शल्य तथा कृपाचार्य ही। तात! इनके इस विचार को तुम्हे भी स्वीकार करना चाहिये। मैं जानता हूँ कि तुम अपनी इच्छा से युद्ध नही करना चाहते हो, अपितु पापात्मा दु शासन, कर्ण और शकुनि ही तुमसे यह कार्य करा रहे है, तुम ऐसे कार्य के लिये दुराग्रह करते हो, जो भूमडल के क्षत्रियो के विनाश का कारण हो जायेगा। ससार मे समस्त प्राणी अपने पुत्रो पर अत्यन्त स्नेह रख उनका हित-साधन करते है, इसी प्रकार साधु-पुरुप उपकारी मनुष्यो के उपकार से उऋण होने के लिये उनका वारवार प्रिय कार्य करना चाहते है। यह युद्ध अधर्म-कारक तो है ही, अत्यन्त क्रूरतापूर्ण भी है। तात! तुम्हारा पाण्डवो के साथ युद्ध करना किसी प्रकार भी मुझे अच्छा नही लगता। मुझे इस प्रसग पर सोचते-सोचते नीद नही आती और चिन्ता से मेरा सारा सुख चला गया है। मै तुमसे पुन: अनुरोध करता हूँ कि तुम पाण्डवो से सधि कर लो, जिससे कि कौरव-कुल का विनाश न हो।'

दुर्योधन ने कहा—जो वीर मुझे युद्ध करने के विरुद्ध मन्त्रणा दे रहे है, उनपर निर्भर होकर मैने पाण्डवो को युद्ध के लिये आमन्त्रित नही किया है। तात! मैंने तथा कर्ण ने युधिष्ठिर को रण-यज्ञ मे वलि-पशु वनाने का निश्चय कर यज्ञ की दीक्षा ली है। हम दोनो समरागण मे अपने इस यज्ञ के द्वारा यमराज का यजन, शत्रुओ को मारकर करेगे और विजयलक्ष्मी से शोभा पा पुन राजधानी मे लौटेगे। महाराज! मैं जीवन, राज्य, धन सव कुछ छोड सकता हूँ, परन्तु पाण्डवो के साथ मेल नही कर सकता। तीक्ष्ण सूई के अग्रभाग से जितनी भूमि विंध सकती है, उतनी भी मैं पाण्डवो को नही दूँगा। मैं अपने मित्र

और शत्रुओं के विषय मे शुभ या अशुभ जैसा भी चिन्तन करता है, वह निष्फल नही होता, इसलिये लोग मुझे सत्यवादी मानते हैं। जैसे नदियाँ समुद्र में मिलकर अपना अस्तित्व खो देती है, इसी प्रकार पाण्डव आदि योद्धा रण मे परिवार सहित नष्ट हो जायेंगे।'

कर्ण बोले—'राजन् ! मैं पाण्डवो को जीतने मे समर्थ हूँ, अत. रण का भार मुझ पर छोड दीजिये।'

धृतराष्ट्र ने कहा—'कौरवगण ! दुर्योधन को तो मैने त्याग दिया है। यमलोक मे जाने वाले इस मूर्ख का तुम लोग अनुसरण मत करो, क्योकि पाण्डव युद्ध में कौरव वीरो का एक-एक कर वध कर डालेंगे। तुम पर बड़ा संकट आने वाला है। मै नही चाहता कि पाण्डवो के साथ तुम्हारा युद्ध हो।

फिर उन्होने सजय से पूछा कि तुम मुझे कल्याणमय पथ दिखाओ। पाण्डवो मे दैवी, मानवी शक्ति तथा तेज से उत्कृष्टता प्रतीत होती है और कौरव पक्ष की शक्ति अल्प है। मैं इसको प्रत्यक्ष देखता हूँ, अत. इसी को सत्य मानता हूँ।'

सजय बोले—'भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ये दोनो महात्मा जिस की आज्ञा पालन करने के लिये सदा उद्यत रहते हैं, उन धर्मराज युधिष्ठिर का मानसिक सकल्प अवश्य सिद्ध होगा। भगवान श्रीकृष्ण ने मुझे आपके लिए यह सदेश दिया है—कौरवो ! तुम सब नाना प्रकार के यज्ञो का अनुष्ठान करो, ब्राह्मणों को दक्षिणा दो, पुत्रो और स्त्रियो से मिल-जुलकर आनन्द भोग लो, क्योकि तुम्हारे ऊपर बडी विपत्ति आने वाली है। तुम लोग शीघ्र ही अपने प्रियजनो का कार्य सिद्ध कर लो, क्योकि राजा युधिष्ठिर अब युद्ध आरम्भ करना चाहते है। जो अर्जुन को युद्ध में जीतने मे समर्थ है, वह अपनी दोनो भुजाओ से पृथ्वी को उठा सकता है, और सम्पूर्ण देवताओ को स्वर्ग से नीचे गिरा सकता है। मुझे तो इस समय कोई ऐसा वीर दिखाई

नही देता, जो अर्जुन का सामना कर सके। विराटनगर मे अकेले ही अर्जुन ने बहुत से कौरवो को पछाडा था, वह मेरे उपर्युक्त वचन की सत्यता का पर्याप्त प्रमाण है।'

कर्ण ने कहा—'राजन् ! मैंने महर्षि परशुरामजी का कृपा प्रसाद प्राप्त किया है, इसलिये मै अकेला ही कुन्तीकुमारो का पुत्रो सहित वध कर पुण्य-लोक मे जाऊँगा। पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण और मुख्य-मुख्य भूपाल आपके समीप ही रहे।'

भीष्म बोले—'कर्ण ! क्यो अपनी वीरता की डीग हाँक रहे हो, जान पडता है कि काल ने तुम्हारी बुद्धि को ग्रस लिया है। युद्ध मे प्रधान वीरो के मारे जाने पर कौरव भी मृतसम हो जायेगे।'

कर्ण ने कहा—'भीष्म ! मैं अपने अस्त्र-शस्त्र यहाँ रख देता हूँ। अब कभी आप मुझे सभा और रणभूमि मे नही देखेगे। आपके शान्त होने पर ही मैं रणभूमि मे अपना प्रभाव प्रकट करूँगा।' ऐसा कह महाधनुर्धर कर्ण सभा त्यागकर चला गया।

भीष्म बोले—'कर्ण ऐसा सत्य प्रतिज्ञ निकला, जो पहले पाण्डवो को जीतने की प्रतिज्ञा करता था, अब युद्ध से मुँह मोड-कर भाग गया!'

## भगवान श्रीकृष्ण का सन्धि-प्रस्ताव

सजय के चले जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने अन्य पाण्डवो और राजाओ से कहा—'हम लोग भगवान श्रीकृष्ण से कौरव-सभा मे जाने की प्रार्थना करें। वहाँ वे ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे हमे भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कुरुवशियो के साथ युद्ध न करना पडे। यही हमारा ध्येय है और यही हमारे लिये परम कल्याण का मार्ग है।'

ऐसी मत्रणा कर, वे भगवान श्रीकृष्ण के पास गये और युधिष्ठिर ने कहा—'भगवन् ! चाचा धृतराष्ट्र को राज्य का बडा

लोभ है। उनके मन मे पाप बस रहा है। अत. हमे राज्य दिये बिना ही वे कोई सधि का मार्ग ढूँढ रहे है। वे धर्म की ओर नही देखते और पुत्रों में आसक्त है, अत उन्ही का अनुसरण करते है। प्रभो ! यह सोचकर कि कौरव अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहेंगे, पाण्डव बारह वर्ष तक वन मे और एक वर्ष अज्ञातवास में रहे। भरतवंशियो का विनाश न हो, इसलिये मैने उनसे पाँच गाँव ही माँगे थे, किन्तु उन्होंने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। जनार्दन ! इस समय मैं कुटुम्ब का भी अच्छी तरह पालन-पोपण नही कर सकता। उत्तम कुल में जन्म लेकर मनुष्य यदि जीविका भी न चला सके तो कष्ट उसकी विचार-शक्ति को नष्ट कर देते हैं। विचार-शक्ति के नष्ट होने पर उसकी लज्जा चली जाती है और निर्लज्जता धर्म को नष्ट कर देती है। धर्मच्युत मनुष्य का धन नष्ट हो जाता है और धन का अभाव ही मनुष्य की मृत्यु है। प्रभो ! जो जन्म से ही निर्धन रहा हो, उसे उस दरिद्रता के कारण उतना कष्ट नही होता, जितना कि कल्याण-मयी सम्पति को पा फिर उस सम्पत्ति से वचित होने पर होता है। निर्धन अवस्था मे मनुष्य को केवल क्रोध आता है और वह विवेक खो बैठता है। तब वह मोह के वशीभूत हो क्रूर-कर्म करने लगता है। इस प्रकार पाप कर्मो मे प्रवृत्त होने के कारण वह नरक मे जाता है। धर्म मे तत्पर रहने वाला मनुष्य निरतर सत्कर्मों में ही लगा रहता है, अतः उसकी धन-सम्पत्ति बढने लगती है। हम कष्ट के दिन व्यतीत कर रहे है, इसलिये न्याय से अपनी पैतृक-सम्पत्ति पाने के लिए प्रयत्न करेगे। मै युद्ध नही चाहता, क्योंकि उसका परिणाम भयकर है, अत. हम लोग न तो राज्य त्यागना चाहते है, न कुल के नाश की ही इच्छा रखते है। यदि नम्रता दिखाने से ही शान्ति हो जाये तो वही सबसे उत्तम है। अब तक हम सब प्रकार से शान्ति रखने के उपायो मे असफल रहे है, इसलिये युद्ध ही हमारा प्रधान कर्तव्य हो गया है। जब शान्ति के प्रयत्नो मे बाधा आती है, तब युद्ध स्वतः

आरम्भ हो जाता है। माधव ! ऐसे समय मे हमे क्या करना चाहिये ? हम तो आपकी ही शरण ग्रहण करते है, क्योकि आप हमारे हितैषी, सुहृद और समस्त कर्मो के परिणाम को जानने वाले है।'

धर्मराज युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर भगवान श्रीकृष्ण वोले—'राजन् ! मैं दोनो पक्ष के हित के लिये कौरवो की सभा मे जाऊँगा और धर्मानुसार सन्धि कराने का प्रयत्न करूँगा।'

युधिष्ठिर वोले—'आपका कौरवो की सभा मे जाना मुझे अच्छा नही लगता। यदि दुर्योधन ने आपके साथ अनुचिन व्यवहार किया, तो हम लोगो के लिये वह वहुत दु.खदायी होगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन् ! दुर्योधन अत्यन्त पापी है, यह मैं जानता हूँ। तथापि वहाँ जाकर सन्धि के लिये प्रयत्न करने से हम लोग सम्पूर्ण राजाओ की दृष्टि मे निन्दा के पात्र नही होगे, अत. मेरा वहाँ जाना कदापि निरर्थक नहीं होगा। सम्भव है, वहाँ जाने से अपना अभीष्ट भी सिद्ध हो जाये। यदि मैं असफल रहा, तव भी हम निन्दा से तो वच ही जायेगे।'

युधिष्ठिर वोले—'भगवन् ! आपका कल्याण हो। मैं आपको पुन सकुशल देखना चाहता हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन् ! मैंने सजय और आपकी वात सुनी है। कौरवो का क्या अभिप्राय है और आपका क्या विचार है, उससे भी मैं परिचित हूँ। महाराज ! श्रेष्ठ पुरुषो का कथन है कि क्षत्रियो को भीख नही माँगनी चाहिये। वे सग्राम में विजय प्राप्त करें या प्राण दे, यही उनका कर्तव्य और स्वधर्म है। दीनता का आश्रय लेने से क्षत्रियो की जीविका नही चलती, अत अव आप पराक्रम दिखाइये और शत्रुओ का सहार कीजिये। मुझे तो ऐसा कोई उपाय नही दिखाई देता, जिससे वे आपको आधा राज्य दे दे। राजन् ! आप यह न समझे कि कौरव आप पर कृपा कर या आपको दीन मान अथवा धर्म के

विचार से आपका मनोरथ पूर्ण कर देंगे। वे आपकी हर समय निन्दा करते हैं, यह आपका वध करने से भी भयकर है। दुर्बुद्धि दुराचारी दुर्योधन सब प्रकार से वध करने योग्य है, इसलिये उसे आप अवश्य ही मार डाले। आप पिता-तुल्य धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म और द्रोणाचार्य के प्रति जो नम्रतापूर्ण व्यवहार करते है, वह सर्वथा आपके योग्य है। मै कौरव राज्य सभा मे जाकर आपके गुणो तथा दुर्योधन के दोषो और अपराधो का वर्णन करूँगा। मुझे तो शत्रुओं के साथ युद्ध होने की ही सम्भावना प्रतीत होती है, अत आपके योद्धा युद्ध के लिये दृढ निश्चय कर सदा तैयार रहें। मै शान्ति स्थापना का इच्छुक हूँ, किन्तु युद्ध अवश्य होगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

फिर उन्होने अन्य पाण्डवो और योद्धाओ को अपने विचार प्रकट करने का आग्रह किया।

सहदेव ने कहा—'दुर्योधन ने हम लोगो को जो कष्ट दिये है और सती द्रौपदी का सभा में जो अपमान किया है, उसके परिणामस्वरूप मै युद्ध ही चाहता हूँ।'

सात्यकि ने कहा—'प्रभो! शूरवीर सहदेव ने जो बात कही है, वही सब योद्धाओ का मत है।'

द्रौपदी ने राजा युधिष्ठिर के धर्म और अर्थ से युक्त वचन सुने तो शोक से कातर हो उठी। वह सात्यकि तथा सहदेव की प्रशसा करती हुई भगवान श्रीकृष्ण से बोली—'महाबाहु मधुसूदन! भीमसेन को शान्त देख मेरे मन मे बडा दुःख है। आपके वहाँ जाने पर यदि दुर्योधन राज्य दिये बिना ही सधि करना चाहे, तो आप इसे किसी तरह भी स्वीकार न करे। महाबाहो! पाण्डव अन्य वीरो के साथ दुर्योधन की सेना का सामना करने मे समर्थ है। कौरवो के प्रति शान्ति के वचन कहने से कोई प्रयोजन सिद्ध नही होगा, क्योकि वे हम पर कभी कृपा नही करेंगे। हे अच्युत! आपको पापियो को शीघ्र ही दण्ड देना चाहिये। जैसे अवध्य का वध करने से पाप लगता है, वैसे ही

वध्य का वध न करने से दोषो की प्राप्ति होती है। हे केशव! पाण्डवो और यदुवशियो के जीते-जी मैं पापी कौरवो की सभा मे पूज्यजनो के सामने अपमानित हुई थी। पाण्डव यह सब देखते रहे, किन्तु न तो उस समय इनका क्रोध जागा और न इन्होने मुझे छुडाने की ही चेष्टा की। उस समय मैंने आपका ही स्मरण किया और आपने ही मुझे भयकर कष्ट से मुक्त किया। भगवन्! ऐसी दशा मे यदि पापात्मा दुर्योधन एक क्षण भी जीवित रहता है, तो अर्जुन और भीमसेन के वल को धिक्कार है।'

द्रौपदी ने नेत्रो मे आँसू भरकर पुन. भगवान से कहा—'हे श्रीकृष्ण! दु शासन के हाथ से खीचे हुए मेरे इन केशो को आप याद रखियेगा। जव तक मैं दु शासन की भुजाओं को पृथ्वी पर कटी न देखूँगी, तब तक मेरे हृदय को शान्ति नही मिलेगी।'

द्रौपदी की करुणा और क्रोध-भरी वाणी सुन भगवान ने उसे सान्त्वना दी और सात्यकि के साथ हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान किया। जब धृतराष्ट्र ने सुना कि श्रीकृष्ण कल हस्तिनापुर के लिये पहुँच जायेंगे, तव उसने दुर्योधन के अतिरिक्त सभी पुत्र और पौत्रो को वस्त्राभूषणो से विभूषित कर उनकी अगवानी के लिये भेजा। फिर उन्होने सेवको को आज्ञा दी कि दु शासन के महल, जो दुर्योधन के महल से भी श्रेष्ठ है, मे श्रीकृष्ण को ठहराया जाये। उस महल में बहुमूल्य रत्न रख दिये जायें। यादव-श्रेष्ठ उनमे से जो-जो रत्न लेना चाहे, वे सव उन्हे नि संकोच भेंट कर दिये जायें।

विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा—'राजन्! आप सरलता को अपनाइये। मूर्खतावश कुटिलता का आश्रय ले सुहृदो का सर्वनाश न कीजिये। नरेश्वर! श्रीकृष्ण को अतिथि-रूप मे पाकर आप उन्हे अनेक वस्तु भेंट करना चाहते हैं, यह आपकी वडी मूर्खता है। मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि आप धर्म-पालन के उद्देश्य से या श्रीकृष्ण का हित करने के लिये उन्हे ये

सव वस्तुएँ नही देना चाहते है। यह सव तो आपकी माया और प्रपच मात्र है। आपका जो वास्तविक अभिप्राय है, उसे मैं समझता हूँ। नरेन्द्र ! आप समझते हैं कि महावाहु श्रीकृष्ण को धन का लोभ दे, पाण्डवों से विमुख करने मे सफल हो जायेंगे ? परन्तु आप धन देकर या दूसरे किसी उद्योग से श्रीकृष्ण को अर्जुन से पृथक नही कर सकते। महाराज ! भगवान केशव कल्याण की इच्छा ले, जिस प्रयोजन से कुरु-देश मे आ रहे है, वही उपहार उन्हे दीजिये।'

दुर्योधन वोला—'पिताजी ! अपनी मर्यादा से कभी न च्युत होने वाले श्रीकृष्ण के सम्वन्ध मे विदुरजी ने ठीक ही कहा है। श्रीकृष्ण का पाण्डवो के प्रति अटूट अनुराग है, अत. उन्हे विमुख नही किया जा सकता। आप जनार्दन को जो धन-रत्न भेंट करना चाहते है, वे कदापि न दे।

पितामह भीष्म ने कहा—'राजन् ! श्रीकृष्ण का कोई सत्कार करे या न करे, इससे वे कुपित नही होगे। परन्तु वे अवहेलना के योग्य नही है, अत· किसी को भी उनका अपमान नहीं करना चाहिये। महावाहु श्रीकृष्ण जिस कार्य को करना चाहेंगे, वह निश्चित रूप से होगा ही। तुम श्रीकृष्ण को मध्यस्थ बनाकर पाण्डवो के साथ शीघ्र सधि कर लो। धर्मात्मा श्रीकृष्ण जो कुछ कहेगे, वह निश्चय ही धर्म और अर्थ के अनुकूल होगा, अत· कौरवों को उनके साथ प्रिय वचन ही वोलने चाहिये।'

दुर्योधन वोला—'पितामह ! मै जीवन-भर पाण्डवो के साथ मिलकर इस सारी सम्पत्ति का उपभोग करूँ, यह सम्भव नही है। मैंने निश्चय किया है कि श्रीकृष्ण के यहाँ आने पर उन्हे वदी बना लूँगा। उनके बदी हो जाने पर पाण्डव और यदुवशी मेरे अधीन हो जायेंगे।'

भीष्म क्रोधपूर्वक बोले—'धृतराष्ट्र ! तुम्हारा यह मद-बुद्धि पुत्र काल के वश मे है। यह अपने हितैषियो के कहने-समझाने पर भी अनर्थ को ही अपनाता है। तुम भी सुहृदो की

बात न मानकर इस पापात्मा का ही अनुसरण करते हो। भगवान श्रीकृष्ण से भिडकर तुम्हारा यह दुर्बुद्धि पुत्र मन्त्रियो सहित क्षण भर मे ही नष्ट हो जायेगा। इसने धर्म को सर्वथा त्याग दिया है। अब मैं इस पापी एव क्रूर स्वभाव वाले दुर्योधन की अनर्थ भरी बातें नही सुनना चाहता।'

ऐसा कह सत्य-पराक्रमी भीष्म सभा-भवन से उठकर चले गये।

प्रात.काल नित्य कर्म पूर्ण करके भगवान श्रीकृष्ण हस्तिनापुर की ओर चले। दुर्योधन के अतिरिक्त सभी कौरव, भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य भगवान श्रीकृष्ण की अगवानी के लिये गये। भीष्म और द्रोणाचार्य से भगवान श्रीकृष्ण मार्ग मे ही मिले। तदनन्तर उन्होने राज्य-भवन मे प्रवेश किया। श्रीकृष्ण को आते देख, धृतराष्ट्र और अन्य सुहृदो ने अपने-अपने आसनो से उठकर सत्कार किया। भगवान श्रीकृष्ण ने भी प्रिय वचनो द्वारा भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और कौरवो सहित अन्य सभासदो का सम्मान किया। तत्पश्चात सभी अपने-अपने आसनो पर वैठ गये। राजा धृतराष्ट्र से पूजित एव सम्मानित होने के पश्चात आज्ञा ले, श्रीकृष्ण ने विदुरजी के गृह मे पदार्पण किया।

विदुरजी भगवान श्रीकृष्ण का मागलिक द्रव्यो द्वारा पूजन करके वोले—'मधुसूदन! आपके दर्शन से मुझे जो प्रसन्नता मिली है, उसका मैं किस प्रकार वर्णन करूँ। आप अतर्यामी, देहधारियो की आत्मा है, अतः आपसे क्या छिपा है?' तदनन्तर विदुरजी ने उनसे पाण्डवो का कुशल समाचार पूछा। भगवान श्रीकृष्ण विदुरजी से वार्तालाप करने के पश्चात अपनी वुआ कुन्ती देवी के पास गये।

तेजस्वी श्रीकृष्ण को अपने गृह मे देख कुन्ती देवी उनसे गले मिली और अपने पुत्रो का स्मरण कर फूट-फूटकर रोने लगी—'वत्स! मेरे सत्यवादी पुत्र पाण्डव वाल्यकाल से ही गुरु-

जनो की सेवा में तत्पर रहने के कारण सर्वत्र सम्मान पाते थे, किन्तु शत्रुओं की शठता के कारण राज्य से हाथ धो बैठे। वे हर्ष और क्रोध को जीत चुके थे। वे सुखो से वचित हो निर्जन वन मे रहने योग्य नही थे, तब उन्हे यह कष्ट कैसे प्राप्त हुआ ? अब वे कैसे है ? तात! आंखो की पलके गिरने में जितना समय लगता है, उतनी देर भी उनसे अलग रहने पर मैं धैर्य खो बैठती थी, परन्तु अब इतने दिनों से उनको न देखकर भी जी रही हूँ, यह दैव का ही विधान है। कुलीन, अनुपम सुन्दरी और समस्त गुणो मे सम्पन्न द्रौपदी मुझे अपने सभी पुत्रो से अधिक प्रिय है। वह कल्याणी अब कैसी दशा मे है ? शत्रुदमन! अब चौदहवॉ वर्ष बीत रहा है, पर मैंने प्राण-प्रिय पुत्रो और सत्यवादिनी द्रौपदी को अभी तक नही देखा। मेरे मन मे पाण्डवो और कौरवो के प्रति कभी भेदभाव नही था, किन्तु पाण्डवो का कष्ट देख मैं चाहती हूँ कि भावी संग्राम मे उनके शत्रु मारे जाये तथा राज्य-लक्ष्मी पाण्डवो का वरण करे। माधव! वैधव्य, धन का नाश और कौरवों का वैरभाव मुझे इतनी पीडा नही देते, जितना कि पुत्रो का विरह मुझे शोक-सागर मे डुबा रहा है। जब तक मैं अपने पुत्रो और देवी द्रौपदी को नही देख लेती, तब तक मेरे हृदय को शान्ति नही मिलेगी। वासुदेव! जो स्त्री दूसरो के आश्रित हो जीवन निर्वाह करती है, उसका मर जाना ही उत्तम है। तुम मेरे पुत्रो मे कहना—क्षत्राणी जिस उद्देश्य से पुत्रो को जन्म देती है, उसे पूर्ण करने का समय अब आ गया है। यदि इस समय भी तुम युद्ध नही करोगे, तो मैं तुम्हे त्याग दूँगी। पुत्रो! तुम्हे समय आने पर रणभूमि मे अपने प्राणो को त्याग देने के लिये उद्यत रहना चाहिये।'

तदनन्तर शोक में डूबी हुई कुन्ती को सात्वना देते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'बुआ! ससार मे तुम जैसी सौभाग्यशालिनी नारी दूसरी कौन है ? तुम वीर पत्नी, वीर जननी तथा समस्त सद्‌गुणो से सम्पन्न हो। द्रौपदी सहित पाण्डवो ने

तुम्हे प्रणाम कहलाया है। तुम शीघ्र ही उन्हे देखोगी। वे अनेक शत्रुओ का सहार कर साम्राज्य लक्ष्मी से सयुक्त हो राज्य-सिहासन पर प्रतिष्ठित होगे।'

कुन्ती ने कहा—'मधुसूदन! जो पाण्डवो के लिए हितकर हो, वही कार्य करो।'

तदनन्तर देवकीनन्दन कुन्तीदेवी की परिक्रमा कर विदा ले, दुर्योधन के घर गये। वहाँ उन्होने दुर्योधन को अनेक राजाओ और कौरवो से घिरा देखा। दुर्योधन के पास दु शासन, कर्ण और शकुनि भी आसन पर बैठे थे। श्रीकृष्ण के आते ही दुर्योधन मन्त्रियो सहित उठ खडा हुआ और भगवान को एक सुन्दर आसन पर बैठाया। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को भोजन के लिए निमन्त्रण दिया, किन्तु उन्होने स्वीकार नही किया।

दुर्योधन बोला—'जनार्दन! आपके लिये जो वस्तुएँ प्रस्तुत की गई है, उन्हे आप ग्रहण क्यो नही करते?'

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—'भारत! दूत अपना प्रयोजन सिद्ध होने पर ही भोजन और सम्मान स्वीकार करते है, ऐसा नियम है। तुम भी मेरा उद्देश्य सिद्ध हो जाने पर मेरा और मेरे मन्त्रियो का सत्कार करना।'

दुर्योधन ने कहा—'माधव! आपको हमारे साथ ऐसा अनुचित व्यवहार नही करना चाहिये। मधुसूदन! आपका उद्देश्य सफल हो या न हो, हम लोग आपके सम्मान का प्रयत्न करते ही है। हमे ऐसा कोई कारण नही जान पडता, जिससे आप हमारी प्रेमपूर्वक अर्पित की हुई पूजा अस्वीकार करे।'

श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! मैं काम, क्रोध, लोभ, द्वेष और स्वार्थवश धर्म त्याग नही कर सकता। किसी के घर भोजन या तो प्रेम के कारण किया जाता है या आपत्ति मे पडने पर। राजन्! प्रेम तो तुम रखते नहीं और किसी आपत्ति मे हम नही पडे है। तुम्हारे भाई पाण्डव अपने प्रियजनो के हितचिन्तक और सद्गुणो से सम्पन्न है, तथापि तुम जन्म से ही उनके साथ

अकारण द्वेष रखते हो। जो पाण्डवों से द्वेष रखता है, वह मुझसे भी द्वेष रखता है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरा भी प्रिय है। तुम मुझे धर्मात्मा पाण्डवो के साथ सब प्रकार से समझो। जो द्वेष रखता है, उसका अन्न नही खाना चाहिये। तुम्हारा यह अन्न दुर्भावना मे दूषित है, अतः मेरे योग्य नही।'

दुर्योधन से ऐसा कह भगवान श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के घर चले गये। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य ने भगवान श्रीकृष्ण से आतिथ्य स्वीकार करने का निवेदन किया, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें धन्यवाद देते हुए प्रेमपूर्वक उनके आग्रह को स्वीकार नही किया।

रात में जब भगवान श्रीकृष्ण भोजन करके विश्राम कर रहे थे, तब महात्मा विदुरजी ने कहा—'केशव! मेरी समझ में आपका यहाँ आना अच्छा नही हुआ। जनार्दन! मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ दोनों का उल्लघन कर चुका है। वह क्रोधी, दूसरो का अपमान करने वाला और स्वय सम्मान चाहने वाला है। उसने गुरुजनो के आदेशों को भी ठुकरा दिया है। वह धर्म शास्त्रो की भी आज्ञा नही मानता, अत उस दुरात्मा को सन्मार्ग पर लाना असम्भव है। उसके मन मे सन्धि करने का विचार नही है। कौरवो ने निश्चय कर रखा है कि वे पाण्डवों को उनका राज्य नही देगे। आप जो सधि के लिये प्रयत्न करते है, वह सब व्यर्थ ही होगा, क्योकि मूर्ख दुर्योधन आपकी बात नही मानेगा। कौरव पापपूर्ण विचार लेकर बैठे है, अतः उनके मध्य आपका जाना मुझे अच्छा नही लगता।'

विदुर के प्रेम और विनय से युक्त वचन सुन भगवान ने कहा—'विदुरजी! आपने माता-पिता के समान स्नेहपूर्वक जो सत्य, धर्म और अर्थ से युक्त वचन कहे है, वे युक्ति-सगत है। मैं इन सब बातो को जानते हुए भी कौरवो के पास आया हूँ। मनुष्य अपनी शक्ति लगाकर यदि किसी धर्म कार्य को करते है, किन्तु उन्हे सफलता प्राप्त नही होती, तब भी उन्हे उसका

पुण्य तो अवश्य ही प्राप्त होता है। विदुरजी ! मैं सन्धि कराने का प्रयत्न निष्कपट भाव से अवश्य ही करूँगा। भाई-बन्धुओ मे परस्पर फूट उत्पन्न होने पर जो मित्र प्रयत्न करके उनमे मेल कराने के लिये मध्यस्थता नही करता, उसे विद्वान मित्र नही मानते।'

भगवान श्रीकृष्ण और महात्मा विदुर वार्ता मे इतने तन्मय थे कि रात्रि व्यतीत हो गयी। प्रात काल यदुवश शिरोमणि शय्या से उठ नित्यकर्म से निवृत्त हुए।

इसी समय राजा दुर्योधन मन्त्रियो सहित आये और बोले—'भगवन् ! महाराजा धृतराष्ट्र, भीष्म और कौरव अन्य राजाओ और मन्त्रियो सहित सभा मे आ गये है।'

यह सुन भगवान श्रीकृष्ण धर्मों के ज्ञाता विदुरजी के साथ रथ पर बैठ, कौरव-सभा-भवन मे पहुँचे। भीष्म, द्रोण आदि भगवान श्रीकृष्ण का सम्मान करने के लिये अपने आसनो से उठ राजा धृतराष्ट्र को आगे कर स्वागत के लिये बढे। भगवान श्रीकृष्ण ने भी राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण सहित कौरवो और अन्य राजाओ का अभिनन्दन किया।

जब सब अपने-अपने आसनो पर बैठ गये, तब भगवान श्रीकृष्ण ने उठकर राजा धृतराष्ट्र से कहा—'राजन् ! मैं आपसे यह प्रार्थना करने यहाँ आया हूँ कि क्षत्रिय वीरो का सहार हुए बिना ही कौरवो और पाण्डवो मे शान्ति-स्थापन हो जाये। मुझे इसके अतिरिक्त कोई वार्ता आपसे नही करनी है। आप गुण सम्पन्न है, अत आपसे कोई अनुचित कार्य हो, तो वह ठीक नही। इस समय कौरवो पर भयकर विपत्ति आने वाली है, यदि उसकी उपेक्षा की गई, तो वह सबको विध्वस कर डालेगी। यदि आप चाहें, तो अब भी इस विपत्ति का निवारण किया जा सकता है। मैं चाहता हूँ कि आप अपने पुत्रो को मर्यादा मे रखे और मैं पाण्डवो को नियन्त्रण मे रखूँगा। राजन् ! युद्ध छिडने पर तो महासहार ही होगा और दोनो पक्षो का विनाश

होने के कारण आपको धर्म और सुख नही मिलेगा। आप अधर्म के द्वारा सत्य का गला मत घोटिये। आप पाण्डवो का राज्य उन्हें लौटा दीजिये। मैं तो आपका और पाण्डवो का कल्याण ही चाहता हूँ, किन्तु इस समय आप अर्थ को अनर्थ ही मान रहे है।'

भगवान श्रीकृष्ण के हितकर वचन सुन राजा धृतराष्ट्र बोले—'हे केशव ! मेरे दुरात्मा पुत्र मेरी बात नही मानते। आपने जो बात कही है, वह हितकर, धर्म सम्मत और न्याय-सगत है अत. आप ही इन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न कीजिये।'

फिर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा—'तात ! तुम्हारा उत्तम कुल में जन्म है। तुम स्वय शास्त्रो के ज्ञाता एव सद्व्यवहार के मर्मज्ञ हो, अत तुम्हे क्रूर एव निर्लज्ज कार्य नही करने चाहिये। तुम्हे अधर्म और अपयश का त्याग कर पाण्डवो के साथ सन्धि कर लेनी चाहिये। भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य एव अन्य बुद्धिमान नरेश भी यही चाहते है। सधि होने से सबका भला होगा। जो सत्पुरुषो की सम्मति का उल्लघन कर दुष्टो के मत के अनुसार चलता है, वह विपत्ति मे पड शोक का भागी होता है। जो अधम मनुष्य लोभ के वशीभूत हो धर्म का त्याग कर अयोग्य उपायो से अर्थ और काम को चाहता है वह नष्ट हो जाता है। ईर्ष्यालु एव दुष्ट मनुष्यो का साथ करने की अपेक्षा तुम्हारे लिये पाण्डवो से मेल करना विशेष कल्याणकारी है। कौरव और उनके साथी सब मिलकर भी अर्जुन का सामना करने मे असमर्थ है, अत तुम युद्ध का विचार न करो।'

राजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन को उपदेश देने के पश्चात पितामह भीष्म, द्रोण और विदुर ने उसे समझाना आरम्भ किया—'तात ! तुम महात्मा केशव और राजा धृतराष्ट्र की बात न मानने से सुख और कल्याण नही पा सकते। वत्स ! केशव के वचन सत्य और सार्थक है, अत तुम उन्हें स्वीकार कर लो और प्रजा का विनाश न करो। तुम तुच्छ बुद्धि वाले लोगो की बातो पर आस्था न रखो।'

कौरव सभा मे अप्रिय वचन सुन दुर्योधन ने वसुदेवनन्दन से कहा—'केशव ! आप तो मुझे दोषी ठहराकर मेरी ही निन्दा कर रहे है । मैं देखता हूँ कि विदुरजी, पिताजी, आचार्य और भीष्म पितामह मुझ पर ही दोषारोपण करते है, दूसरे किसी राजा पर नही । मैंने अपने पर लगाए हुए दोषो पर सब प्रकार से सोच-विचार किया है, पर मुझे मेरा कोई अपराध दृष्टिगोचर नही होता । हमने पाण्डवो का क्या बिगाडा है ? वे क्यो कौरवो का वध करना चाहते है ? माधव ! हम क्षत्रिय-धर्म से च्युत हो किसी के भी सामने भय से नतमस्तक नही होगे । पाण्डवो मे कोई ऐसा वीर नही है, जो हमे जीतने का साहस कर सके । केशव ! पूर्वकाल मे पिताजी ने जो राज्य-भाग मेरे अधीन कर दिया है, उसे मेरे जीते जी कोई नही पा सकता ।'

दुर्योधन की बाते सुन भगवान श्रीकृष्ण के नेत्र लाल हो गये । वे दुर्योधन से पुन बोले—'अब बहुत बडा नरसहार होने वाला है। तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हे रणभूमि मे वीर-शय्या प्राप्त होगी । तुमने अपने बडे भाई की पत्नी को सभा में लाकर उसके साथ जो अनुचित व्यवहार किया था, उसका फल शीघ्र ही तुम्हे चखना होगा । तुम याचना करने पर भी पाण्डवो को उनका राज्य-भाग नही देते हो, वही राज्य तुम्हे धराशायी होने पर देना पडेगा। माता, पिता, द्रोण और विदुर ने भी तुमसे बार-बार सधि के लिये आग्रह किया है, किन्तु तुम काल के वश हो सन्धि करना ही नही चाहते ।' भगवान श्रीकृष्ण की यह बात सुन दुर्योधन गुरुजनो और केशव का अनादर कर वहाँ से चला गया। क्रोधित दुर्योधन को वहाँ से जाते देख उसके भाई भी उसके साथ चल दिये ।

भीष्म पितामह ने कहा—'जो धर्म और अर्थ का परित्याग कर क्रोध का अनुसरण करता है, वह विपत्ति मे ही पडता है। यह दुरात्मा दुर्योधन रक्षा-सिद्धि के विपरीत कार्य करने वाला, अत्यन्त लोभी है, अत राजा होने के योग्य नही। जनार्दन ! मैं

समझता हूँ कि समस्त क्षत्रिय काल के मुंह में जाने वाले है, तभी तो दुर्योधन का अनुसरण करते है।'

भीष्म के वचन सुनकर कौरव-माता गाधारी ने भी उनका अनुमोदन किया और दुर्योधन को बहुविध नीति-युक्त वचन कहकर समझाया, किन्तु दुर्योधन ने माता का भी कहना नही माना। तदनन्तर दुर्योधन ने भगवान श्रीकृष्ण को सभा मे बन्दी बनाने का निश्चय किया। विद्वान सात्यकि को इस कुचाल का पता चल गया और उन्होने केशव को कौरवो का अभिप्राय बता दिया।

जब विदुर को इस मत्रणा का पता चला तब उन्होने धृतराष्ट्र को सम्बोधित किया—'नरेश! जान पडता है कि आपके सभी पुत्र काल के अधीन हो गये है। सुनने मे आया है कि वे सब सगठित हो कमलनयन श्रीकृष्ण को पकडना चाहते हैं। भगवान कृष्ण दुर्धर्ष है। इनके पास आकर सभी विरोधी अग्नि मे गिरने वाले पतंगों के समान नष्ट हो जायेगे।'

धृतराष्ट्र ने विदुर से कहा—'उस पापात्मा दुर्योधन और उसके मत्रियो को मेरे पास लाओ।' जब दुर्योधन पुन सभा मे आया तब धृतराष्ट्र ने उसे डॉटते हुए कहा—'ओ मूढ! इद्र-सहित देवता भी जिन्हे बलपूर्वक अपने वश मे नही कर सकते, उन्हे तू बदी बनाना चाहता है? जरासध, दतवक्र, शिशुपाल और बाणासुर जिसके हाथो मारे गये, उन्हे तू बदी बनाना चाहता है? वे अजेय है, तू क्यो अपना विनाश चाहता है।'

श्रीकृष्ण बोले—'दुर्योधन! तू मोहवश मुझे अकेला मान रहा है और पकडना चाहता है, यह तेरा अज्ञान है। तू देख, आदित्य, रुद्र, वसु, महर्पियो सहित सब पाण्डव यही है।' ऐसा कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने अट्टहास किया। उनके ऐसा कहने पर उनके श्री अगो मे विद्युत के समान कान्ति वाले देवता अग्नि उगलते हुए दिखाई दिये। उनके ललाट मे ब्रह्मा और वक्ष-स्थल में रुद्र विद्यमान थे। समस्त लोकपाल भुजाओ मेऔर

मुख से अग्नि की लपटे निकल रही थी। साध्य, दोनो अश्विनी कुमार, इन्द्र, रुद्रगण, विश्वदेव, यक्ष, गधर्व और नाग भी उनके भिन्न-भिन्न अगो मे दिखाई दिये। उनकी दाहिनी भुजाओ में अर्जुन और वलरामजी का प्रादुर्भाव हुआ। भीमसेन, युधिष्ठिर नकुल और सहदेव उनके पृष्ठ भाग मे प्रकट हुए। प्रद्युम्न आदि वृष्णिवशी तथा अन्धकवशी योद्धा हाथो मे विशाल आयुध धारण किये भगवान के अग्रभाग मे प्रकट हुए। शख, चक्र, गदा, खड्ग भगवान श्रीकृष्ण की अनेक भुजाओ मे देदीप्यमान दिखाई देते थे। उनके नेत्रो, नासिका और कानो से भयकर अग्नि की लपटे निकल रही थी। उनके रोम-कूपो मे सूर्य के समान दिव्य किरणे प्रकाशित हो रही थी। महात्मा श्रीकृष्ण के उस भयकर स्वरूप को देखकर राजाओ के मन मे भय समा गया और उन्होने अपने नेत्र वन्द कर लिये। भीष्म, द्रोण, महात्मा विदुर, सजय और महर्षियो को भगवान जनार्दन ने दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, अत उन्हे भगवान के दर्शन हुए।

धृतराष्ट्र ने कहा—'यदुकुल तिलक श्रीकृष्ण। आप ही सम्पूर्ण जगत के हितैषी हैं। मैं भी आपका दर्शन करना चाहता हूँ अत मुझे दोनो नेत्र प्रदान कर दीजिये।'

श्रीकृष्ण बोले—'कुरुनन्दन। आपको अदृश्य नेत्र प्राप्त हो जायेगे। फिर पुरुषसिह श्रीकृष्ण ने उस दिव्य स्वरूप और अद्भुत ऐश्वर्य को समेट लिया और सभा-भवन से उठकर बुआ कुन्ती से मिलने चले गये। उन्होने सभा की घटनाओ को उन्हे कह सुनाया और उन्हे प्रणाम कर पाण्डवो के पास गये।

# श्रीकृष्ण-कर्ण संवाद और सेनापतियों का चुनाव

भगवान श्रीकृष्ण जब हस्तिनापुर से चले, तब मार्ग मे वे कर्ण से मिले और उससे उन्होंने कहा—'राधानन्दन ! तुम सनातन वैदिक सिद्धान्तो को जानते हो, तुम सयम-नियम और धर्म-शास्त्र का भी पालन करते हो, तुम सूक्ष्म विपयो के भी पारगत विद्वान हो, इसलिये दुष्टो का सग तुम्हें त्याग देना चाहिए। तुम्हारा जन्म कुन्ती के गर्भ से हुआ है, अत· तुम भी धर्मानुसार पाण्डु के ही पुत्र हो। यदि पाण्डवों को यह पता चल जाये कि तुम उनके जेष्ठ भ्राता हो तो वे सब तुम्हारे चरणो मे नमस्कार करेगे और तुम्हे सम्राट के पद पर अभिषिक्त कर देंगे। कर्ण ! मैं चाहता हूँ कि आज से अपने भाई पाण्डवो के साथ तुम्हारा स्नेहपूर्ण व्यवहार हो।'

कर्ण ने कहा—'केशव ! आपने प्रेम, मैत्री और मेरे हित की इच्छा से जो कुछ कहा है, वह नि.सन्देह ठीक है । मैं जानता हूँ कि मेरी माता कुन्ती है , अत. मैं,पाण्डु का ही पुत्र हूँ, परन्तु कुन्ती देवी ने मुझे जिस प्रकार नदी मे बहा दिया था, उस प्रकार मै सकुशल नही रह सकता था! मधुसूदन! नदी के प्रवाह मे पडे हुए मुझको अधिरथ नामक सूत घर ले आये और बडे स्नेह से अपनी पत्नी राधा को गोद मे दे दिया। सूत मुझे अपना पुत्र समझते है और मैं उन्हे पिता ही मानता आया हूँ। ऐसी स्थिति मे मुझ जैसा धर्मज्ञ पुरुष उन्हे कैसे त्याग सकता है ? गोविन्द ! मैंने दुर्योधन का सहारा पाकर तेरह वर्ष तक अकण्टक राज्य का उपभोग किया है। दुर्योधन ने मेरे ही भरोसे पाण्डवो के साथ विग्रह करने का साहस किया है और युद्ध मे अर्जुन का सामना करने के लिये मुझे ही चुना है। जनार्दन ! इस समय मैं मृत्यु के

भय या लोभ से दुर्योधन के साथ मिथ्या व्यवहार नही करूँगा। माधव! इसमे सदेह नही कि मेरे हित के लिये आप जो भी पाण्डवो को कहेगे, वे उसके अनुसार अवश्य ही कार्य करेगे। किन्तु केशव! मेरे और आपके वीच मे जो यह गुप्त परामर्श हुआ है, उसे आप यही तक सीमित रखे। यदि धर्मात्मा युधिष्ठिर यह जान लेगे कि मैं कुन्ती का प्रथम पुत्र हूँ तो वे राज्य ग्रहण नही करेगे। उस दशा मे मैं इस विशाल राज्य को पाकर भी दुर्योधन को ही सौप दूंगा। मै चाहता हूँ कि जिनके साथी आप और योद्धा अर्जुन है, वे धर्मात्मा युधिष्ठिर सर्वदा राजा वने रहें। आपकी सहायता से पाण्डव शत्रुओ का विनाश कर डालेगे। श्रीकृष्ण! मैंने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये पाण्डवो को वहुत से कटु वचन कहे हैं, उनके कारण आज मुझे वडा पश्चात्ताप हो रहा है। जव आप वीर अर्जुन के हाथो मुझे मरा देखेगे, भीमसेन दु शासन का रक्तपान करेगा और शिखण्डी भीष्म, द्रोण को मार गिरायेगा, तव ही सव पाण्डव प्रसन्न होगे। माधव! जव महावली भीमसेन दुर्योधन का वध करेगा, उस समय कौरवो का प्रारम्भ किया हुआ यह रण-यज्ञ समाप्त हो जायेगा। केशव! कुरुक्षेत्र परम पुण्य तीर्थ है। मैं चाहता हूँ कि क्षत्रिय समुदाय वही शस्त्रो के आघात से स्वर्ग को प्राप्त हो। आप भी इसकी सिद्धि के लिये ही प्रयत्न करें।'

श्रीकृष्ण वोले—'कर्ण! पाण्डवो की विजय अवश्यम्भावी है। तुम्हारे मन मे जो अभिलाषा है, वह अवश्य पूर्ण होगी। कौरव और उनके साथी राजा उत्तम गति प्राप्त करेगे।'

कर्ण ने कहा—'महावाहो! आप जानते ही हैं कि योद्धाओ के विनाश के निमित्त मैं, शकुनि, दु शासन और दुर्योधन है। मधुसूदन! मुझे वहुत से भयकर स्वप्न तथा अपशकुन दृष्टिगोचर हुए हैं। ये सव युधिष्ठिर की विजय और दुर्योधन की पराजय घोषित करते है। महावाहु श्रीकृष्ण! यदि मैं इस महायुद्ध से जीवित वच गया तो पुन आपके दर्शन करूँगा।' ऐसा

कहकर कर्ण ने भगवान श्रीकृष्ण का प्रगाढ आलिगन किया और उनसे विदा लेकर चला गया।

तदनन्तर कुन्ती ने सत्यपरायण पुत्र कर्ण के पास जाकर उससे पाण्डवों से मेल करने का अनुरोध किया, किन्तु वीर कर्ण ने माता का वह प्रस्ताव स्वीकार नही किया। उसने माता से प्रतिज्ञा की कि मैं अर्जुन के अतिरिक्त अन्य चारो भाइयो को युद्ध मे नही मारूँगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को हस्तिनापुर की घटनाओ का सारा वृतान्त कह सुनाया। उन्होने कहा—'कौरव और उनके साथी राजा कुरुक्षेत्र के लिये प्रस्थान करने की तैयारी कर रहे है। वे विना युद्ध किये तुम्हें तुम्हारा राज्य नही देगे। अब तुम्हें जो भी उचित जान पड़े, वही करो।

भगवान श्रीकृष्ण की यह वात सुनकर युधिष्ठिर ने सब योद्धाओं को सबोधित कर कहा—'वीरो! अब तुम लोग भी रण की तैयारियाँ करो। भगवान श्रीकृष्ण जिसका नाम बतावे, उसे ही हम सेनापति चुनेगे।' भगवान श्रीकृष्ण ने धृष्टद्युम्न को पाण्डव सेना का प्रधान सेनापति चुना। अब पाण्डव सेना भीमसेन को आगे कर कुरुक्षेत्र की ओर वढी। कौरवो ने भीष्म-पितामह को सेनापति के पद पर नियुक्त किया और फिर वे सव राजाओ और सेना के साथ कुरुक्षेत्र पहुँचे। जब बलरामजी को पता चला कि कौरव-पाण्डव युद्ध कुरुक्षेत्र मे होना निश्चित हो गया है, तब वे पाण्डवो से मिलने के लिए उनके शिविर में पहुँचे। उन्हें देखते ही धर्मराज युधिष्ठिर, भगवान श्रीकृष्ण, भीम-सेन, अर्जुन और अन्य राजागण जो वहाँ विद्यमान थे, अपने-अपने आसनों से खडे हो गये और सबने उन्हे प्रणाम किया।

जव सव अपने आसनो पर बैठ गये तब महामना बलरामजी बोले—'युधिष्ठिर! जान पड़ता है कि अब महादारुण और भयकर नर-सहार होने वाला है। मैं इसे प्रारब्ध का ही **विधान**

मानता हूँ। आप सब सुहृदो को मैं युद्ध के पश्चात सकुशल देखूँगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इसमे सन्देह नही कि कुरुक्षेत्र मे जो-जो क्षत्रिय एकत्रित हो रहे है, वे सब काल के आधीन है। मैंने श्रीकृष्ण से कहा था कि मुझे कौरव-पाण्डव सग्राम अच्छा नही लगता। युधिष्ठिर! तुम्हारे और अर्जुन के लिये कृष्ण अपने आप को भी निछावर करने के लिये तत्पर रहता है। मेरा विश्वास है कि इस युद्ध मे पाण्डवो की विजय होगी। भीमसेन और दुर्योधन दोनो ही वीर मेरे शिष्य एव गदा-युद्ध मे समान निपुण है, अत मै दोनो पर एक-सा ही स्नेह रखता हूँ। इसलिये मैं सरस्वती नदी के तटवर्ती तीर्थों का सेवन करूँगा, क्योकि मै कुरुवशियो को नष्ट होते हुए देख उनकी उपेक्षा नही कर सकूँगा।' ऐसा कह सबसे विदा लेकर महाबाहु बलरामजी तीर्थ-यात्रा के लिये चले गये।

दुर्योधन ने जब भीष्मपितामह को सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया, तब उन्होने शत्रु पक्ष के युद्ध मे निमन्त्रित योद्धाओ के नाम दुर्योधन से सुने। उन्होने दुर्योधन से कहा—'वीर! मैं तुम्हारी ओर से रणभूमि मे विजयाभिलाषी पाण्डव और उनके साथी वीरो के साथ अपनी विजय अथवा मृत्यु की आकाक्षा लेकर युद्ध करूँगा। मै वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण और अर्जुन का भी सामना करूँगा, पर पाण्डव-पुत्रो को मारूँगा नही। महाबाहो! पाचाल राजकुमार शिखण्डी यदि युद्ध मे मेरा सामना करेगा तो उसे भी मै नही मारूँगा। मै कभी किसी स्त्री को अथवा जो पहले स्त्री रहा हो, उस पुरुष को भी नही मार सकता। शिखण्डी पहले 'स्त्री रूप' मे उत्पन्न हुआ था, फिर पुरुष हो गया है, अत मैं उससे युद्ध नही करूँगा। मैंने अपने पिता को प्रिय करने की इच्छा से राज्य तो ठुकरा दिया और दृढतापूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया था। मैंने माता सत्यवती के ज्येष्ठ पुत्र चित्रागद को कौरवो के राज्य पर और बालक विचित्रवीर्य को युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया

था। दुर्योधन ! चित्रागद की असामयिक मृत्यु के पश्चात माता सत्यवती की इच्छानुसार मैंने विचित्रवीर्य को राज सिहासन पर बैठाया। उन्ही दिनो काशीराज की तीन सुन्दर कन्याओ, जिनके नाम अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका थे, का स्वयंवर होने वाला था। स्वयंवर का समाचार पाकर मैं काशीराज के नगर में गया। वहाँ तीनों कन्याओ और आमन्त्रित राजाओं पर मेरी दृष्टि पड़ी। मैंने उन राजाओ को युद्ध मे परास्त किया और तीनों कन्याओं को साथ ले हस्तिनापुर पहुँचा। उन्हें माता सत्यवती को सौप दिया।

जब मैंने माता की अनुमति से विचित्रवीर्य के साथ उन कन्याओ का विवाह करना चाहा, तब अम्बा ने मुझसे कहा—'भीष्म ! तुम धर्म के ज्ञाता और सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञान मे पूर्ण हो, अतः मेरी बात सुनकर तुम्हे मेरे साथ धर्मपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। मैने शाल्वराज को अपना पति चुना है और उसने भी मुझे वरण किया है, अतः मैं दूसरे की कामना करने वाली कन्या हूँ। तुम धर्म का उल्लघन कर मुझे अपने घर में कैसे रखोगे ? शाल्वराज निश्चय ही मेरी प्रतीक्षा करते होगे, अत. मुझे उनकी सेवा मे जाने की आज्ञा दो। वीर ! मुझ पर कृपा करो, क्योकि तुम सत्यव्रती महात्मा हो।' उसकी यह प्रार्थना सुन मैने माता सत्यवती की आज्ञा से राजकुमारी अम्बा को मुक्त कर दिया।

राजकन्या अम्बा शाल्वराज के पास गई और बोली—'राजन् ! मै तुम्हारी प्रिय और हित में तत्पर रहने वाली हूँ। मुझे धर्मानुसार ग्रहण कर अपने चरणो में स्थान दो। तुमने मुझसे विवाह करने की प्रतिज्ञा भी की थी।'

शाल्वराज ने कहा—'सुन्दरी ! तुम दूसरे की हो चुकी हो, अत अब मैं तुमसे विवाह नही करूँगा। भद्रे ! तुम पुन· भीष्म के ही पास जाओ।'

अम्बा ने कहा—'राजन् ! तुम्हे ऐसी बात नही कहनी चाहिये। मैं भीष्म के साथ प्रसन्नतापूर्वक नही गयी थी। उसने

स्वयवर में एकत्रित राजाओ को परास्त कर वलात् मेरा हरण किया था। मैं सत्य कहती हूँ कि मैंने तुम्हारे अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष को अपना पति वनाने की इच्छा नही की है, इसलिए मुझे न त्यागिये। अव उन्ही की आज्ञा लेकर अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ मैं यहाँ आई हूँ। महावाहु भीष्म मुझे अपने छोटे भाई के साथ विवाह करने ले गये थे। नरेश्वर! मेरी छोटी वहिने उन्होने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य से व्याह दी है।'

यद्यपि राजकन्या अम्वा का कथन सर्वथा सत्य था, किन्तु मदवुद्धि शाल्व ने उसकी एक भी वात न मानी और उस करुण क्रन्दन करती हुई अवला को त्याग दिया। इस पर अम्वा ने निश्चय किया कि मुझ पर जो यह विपत्ति आई है, उसका मुख्य कारण शान्तनुनन्दन भीष्म है, अत तपस्या या अन्य उपायो से मैं भीष्म से वदला लूंगी। ऐसा निश्चय कर वह भृगुनन्दन परशुरामजी की शरण मे गयी और उन्हे सारा वृतान्त कह सुनाया। परशुरामजी ने इस अपराध का मुझे दण्ड देने के हेतु युद्ध के लिये विवश किया। मैंने यह सारी घटना माता सत्यवती को सुना दी। माता सत्यवती ने स्वस्तिवाचन कर मेरा अभिनन्दन किया। उनसे कल्याणकारी आशीर्वाद ले मैं कुरुक्षेत्र मे परशुराम जी से युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो गया। वहाँ परशुरामजी अकेले ही युद्ध के लिये खडे थे। मैं रथ से उतरकर पैदल ही उनके पास गया। मैंने उन्हे विधिपूर्वक प्रणाम करने के पश्चात कहा—'भगवन् ! आप मेरे से अधिक शक्तिशाली, धर्मात्मा एवं गुरु हैं। मैं इस रण-क्षेत्र में आपके साथ युद्ध करूँगा, अत आप मेरी विजय के लिये मुझे आशीर्वाद दे।'

परशुरामजी वोले—'कुरुश्रेष्ठ! यदि तुम इस प्रकार मेरे समीप नही आते तो मैं तुम्हे शाप दे देता। अपनी उन्नति चाहने वाले प्रत्येक योद्धा को अपने गुरु के साथ ऐसा ही वर्ताव करना चाहिये। कुरुनन्दन! तुम धैर्य धारण कर प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करो।'

भीष्म ने कहा—'मैं उन्हें नमस्कार कर रथ पर जा बैठा और उनसे धर्मपूर्वक युद्ध करने लगा। मैंने कुपित हो परशुरामजी पर सैकड़ों बाणों से प्रहार किया। उनसे पीड़ित हो वे अचेत से हो गये। तब मै दया से द्रवित हो स्वय ही अपने आपको धिक्कारने लगा। जब वे मूर्छा से जागे तब उन्होने मुझ पर बहुत से अस्त्र चलाये, जिनसे मैं अचेत होकर पृथ्वी पर गिरने लगा। गिरते समय मैने देखा कि सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी आठ ब्राह्मण खड़े है और उन्होने अपनी भुजाओं पर ही मेरे शरीर को धारण कर लिया है।

वे सब मुझसे एक साथ बोले—तुम्हारा कल्याण हो। तुम भयभीत न हो। परशुरामजी तुम्हे युद्ध में जीत नही सकेगे। हम तुम्हारी रक्षा करते है, क्योकि तुम हमारे ही स्वरूप हो। तुम्हारी विजय होगी। तुम्हारे रथ पर सारथी के स्थान पर श्रेष्ठ माता गंगा बैठी है और उसने घोडों की बागडोर पकड़ रखी है। तब मैंने माता के चरणो का स्पर्श किया और रथ पर जा बैठा। तदनन्तर गुरु परशुरामजी से पुनः मेरा युद्ध आरम्भ हो गया। वे मेरे बाणों से अत्यन्त पीडित हो मूर्छित हो गये। उनके पृथ्वी पर गिरते ही भयकर अपशकुन होने लगे।

इससे मेरे मन में सताप हुआ किन्तु माता गगा ने कहा—पुत्र ! तुम दु.ख न करो। परशुरामजी की मृत्यु तुम्हारे द्वारा नही होगी।

इस प्रकार हम दोनों का भीषण युद्ध तेईस दिनो तक होता रहा।

अकस्मात् उस समय नारदजी रणभूमि में आये और उन्होने मुझसे कहा—परशुरामजी तेजस्वी, ब्राह्मण भक्त और तुम्हारे गुरु है। तुम उनका अनादर न करो। यही जगत के लिये कल्याणकारी है। मैंने नारदजी का प्रस्ताव स्वीकार कर युद्ध बन्द कर दिया।

इस पर परशुरामजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—पुत्र

भीष्म ! तुमने मुझे जीत लिया है। तुम गगा और शान्तनु के यशस्वी पुत्र साक्षात वसु हो, अत तुम्हे मैं कैसे जीत सकता हूँ, वीर ! अव तुम युद्ध से निवृत हो जाओ ।

तदनन्तर मैंने गुरु परशुरामजी को प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किये। परशुरामजी ने राजकुमारी अम्वा से कहा—ये उदारबुद्धि भीष्म युद्ध मे देवताओ के लिये भी अजेय है । मैंने अपनी पूर्ण शक्ति द्वारा युद्ध में पराक्रम दिखाया, जिसे भीष्म के अतिरिक्त कोई सह नही सकता था । तुम भीष्म की ही शरण ग्रहण करो, किन्तु वह कन्या मेरे वध के उपाय का ही चिन्तन करती हुई तपस्या मे सलग्न हो गई। शूल-पाणि भगवान शिव ने प्रसन्न होकर उस तपस्विनी को दर्शन दिया और उसकी इच्छानुसार उसे मेरे वध का वरदान भी दे दिया। कुछ काल पश्चात् वही राजकन्या अम्वा द्रुपद कुल में उत्पन्न हुई और राजा द्रुपद ने उसका शिखण्डी नाम रखा। शिखण्डी की जीवनी सुन दुर्योधन ने भी उसका वध करना उचित न समझा।

कुरुक्षेत्र मे प्रस्थान के पहले कौरवो और पाण्डव वीरो ने पवित्र जल से स्नान किया, श्वेत वस्त्र धारण किये, पुष्पों की माला पहनी, ब्राह्मणो से स्वस्ति-वाचन कराया और अग्नि मे आहु-तियाँ दी। धर्म-भूमि कुरुक्षेत्र मे पहुँचकर दोनों दल के महा-धनुर्धर वीरो ने भाँति-भाँति के कवच और कुण्डल धारण किये। वे घी की आहुति से प्रज्वलित हुई अग्नि तथा आकाश में उज्ज्वल ग्रहो के समान शोभा पा रहे थे। दोनों दलो के योद्धा कुरुक्षेत्र मे पहुँचने पर अपनी-अपनी सेना के अग्रभाग मे खड़े हो गये ।

पूर्व और पश्चिम दिशा मे आमने-सामने खडी हुई दोनो पक्षो की सेनाओं को देख भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान रखने वाले सम्पूर्ण वेदवेत्ताओ मे श्रेष्ठ महर्षि भगवान व्यास विचित्रवीर्यनन्दन राजा धृतराष्ट्र के पास गये और वोले—

'राजन् ! तुम्हारे पुत्रो तथा राजाओं का मृत्यु-काल आ पहुँचा है। जब वे नष्ट होने लगे तब इसे काल का चक्र समझकर शोक न करना। सग्राम-भूमि की घटनाओं को देखने के लिये मैं तुम्हें दिव्य नेत्र प्रदान करता हूँ, जिससे तुम यहाँ बैठे ही युद्ध का सारा दृश्य देख सकोगे।'

धृतराष्ट्र ने कहा—'भगवन् ! मुझे कुटुम्बियों का वध देखना अच्छा नही लगता, परन्तु मैं युद्ध का सारा वृतान्त सुनना चाहता हूँ।'

व्यासजी बोले—'राजन् ! सजय दिव्य दृष्टि से सम्पन्न हो सर्वज्ञ हो जायेगा और तुम्हे युद्ध की सारी घटनाए सुनाएगा। मै कौरव और पाण्डवों की कीर्ति का तीनो लोकों में विस्तार करूँगा। राजन् ! यह युद्ध दैव का विधान है। इसे कोई मिटा नहीं सकता। जहाँ धर्म है, उसी पक्ष की विजय होगी।'

राजा धृतराष्ट्र से ऐसा कह महर्षि व्यास चले गये।

भगवान व्यास के प्रस्थान के कुछ समय बाद सजय को कुरुक्षेत्र की घटनाए विदित होने लगी। उन्होने राजा धृतराष्ट्र से कहा—'राजन् ! अब चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर है। आकाश मे सात महाग्रह अग्नि के समान उद्दीप्त दिखाई दे रहे है। कौरव और पाण्डव सेनापति व्यूह-रचना में लगे हुए है, अतः शीघ्र ही युद्ध आरम्भ होगा, ऐसा प्रतीत होता है। राजन् ! दुर्योधन ने दु.शासन को अपने सेनापतियो द्वारा शिखण्डी से भीष्म पितामह की रक्षा करने और उसे मार डालने की आज्ञा दी है।'

दुर्योधन की विशाल सेना को देख कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—'महाबाहो ! जिनके प्रधान योद्धा पितामह भीष्म है, उनके साथ हम युद्ध कैसे कर सकेगे ?'

अर्जुन ने कहा—'राजन् ! विजय की इच्छा रखने वाले वीर अपने बल और पराक्रम से ही सर्वदा विजय नही पाते, अपितु सत्य, सज्जनता, धर्म, विनय तथा उत्साह से भी प्राप्त

करते है। जहाँ अधर्म, लोभ और मोह नही है, उसी पक्ष की विजय होती है। युद्ध मे हमारी विजय अवश्यम्भावी है, क्योकि जहाँ भगवान है, वही विजय है।'

श्रीकृष्ज अर्जुन से वोले—'महावाहो ! शत्रुओ को युद्ध मे पराजित करने के लिये तुम दुर्गादेवी की स्तुति करो।'

परम बुद्धिमान भगवान वासुदेव के कहने पर कुन्तीकुमार अर्जुन रथ से नीचे उतर दुर्गादेवी की स्तुति करने लगे—'हे सिद्धेश्वरी सेनानेत्री आर्ये ! तुम्हें मेरा वारवार नमस्कार है। तुम्ही कुमारी, काली, कपालिनी, कपिला, कृष्णा, पिंगला, भद्रकाली, चण्डी और महाकाली नामो से प्रसिद्ध हो। तुम भक्तो का सकट काटने वाली तारिणी हो। तुम्हे ही कात्यायनी, जया और विजया भी कहते है। तुम्ही ने पापी महिपासुर का वध किया था। मैं तुम्हे वारवार प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे ही नाम उमा, शाकम्भरी, श्वेता, कैटभनाशिनी, हिरण्याक्षी, विश्वरूपा और सुधूम्राक्षी है। तुम वेदो की अत्यन्त पवित्र श्रुति हो। तुम कार्तिकेय की माता दुर्गा हो। सावित्री, स्वाहा, स्वधा, काष्ठा, सरवस्ती, वेदमाता ये सव तुम्हारे ही नाम हैं। महादेवी ! मैंने विशुद्ध हृदय एव विजय की इच्छा से तुम्हारा स्तवन किया है, अत तुम मुझ पर प्रसन्न होओ। तुम्ही मोहिनी, माया, ह्री, श्री, सध्या, प्रभाती और जननी हो। तुम्ही तुष्टि, पुष्टि, धृति और सम्पूर्ण विभूति हो। तुम्हे मेरा वारवार प्रणाम है।

सजय ने कहा—'राजन् ! जो मनुष्य इस स्तोत्र का पाठ करेगा, उसे कभी भय नही होगा।'

# गीता-ज्ञान*

धृतराष्ट्र ने सजय से पूछा—'कुरुक्षेत्र मे जाने के बाद मेरे पुत्रों और कौरवों ने क्या किया, यह मुझे बताओ।'

संजय ने उत्तर दिया—'युद्ध के समय दुर्योधन ने द्रोणाचार्य के समीप जाकर कहा, आचार्य हमारी विशाल सेना के सेनापति पितामह भीष्म है। हम सब मिलकर इनकी रक्षा करते रहे तो भीम से रक्षित पाडवो की सेना को पराजित करने मे अवश्य सफल होगे।'

इतने मे सेनापति भीष्म ने शख बजाकर युद्धारम्भ की घोषणा कर दी। भगवान श्रीकृष्ण व अर्जुन ने भी अपने शख बजाये। अर्जुन ने भगवान से कहा—'केशव ! दोनो सेनाओ के मध्य रथ को ले चलिये, जिससे मै दोनो पक्षो के वीरो को

---

* श्रीमद्भगवत गीता एक ऐसा अनुपम ग्रथ है, जिसका सारे ससार मे सम्मान है। देश और विदेश के लेखको द्वारा इस पर जितना लिखा गया है, ससार की अन्य किसी पुस्तक पर नही लिखा जा सका। अपूर्व प्रतिभाशाली विद्वानो ने अपने-अपने विचारो के अनुसार इसकी व्याख्या की है। मैंने भी इस ग्रथ को जिस प्रकार समझा है, उसके अनुसार कुछ लिखने का प्रयत्न किया है। हो सकता है, कुछ विद्वानो का मेरे विचारो के साथ मतभेद हो।

गीता के रचना-काल का ठीक-ठीक निर्धारण करना एक बहुत ही कठिन प्रसग है, क्योकि इस सम्बन्ध मे कोई प्रामाणिक पाडुलिपि उपलब्ध नही है। प्राचीन काल मे ग्रथ-निर्माण के समय-निर्देश को किंचित भी महत्व नही दिया जाता था। उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री भी इसके सम्बन्ध मे पर्याप्त प्रकाश नही डालती है। महाभारत का युद्ध, श्रीकृष्ण और अर्जुन आदि के सम्बन्ध मे भी शका समाधान होते रहते है, किन्तु इन विवादो का गीता पर कोई प्रभाव नही पडता। यह एक दार्शनिक सिद्धान्त-ग्रथ है, जिसके तत्व सदा ही नवीन रहते है तथा सभी समय के मानवो को एक उज्ज्वल और प्रशस्त मार्ग दिखाने के लिये निरतर चिन्तामणि से चमकते रहते है।

देख सकूं।' भगवान श्रीकृष्ण तत्काल ही रथ को दोनो सेनाओं के बीच ले गये। अर्जुन ने युद्ध के लिये तत्पर अपने भाई-बन्धुओ को देखा तो उसके मन मे उद्विग्नता उत्पन्न हुई। उसने हाथ जोडकर भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'माधव! मैं चारो ओर अपने ही स्वजनो को परस्पर युद्ध के लिये उद्यत देख रहा हूँ। ज्ञात होता है कि इस युद्ध से हमारे वश का पूर्ण विनाश हो जायेगा। इस परिणाम को सोचकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है। हाथ-पैर कॉंप रहे है। शरीर में स्वेद का उद्‌गम हो रहा है। स्वजनो को मारकर प्राप्त किया हुआ राज्य हमे क्या सुख पहुँचायेगा? अतः युद्ध की अपेक्षा मैं भिक्षा से जीवन-निर्वाह करना अधिक श्रेयस्कर मानता हूँ।'

---

समय-निर्धारण के प्रत्यक्ष प्रमाण न मिलने पर अनुमान के आधार पर जब अनुसधान किया जाता है, तो गीता के नवम अध्याय के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गीता की रचना के समय तक तीन ही वेदो का अस्तित्व था।

**पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामह.।**
**वेद्य पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च॥ ९/१७॥**
**त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्टवा स्वर्गति प्रार्थयन्ते।**
**ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥९/२०॥**
**ते तभुक्त्वा स्वर्गलोक विशाल क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक विशन्ति।**
**एव त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागत कामकामा लभन्ते॥९/२१॥**

उपर्युक्त पद्यो से ज्ञात होता है कि उस काल तक ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद ही थे। अत स्वाभाविव रूप से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि गीता की रचना अथर्ववेद से प्राचीन है।

गीता मे '**मासानां मार्गशीर्षोहम**' कहा गया है, जिससे प्रतीत होता है कि वर्ष का आरम्भ मार्गशीर्ष से होता था। श्री बालकृष्ण दीक्षित के अनुसार वेदाग ज्योतिष ईसा से १४०० वर्ष पूर्व का है। प्रो० मैक्समूलर के लिये प्रयास करने वाले बिशप ग्रेट के अनुसार वेदाग ज्योतिष से पूर्व मार्गशीर्ष प्रथम मास माना जाता था। वह ईसा से १५०० वर्ष पूर्व भी मान लें तो गीता का रचनाकाल ३५००-४००० वर्ष का ही सिद्ध होता है।

यह कह अर्जुन धनुष-बाण छोड़ शोक से व्याकुल हो रथ से उतर एक ओर खड़ा हो गया। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ऐसी दशा देख उसे समझाते हुए कहा—'अर्जुन! तुम यह क्या कह रहे हो! इस प्रकार के कायरतापूर्ण वचन तुम्हारे मुँह से शोभा नही देते।' अर्जुन ने हाथ जोडकर कहा—'भगवन्! मेरा मन चिचन्लित हो रहा है, बुद्धि नष्ट हो रही है, कुछ भी समझ में नही आता कि मुझे क्या करना चाहिये? मै किंकर्तव्य-विमूढ आपकी शरण में हूँ। मुझ शिष्य को आप ज्ञान देकर उचित मार्ग बताइये।'

अपने उद्देश्य-साधन के प्रधान निमित्तभूत अर्जुन को जब भगवान श्रीकृष्ण ने मोह और अज्ञान से व्याकुल देखा तो वे

---

इसी प्रकार श्री गुरुनाथ कौल, श्री काशीनाथ पंत, तेलग शंकर, राय बहादुर चिन्तामणि राजवैद्य और लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आदि मूर्धन्य विद्वानों ने भी प्राच्य-पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन और गभीर विवेचन के पश्चात यही निश्चय किया है कि गीता महाभारत का ही एक अंग है, तथा इसकी रचना ईसा से कम-से-कम १४०० वर्ष पूर्व की है।

शब्दो के अर्थ मे भी समयानुसार कुछ परिवर्तन होता रहता है। गीता के कुछ शब्दो का अर्थ यदि आज के शब्दकोशो की भाषा मे समझा जाये तो सम्भवत. ग्रंथकार का अभिप्राय स्पष्ट नही होता है। सामान्य-तया प्रत्येक भाषा के शब्द अनेक अर्थों के द्योतक होते है तथा प्रसगा-नुसार उनका भिन्न-भिन्न अर्थों मे प्रयोग होता है।

गीता मे 'देव' शब्द का अनेक स्थलो पर प्रयोग किया गया है। यथा .

**देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व ।**
**परस्परं भावयन्तः श्रेय. परमवाप्स्यथ ॥३/११॥**
**यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितव्रताः ।**
**भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥९/२५॥**
**येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता ।**
**तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥९/२३॥**

एक स्थान पर कहा गया है कि जो देवताओ की पूजा करते हैं, उन्हे ईश्वर प्राप्त नही होता है। अन्यत्र कहा गया है कि जो देवताओ की पूजा

उसे समझाने लगे—'अर्जुन! ससार में प्राणी जो सुख-दुःख भोगता है, उसमे वह स्वतन्त्र नही है, कर्मानुसार उसे वे भोगने ही पडते है। सुख-दु ख देने वाले उसके निमित्त मालूम देते हैं, पर वास्तव मे कारण नही होते। सुख-दु ख भी केवल वेगमात्र है, इसमे न तो सुख स्थायी होता है और न दु.ख ही, किन्तु उन्हे रोका नही जा सकता, सहन ही करना पड़ता है, इसलिए बुद्धिमान लोग इनमे विचलित नही होते। जिस प्रकार बचपन, युवावस्था और बुढापे के उपभोग मे प्राणी विवश होता है, वे स्वय विना प्रयत्न उसे प्राप्त होते रहते है और प्रयत्न करने पर भी रुक नही सकते, इसी प्रकार मृत्यु और दूसरे जन्म की प्राप्ति भी अपने आप होती रहती है, क्योंकि शरीर मरणशील है, अत.

---

करते है, वे भी परोक्ष रूप मे मेरा ही पूजन करते है। अत विभिन्न स्थानो पर 'देव' शब्द का एक ही अर्थ नही हो सकता है। इसी प्रकार नवम अध्याय के बीसवें श्लोक 'त्रैविद्या मां सोमपा पूतपापा' मे यह उद्धृत है कि जो सोमरस को पीते है, वे स्वर्ग-लाभ करते हैं। वास्तव मे सोमरस का सही अर्थ क्या है, यह सावधानीपूर्वक विचारणीय है। गीता एक दार्शनिक विचार-प्रधान पुस्तक है। इसमे मद्यपान की अभिशसा स्वर्ग-प्राप्ति हेतु किये जाने की बात उचित प्रतीत नही होती। अत सोम का अर्थ ज्ञानामृत के रूप मे स्वीकार किया जाना अधिक श्रेयस्कर और तर्क-सगत लगता है। सम्पूर्ण गीता काव्य की तरह पद्यो मे निर्मित है। इसमे अभिधात्मक अर्थ न लेकर व्यजना का आश्रय लेना चाहिये।

बहुत मे शब्दो का अर्थ ग्रहण करते समय गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ कर्म, अकर्म, देवजन मार्ग, पितृजन मार्ग, दिव्य-दृष्टि आदि अनेक शब्दो को लिया जा सकता है। हमे यह स्वीकार करना ही होगा कि प्राचीन काल मे कवि और दार्शनिक अपने आपको कुछ घुमा-फिराकर ही अभिव्यक्त करते रहे है, जिसका प्रचलन आधुनिक लेखको मे नही है, यथा तेरहवें अध्याय मे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तथा पन्द्रहवें अध्याय मे उर्ध्वमूल ईश्वर की सर्वशक्तिसत्ता को विशेष दार्शनिक शैली द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

मेरे विचार मे गीता के दो प्रमुख पात्र दुर्योधन और अर्जुन रणभूमि

प्राणी की मृत्यु अनिवार्य है और मरे हुए का जन्म भी निश्चित है। किन्तु आत्मा जो चेतन तत्व है, कभी मरता नही, न कोई उसे मार सकता है। वह नित्य है, एक है और सर्व-व्यापक है। कपड़ा फट जाने पर जैसे मानव दूसरा वदल लेता है, उसी प्रकार आत्मा भी जीर्ण शरीर को छोड़कर नया प्राप्त कर लेती है, इसलिए वन्धु-वान्धवों की मृत्यु के भय से विचलित न होकर तुझे क्षत्रियोचित कर्तव्य-कर्म पर दृढ रहना चाहिए, क्योकि स्थितप्रज्ञ मनुष्य दुःख मे विचलित नही होता और सुख की इच्छा नहीं करता। वह शुभ-अशुभ, राग-द्वेष, भय-शोक आदि मे समान भाव रखता हुआ कर्तव्य पर दृढ रहता है।'

'परम सत्य की प्राप्ति के लिए संसार मे दो मार्ग है—

---

मे आकर कुछ भयभीत हो गये हैं। दुर्योधन ने आचार्य के समीप जाकर पाण्डव सेना की व्यूह-रचना के विषय मे उद्वेग-पूर्ण वाक्य कहे .

**दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।**
**आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥१/२॥**

यहाँ दुर्योधन का आचार्य के पास जाने का अभिप्राय यह था कि अब युद्ध आरम्भ होने वाला है और आचार्य कौरव महारथियों मे वहुत-सो के गुरु है। अत. प्रमुख योद्धाओ को युद्ध की भयकरता समझाकर उन्हे सगठित होकर तन्मयता से युद्ध करने का आदेश दे, अन्यथा परिणाम विनाशकारक होगा, क्योकि कौरव सेना मे कई महारथी एक-दूसरे के विरुद्ध थे। जैसे कर्ण भीष्म के सेनापतित्व मे युद्ध करने मे विरक्त थे। अश्वत्थामा कर्ण के नेतृत्व के विरुद्ध थे। इस मनोमालिन्य को दूर करने के लिये ही वह आचार्य का उपयोग करना चाहता था। यदि उसे केवल सेना की व्यूह-रचना के विषय मे ही जिज्ञासा होती तो वह आचार्य के समीप न जाकर सेनापति भीष्मपितामह से परामर्श करता। वह अपनी सेना की परिस्थिति से चिन्तित होकर ही द्रोणाचार्य के निकट जाकर वोला

**पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।**
**व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥१/३॥**
**अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।** इत्यादि।

भीम और अर्जुन के पराक्रम से भयभीत दुर्योधन को बहुत से वीर

प्रवृत्ति और निवृत्ति। इनमे निवृत्ति मार्ग वहुत ही कठिन है, जिसमे सफलता प्राप्ति के वहुत कम उदाहरण देखे जाते हैं, क्योकि विषयो का त्याग मात्र करने से तो सिद्धि नही होती। जो व्यक्ति शरीर मे से विषयो का त्याग करता है, पर मन में उनकी वासना वनी रहती है, उसे सफलता नही मिलती। मन से जो त्याग किया जाता है, वही सच्चा त्याग है। पर मन का वशीकरण अत्यन्त कठिन है, अत. विवेकी जन प्रवृत्ति मार्ग को ही अपनाते है, क्योकि कर्म सभी के लिए अनिवार्य है। क्षण-भर भी कोई विना कर्म किये नही रह सकता। ससार का पूरा चक्र कर्म पर निर्भर है। आप्तकाम महापुरुषो के लिए यद्यपि कर्म की आवश्यकता नही है, फिर भी वे लोकोपदेश के लिए कर्म मे तत्पर रहते हैं।

'कर्म की गति वहुत गहन है। क्या कर्म है और क्या अकर्म,

---

भीम अर्जुन के समान दिखाई देते हैं। फिर अपनी सेना का वर्णन करने के पश्चात वह कहता है

अपर्याप्त तदस्माकं वल भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्त त्विदमेतेषा वल भीमाभिरक्षितम्॥१/१०॥
अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिता।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥१/११॥

दुर्योधन का अभिप्राय यह है कि पाण्डव सेना सख्या मे कम होने पर भी युद्ध की शक्ति मे हमसे अधिक है, क्योकि उनके सैनिक संगठित, उत्साहपूर्ण और युद्ध के लिए तत्पर हैं, जवकि हमारे सैनिक परस्पर द्वेष से आक्रान्त होकर असगठित हैं। इसलिए भीष्म-रक्षित हमारी सेना अपूर्ण है और भीमरक्षित पाण्डव सेना सम्पूर्ण है, पर्याप्त है। इससे हमारी पराजय का भय है। अत आप सवको मिलकर भीष्म की रक्षा करनी चाहिए, क्योकि हमारी सेना मे मतभेद देखकर पाण्डव सेना भीष्मपितामह पर प्रवल आक्रमण करेगी। सेनापति भीष्म ने दुर्योधन को चिन्तित और उदास-मुख देखकर उसका उत्साह वढाने के लिये शखध्वनि की, इससे प्रतीत होता है कि युद्ध की घोषणा पहले कौरवो ने की। सेनापति की शखध्वनि से कौरव सेना के महारथी और सैनिको ने समझा कि युद्ध

इसको बड़े-बड़े विवेकी भी पहचानने मे असमर्थ है। फल की इच्छा त्याग कर निष्काम भाव से जो कर्म किया जाता है, वही कर्तव्य है। उसीसे जीवन मे सफलता मिलती है, क्योकि आसक्ति के त्याग से शनैः-शनै. ज्ञान की प्राप्ति होती है और उससे वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। कामना और आसक्ति को त्याग कर अपने कर्तव्य-कर्म युद्ध को पहचानकर उस मे प्रवृत्त होना तुम्हारे लिए परम आवश्यक है।'

यहाँ अर्जुन को शका हुई कि प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा कर्मयोग और सन्यास इन दोनों में श्रेष्ठ कौन-सा है ? भगवान श्रीकृष्ण ने फिर वतलाया—'ये दोनो ही मार्ग श्रेष्ठ एव कल्याण-कारी हैं, किन्तु विना मन को वश मे किये सन्यास की साधना कठिन है, इसलिये कर्मयोग ही सरल और उपादेय है। कर्म-

---

आरम्भ हो गया है', अत सवने अपने-अपने शंख और बाजे जोर-जोर से बजाये ·

**तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्ध. पितामहः।**
**सिंहनाद विनद्योच्चैः शङ्ख दध्मौ प्रतापवान् ॥१/१२॥**
**ततः शाङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।**
**सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमूलोऽभवत् ॥१/१३॥**

तव पाण्डव वीरो और सैनिको ने भी युद्ध का आरम्भ समझकर अपने-अपने शख जोर से फूके। उनकी ध्वनि इतनी भयकर थी कि उससे पृथ्वी और आकाश गूजने लगे, कौरवो का हृदय विदीर्ण हो गया, इससे दुर्योधन का भय व्यक्त हो जाता है।

**स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।**
**नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१/१९॥**

उधर वीर अर्जुन कौरवो की सेना के मतभेद और हीन मनोवल को पहचानता था और अपने को अद्वितीय धनुर्धर मानता था। उसका अनु-मान था कि कौरव सेना को अल्पकाल मे ही पराजित कर दिया जायेगा। इसी गर्व से फूलकर उसने भगवान श्रीकृष्ण से अपने रथ को दोनो सेनाओ के बीच मे खडा करने को कहा ·

**सेनयोरुभयोर्मध्ये रथ स्थापय मेऽच्युत ॥१/२१॥**

फल की आसक्ति छोडकर किया हुआ कर्म ही कल्याण का पहला सोपान है। इसे प्राप्त कर मानव निरन्तर आगे वढता रहता है और अनासक्त होने से कर्म-वन्धन से छूट जाता है। वस्तुत. कर्मयोग और सन्यास मे कोई अन्तर नही है। दोनो का गन्तव्य एक ही है। एक की सिद्धि से दूसरे की सिद्धि होती है। केवल इतना ही रहस्य है कि आसक्ति-त्याग के विना सन्यास की प्राप्ति कठिन है और आसक्ति-त्याग से वह सुलभ है, क्योकि निष्काम भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति मन को निर्मल करके सभी प्राणियो मे आत्मा की एकता को देखता है। किसी भी फल मे आसक्त नही रहता, अत जल में कमल की तरह निर्लिप्त होता है, जिससे वह कर्म-वन्धन से मुक्त हो जाता

---

तत्वदर्शी भगवान श्रीकृष्ण ने पहचान लिया कि जवतक अर्जुन का यह प्रवल गर्व गलित नही होगा तवतक विजय की सम्भावना नही है। इसलिए उन्होंने रथ को दोनो सेनाओ के वीच मे खड़ा कर दिया और कहा—'युद्ध के लिए एकत्रित विजय आकाक्षी भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख वीरो को देखो ?'

**भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषा च महीक्षिताम् ।**
**उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥१/२५॥**

यहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को पार्थ नाम से सम्वोधित किया हैं, जिसका अर्थ यद्यपि पृथा या कुन्ती का पुत्र है, पर इसका सकेत पार्थिव या मिट्टी के पुतले की ओर है। वस्तुत. गीता का उपदेश सत्य स्वरूप, परमगुरु अविनाशी भगवान के द्वारा मानव-समुदाय के प्रतीक प्रतिनिधि रूप अर्जुन को सुनाया गया है। इसमे प्रत्येक मानव को जीवन-सघर्ष मे कर्तव्य के प्रति सचेत रहने के लिये उद्‌वोधित किया गया है।

अर्जुन ने जव कौरव सेना मे वल और बुद्धि से परिपूर्ण भीष्म, द्रोण आदि अनेक योद्धाओ को शस्त्रास्त्र हो युद्ध के लिये उद्यत देखा, तो उसका हृदय भय से कांप उठा। उसका आत्म-विश्वास जाता रहा। निश्चयात्मक शक्ति नष्ट हो गई। अज्ञान विवश होने से भ्रात निर्णय पर पहुँच गया। कायरता का प्रभाव होने से रण-भूमि से विमुख होने की सोचने लगा। इस विषम स्थिति मे भगवान श्रीकृष्ण की अनुमति अपेक्षित थी। उसे

है। केवल अग्नि और कर्म को छोड़ने से ही कोई सन्यासी नहीं हो जाता। जब तक कर्मफल की इच्छा, वासना को कोई नही छोड़ता, तब तक सन्यास-धर्म की प्राप्ति नही होती, अतः अनासक्तिपूर्वक कर्म करना ही सर्वोत्तम है।'

अर्जुन फिर शका करता है कि मन को वश मे किये बिना आसक्ति छोडना भी सभव नही है और मन को वश मे करना बहुत कठिन है, क्योंकि मन अत्यन्त चचल है, किसी प्रकार भी वश में आता ही नही। तब भगवान श्रीकृष्ण ने फिर समझाया:

यद्यपि मन बहुत चचल है, किन्तु अभ्यास और विषयो में विरक्ति होने से शनैः-शनैः मन को सयत किया जा सकता है, और इसका उपाय है भगवान की—मेरी भक्ति। भक्त अपने

---

विदित था कि भगवान श्रीकृष्ण का पाण्डवो पर असीम प्रभाव है। वे जो सम्मति देंगे, वह सभी को मान्य होगी। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण को अपने मत के अनुकूल करने के लिए उसने शकुन, उच्चकोटि के त्याग, कुलक्षय के दोष और अपनी आध्यात्मिक भावना की बहुत-सी बाते कही, पर भगवान श्रीकृष्ण कुछ नही बोले। भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जो शब्द प्रयोग किये, उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि अर्जुन रणभूमि से विमुख होना चाहता था। जैसे निमित्त शब्द के अर्थ पर विचार किया जाये तो यहाँ निमित्त का अर्थ शकुन, दैव ही उपयुक्त मालूम होता है, इसलिये अर्जुन उन्हें विपरीत कहता है .

**निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।**
**न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥१/३१॥**

(क) इस नर हत्या के भयानक परिमाणो को सोचकर मैं पृथ्वी के राज्य की तो बात ही क्या, त्रैलोक्य के राज्य का भी त्याग कर दूँगा।

**न काङक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।**
**किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥१/३२॥**

(ख) कौरव तो शक्ति के मद और राज्य के लोभ मे इतने अन्धे हो गये हैं, उनकी बुद्धि पर अज्ञान का आवरण छा गया है, उन्हें वश-विध्वंस के परिणाम का कुछ भी ज्ञान नही है, ऐसी दशा मे पाण्डवो को ही रण-का त्याग कर अपकीर्ति सहन करनी चाहिए:

सारे कर्म मेरे लिए करता है। किसी भी कर्म से अपना संबंध नही रखता है, तो अनासक्ति योग स्वय-सिद्ध हो जाता है और कर्मफल की इच्छा नही रहती तो मन वश मे होने लगता है।

भक्त जो कुछ भी सोचे, पीवे, चले, फिरे, वोले, गावे, नाचे, कूदे, सभी कर्म मेरे लिए करे। सब मुझे सौंप दे तो उसके योगक्षेम की चिन्ता मैं करता हूँ। मेरी उपासना-भक्ति के लिए किसी विशेष साधन-सामग्री की आवश्यकता नही है। जो केवल पत्र, पुष्प, फल या जल मात्र से मेरी उपासना करता है, उस पर मैं प्रसन्न हो जाता हूँ, किन्तु वह श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन लगाकर करनी चाहिए, तभी सिद्धि मिलती है। जब मन तो कही और रहता है, केवल प्रदर्शन के लिए कोई पूजा-जप करता है, तो सफलता नही मिलती। मेरी भक्ति के लिए मन, वचन और

---

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृत दोष मित्रद्रोहे च पातकम् ॥१/३८॥
कथ न ज्ञेयमस्माभि. पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृत दोष प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥१/३९॥

(ग) युद्ध मे युवको की मृत्यु होने से स्त्रियो पर अधर्म का प्रभाव हो जायेगा। परिणामस्वरूप वर्णसकर सन्तान होने मे पितरो को पानी भी नही मिलेगा, सामाजिक और धार्मिक परम्परा की सारी व्यवस्था नष्ट हो जावेगी और इसका कारण हम लोगो को माना जायेगा।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसकर ॥१/४१॥
सकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥१/४२॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसकरकारकैः।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वता ॥१/४३॥

यह सुनकर भी भगवान श्रीकृष्ण ने कोई उत्तर नही दिया। अर्जुन ने सोचा, भगवान को सब प्रकार समझाने पर भी ये मौन होकर वैठे हैं। मालूम होता है, यह युद्ध तो हमारे गले आ पडा है। फिर भी भगवान को प्रभावित करने के लिए अन्त मे वह वोला, मैं युद्ध मे शस्त्र नहीं उठाऊँगा,

कर्म से शुद्ध आचरण करते हुए मेरी शरण मे आना परम आवश्यक है। कोई भी आसुरी भाव सम्पन्न दुराचारी व्यक्ति मेरी शरण में नही आ सकता है अथवा वह आता है तो तत्काल उसकी दुर्भावना समाप्त हो जाती है, प्रत्युत दैवी भावना-परायण, सदाचारी श्रद्धालु व्यक्ति ही मेरी शरण मे आते है। वे चार प्रकार के है: आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। ये चारों ही अनन्य भाव से मेरी उपासना करने वाले मुझे प्रिय है। इनमें ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है—जो सर्वत्र मुझे ही देखता है। प्राणी मात्र को मेरा ही रूप समझकर सम्मान करता है, क्योकि वह जानता है कि इस ससार मे मै ही व्याप्त हूँ और यह सकल ससार मुझमें व्याप्त है।'

अर्जुन ने जब इसमें कुछ सन्देह व्यक्त किया तो श्रीकृष्ण

---

चाहे कौरव मुझ नि.शस्त्र को मार डाले। यह मेरे लिये अधिक क्षेमकारक होगा।

**यदि मामप्रतीकारमशस्त्र शस्त्रपाणयः।**
**धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतर भवेत् ॥१/४६॥**

यहाँ अर्जुन ने 'क्षेम' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ है प्राप्त की रक्षा करना अर्थात् शारीरिक कल्याण। मृत्यु के बाद के कल्याण को 'मोक्ष' कहते हैं। 'क्षेम' शब्द के प्रयोग से व्यक्त होता है कि अर्जुन युद्ध से भागकर अपने को बचाना चाहता है। यही स्थिति सासारिक सघर्ष में घबराये हुए मानव की होती है। जब अर्जुन भय से आक्रान्त हो गया, सारे शरीर मे पसीना आ गया, नेत्रो मे जल भर आया और वह धनुष और बाण छोडकर रथ के पिछले भाग मे बैठ गया, तब भगवान श्रीकृष्ण ने उसकी विषम दशा देखकर, डाँटते हुए कहा, यह अनार्यों के योग्य, अपकीर्ति फैलाने वाले, स्वर्ग न प्राप्त करने योग्य दूषित विचार तुम्हे कैसे प्राप्त हुए :

**कुतस्त्वा कश्मलमिद विषमे समुपस्थितम्।**
**अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२/२॥**

यह नपुसक विचार तुम्हारे योग्य नही, हृदय की दुर्बलता को दूर करो और युद्ध करो।

भगवान ने उसे अपने विराट रूप का दर्शन कराया, जिसे देख कर अर्जुन चकित हुआ, गद्‌गद कण्ठ से भगवान की स्तुति करने लगा। तब उन्होने पुन संक्षिप्त रूप धारण किया और बताने लगे

"अर्जुन, तुमने जो रूप मेरा देखा है, वह किसी प्रयत्न से देखा नही जा सकता है। तपस्या, दान, यज्ञ आदि से भी यह देखने को नही मिलता। केवल परम निष्ठा से जो मेरी भक्ति करता है, सब प्राणियो को मेरा रूप समझकर उनका उपकार करता है, उसे ही इसका दर्शन हो सकता है। जो मान-अपमान, सुख-दु ख, राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि द्वद्वों मे सदा समभाव रखता है, सभी प्राणियो से प्रेम करता है, किसी से ईर्ष्या नही करता है, किसी का बुरा नही चाहता है, वही मेरा भक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।"

---

क्लैब्य मा स्म गम पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परतप ॥२/३॥

अर्जुन ने भगवान को फिर समझाने की चेष्टा की और कहा कि भीष्म, द्रोण, जो पूजा के योग्य हैं, उनसे मैं युद्ध कैसे कर सकता हूँ ? अत मे अर्जुन स्वीकार करता है कि कायरता का प्रभाव मेरे मन पर आच्छादित है, इसलिए अब मैं आपका शिष्य और शरणागत हूँ। मुझे सतपथ दिखलाइये।

कथ भीष्ममह संख्ये द्रोण च मधुसूदन।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥२/४

गुरूनहत्वा हि महानुभावन श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुन्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥२/५॥

कार्पण्यदोपोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेता।
यच्छ्रेय स्यान्निश्चित ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽह शाधि मां
त्वां प्रपन्नम् ॥२/७॥

भगवान श्रीकृष्ण ने उसे समझाया कि शरीर का मोह मत करो।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय ॥२/३७॥

इस भक्ति-योग के विवेचन मे नवधा भक्ति का कोई वर्णन नही मिलता। प्रत्युत सन्तो के जो लक्षण अन्यत्र महापुरुषों ने बताये है, भगवान श्रीकृष्ण ने यहाँ भक्तों के वही लक्षण वर्णन किये है। यद्यपि इस वर्णन में नवधा भक्ति के भी सारे लक्षण आ जाते है, तथापि भक्ति के नवधा रूप में निरूपण का कही निर्देश नही है।

आगे ज्ञानयोग का विवेचन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने बताया .

"कर्म, भक्ति, ज्ञान का साधन यह शरीर ही क्षेत्र है और इसे जानने वाला क्षेत्रज्ञ होता है। पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध एवं मन, बुद्धि, अहकार

---

**सुखदु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**
**ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि ।।२/३८।।**

भगवान ने पुन. सोचा, कदाचित भीष्म, द्रोण, कर्ण और जयद्रथ की रण में तत्परता से अर्जुन का भय यदि नष्ट नही हुआ तो उन्होने उसे एकादश अध्याय मे स्पष्ट करके कहा .

**तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व, जित्वाशत्रून् भुङ्क्ष्व राज्य समृद्धम्।**
**मयैवेते निहता पूर्वमेव निमित्तमात्र भव सव्यसाचिन् ।।११/३३।।**
**द्रोण च भीष्मं च जयद्रथ च कर्ण तथान्यानपि योधवीरान्।**
**मया हतांस्त्व जहि मां व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ।।११/३४।।**

मैंने भीष्म, द्रोण, जयद्रथ और कर्ण को पहले से ही मार डाला है, इसलिए इससे भय करने की कोई आवश्यकता नही। तू तो केवल निमित्त मात्र ही होगा।

जब अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया और अपनी आँखो से भी देख लिया

**अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्रा सर्वे सहैवावनिपालसघैः।**
**भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ।।११/२६।।**

तब वह अत मे बोला :

**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।**
**स्थितोऽस्मि गतसन्देह करिष्ये वचन तव ।।१८/७३।।**

और प्रकृति क्षेत्र है तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दु:ख आदि इसके विकार हैं। क्षेत्र अनेक है और क्षेत्रज्ञ मैं एक ही हूँ। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ—शरीर, आत्मा का ज्ञान ही सम्पूर्ण ज्ञान है। साधारणत शरीर आदि विकारी क्षेत्र है और अविकार, अगुण आत्मा ही क्षेत्रज्ञ है, इनको ठीक प्रकार से जानना ही ज्ञान है। इस ज्ञान के साधन निम्न है .

"गर्व और पाखड का अभाव, अहिंसा, क्षमा, मन की सरलता, श्रद्धाभक्ति सहित गुरु की उपासना, पवित्रता, अन्त -करण की स्थिरता, मन का दमन, विषयो मे विरक्ति अहकार-हीनता, द्वद्वो मे समता, अनासक्ति, ममता का अभाव, इष्ट-अनिष्ट मे समता, एकान्त-सेवन, भीड-भाड मे अरुचि और मुझ

---

मोह और सदेह किस कारण से था, यही विचारणीय विषय है। पहले अध्याय मे अर्जुन ने 'क्षेम' शब्द का प्रयोग किया, इससे अब स्पष्ट प्रकट होता है कि उसका मोह शरीर मे था और उसकी रक्षा के लिए ही वह युद्ध-भूमि से विरक्त होना चाहता था। उसे सदेह था कि भीष्म, द्रोण, कर्ण और जयद्रथ पर मैं युद्ध मे विजय नही प्राप्त कर सकता। इन्ही दोनो द्विविधाओ का निवारण भगवान श्रीकृष्ण ने एकादश अध्याय मे कर दिया, इसलिए उसका शारीरिक रक्षा का मोह और युद्ध की सफलता का सदेह जाता रहा और वह पूर्ववत दृढता से स्थित हो गया।

जब मनुष्य कठिनाइयो से भयभीत हो जाता है, तब उसे उनसे बचने के लिए सन्यास का स्मरण होने लगता है। अर्जुन के मन में सदेह होने लगा था, हम जीतेंगे या कौरव ? वह भय के कारण बुद्धि की निश्चयात्मक शक्ति खो बैठा था। इस समय क्या उचित है और क्या अनुचित है, यह भी नही सोच पा रहा था, अत. सन्मार्ग दिखलाने के उद्देश्य से अब वह भगवान की शरण मे गया। श्रीमद्भागवत मे वर्णित गजेन्द्र उपाख्यान मे जिस प्रकार गजेन्द्र जब तक अपने बल के आश्रय पर ग्राह से लड़ रहा था और गर्व से उसको तुच्छ समझता था, तब तक न तो उसे भगवान की स्मृति हुई और न भगवान ही आये। पर जब चारो ओर से असमर्थ हो गया, तब एकमात्र भगवान को ही अवलम्ब समझकर आर्त्त होकर पुकारा तो तत्काल उसका उद्धार हुआ।

परमेश्वर मे अनन्य भक्ति, अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थित ससार के परमत्व परमात्मा को सर्वत्र देखना, ये ही ज्ञान के साधन हैं। इनसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। इनसे विपरीत मार्ग अज्ञान है। सत असत से परे, अव्यय, अनादि, अनन्त ब्रह्म मेरा ही स्वरूप है, जिसके ज्ञान से अमृतत्व की उपलब्धि होती है। यों तो प्रकृति पुरुष दोनो ही अनादि है, प्रकृति जड विकार-मयी है,पुरुष चेतन निर्गुण है, प्रकृति कर्मकर्त्री है, पुरुष अकर्ता है—किसी कर्म से लिप्त नही है, द्रष्टा है, प्रकाशक है, अविनाशी है। प्रकृति माता है, पुरुष पिता है। सत्व, रज, तम प्रकृति के गुण हैं, इनके द्वारा प्रकृति चेतन पुरुष के आश्रय से समस्त जीव-जगत् का निर्माण करती है। गुणों के प्रभाव से जीव

जब तक मानव अपने गर्व-अभिमान के कारण अपने बल से विपत्तियो का सामना करना चाहता है, तब तक उसे भगवान की स्मृति नही आती। पर जब विपत्तियाँ मानव को जकड लेती हैं और उन पर विजय पाने मे वह अपने को असमर्थ पाता है, तब वह सारे दोषों को त्यागकर, क्रूर वासना और अहं-भाव से रहित शुद्ध,अंत करण से भगवान की शरण मे जाता है। शरणागत को भगवान उबार लेते हैं और भक्त का उद्धार कर देते है। यही गीता का आध्यात्मिक अभिप्राय है। विपत्तिरूपी भव-सागर को भगवान की कृपा से मानव सहज ही पार कर लेता है।

भगवान श्रीकृष्ण स्वय सच्चिदानन्द हैं, अत. सदा उपास्य हैं। श्री राम की तरह अनुकरणीय नही। श्रीकृष्ण का उदात्त चरित्र अलौकिक है, अनुपम है। महाभारत के युद्ध का उन्होने यथेच्छ सचालन किया, किन्तु किसी भी शस्त्र को हाथ नही लगाया। साधु परित्राण, दुष्कृत विनाश और धर्म-सस्थापन उनका ध्येय था, अत साधन को महत्व न देकर पूर्णत. अनासक्त रहते हुए उन्होने साध्य को सिद्ध किया। प्रारम्भ मे ही अर्जुन का मोहभग, अज्ञान-निवारण करने के लिए गीता का उपदेश दिया, जिसमे कर्म, भक्ति, ज्ञान का विवेचन करते हुए उन्होने अर्जुन को कर्तव्य की शिक्षा दे कर्म मे प्रेरित किया। गीता मे कुल अठारह अध्याय हैं, जिनमे छह-छह अध्यायो मे क्रमश· कर्म, भक्ति, ज्ञान का विवेचन है। यद्यपि सम्पूर्ण गीता मे ही तीनो विषयो का समन्वित उपदेश है, तथापि विद्वानो

विविध योनि-कर्मों को प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त आत्म-तत्व को जो जान लेता है, वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

'यह ससार अश्वत्थ वृक्ष रूप है, जिसका मूल ऊपर और शाखा नीचे है, वेद इसके पत्ते है, तीनो गुणो से इसकी वृद्धि हुई है। अनासक्ति रूपी शस्त्र से इस दोषरूपी कारण को काटकर उस परम पद का अन्वेषण करना आवश्यक है, जहाँ जाकर जीव वापस नही आता।'

'क्षर नाशवान सव प्राणी है और अक्षर इनमे साक्षी रूप से स्थित आत्मा है। इन दो जनो से उत्कृष्ट परमात्मा है। वह मै हूँ।'

फिर सत्व, रज, तम के विविध स्वभाव गुण कर्मो का

---

ने उपर्युक्त तीनो काडो मे इसे विभाजित किया है।

वस्तुत गीता दैनिक जीवन के लिये भी अत्यन्त शिक्षाप्रद और उपयोगी है, क्योकि यह हमे जीवन की सफलता के लिये, आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करने के हेतु दैनिक जीवन को किस प्रकार ढाला जाये, स्पष्ट शव्दो मे वताती है, आहार-विहार-सम्वन्धी आवश्यक निर्देश देती है तथा यह भी वताती है कि किस प्रकार दुर्व्यसनो से दूर रहा जाये, ताकि हम जीवन मे सतोगुण का समावेश कर सकें। यथा

युक्ताहारविहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥६/१७॥
आयु सत्ववलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥१७/८॥
अज्ञश्चाश्रद्धानश्च सशयात्मा विनश्यति।
नाय लोकोऽस्ति न परो न सुख सशयात्मनः ॥४/४०॥
दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्विक स्मृतम् ॥१७/२०॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्ट तद्दान राजस स्मृतम् ॥१७/२१॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञात तत्तामसमुदाहृतम् ॥१७/२२॥

शास्त्रीय विवेचन करते हुए अन्त मे भगवान श्रीकृष्ण ने बताया है :

'मेरे आश्रय मे जो रहता है, वह मेरी कृपा से शाश्वत पद प्राप्त करता है। इसलिए सबका आश्रय छोड़कर बुद्धियोग से मुझ मे चित्त लगाओ, मेरे परायण हो जाओ, जिससे तुम सब सकटो को पार कर लोगे। यदि अहकार से मेरा कथन नही मानोगे तो विनष्ट हो जाओगे।

'अन्त मे मेरी यह परम रहस्यमयी वाणी सुनो—अन्तर्यामी, सर्वव्यापक ईश्वर मेरे अतिरिक्त कोई नही है, मैं ही हूँ, इसलिए मेरी भक्ति करो, मुझे प्रणाम करो, जिससे तुम मुझे प्राप्त हो सकोगे। सबको भूलकर केवल मेरी शरण मे आओ, मैं तुम्हें सब पापो से मुक्त कर दूँगा। किसी प्रकार का चिन्ता-शोक मत करो।'

यह सुनकर अर्जुन सर्वात्मना प्रणव होकर बोला—'दैव, मेरा मोह-अज्ञान दूर हो गया, अब कोई संशय हृदय में नही है। पूर्ण बोध स्मृति प्राप्त हो गई। अब आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

यो कहकर अर्जुन ने धनुष उठा लिया और युद्ध मे तत्पर हो गया।

---

इस अद्वितीय धार्मिक ग्रथ के पाठ मात्र से ही अथवा दार्शनिक पक्ष पर तार्किक विवेचन से जीवन मे परिवर्तन नही लाया जा सकता है, अपितु इस ग्रथरत्न मे वर्णित सिद्धान्तो का आचरण करने से ही यह सम्भव हो सकता है।

गीता जो पद्मनाभि भगवान की वाणी है। उसमे ही सारे शास्त्रों का सार भरा हुआ है, अत उसी का श्रवण, पठन-पाठन और धारण करने से मनुष्य का कल्याण हो जाता है। गीता, गगा, गायत्री और गोविन्द ये, 'ग'कार युक्त चारो नाम ही अत्यन्त पावन है, अत इन्हे मनुष्य को हृदय मे रखना चाहिये।

# भीष्म

संजय ने कहा—'राजन् ! गीता ज्ञान सुन लेने के पश्चात वीर अर्जुन ने युद्ध करने के हेतु शस्त्र धारण कर लिये। अर्जुन को शस्त्रो से युक्त देखकर पाण्डव और उनके सहायक योद्धा बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर ने अपने कवच और आयुधो को नीचे डाल दिया और रथ से उतरकर वे शीघ्रता से पैदल ही हाथ जोडे भीष्म पितामह के पास जा पहुँचे। वहाँ उन्होने पितामह के चरणो में प्रणाम किया और उनसे युद्ध करने की आज्ञा और आशीर्वाद माँगे।

पितामह बोले—'पुत्र ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और तुम्हे युद्ध करने की आज्ञा देता हूँ। तुम विजयी होओगे और तुम्हारी सर्व अभिलाषा पूर्ण होगी। मेरा भरण-पोषण कौरवो ने किया है, अत: इच्छा न रहते हुए भी मैं युद्ध मे उन्ही की सहायता करूँगा।'

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह ! आप मेरा हित करने हेतु मुझे उचित आज्ञा दें। आप तो किसीसे पराजित होने वाले नही है, फिर मैं आपको युद्ध मे कैसे जीत सकूँगा ?'

भीष्म पितामह बोले—'वत्स ! समर भूमि मे मुझे जीतने वाला कोई भी शूर इस समय मैं नही देखता हूँ, किन्तु समय आने पर मैं तुम्हे कोई युक्ति बता दूँगा।'

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और मामा शल्य के पास गये और उन्हे प्रणाम कर उनसे भी युद्ध करने की आज्ञा माँगी। उन सब ने भी युधिष्ठिर को अनेक आशीर्वाद दिये और कहा—'राजन् ! तुम्हारी विजय निश्चित है, क्योकि भगवान श्रीकृष्ण तुम्हारे साथी है। जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वही विजय है।'

द्रोणाचार्य ने कहा—'कुन्तीकुमार ! जब तक मैं युद्ध करूँगा, तब तक तुम्हारी विजय नही हो सकती, अत: ऐसा यत्न करो,

जिससे शीघ्र मेरी मृत्यु हो जाये ।'

सजय ने कहा—'युधिष्ठिर के पीछे-पीछे अन्य पाण्डव और भगवान श्रीकृष्ण भी चल रहे थे। उन सबने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और शल्य को प्रणाम किया और उनसे अनेक आशीर्वाद प्राप्त किये ।

गुरुजनों मे युद्ध करने की आज्ञा और आशीर्वाद प्राप्त करने के पश्चात राजा युधिष्ठिर ने दोनों सेनाओ के मध्य खडे होकर गम्भीर वाणी में कहा—'जो वीर हमारे पक्ष मे आना चाहे, उन्हे मैं स्वीकार करूँगा। उसी समय आपका पुत्र युयुत्सु पाण्डवो के पक्ष मे चला गया । वह सदा दुर्योधन के पाप-कर्मों की निन्दा किया करता था, अत' पाण्डवो से सम्मान पाकर उनके साथ मिल गया । जब युधिष्ठिर पुन: अपने रथ पर बैठे, तब कौरव-पाण्डव सेना ने भेरी, शख, मृदंग और ढोल बजाने आरम्भ कर दिये और भयकर युद्ध आरम्भ हो गया। कौरव सेना के अग्र-भाग मे भीष्म थे और पाण्डवों की सेना मे भीम। राजन् ! कौरवों के कुटिल आचरणों का स्मरण कर पाण्डव रोष में भर गये और युद्ध मे विजयी होने के लिये विशेष परिश्रम करने लगे। कुछ ही समय में भीष्म अर्जुन से, सात्यकि कृतवर्मा से, अभिमन्यु कौशल नरेश वृहद्‌वल से, दुर्योधन भीमसेन से, दु.शासन नकुल से, सहदेव दुर्मुख से, युधिष्ठिर शल्य से, धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य से भिड़ गये। इसी प्रकार अन्य कौरव पाण्डव वीर एक-दूसरे से लड रहे थे।'

सजय ने कहा—'राजन् ! जैसा देवासुर सग्राम हुआ था, उसी प्रकार कुरुक्षेत्र मे कौरवो और पाण्डवो मे भयकर युद्ध होने लगा। यह भीषण युद्ध शुक्र और मगल के सघर्ष की भाँति था। युद्ध मे योद्धा इतने उन्मत्त हो गये थे कि कोई किसी को पहचानता ही नही था। कुछ ही समय पश्चात रणभूमि सैनिक-शवों से आच्छादित हो गई। मृतक हाथी, घोडे, टूटे रथो से कुरुक्षेत्र की रणभूमि भयकर दीखने लगी। कितने ही हाथी-

घोड़े अग-विदीर्ण होने के कारण अत्यन्त पीडित हो घोर चीत्कार कर रहे थे। रणभूमि मे जहाँ-तहाँ गिरे हुए अगणित घायल पुरुप अपने कुटुम्बीजनो को पुकार रहे थे। लहू-लुहान होकर कष्ट पाते हुए वे सैनिक युद्ध की निन्दा कर रहे थे। जब अत्यन्त भयकर दिन का पूर्व भाग प्राय व्यतीत हो गया, तव दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य और विविशति की सहायता से भीष्मजी ने पाण्डव सेना मे प्रवेश किया। भीष्म रथ के मार्गों पर ताण्डव नृत्य-सा कर रहे थे। यह देख अभिमन्यु ने अत्यन्त कुपित हो भीष्म पितामह पर आक्रमण कर उन्हे और उनके सहायको को घायल कर दिया। अर्जुन कुमार की इस सफलता से प्रभावित हो भीष्म आदि सभी योद्धाओ ने उन्हे अर्जुन के समान शक्तिशाली समझा। अभिमन्यु को कई योद्धाओ से घिरा देख विराट कुमार उत्तर ने राजा शल्य पर आक्रमण किया, किन्तु द्वद्व-युद्ध मे वह राजा शल्य से मारा गया। उत्तर के मारे जाने पर महारथी विराट ने शूरवीर श्वेत को आगे कर भीष्म पर धावा वोल दिया। इस युद्ध मे शान्तनुनन्दन भीष्म ने वहुत से रथो को रथियो से शून्य कर दिया। इसी प्रकार विराट पुत्र श्वेत भी कौरवो का सहार कर रहे थे। श्वेत ने भीष्म को युद्ध मे आगे वढने से रोक दिया, किन्तु महावली भीष्म ने व्रह्मास्त्र द्वारा श्वेत को मार डाला। सेनापति श्वेत को भीष्म के हाथ से मरा देख शख ने भीष्म पर धावा किया, किन्तु पाण्डव सेना के वहुत से सैनिक मारे गये। जव सूर्य अस्ताचल को चले गये, तव पाण्डवो ने अपनी सेना को युद्ध-क्षेत्र से पीछे हटा लिया।'

प्रथम दिन के युद्ध मे भीष्मपितामह का पराक्रम देख धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयो के साथ अत्यन्त शोक से सतप्त हो भगवान श्रीकृष्ण से वोले—'भगवन्! महान धनुर्धर और अत्यन्त पराक्रमी पितामह मेरी सेना को युद्ध मे इस प्रकार दग्ध कर रहे है, जैसे ग्रीष्म ऋतु मे आग सूखे घास-फूस को जला

डालती है। जैसे अग्नि देव प्रज्वलित होकर हविष्य की आहुति ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार भीष्म अपनी वाण रूपी जिह्वा से मेरी सेना को चाटते जा रहे है। महावली पुरुषसिह भीष्म को देख मेरी सेना भागने लगती है। यमराज, इन्द्र और कुबेर को भी युद्ध मे जीतना सम्भव है पर पितामह को जीतना शक्य हो रहा है। केशव! ऐसी दशा मे अपनी दुर्वलता के कारण, भीष्म रूपी अगाध जलराशि मे मैं डूबा जा रहा हूँ। श्रीकृष्ण! पितामह दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता है, अत· वे मेरी सारी सेना का सहार कर डालेगे। जैसे पतगे मरने के लिये ही जलती आग मे कूद पडते है, उसी प्रकार मेरे सैनिक अपने विनाश के लिये भीष्म के समीप जाते है। माधव! जीवन बच जाने पर मै दुष्कर तपस्या करूँगा, परन्तु इन मित्रों की व्यर्थ हत्या नही चाहता हूँ।'

महामना युधिष्ठिर को शोक से व्याकुल देख गोविन्द ने कहा—'भरत श्रेष्ठ! आप शोक न करे। आपके भाई योग्य और विख्यात धनुर्धर है। आपके सहायक राजा भी बलिष्ठ और आपके भक्त है। महाबाहो! निश्चय ही शिखण्डी भीष्म का वध कर डालेगा।'

भगवान श्रीकृष्ण के हितकर वचन सुन पाण्डव सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हुए युद्ध के लिये पुनः कवच आदि से सुसज्जित हो गये। दूसरे दिन कुरुक्षेत्र मे पहुँच पाण्डवो ने भयकर युद्ध आरम्भ कर दिया। कौरवों ने प्राणो का मोह छोड पाण्डवों पर आक्रमण किया। कुरुकुल के प्रभावशाली वृद्ध पितामह पर वीर अर्जुन ने धावा बोल दिया और दोनो मे भयकर युद्ध होने लगा। वीर अर्जुन ने भीष्म को वाणों से पीडित कर कौरव सेना मे प्रवेश किया। भीष्म जब कुछ स्वस्थ हुए तब वे अश्वत्थामा, दुर्योधन और विकर्ण की सहायता से वीर अर्जुन से पुनः युद्ध करने लगे। वे दोनो ही शत्रुओ का दमन करने वाले तथा अत्यन्त बलवान थे। इसलिये वे दोनों वीर एक-दूसरे का वध करने के

लिये पूरा प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु घातक प्रहार करने मे सफल न हो सके। जैसे धर्मनिष्ठ पुरुष मे कोई पाप नही देखा जाता, उसी प्रकार रणक्षेत्र मे उन दोनो योद्धाओ मे रण करने की त्रुटि नही दिखायी देती थी। राजन् ! जहाँ एक ओर इस प्रकार महावली भीष्म और अजेय अर्जुन मे युद्ध चल रहा था, वही दूमरी ओर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न मे भयकर मुठभेड हो रही थी। दुर्योधन की आज्ञा पाकर सेनापति कलिगराज भीम से युद्ध करने लगे। निषाद राजपुत्र केतुमान और श्रुतायु भी कलिगराज की सहायता करने भीम से भिड़ गये। महाधनुर्धर कलिगराज और उनका महारथी पुत्र शुकदेव भीमसेन पर वाणो से प्रहार करने लगे पर भीम ने शुकदेव, कलिगराज, भानुमान, राजकुमार केतुमान को कुछ ही समय मे धराशायी कर दिया।

जव अत्यधिक कौरव सेना और सेनापति भीम के हाथो मारे गये तव दुर्योधन ने भीष्म से कहा—'पितामह ! यदि आप और गुरु द्रोणाचार्य पाण्डवो के साथ अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध नही करना चाहते हैं, तो युद्ध आरम्भ होने से पहले ही अपना निर्णय मुझे वता देना चाहिये था। मैं उस अवस्था मे कर्ण के साथ अपने कर्तव्य का निश्चय कर लेता। यदि युद्ध मे आप दोनो को मेरा परित्याग करना उचित नही लगता हो तो आप और गुरु द्रोणाचार्य अपने योग्य पराक्रम प्रकट कीजिये।'

भीष्म वोले—'राजन् ! मैंने तुम्हे अनेक बार सत्य और हित की वात वतायी है कि पाण्डवो को इन्द्र भी जीत नही सकते। जो भी मुझ वृद्ध के द्वारा किया जा सकता है, उसे मैं अवश्य यथाशक्ति करूँगा।'

तीसरे दिन जव युद्ध आरम्भ हुआ तव भीष्म पितामह ने पाण्डव सेना पर धावा वोल दिया। उन्होने अनेक आयुधो द्वारा पाण्डव वीरो को यम के घाट पहुँचा दिया। यह देख वीर अर्जुन उनसे युद्ध करने लगे। महावली भीष्म ने अपने वाणो द्वारा अर्जुन के रथ को आच्छादित कर दिया, पर भगवान

श्रीकृष्ण ने घोडों को हाँकने की कला से अपने उत्तम कौशल का परिचय दिखाया। महाबाहु श्रीकृष्ण ने भीष्म का पराक्रम देख विचार किया कि अर्जुन तो सकोच से साधारण प्रहार कर रहा है और भीष्म भीषण युद्ध कर रहे हैं। वे पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर के वीरों को चुन-चुनकर मार रहे है। भीष्म ने युधिष्ठिर की सेना मे प्रलय काल का-सा दृश्य उपस्थित कर दिया है। भगवान श्रीकृष्ण उसे सहन न कर सके। उन्होंने विचार किया कि यदि भीष्म को रोका न जायेगा तो वे कुछ ही समय मे युधिष्ठिर की सेना का अस्तित्व मिटा देगे। अर्जुन भीष्म के प्रति श्रद्धा भाव रखने के कारण कर्तव्य को नही समझ रहा है, अत: मैं स्वयं ही भीष्म को मार डालता हूँ। ऐसा निश्चय कर महानुभाव श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया और चक्र के आते ही वे भीष्म की ओर बड़े वेग से दौड़े, किन्तु शान्तनुनन्दन भीष्म तनिक भी विचलित नही हुए।'

उन्होने भगवान श्रीकृष्ण का आह्वान किया—'देवेश्वर ! आपको मेरा नमस्कार है। सबको शरण देने वाले लोकनाथ ! आज आप युद्ध भूमि मे मुझे मार डालिये। श्रीकृष्ण ! आपके हाथ से यदि मैं मारा जाऊँगा तो इहलोक और परलोक मे मेरा कल्याण और गौरव हो जायेगा। पैने प्रतिज्ञा की थी कि भगवान श्रीकृष्ण को युद्ध-भूमि मे अस्त्र लेने पड़ेगे, उसे सत्य करने के लिये ही आपने यह रूप धारण कर अपने भक्त की प्रतिज्ञा की रक्षा की है। मैं आपका भक्त हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण को रोष मे भरे हुए पितामह की ओर जाते देख अर्जुन भी शीघ्रता से रथ से कूद पडे और भगवान के निकट जा अपनी दोनों भुजाओं से उनके चरण पकड़ लिये। अर्जुन ने उन्हे प्रणाम कर कहा—'हे केशव ! आप अपना क्रोध रोकिये। प्रभो ! आप ही पाण्डवों के परम आश्रय है। हे माधव ! अब मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कर्तव्य का पालन करूँगा। हे जनार्दन ! आपकी आज्ञा मिलने पर मैं कौरवो का अत कर

डालूँगा। अर्जुन की यह प्रतिज्ञा और कर्तव्य का पालन करने का निश्चय सुन भगवान श्रीकृष्ण मन ही मन प्रसन्न हो गये और पुन रथ पर जा बैठे। अर्जुन के गाण्डीव धनुष का घोष मेघ की गर्जना के समान आकाश तथा दिशाओ मे फैल गया। अब वे अपने तीक्ष्ण बाणो से कौरव सेना और उनके योद्धाओ का भयकर सहार करने लगे। तदनन्तर शस्त्रो के आघात से रुधिरलिप्त भीष्म, द्रोण, दुर्योधन तथा अन्य कौरव वीरो ने सूर्यदेव को अपनी किरणो को समेटते देख अपनी सेना को युद्ध-भूमि से लौटने की आज्ञा दी।

पुन प्रात काल होने पर भीष्म पितामह कौरव वीरो के साथ युद्ध-भूमि मे पाण्डव सेना पर आक्रमण करने के लिये प्रस्तुत हो गये। वीर अर्जुन ने उनका सामना करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण से अपना रथ आगे बढाने को कहा। अर्जुन के रथ को देखते ही भीष्म पितामह ने उस पर बड़े वेग से आक्रमण कर दिया। जैसे भगवान सूर्य अन्धकारराशि को नष्ट कर देते हैं, वैसे ही महाबाहु अर्जुन ने पितामह के अस्त्रो को विफल कर दिया। अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और शल्य के पुत्र से सुभद्राकुमार अभिमन्यु अकेला ही युद्ध कर रहा था। लक्ष बेधने, शौर्य प्रकट करने, गति से अस्त्र-ज्ञान प्रदर्शन मे कोई भी अभिमन्यु की समानता न कर सका। दुर्योधन से प्रेरित हो त्रिगर्त तथा केकयों सहित मद्र देश के योद्धाओ ने धनुर्धर अर्जुन और वीर अभिमन्यु को घेर लिया। वीर अर्जुन और अभिमन्यु को शत्रुओ से घिरा देख सेनापति धृष्टद्युम्न, भीम, नकुल और सहदेव वाहिनी के साथ उनके पास उपस्थित हो गये। उन्होने पौरव के पुत्र दमन, शल्य-पुत्र तथा मद्र-देश के अनेक योद्धाओ को मार डाला। महापराक्रमी भीमसेन ने कौरव-सेना का बडा सहार किया। उसके भय से कौरव इधर-उधर भागने लगे। जैसे आँधी बादलो को छिन्न-भिन्न कर देती है, वैसे ही भीमसेन कौरव सेना का सहार कर रहे थे। उन्होने दुर्योधन के

छोटे भाई सुषेण, सुलोचन, वीरबाहु, भीम और भीमरथ को धराशायी कर दिया। उनका पुत्र घटोत्कच भी अब भीमसेन के पास आ पहुँचा। वह अपनी माया द्वारा कौरव योद्धाओं का संहार करने लगा। सूर्यास्त होने पर कौरवो ने अपनी सेना युद्ध-स्थल से हटा ली। अपने भाइयों के मारे जाने से राजा दुर्योधन अत्यन्त दीन हो आँखों से आँसू बहाता हुआ शोक और चिन्ता मे निमग्न हो गया।

धृतराष्ट्र युद्ध का सारा विवरण सुनकर बोले—'सजय ! पाण्डवो का दुष्कर पराक्रम सुन मुझे बडा भय हो रहा है। विदुरजी ने जैसा कहा था, दैवयोग से सब वैसा ही दिखायी देता है। पाण्डव किस कारण से अवध्य है ? वे कौन-सा ज्ञान जानते हैं ? जैसे मनुष्य तैरकर महासागर को पार नही कर सकता, वैसे ही मैं इस दु.ख का अन्त नही देखता हूँ।'

संजय ने कहा—'महाराज ! पाण्डवो से अपनी पराजय निश्चित है। वे न्यायपूर्वक युद्ध और जीवन-निर्वाह के सभी कार्य धर्मपूर्वक करते है। धर्म बल से सम्पन्न और दैवी शक्ति से युक्त वे महाबली एवं अवध्य विजयी हो रहे है। आपके दुरात्मा पुत्र सदा पापों मे तत्पर रहते है। वे निर्दयी हैं, इसलिये अब युद्धस्थल मे उन्हे पाप-कर्मों का अत्यन्त भयकर फल प्राप्त हो रहा है। मैने, महात्मा विदुर, भीष्म और द्रोण ने आपको सधि के लिये बार-बार कहा था, किन्तु जैसे मरणासन्न मनुष्य हितकारी औपध को त्याग देता है, उसी प्रकार आपने हम लोगों के कल्याणकारी वचनो को ठुकरा दिया।

पाँचवे दिन जब दोनों सेनाएँ रण स्थल मे उपस्थित हो आपस में युद्ध करने लगी, तब भीष्मपितामह ने भीमसेन और द्रोणाचार्य ने शिखण्डी पर आक्रमण किया। भीमसेन की सहायता के लिये वीर अर्जुन आ पहुँचे, पर शिखण्डी द्रोणाचार्य से प्राण बचाकर भाग गया। कुछ ही समय मे अन्य कौरव और पाण्डव वीरो मे भी युद्ध होने लगा। भूरिश्रवा ने सात्यकि के

दस पुत्रो का वध कर डाला। इसी समय सूर्य अस्ताचल को चले गये तब पाण्डवो और कौरवो ने अपनी सेना को युद्ध-भूमि से हटा लिया। जब रात बीत गयी तब कौरव और पाण्डव पुनः युद्ध के लिये निकले। पाण्डवो ने कौरव सेना पर भयकर आक्रमण किया। अब भीमसेन और दुर्योधन का घमासान युद्ध होने लगा। भीमसेन ने अपने बाणो द्वारा दुर्योधन का धनुप काट घोड़ो को मार यमलोक भेज उसे भी मूर्छित कर दिया। यह देख जयद्रथ और कृपाचार्य दुर्योधन को अपने रथ पर चढ़ा भीमसेन के सामने से हटाकर ले गये। विकर्ण ने अभिमन्यु पर आक्रमण किया, किन्तु थोडी ही देर मे वह अभिमन्यु के हाथो घायल हो गया। नकुलपुत्र शतानी ने दुष्कर्ण को अपने बाणो से आहत कर पृथ्वी पर गिरा दिया, किन्तु कौरव दुष्कर्ण को अपने रथ पर बैठाकर युद्ध-स्थल से ले गये। पुन सूर्यास्त होने पर कौरवो और पाण्डवो ने अपनी-अपनी सेना रणभूमि से हटा ली।

रात्रि मे चिन्तामग्न दुर्योधन भीष्म के पास जाकर बोला—'पितामह! शूरवीर पाण्डव मेरी सेना को मारते और पीड़ा देते है। भीमसेन को कुपित देख मैं भय से व्याकुल हो जाता हूँ। मैं आपकी कृपा से पाण्डवो को मारना और उन पर विजय पाना चाहता हूँ।'

भीष्म पितामह ने कहा—'राजन्! पाण्डव और उनके साथी बल-पराक्रम मे प्रचण्ड हैं। इन्हे शीघ्र पराजित नही किया जा सकता। हमारे साथी द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, शकुनि और अन्य शूरवीर तुम्हारे लिये युद्ध करने को तत्पर रहते है। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि ये सब मिलकर देवताओ को भी जीतने मे समर्थ है, किन्तु सत्य तो यह है कि इन्द्र सहित देवता भी पाण्डवो को युद्ध मे नही जीत सकते। एक तो पाण्डव देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी है, दूसरे भगवान श्रीकृष्ण उनके सहायक है। इसलिये

विजय उनकी ही होगी। मैं अपने प्राणो की भी चिन्ता न कर पाण्डवों के साथ युद्ध करता हूँ। मेरे भयकर पराक्रम को देवता और दैत्य भी सहन नहीं कर सकते, किन्तु पाण्डवों के साथ धर्म है, इसलिये उन्हे परास्त नहीं किया जा सकता। फिर भी तुम्हारे कार्य की सिद्धि के लिये अब मैं अपनी पूर्ण शक्ति से भीषण युद्ध करूँगा। या तो मैं प्राण निछावर कर दूँगा या पाण्डवो को परास्त करूँगा। सूर्योदय के पश्चात कौरव पाण्डव महारथी रणभूमि में उपस्थित हो गये। द्रोणाचार्य ने विराट और अश्वत्थामा ने शिखण्डी पर धावा बोल दिया। शक्तिशाली अर्जुनकुमार अभिमन्यु धृतराष्ट्र पुत्र चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मुख के साथ युद्ध करने लगे। भगदत्त घटोत्कच से भिड़ गया। द्रोणाचार्य ने जब कुपित होकर महाराज विराट पर बाण बरसाये तब राजा विराट का पुत्र शख उनकी सहायता के लिये वहाँ आ पहुँचा। द्रोणाचार्य ने शख को अपने तीक्ष्ण बाणों से मार गिराया तब महाराज विराट युद्ध-स्थल से भाग गये। जब सूर्य अस्ताचल को चले गये, तब दोनो सेनाओ ने युद्ध-स्थल से अपने-अपने शिविरों में प्रवेश किया। तदनन्तर युद्ध के आठवे दिन दोनों सेनाए प्रभात होने पर सग्राम-भूमि में पहुँच गयी। कौरव और पाण्डव वीर समरागण मे एक-दूसरे पर आक्रमण करने लगे। जब भीष्म पितामह और भीमसेन का युद्ध होने लगा, तब दुर्योधन अपने भाइयों सहित उनकी रक्षा करने वहाँ उपस्थित हो गया। भीमसेन ने आपके पुत्र सुनाम, अपराजित, कुण्डधार, पण्डितक, विशालाक्ष, महोदर, आदित्यकेतु और बह्लवाशी को यमलोक पहुँचा दिया।

राजा दुर्योधन भीष्म पितामह के पास जाकर अत्यन्त शोक-मग्न हो विलाप करने लगा—'पितामह! भीमसेन ने युद्ध में मेरे शूरवीर बन्धुओ और अनेक योद्धाओ को मार डाला है। आप मध्यस्थ बने रहने के कारण सदा हम लोगों की उपेक्षा

करते हैं। मैं बडे बुरे मार्ग पर चल रहा हूँ। मेरे इस दुर्भाग्य को देखिये।'

भीष्म पितामह बोले—'तात! मैंने, द्रोणाचार्य, विदुर और यशस्विनी गाधारी देवी ने तुम्हारे हित की जो बात कही थी, उस पर तुमने ध्यान नही दिया। मैंने तुम्हे कहा था कि मुझे और द्रोणाचार्य को तुम्हे युद्ध मे किसी प्रकार नही लगाना चाहिये।' मैंने यह भी सत्य कहा था कि भीमसेन तुम्हारे भाइयो को देखते ही युद्ध मे मार डालेगा। भारत! इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता भी पाण्डवो को युद्ध मे जीत नही सकते, अत. युद्ध के लिये अपनी बुद्धि स्थिर कर युद्ध करो।'

उस भयकर सग्राम मे शकुनि ने पाण्डवो पर आक्रमण कर दिया। श्रीमान् इरावन नागराज कैटव्य की पुत्री से वीर अर्जुन का पुत्र था। उसने शकुनि के छहो पुत्रो को युद्ध-भूमि मे मार डाला, किन्तु वह भी अलम्बुप के द्वारा मारा गया। यह देख घटोत्कच ने दुर्योधन पर आक्रमण कर दिया। उसने कौरव सेना का भाँति-भाँति के अस्त्रो से सहार कर उनके मुख्य योद्धाओ को यमलोक पहुँचा दिया। दुर्योधन को घटोत्कच द्वारा पीडित देख भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य उसकी सहायता के लिये वहाँ उपस्थित हुए। घटोत्कच ने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, चित्रसेन, विकर्ण, भूरिश्रवा और सोमदत्त को अपने अस्त्रो से वेध विविशति, जयद्रथ और राजा शल्य को भी घायल कर दिया। उसे अनेक वीरो से अकेला ही लडते देख भीमसेन उसकी सहायता के लिये पहुँचे। भीमसेन के भय से कौरव-योद्धा और सैनिक शीघ्रता से भाग गये। अधिकाश सेना मारी या भाग गयी देख दुर्योधन ने भीमसेन पर धावा बोल दिया। यह देख वीर अर्जुन और अभिमन्यु आदि पाण्डव-योद्धा वहाँ आ पहुँचे। द्रोणाचार्य ने अपने महारथियो को दुर्योधन की, जिसके प्राण संकट मे पडे थे, रक्षा करने को कहा। इतने मे ही भीमसेन ने दुर्योधन के भाई व्यूढोरस्क, अनाधृष्टि, कुण्डभेदि, वैराट, दीर्घ-

लोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु तथा कनकध्वज को मार गिराया। जब रात्रि का आरम्भ हुआ, तब दोनो सेनाएं अपने-अपने शिविर मे चली गयी।

रात्रि मे राजा दुर्योधन ने कर्ण, शकुनि और दु शासन से युद्ध के विषय मे मन्त्रणा की—'मित्रो! द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य, शल्य तथा भूरिश्रवा पाण्डवो को बाधा नही पहुँचाते, यद्यपि वे मेरी सेना का सहार कर रहे है। राधानन्दन! तुम युद्ध से मुँह मोडकर बैठे हो। इसलिये पाण्डव मुझे परास्त करते जा रहे है। द्रोणाचार्य के सामने ही भीमसेन ने मेरे भाइयों को मार डाला है। ऐसी दशा मे मै कैसे युद्ध करूँगा?'

कर्ण ने कहा—'राजन्! शोक न करो। मै तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा, परन्तु भीष्म के युद्ध से हट जाने पर ही। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं पाण्डवो को उनके साथियों सहित युद्ध मे मार डालूँगा। भीष्म पितामह सदा ही युद्ध मे पाण्डवो पर दया करते हैं, अत. उनको जीतने मे सर्वथा असमर्थ है। तुम पितामह को राजी कर उनसे हथियार रखवा दो।'

कर्ण के ऐसा कहने पर दुर्योधन भीष्म पितामह के शिविर मे गया और नेत्रो मे आँसू भर कर गद्गद कण्ठ से बोला—शत्रुसूदन! आपको वीर पाण्डवों को मार डालना चाहिये। यदि पाण्डवो के प्रति दयाभाव और मेरी उपेक्षा के कारण आप उनकी रक्षा करते हैं, तब वीर कर्ण को युद्ध के लिये आज्ञा दे दीजिये।'

दुर्योधन के वचनो से भीष्म पितामह को महान दु ख हुआ और वे क्रोध से आक्रान्त हो बोले—'राजन्! तुम वाग्बाणो से मुझे क्यो वेध रहे हो? मैं तो यथाशक्ति शत्रुओ पर विजय पाने की चेष्टा करता हूँ। तुम्हारा प्रिय करने की इच्छा से अपने प्राणो को भी होम देने के लिये मै तैयार हूँ। तुम्हें याद होगा कि पाण्डुनन्दन अर्जुन ने युद्ध मे अनेक वीरो को परास्त

कर खाण्डव वन से अग्नि को तृप्त किया था। जब गंधर्वों ने तुम्हे बलपूर्वक पकड लिया था, उस समय भी अर्जुन ने ही तुम्हे छुडाया था। उस अवसर पर तुम्हारे शूरवीर भाई और कर्ण तो मैदान छोडकर भाग गये थे। विराटनगर के युद्ध मे भी अकेले अर्जुन ने ही हम सबको मार भगाया था और सबके वस्त्र छीन लिये थे।वीर अर्जुन की अलौकिक शक्ति के प्रमाण-स्वरूप ये सब दृष्टान्त पर्याप्त है। भगवान वासुदेव जिसकी रक्षा करते है उस वीर अर्जुन को युद्ध मे कौन जीत सकता है? जैसे मरणासन्न मनुष्य सभी वृक्षो को सुनहरे रग का देखता है, उसी प्रकार तुम भी विपरीत ही सोचते हो। तुमने स्वय पाण्डवो से वैर ठाना है, अत अब तुम ही युद्ध करो और अपने पुरुषत्व का परिचय दो।'

दुर्योधन के विलाप को सुन भीष्म पितामह ने समझ लिया कि अब यह मुझे युद्ध से हटाना चाहता है, अतः इस अपमान से तो मेरी मृत्यु ही अच्छी है। दुर्योधन-भीष्म की वार्ता गुप्तचरो से पाण्डवो को मिल गयी। सूर्योदय के होते ही कौरव और पाण्डव सेना रणभूमि मे उपस्थित हो गयी। अर्जुन ने शिखण्डी को आगेकरके भीष्मपितामह से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। तेजस्वी अभिमन्यु कौरवो की विशाल सेना पर टूट पडा। जैसे वराह रूपधारी विष्णु भगवान ने महासागर मे प्रवेश किया था, उसी प्रकार वीर सुभद्राकुमार शत्रु-पक्ष के योद्धाओ को यमलोक मे भेजता हुआ कौरवो के सैन्य-समुद्र मे प्रवेश कर गया।

दुर्योधन ने राक्षस अलम्बुष से कहा—'महाबाहो! यह अर्जुन का पुत्र अर्जुन के समान पराक्रमी है। तुम शीघ्र सुभद्रा-कुमार का वध करो।'

वह राक्षस दुर्योधन के आदेश से रणभूमि मे पहुँचा और अभिमन्यु से युद्ध करने लगा। राक्षस ने अपनी तामसी माया द्वारा वहाँ अधकार फैला दिया किन्तु अभिमन्यु के भास्करास्त्र

प्रयोग से वहाँ पुन. प्रकाश हो गया। अभिमन्यु के वाणों से पीडित हो वह राक्षस रणस्थल से भाग गया। दूसरी ओर वीर अर्जुन तथा सात्यकि के साथ भीष्म पितामह, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, सुशर्मा और अश्वत्थामा घमासान युद्ध कर रहे थे। अब रक्तमयी नदी रणभूमि मे बहने लगी। जैसे युगान्त में साक्षात काल के द्वारा सारे जीव मारे जाते हैं, उसी प्रकार वीर अर्जुन के द्वारा कौरव सेना मारी जाने लगी। यह देख भीष्म कुपित हो पाण्डव-सेना का भीषण ध्वस करने लगे।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'पार्थ! तुम्हे जिस अवसर की अभिलाषा और प्रतीक्षा थी, वह अब आ पहुँचा है। पुरुषसिंह तुम भीष्म पितामह पर प्रहार करो।'

भगवान श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर महावाहु अर्जुन ने मुँह नीचा कर लिया और अनिच्छुक की भाँति उनसे बोला—'प्रभो! अवध्य महापुरुषों का वध कर निन्दनीय राज्य प्राप्त करूं, क्या यह उचित होगा? भगवन्! यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है तो मैं भीष्मपितामह से अपनी पूर्ण शक्ति द्वारा युद्ध करूँगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि प्रतिज्ञा करने पर भी अर्जुन भीष्म पितामह के साथ सकोच से युद्ध कर रहे है। महाबाहु माधव को यह सहन नही हुआ। वे रथ से कूद पडे और भीष्म पितामह की ओर बढने ही वाले थे कि वीर अर्जुन ने अपनी दोनो भुजाओ मे उनके चरण पकड लिये।

कुन्तीपुत्र अर्जुन ने आर्त्त भाव से विनयपूर्वक उनसे कहा—'प्रभो! अपनी प्रतिज्ञा को झूठी न कीजिये, अन्यथा लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। केशव! मैं अपने अस्त्र, शस्त्र, सत्य और सुकृत की शपथ खाकर कहता हूँ कि पितामह का वध करूँगा। महामना अर्जुन का यह वचन सुन भगवान श्रीकृष्ण मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुनः रथ पर जा बैठे। उनको रथ पर बैठे देख भीष्म पितामह ने पुन: घोर युद्ध

आरम्भ कर दिया। उसी समय सूर्यास्त हो गया और सध्या छा गई। नौवे दिन के अन्त मे दोनो सेनाए शिविर मे लौट गईं।

प्रतिदिन के नियमो के अनुसार जब सब महारथी राजा युधिष्ठिर के शिविर मे एकत्रित हुए तब महाराजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से बोले—'माधव! हमे भीष्म पितामह के साथ युद्ध करना अच्छा नही लगता है, उधर वीर पितामह हमारी सेना का भयकर सहार करते चले जा रहे है। ऐसी स्थिति मे मैं अपनी बुद्धि की दुर्बलता के कारण शोक-समुद्र मे डूबा जा रहा हूँ। जैसे पतग प्रज्वलित आग की ओर दौडकर मृत्यु को ही प्राप्त होता है उसी प्रकार हमने भी भीष्म पितामह पर आक्रमण कर मृत्यु का ही वरण किया है। हे केशव! मुझे स्वधर्म के अनुकूल कोई हितकर निर्देश दीजिये।'

भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए कहा—'धर्मपुत्र! विषाद न करो। हम भीष्म पितामह से उनके वध का उपाय पूछने चले। दृढतापूर्वक व्रत का पालन करने वाले भीष्मजी हमारी विजय और हितकर सम्मति के दाता होगे। वे पुण्यात्मा पुरुष है। वे दृष्टिपात मात्र से सबको दग्ध कर सकते है। विशेषत आपके पूछने पर वे अवश्य ही सच्ची बात बतायेगे।'

भगवान के हितकर वचन सुन सभी पाण्डव माधव के साथ पितामह के शिविर मे गये और उन्होने उन्हे प्रणाम किया।

पितामह ने उन सबका स्वागत किया और कहा—'पुत्रो! मै तुम्हे प्रसन्न करने के लिये कौन-सा कार्य करूँ? तुम बिना सकोच मुझसे अपने आने का प्रयोजन कहो। यदि वह दुष्कर होगा तो भी मै उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

युधिष्ठिर ने दीन हृदय से श्रद्धापूर्वक कहा—'सर्वज्ञ! युद्ध मे हमारी विजय कैसे हो? हम किस प्रकार राज्य प्राप्त करे?'

शान्तनुकुमार भीष्म बोले—'कुन्तीनन्दन! मेरे जीते जी युद्ध मे किसी प्रकार तुम्हारी विजय नही हो सकती। यदि तुम

विजय चाहते हो तो मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम मुझ पर प्रहार करो। मेरे मारे जाने पर सारी कौरव-सेना मृतप्राय: हो जायगी। जब तक मेरे हाथ में शस्त्र रहेंगे, तब तक मै युद्ध के लिये प्रयत्नशील रहूँगा। मै अस्त्र-शस्त्र डाल दूँ, उसी अवस्था मे महारथी मुझे मार सकते है। राजन् ! तुम्हारी सेना मे जो द्रुपद-पुत्र शिखण्डी है, वह पहले स्त्री था, इसलिए उस पर मै प्रहार नही करूँगा। शूरवीर अर्जुन शिखण्डी को आगे कर मुझे मार डालने का प्रयत्न करे तो निश्चित रूप से तुम्हारी विजय हो जायगी। धनजय के अतिरिक्त ऐसा कोई वीर तुम्हारी सेना में नही दिखाई देता जो मुझे मार सके।' भीष्म पितामह की यह आज्ञा पाकर पाण्डव अपने-अपने शिविर में चले गये।

सूर्योदय होने पर पाण्डव शिखण्डी को आगे कर युद्ध के लिये शिविर से बाहर निकले और कौरवो की सेना पर धावा बोल दिया। कौरवो ने भीष्मपितामह को अपनी सेना के आगे कर पाण्डवो पर चढाई कर दी। रणक्षेत्र मे शत्रुओ द्वारा अपनी सेना का संहार महाधनुर्धर भीष्म सहन नही कर सके। उन्होंने अपने जीवन का मोह छोड अस्त्र-शस्त्रो की वर्षा द्वारा पाण्डवों के पाँच महारथियो को मार डाला। तव शिखण्डी ने तीन बाणो से भीष्म पर प्रहार किया।

भीष्म ने हँसते हुए शिखण्डी से कहा—'तू इच्छानुसार मुझ पर प्रहार कर। मै तेरे साथ युद्ध नही करूँगा।'

शिखण्डी बोला—'मै आपके सामने सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि आज आपको निश्चय ही मार डालूँगा।'

अर्जुन ने शिखण्डी से कहा—'महाबली वीर ! इस युद्ध में मैं तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा, तुम पितामह को मारने का कार्य सिद्ध करो। वीर ! तुम पितामह का सामना करने के लिये आगे बढो। मैं अपने बाणो द्वारा इनको मार गिराऊँगा।'

पार्थ का यह कथन सुनकर शिखण्डी ने भीष्म पर धावा बोल दिया। कौरव सेनापति पूर्ण शक्ति लगाकर वीर अर्जुन

को भीष्म पितामह के पास आने से रोकने लगे। पाण्डव वीरो ने वीर अर्जुन को सहायता देने के लिये कौरव योद्धाओ पर आक्रमण कर दिया। अव दोनो पक्ष के वीरो मे भयकर युद्ध होने लगा। भीष्मजी की रक्षा के हेतु कौरव योद्धा अपने जीवन की अभिलाषा छोडकर लड रहे थे। वार-वार रोके जाने पर भी वीर अर्जुन कौरव वीरो को रौदता हुआ आगे वढता चला गया। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को विशाल सेना के साथ भीष्म पितामह के सम्मुख आते देख द्रोणाचार्य उनसे भयकर युद्ध करने लगे। उस सग्राम मे कौरव सेना पाण्डवो और उनके योद्धाओ के द्वारा मथ डाली गयी।

द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा से कहा—'तात ! यही वह दिन है जवकि महावली अर्जुन समर भूमि मे भीष्मजी को मार डालने का प्रयत्न करेगे। मेरे वाण तरकश से उछल रहे है, धनुष काँप रहा है और मेरे मन मे अत्यन्त चिन्ता हो रही है। सम्पूर्ण दिशाओ मे पशु-पक्षी अशान्तिपूर्ण भयकर वोली वोल रहे है। सूर्य की प्रभा मद-सी पड रही है। सूर्य-मण्डल के मध्य-भाग मे वडी-वडी उल्काएँ गिर रही है। सूर्य और चन्द्रमा के चारो ओर घेरा पडने लगा है जो घोर भय की सूचना दे रहा है। राजा धृतराष्ट्र के देवालय की देवमूर्तियाँ रोती-सी जान पडती है। राजाओ के शरीर को मैं श्रीहीन देख रहा हूँ। महावाहो ! भीष्मजी और वीर अर्जुन के युद्ध का विचार कर मेरे रौगटे खडे हो रहे है। आज वीर अर्जुन ने पूरी तैयारी के साथ पुरुष-सिह भीष्म पर आक्रमण किया है, इसलिये तुम शीघ्र भीष्मजी की रक्षा के लिये जाओ। पुत्र ! आश्रित रह कर जीविका चलाने वाले पुरुषो के लिये, यह अपने प्राण वचाने का अवसर नही है। तुम स्वर्ग को सामने रखकर भीष्मजी के पास जाओ। अपना प्रिय नित्य, निरतर जीवित रहे यह कौन नही चाहता तथापि धर्म पर दृष्टि रख मैं तुम्हे इस कार्य के लिये नियुक्त कर रहा हूँ। यहाँ केवल कुन्तीकुमार युधिष्ठिर मे ही ब्राह्मणो

के प्रति भक्ति, इन्द्रिय संयम, दान, तप और श्रेष्ठ सदाचार आदि सद्‌गुण दिखाई देते हैं, जिनके फलस्वरूप इन्हे धर्म-परायण भाई और भगवान श्रीकृष्ण मिले हैं। इस दुर्बुद्धि दुर्योधन का शरीर उन्ही की तपस्या से प्राय· दग्ध हो गया है और इसकी सेना भी उन्ही की क्रोधाग्नि से जलकर भस्म हो रही है।' अपने पुत्र को इस प्रकार आदेश दे द्रोणाचार्य पुन· राजा युधिष्ठिर से युद्ध करने लगे।

भगदत्त, कृपाचार्य, शल्य, कृतवर्मा, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण तथा दुर्मर्षण भीमसेन के साथ युद्ध कर रहे थे। कौरव योद्धा भीष्मजी की रक्षा करना चाहते थे, अत भीमसेन को पितामह के पास जाने से रोक रहे थे। भीमसेन ने अकेले ही वहुतो के रथों को तोड डाला और सारथियो को घोडो सहित यमलोक पहुँचा दिया। धर्मात्मा भीष्म दस दिनों तक पाण्डव सेना का सहार कर जीवन से ऊव गये थे। वे सोचने लगे कि सग्राम मे अव मैं श्रेष्ठ मानवो का वध और नही करूँगा। शिखण्डी ने रणक्षेत्र मे पुरुप-रत्न भीष्म के पास पहुँच कर उन्हे अपने अस्त्रों से पीडित करना आरम्भ कर दिया, किन्तु भीष्मजी ने उसके स्त्रीत्व को विचार कर कोई प्रतिकार नही किया। दु शासन पितामह की रक्षा के हेतु वहाँ आ पहुँचा और वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा। विजयी अर्जुन ने समर-भूमि मे दु शासन को परास्त कर भीष्मजी को मूर्छित कर दिया। पितामह की ऐसी दशा देख कौरव-योद्धा सेना के साथ स्वर्ग को अपना लक्ष्य बनाकर वहाँ आये और वीर अर्जुन से युद्ध करने लगे, किन्तु सब असफल रहे। वीर अर्जुन ने बाणों से भीष्मजी के कवच को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसी अवस्था में महाधनुर्धर अर्जुन से सुरक्षित शिखण्डी ने पितामह के सारथी और घोडों को यमलोक पहुँचा दिया और उनके रथ की ध्वजा भी काट डाली। जब भीष्मजी मूर्छा से जगे तब पुन. पाण्डव-सेना का प्रबल सहार करने लगे। वीर अर्जुन ने उनकी यह

चेष्टा विफल कर दी। वीर शिरोमणि भीष्मजी ने विचार किया कि यदि भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवो की रक्षा नही करते तो मैं इन सवको अकेला ही परास्त कर सकता था। भगवान श्रीकृष्ण अजेय है। अव मैं पाण्डवो से युद्ध नही करूँगा। ये अविच्छिन्न रूप से छूटने वाले वाण शिखण्डी के नही हो सकते। इन्हे गाण्डीवधारी अर्जुन ने ही छोडे है, जो वज्र और विद्युत के समान असह्य है। वीर भीष्म के शरीर मे ऐसा स्थान नही रह गया था जो अस्त्रो से विंध न गया हो। जव दिन थोडा ही शेष रह गया, तव उसी अवस्था मे सवके देखते-देखते पूर्व दिशा की ओर मस्तक किये वे रथ से नीचे गिर पडे। उनके सारे अगो मे वाण विंधे हुए थे, इसलिये गिरने पर भी उनका शरीर पृथ्वी का स्पर्श नही कर सका। वाण-शय्या पर सोये हुए पुरुष-श्रेष्ठ भीष्मजी ने निश्चय किया कि जव सूर्य उत्तरायण मे होगा तभी मैं इस लोक से यात्रा करूँगा। महातेजस्वी शान्तनु-पुत्र भीष्म यद्यपि अवध्य थे, तो भी वे पृथ्वी पर गिर पडे, इससे लोगो ने अनुमान किया कि दुर्योधन का विनाश अवश्यम्भावी है। भीष्म पितामह के गिरने पर पाण्डव-पक्ष के योद्धाओ के हर्ष की सीमा नही रही पर दोनो सेनाओ के योद्धाओ ने अपने अस्त्र-शस्त्र पृथ्वी पर डाल दिये और वे चिन्तामग्न हो गये। भीष्म पितामह को उस अवस्था मे देख कौरव पाण्डव योद्धाओ ने उन्हे प्रणाम किया और वे उन्हे घेरकर खडे हो गये। जव द्रोणाचार्य ने यह अप्रिय समाचार सुना तव वे मूर्छित हो गये।

भीष्म पितामह ने कौरव पाण्डव वीरो से कहा—'महाभाग नरेशगण! आप लोगो का स्वागत है। मैं आप लोगो के दर्शन से वहुत सतुष्ट हूँ। पुत्रो! मेरा सिर वहुत लटक रहा है,इसलिए आप लोग मुझे तकिया दें।' तव कौरव-पक्ष के लोग तत्काल कोमल और अत्यन्त सुन्दर वहुत से तकिये लाये, किन्तु पितामह ने उन्हें स्वीकार नही किया।

उन्होने कहा—"भूपालो! ये तकिये वीर शय्या के अनुरूप

नही है। फिर पाण्डु-पुत्र धनजय ने अपने आँसू भरे नेत्रों से देख उन्हे प्रणाम किया और तीन अभिमत्रित वाणो को गाण्डीव धनुष द्वारा चलाकर उनके मस्तक को ऊँचा कर दिया। धर्मात्मा भीष्म उन पर बहुत सतुष्ट हुए और अनेक आशीर्वाद दिये। दूसरे दिन सूर्योदय होने पर कौरव-पाण्डव पितामह भीष्म की सेवा मे पुनः उपस्थित हुए। भीष्मजी वाणो से सतप्त होकर मूर्छित से हो रहे थे। उनकी वाणी धीमी पड गई थी, इसलिए वे 'पानी' शब्द क्षीण स्वर से ही बोल पाये। यह सुन क्षत्रिय नरेश शीतल जल से भरे हुए घडे ले आये, किन्तु उन्होने उसे स्वीकार नही किया। उन्होने वीर अर्जुन की ओर देखा। वीर अर्जुन उनका अभिप्राय समझ गये और भीष्म पितामह की परिक्रमा करके एक तेजस्वी वाण को, जो मन्त्रोच्चारण से पूर्ण था, पितामह के दाहिने पार्श्व मे पृथ्वी पर चलाया। उसके प्रयोग से शीतल अमृत के समान मधुर जल की स्वच्छ धारा भीष्मजी के मुख मे पडने लगी। उस जल से तृप्त हो शान्तनु-नन्दन ने अर्जुन की वड़ी प्रशसा की और अनेक आशीर्वाद दिये।

वे दुर्योधन से वोले, "कौरव श्रेष्ठ! वीर अर्जुन के समान कोई पराक्रमी योद्धा इस समय पृथ्वी पर नही है। यह जैसा अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग जानता है वैसा कोई भी योद्धा इस रण-भूमि मे नही जानता, इसलिये इसे युद्ध मे जीतना असम्भव है। तुमने इसका पराक्रम देख भी लिया है। भगवान श्रीकृष्ण इसकी रक्षा करते है, अतः यह अजेय है। तुम श्रीकृष्ण को मध्यस्थ कर पाण्डवो से सन्धि कर लो। मैं सन्धि को कौरवों और उनके सहायको के लिये कल्याणकारी मानता हूँ। ऐसा करने से तुम नीच नही कहलाओगे और तुम्हे पापपूर्ण अपयश भी नही होगा। यदि अपनी मूर्खता के कारण मेरे हितकर वचनो को अब भी नही मानोगे, तो अन्त में तुम्हे पछताना पडेगा और तुम्हारा विनाश हो जायेगा। इतना कह भीष्मपितामह मौन हो

गये और उन्होने अपने मन को परमात्मा के चिन्तन मे लगा दिया।

जब कर्ण को पता चला कि पितामह शरशय्या पर सोये हुए है, तब वह उनके दर्शन हेतु उनके पास गया और अश्रु से पूर्ण गद्गद कण्ठ मे बोला, 'पितामह आपको मेरा प्रणाम है। मैं सूतपुत्र कर्ण हूँ। मेरा अपराध क्षमा करे।'

उसकी यह बात सुन कुरुवृद्ध पितामह ने अपने नेत्र खोले और कर्ण को स्नेहपूर्वक सम्बोधित किया, "कर्ण! तुम कुन्ती-पुत्र हो। तुम्हारा पिता सूर्यदेव है। तुम्हारा पूर्ण परिचय मैंने नारदजी द्वारा प्राप्त किया है। तुम्हारे प्रति मेरे मन मे क्रोध नही हैं, उत्तम व्रत का पालन करने वाले वीर! मैं कभी-कभी तुमसे कठोर वचन बोलता था, उसका उद्देश्य तुम्हारे तेज और उत्साह को नष्ट करना था, क्योकि तुम दुर्योधन के उकसाने से अकारण ही पाण्डवो पर आक्षेप किया करते थे। मैं जानता हूँ कि तुम पराक्रमी, ब्राह्मण-भक्त, दानी और शूरवीर हो। प्रारब्ध के विधान को कोई टाल नही सकता। शत्रुसूदन! वीर पाण्डव तुम्हारे सगे भाई है, अत. यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो, तो उनसे मिल जाओ और यह नर-सहार बन्द करवा दो।'

कर्ण ने कहा, 'प्रभो! मैं दुर्योधन का ऐश्वर्य भोगकर उसे निष्फल नही कर सकता। जैसे वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण पाडुपुत्रो की सहायता के लिये दृढ-प्रतिज्ञ हैं, उसी प्रकार मैं भी दुर्योधन के लिये सर्वस्व निछावर कर दूंगा। मैंने दुर्योधन का पाण्डवो पर इसलिये क्रोध वढाया है कि क्षत्रिय समुदाय युद्ध-स्थल मे वीरगति को प्राप्त करे। यह विधाता का विधान है। इसे कोई टाल नही सकता। आप मेरे अपराधो को कृपापूर्वक क्षमा करे।'

वीर भीष्म वोले, 'कर्ण! मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ कि स्वर्ग प्राप्ति के लिये अभिमान शून्य हो धर्मानुकूल कल्याणकारी

युद्ध करो।' भीष्म पितामह से अनेक आशीर्वाद पाकर कर्ण अपने शिविर मे चला गया।

अनुपम सत्व, ओज, वल और पराक्रम से सम्पन्न देवव्रत भीष्म को शिखण्डी के हाथ से मारे गये सुनकर धृतराष्ट्र का हृदय शोक से व्याकुल हो उठा। वे निरतर उस दु:खदायी घटना का ही चिन्तन करते थे और उनका मन सर्वथा अप्रसन्न एवं उत्साहहीन हो गया। वे आर्त्त हो विलाप कर रहे थे।

उन्होने सजय से पूछा—'मुझे ग्यारहवें दिन की घटना सुनाओ।'

संजय ने कहा—'राजन् ! कौरव और पाण्डवों ने परस्पर वार्तालाप कर भीष्मजी की रक्षा की व्यवस्था कर दी। पितामह की परिक्रमा कर वे काल-प्रेरित क्रोध से लाल आंखे किये पुनः युद्ध के लिए निकले। भीष्म पितामह का पतन हो जाने पर राजाओं सहित सम्पूर्ण कुरुवंशी मृत्यु के अधीन हो गये। जैसे हिंसक जन्तुओं से भरे हुए वन मे भेड़-वकरी विना रक्षा के उद्विग्न रहती हैं, उसी प्रकार आपके पुत्र और अन्य योद्धा देवव्रत से रहित हो मन ही मन अत्यन्त भयभीत रहने लगे। वे नक्षत्र रहित आकाश, वायुशून्य अतरिक्ष, नष्ट हुई खेती, नायक विहीन सेना के समान असमर्थ और श्रीहीन हो गये। उस समय कौरवो ने कर्ण को स्मरण किया, क्योकि वही भीष्म के समान पराक्रमी समझा जाता था।'

राधानन्दन कौरवो की विनय सुन दुर्योधन के समीप गया और उससे बोला—'ब्राह्मणों के शत्रुओं का विनाश करने वाले तथा अपने ऊपर किये हुए उपकारों का आभार मानने वाले, जिन वीर शिरोमणि भीष्मजी में सदा धृति, बुद्धि, पराक्रम, ओज, सत्य, स्मृति, विनय, लज्जा, प्रिय वाणी और अनसूया ये सभी गुण तथा दिव्यास्त्र शोभा पाते थे, वे शान्त हो गये तो भी चिन्ता की आश्यकता नही। संसार मे कर्मो के अनित्य सबध से कभी कोई वस्तु स्थिर नही रहती है। महारथी भीष्म को रण-

भूमि मे गिराया जाना सूर्य को पृथ्वी पर गिराने के समान है। इस समय सग्राम-भूमि मे मुझे कौरव सेना की उसी प्रकार रक्षा करनी है जैसे महात्मा भीष्म किया करते थे। मैंने यह भार अपने ऊपर ले लिया है। जव सारा जगत अनित्य है तव मैं भय किसलिये करूँ ? यद्यपि युधिष्ठिर धैर्य, वुद्धि, सत्य और सत्वगुणो से सम्पन्न हैं तथा अर्जुन, देवराज इद्र जैसे और नकुल सहदेव यम के समान पराक्रमी उनके भाई हैं, तव भी मैं उन्हें यमलोक मे पहूँचा दूंगा। जिनके सहायक सात्यकि और देवकी-नन्दन श्रीकृष्ण है उन्हे मैं शीघ्र ही नष्ट कर दूंगा। या तो मैं इस श्रेष्ठ कार्य को सम्पन्न करूँगा अथवा प्राणो का परित्याग कर भीष्मजी के ही पथ पर चला जाऊँगा।

इसके पश्चात कर्ण भीष्म पितामह के पास जा अजली वाँध अभिवादनपूर्वक प्रणाम कर आँसुओ से युक्त नेत्रो से गद्‌गद् वाणी मे वोला—'भारत ! मैं कर्ण हू। आप अपनी पवित्र एव मगलमयी वाणी द्वारा मुझे उपदेश देकर कल्याणमयी दृष्टि से आशीर्वाद दे। पुरुषसिह ! प्रज्वलित अग्नि के समान वीर अर्जुन, और श्रीकृष्ण वायु के समान हैं। इसलिये वे क्षण मे सवको दग्ध कर देगे। आप अशीर्वाद दे कि मैं रण मे अर्जुन को अपने शस्त्रो से मार सकू।'

भीष्म पितामह ने कहा—'कर्ण ! दुर्योधन की भाँति तुम भी मेरे पौत्र के समान हो। जैसे मैं उसका हितैषी हूँ उसी प्रकार तुम्हारा भी। ससार मे सवधियो की अपेक्षा साधु-पुरुषों के साथ की हुई मैत्री श्रेष्ठ है। तुम सच्चे मित्र होकर कौरव-दल की रक्षा करो।' कर्ण ने भीष्मजी का यह कथन सुना और उनके चरणो मे प्रणाम कर दुर्योधन के पास चला गया।

# द्रोण

दुर्योधन ने कर्ण से कहा—'कर्ण ! पहले बल, पराक्रम और सर्व विद्याओ मे निपुण पितामह भीष्म हमारे सेनापति थे, अब हमे किसे सेनापति बनाना चाहिए ?'

कर्ण ने उत्तर दिया—'राजन् ! सम्पूर्ण शस्त्रधारियो में श्रेष्ठ, योद्धाओ के आचार्य दुर्जयवीर द्रोणाचार्य को ही सेनापति बनाना चाहिये। गुरुदेव परम बुद्धिमान है।'

कर्ण का यह कथन सुन दुर्योधन आचार्य द्रोण से बोला—'द्विज-श्रेष्ठ ! आप हम लोगो की रक्षा करे। आपके नेतृत्व मे रहकर हम शत्रुओ पर विजय पाना चाहते है।'

इस पर द्रोणाचार्य ने कहा—'राजन् ! तुम्हारा प्रस्ताव मुझे स्वीकार है। मैं वेद, अर्थ-शास्त्र, भगवान शकर की दी हुई बाण विद्या और अस्त्र-शस्त्र का ज्ञाता हू। तुम्हारे हित के लिए मैं पाण्डवो के साथ युद्ध करूँगा, पर द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न को युद्ध मे नही मारूँगा क्योकि वह मेरे ही वध के लिए उत्पन्न हुआ है। मैं पाण्डव सेना के साथ युद्ध करूँगा किन्तु पाण्डव प्रसन्नता से मेरा सामना नही करेगे। तुमने कौरवश्रेष्ठ भीष्मजी के पश्चात् जो आज मुझे सेनापति बनाया है, इससे संतुष्ठ हो मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय-कार्य करूँ ?'

दुर्योधन ने कहा—'आचार्य ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो श्रेष्ठ युधिष्ठिर को जीवित पकडकर यहाँ ले आइये।'

आचार्य बोले—'राजन् ! कुन्तीकुमार युधिष्ठिर धन्य है, जिन्हे तुम जीवित पकडना चाहते हो। उस दुर्धर्षवीर के बध के लिए तुमने मुझसे याचना नही की, इससे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि धर्मराज युधिष्ठिर से द्वेष रखने वाला इस ससार मे कोई नही है। तुम उन्हे जीवित देखना और अपने कुल की रक्षा करना चाहते हो।'

दुर्योधन ने कहा—'आचार्य ! युद्ध में कुन्तीपुत्र को मारने

से मेरी विजय नही हो सकती, क्योकि युधिष्ठिर का वध होने पर अन्य पाण्डव अवश्य ही हमे मार डालेगे। सत्य-प्रतिज्ञ राजा युधिष्ठिर को यदि जुए मे जीत लिया जाय तव उनमे भक्ति रखने वाले पाण्डव पुन. वन मे चले जायेगे।'

द्रोणाचार्य बोले—'राजन्! यदि वीर अर्जुन युद्ध मे युधिष्ठिर की रक्षा नही करेंगे तो मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध कर दूगा। रण-क्षेत्र में इद्र भी वीर अर्जुन का सामना नही कर सकते। यद्यपि कुन्तीपुत्र अर्जुन मेरा शिष्य है पर वह तरुण और अनेक प्रकार के पुण्यकर्मों से युक्त है। उसने इद्र और रुद्र आदि देवताओ से दिव्यास्त्र प्राप्त किये है। वह मुझमे श्रद्धा रखता है, अत. उससे लडने का उत्साह मुझमे नही है।'

द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन कहा—'आर्य! आज तुम मेरे समीप ही रहना, जिससे दुर्योधन द्रोणाचार्य द्वारा अपना मनोरथ पूर्ण न करा सके।'

अर्जुन ने कहा—'राजन्! जिस प्रकार मेरे लिये आचार्य का वध न करना कर्तव्य है, उसी प्रकार आपकी रक्षा करना मेरा सकल्प है। मेरे जीते-जी वे आपको पकड़ नही सकेंगे, अत. आचार्य से आपको भयभीत नही होना चाहिये।'

तदनन्तर कौरवों और पाण्डवो में भयकर युद्ध होने लगा। सत्यपरायण परम बुद्धिमान तथा धर्म मे तत्पर रहने वाले वीर द्रोणाचार्य रणक्षेत्र मे पाण्डव-सेना पर अपने अस्त्रो से प्रहार करने लगे और प्रलय काल के समान अत्यन्त भयकर रक्त की नदी प्रवाहित कर दी। अभिमन्यु ने अपने पैने वाणो से कौरव वीर जयद्रथ और शल्य के सारथी तथा घोडो को मार डाला। तव राजा शल्य कुपित हो गदा उठाकर रथ से कूद पडे। उन्हे प्रलयकाल की प्रज्वलित अग्नि तथा दण्डधारी यम के समान अभिमन्यु पर आक्रमण करते देख भीमसेन राजा शल्य से भयकर युद्ध करने लगे। भीमसेन के गदा-प्रहारो से राजा शल्य पीड़ित हो गये। यह देख महारथी कृतवर्मा शल्य को अपने

रथ मे बिठाकर रणभूमि से बाहर ले गये। उधर द्रोणाचार्य ने चक्ररक्षक कुमार और युगन्ध को परास्त कर दिया। उन्होंने सिहसेन और व्याध दत्त के मस्तक काट डाले। उसी समय वीर अर्जुन वहाँ आ गये और शीघ्रतापूर्वक द्रोणाचार्य की सेना पर आक्रमण करने लगे। जब सूर्य अस्ताचल को चले गये तब कौरवो और पाण्डवो ने अपनी-अपनी सेना को युद्ध-स्थल से हटा लिया।

युद्ध के बारहवे दिन जब सूर्योदय हुआ तब त्रिगर्तराज सुशर्मा अपने भाइयो के साथ जिनके नाम सत्यव्रत, सत्यरथ, सत्येषु, सत्यवर्मा तथा सत्यकर्मा थे, वीर अर्जुन से युद्ध करने लगे। कुन्तीनन्दन अर्जुन ने सुधन्वा के मस्तक को काट गिराया। विराट के अनुज शूरवीर सत्यजीत, वृक, तातानी, पचाल देश के राजकुमार क्षेम तथा वसुधाम राजा युधिष्ठिर की रक्षा मे नियुक्त किये गये। उन्हे वीर द्रोणाचार्य ने मार डाला। भूरि-श्रवा ने राजा मणिमान को धराशायी कर दिया। यह देख युधिष्ठिर रणभूमि से भाग गये। तदनन्तर भीम ने सारथी सहित शाल्व और अग को यमलोक पहुँचा दिया। वीर अर्जुन ने त्रिगर्तराज के भाई भगदत्त और उसके परिवार को मार डाला।

तेजस्वी नरेश भगदत्त के मारे जाने पर गान्धार राज सुबल के दो पुत्र वृषक और अचल अपने योद्धाओ की सहायता से वीर अर्जुन से युद्ध करने लगे, किन्तु वे दोनो वीर भी कुछ ही समय मे योद्धाओ के साथ धनजय द्वारा मारे गये। यह देख कौरव-सेना मे भगदड़ मच गई। वीर अर्जुन उनकी बची सेना का सहार करने दक्षिण की ओर बढ़े। इसी बीच प्रतापी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा कौरव-सेना के सरक्षण के लिये वहाँ आया और पाण्डवो के सहायक राजा नील पर आक्रमण कर दिया। दोनों योद्धाओं मे अब घोर युद्ध होने लगा, किन्तु युद्ध मे नील अश्वत्थामा के द्वारा मारा गया। यह देख भीमसेन अश्वत्थामा

से युद्ध करने लगा। अश्वत्थामा की सहायता के लिये आचार्य द्रोण और कर्ण भी उसी युद्ध स्थल पर जा पहुँचे। भीमसेन की सहायता के लिये नकुल और सहदेव भी वहाँ आये। अब दोनों पक्षो मे भयानक युद्ध होने लगा। पाण्डव-वीरो ने जब आचार्य द्रोण पर आक्रमण किया, तब कृपाचार्य, राजा जयद्रथ, विन्द और अनुविन्द उनकी सहायता के लिये आये। उसी समय वीर अर्जुन गान्धार सेना का सहार कर दक्षिण दिशा से वहाँ लौटे और प्रलयकालीन अग्नि के समान अपने अस्त्रो से कौरव सेना को दग्ध करने लगे। यह देख भरतवशियो और अस्त्रवेत्ताओं मे श्रेष्ठ महारथी कर्ण और राधा के छोटे पुत्रो ने वीर अर्जुन से युद्ध करना आरम्भ कर दिया। इतने मे ही धृष्टद्युम्न और सात्यकि पाण्डुनन्दन अर्जुन की सहायता के लिये वहाँ पहुँच गये। तत्पश्चात कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने राधा के तीन छोटे पुत्रो को मार डाला। भीमसेन ने भी कर्ण के पक्ष के अनेक योद्धाओं को यमलोक पहुँचा दिया। धृष्टद्युम्न ने चन्द्रवर्मा तथा निषाध-राज बृहत्क्षत्र का काम तमाम कर दिया। सूर्यदेव के अस्ताचल मे चले जाने पर दोनो पक्षो की सेना अपने-अपने शिविर में लौट गयी।

जब अमित तेजस्वी अर्जुन ने आचार्य द्रोण का राजा युधिष्ठिर को पकडने का सकल्प व्यर्थ कर दिया, तब दुर्योधन उस रात्रि में अत्यन्त दु खित हो क्रोधपूर्ण वचनो से उनके पास जाकर बोला—'द्विज श्रेष्ठ! निश्चय ही हम आपकी दृष्टि मे शत्रुवर्ग के अन्तर्गत है, इसीलिये आज आपने अत्यन्त निकट आने पर भी राजा युधिष्ठिर को नही पकडा। यदि रणक्षेत्र मे शत्रु आपके नेत्रो के समक्ष आ जाय तो सम्पूर्ण देवता और पाण्डव भी उसकी रक्षा नही कर सकते। पुरुषश्रेष्ठ! आपने प्रसन्न होकर पहले तो मुझे राजा युधिष्ठिर को पकडने का आश्वासन दिया, अब उन्ही वचनो को आप असत्य कर रहे हैं, यह आपके योग्य नही है।'

दुर्योधन के इस प्रकार कटु वाक्य सुन द्रोणाचार्य ने दुःखी मन से कहा—'राजन् ! तुमको मुझे प्रतिज्ञा भग करने वाला नही समझना चाहिये। मैं अपनी पूरी शक्ति लगाकर तुम्हारा प्रिय करने की चेष्टा कर रहा हूँ, परन्तु जिसकी रक्षा वीर अर्जुन करते है, उसे समस्त देवता भी नही जीत सकते। जिस पक्ष में भगवान श्रीकृष्ण तथा वीर अर्जुन हों, वहाँ किसका वल-पौरुष चल सकता है ? तात ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज मैं पाण्डव पक्ष के किसी श्रेष्ठ महारथी को अवश्य मारूँगा, किन्तु तुम्हे महावाहु अर्जुन को युद्ध-भूमि से दूर ले जाना होगा। युद्ध के सम्वन्ध में कोई ऐसी वात नही है जो कुन्तीपुत्र अर्जुन के लिये अज्ञात या असाध्य हो।'

दूसरे दिन सुवह सशप्तकगण धनुर्धर अर्जुन से युद्ध करते-करते उसे युद्ध-स्थल से दूर ले गये। तव द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की, जो अनेक योद्धाओं द्वारा रक्षित था। उस व्यूह के अग्रभाग में द्रोणाचार्य थे, मध्य में दुर्योधन, कृपाचार्य, दु.शासन, जयद्रथ और कर्ण थे, पार्श्व भाग मे अश्वत्थामा था। शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा जयद्रथ की रक्षा कर रहे थे। द्रोणाचार्य द्वारा सुरक्षित उस दुर्धर्ष सेना का भीमसेन आदि वीरो ने डटकर सामना किया। सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुन्तीभोज, द्रुपद, क्षत्रधर्मा, युधामन्यु, नकुल और सहदेव द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगे। द्रोणाचार्य ने अद्वितीय वाण-वर्षा से पाण्डव वीरो को आगे वढने से रोक दिया। दूसरे वीरो को द्रोणाचार्य का सामना करने में असमर्थ मानकर वह दु सह एवं महान भार सुभद्राकुमार अभिमन्यु ने अपने ऊपर ले लिया। उसने सारथी को अपना रथ द्रोणाचार्य के रथ के सामने रखने का आदेश दिया। अव उन दोनो शूरवीरो मे भयकर सघर्ष होने लगा। कुछ ही समय मे अर्जुनकुमार अभिमन्यु व्यूह-भेदन कर उसके भीतर घुस गया और शत्रु-समूह का विनाश करने लगा। यह देख अनेक योद्धाओं ने अर्जुनकुमार को घेर लिया

और सव उस पर एक साथ टूट पडे। जैसे महान तेजस्वी त्रिनेत्रधारी भगवान रुद्र असुरो की सेना को मथ डालते है, वैसे ही अभिमन्यु ने कौरवो की विशाल सेना को रौद डाला। अव दुर्योधन स्वय ही उससे युद्ध करने लगा। दुर्योधन की सहायता करने के लिए कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि, शल्य और भूरिश्रवा अभिमन्यु से युद्ध करने लगे। इतने मे अभिमन्यु ने अश्मक के पुत्र और शल्य के भाई को मार गिराया।

वीर अभिमन्यु का पराक्रम देख द्रोणाचार्य के नेत्र हर्ष से खिल उठे। उन्होने कृपाचार्य से कहा—'मित्र ! पाण्डव-कुल के प्रसिद्ध तरुण वीर सुभद्राकुमार अभिमन्यु के समान मैं किसी धनुर्धर को इस युद्ध भूमि मे नही मानता। इसमें अकेले ही कौरव सेना का सहार करने की शक्ति है।'

अभिमन्यु के सम्बन्ध मे द्रोणाचार्य का यह प्रीतियुक्त वचन सुन दुर्योधन क्रोध मे भर गया और कर्ण, दु शासन शल्य और अन्य महारथियो से वोला—'मैं इस दुर्वुद्धि वालक को अभी मार डालता हूँ। इसकी मृत्यु सुन अत्यन्त अभिमानी श्रीकृष्ण और अर्जुन इस जीवलोक से प्रेतलोक को चले जायेगे। उन दोनो को मरा हुआ सुन अन्य चार पाण्डव कायरतावश अपने सुदृढ वर्ग के साथ एक ही दिन मे प्राण त्याग देगे और अपने सारे शत्रु स्वत नष्ट हो जायेगे।' दुर्योधन के ऐसे वचन सुन दु:शासन वीर अभिमन्यु से युद्ध करने लगा।

अभिमन्यु ने उससे कहा—'अधम ! वडे सौभाग्य की वात है कि आज मैं युद्ध मे अभिमानी, निष्ठुर, धर्मत्यागी और दूसरो की निन्दा मे तत्पर रहने वाले शत्रु को प्रत्यक्ष सामने देखता हूँ। ओ मूर्ख ! तूने द्यूत क्रीड़ा मे विजयी हो पाण्डवो और माता द्रौपदी को जो अप्रिय वचन कहे थे, उनका फल मै आज तुम्हे चखा दूंगा। दूसरो के धन का अपहरण, क्रोध, लोभ, द्रोह और निंदनीय व्यवहार के फलस्वरूप तुम्हे आज वुरा दिन प्राप्त होगा। आज मैं माता कृष्णा और भीमसेन का अभीष्ट मनोरथ

पूर्ण करूँगा।' ऐसा कह अभिमन्यु ने एक तीक्ष्ण बाण का दु शासन पर सधान किया जो काल, अग्नि और वायु के समान था। वह बाण उसके वक्षस्थल को विदीर्ण कर गले की हँसली मे घुस गया। वीर अभिमन्यु के बाणो से पीडित एव अचेत दु शासन को उसका सारथी युद्ध-स्थल से शीघ्रतापूर्वक बाहर ले गया। अब कर्ण अत्यन्त क्रोध में भर वीर अभिमन्यु पर बाणो की वर्षा करने लगा। अभिमन्यु ने अपने बाणो से कर्ण को भी घायल कर दिया एव उसकी ध्वजा और धनुष को काट गिराया। यह देख राधा का छोटा पुत्र कर्ण की सहायता के लिये आया, किन्तु वह अभिमन्यु के द्वारा मारा गया। यद्यपि अत्यन्त सुख मे पला हुआ, युद्धविद्या में कुशल और अपने शरीर को निछावर करने वाला वीर अभिमन्यु अनेक महारथियो से अकेला ही युद्ध कर रहा था, परन्तु उसने सब वीरो को एक-एक करके परास्त कर दिया। जब पाण्डव-योद्धाओ ने अभिमन्यु की सहायता के लिये व्यूह पर आक्रमण किया, तब जयद्रथ ने अपने दिव्य बाणो का प्रयोग कर उन्हे रोक दिया।

सजय ने कहा—'महाराज! द्रौपदी हरण के समय जयद्रथ को भीमसेन से पराजित होना पडा था। उसी अपमान का बदला लेने के लिये उसने भगवान शकर की बडी तपस्या की। भगवान शकर ने उस पर प्रसन्न होकर उसे स्वप्न मे दर्शन दिया?'

जयद्रथ ने उन्हे प्रणाम कर कहा—'भगवन्! मैं अकेला ही युद्ध मे पाण्डवो को परास्त करना चाहता हूँ।'

भगवान शकर बोले—'सौम्य! तुम अर्जुन को छोडकर एक दिन अन्य पाण्डवो को युद्ध मे आगे बढने से रोक सकोगे।' उसी वरदान के प्रभाव से जयद्रथ ने उस दिन चारो पाण्डवों को चक्रव्यूह में प्रवेश करने से रोक दिया। यद्यपि पाण्डव और उनके सहायक योद्धा बार-बार व्यूह मे प्रवेश करने का प्रयत्न

करते थे, किन्तु वे सब असफल रहे। व्यूह मे अभिमन्यु ने वसातीय और रुधारथ के प्राण हर लिये। मृत्यु-काल उपस्थित होने पर जैसे यमराज प्राणियो के प्राण हर लेते है, उसी प्रकार वीर अभिमन्यु भी शत्रु योद्धाओ की आयु अपहरण कर रहा था। जैसे उन्मत्त व्याघ्र हरिण को दबोच लेता है, उसी प्रकार अभिमन्यु ने सत्यश्रवा को यमपुर पहुँचा दिया। जो शूरवीर उस समय अभिमन्यु के पास गये, वे फिर जीवित नही लौटे। जैसे छोटी नौका बडे ग्राह के द्वारा पकडे जाने पर डगमगाने लगती है, वैसे ही कौरव-सेना अभिमन्यु के भय से अस्थिर हो रही थी। अभिमन्यु के अस्त्रो की मार से कौरव महारथियो के सारे अग पसीने-पसीने हो रहे थे और उनका युद्ध करने का उत्साह क्षीण होता जा रहा था। उस समय दुर्योधन का एकमात्र पुत्र लक्ष्मण बाल-स्वभाव तथा अभिमान के कारण निर्भय हो अभिमन्यु के सामने आया। अभिमन्यु ने उसका सिर धड से अलग कर दिया। फिर उसने क्राथ-पुत्र को मार गिराया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, वृहद्वल, बृन्दारक (दुर्योधन का छोटा भाई) और कृतवर्मा ने अभिमन्यु को चारों ओर से घेर लिया। अभिमन्यु ने वृदारक को धराशायी कर दिया और दूसरे योद्धाओ से अकेले ही युद्ध करने लगा। कौशल नरेश बृहद्वल ने अभिमन्यु के सारथी और घोडो को घायल कर दिया और उसे भी अपने तीखे बाणो द्वारा गहरी चोट पहुँचायी। किन्तु वीर अभिमन्यु ने कर्ण के छह मत्रियो और मगधराज के पुत्र अश्वकेतु को मार डाला। तत्पश्चात् अभिमन्यु ने शत्रुजय, चद्रकेतु, मेघवेग, सुवर्चा और सूर्यभास इन पाँच वीरो को यमलोक भेज दिया। तब कर्ण ने वीर अभिमन्यु का धनुष काट डाला और कृपाचार्य ने उसका रथ तोड दिया। अब छह निर्दयी महारथी रथहीन बालक पर एकसाथ बाणो की बौछार करने लगे। धनुष कट जाने पर वीर बालक ढाल और तलवार लेकर रथ से कूद पडा, किन्तु कर्ण ने उसके ढाल और तलवार के भी

अपने बाणों द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर उसने गदा द्वारा सुबल पुत्र कालिकेय को मार गिराया। तदनन्तर दुःशासन-पुत्र ने अपनी गदा द्वारा छह वीरो के अस्त्रो से आहत एकाकी अभिमन्यु को मार डाला। उस समय अन्तरिक्ष के प्राणी आकाश मे गिरे हुए चन्द्रमा के समान वीर अभिमन्यु को रण-भूमि में पड़ा देख कौरव और उनके महारथियो की निन्दा करने लगे। वे धिक्कार रहे थे कि द्रोण और कर्ण आदि छह महारथियों द्वारा असहाय अवस्था मे यह बालक अधर्मपूर्वक मारा गया है। इतने मे सूर्यास्त हो गया और दोनो पक्ष की सेना अपने-अपने शिविर मे लौट गयी।

महापराक्रमी यूथपति सुभद्राकुमार अभिमन्यु के मारे जाने पर पाण्डव रथ, कवच और अस्त्र-शस्त्र को त्याग महाराजा युधिष्ठिर के निकट बैठ गये, जो अभिमन्यु के लिये अत्यन्त विलाप कर रहे थे। उन्होने पाण्डवों और मित्रो से कहा—'मैंने ही अपने प्रिय कार्य की इच्छा और विजय की अभिलाषा से लोभ और मोह के वशीभूत हो वीर सुभद्राकुमार को चक्रव्यूह तोड़ने की आज्ञा दी थी। वह तरुण बालक बुद्धिमान, लज्जा-शील, क्षमावान, सत्यपराक्रमी था, इसीलिये उसके कार्यों की सर्व दिशाओ मे प्रशसा थी। नीच दुर्योधन ने अधर्मपूर्वक उस नि.शस्त्र वीर बालक का अपने छह महान योद्धाओ द्वारा वध कराया है, जिसका पाप कौरवो और उनके सहायको को दग्ध कर देगा।'

इतने मे भगवान व्यास वहाँ आ पहुँचे। बोले—'राजन्! तुम्हें शूरवीर अभिमन्यु के लिये शोक नही करना चाहिये। विधाता के विधान का कोई उल्लघन नही कर सकता। मृत्यु तो निमित्त से ही होती है। अभिमन्यु को जो उत्तम गति प्राप्त हुई है, वह दूसरो को सम्भव नही है। इस विषय मे मै तुम्हे एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ :

राजन् !

'राजा शैव्य के सजय नामक एक प्रसिद्ध पुत्र था। पर्वत और नारद उसके दो ऋषि मित्र थे। राजा सजय के कोई सन्तान नही थी। पुत्र-प्राप्ति के लिये उसने श्रेष्ठ ब्राह्मणो द्वारा यजन करवाया। उसके फलस्वरूप उसे एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ किन्तु वह डाकुओ द्वारा मारा गया। यह देख राजा सजय दुःख से पीडित हो विलाप करने लगा।'

नारद ने कहा—'बुद्धिमान नरेश! शोक को त्यागो। शोक करने से मृत मनुष्य जीवित नही हो सकता। भोगो से अतृप्त रहकर तुम भी एक दिन मर जाओगे। धर्म, ज्ञान और वैराग्य का आश्रय लो। राजा मरुत्त, राजा सुहोत्र, राजा पौरव, राजा दिलीप, राजा मान्धाता, राजा शिवि और राजा भगीरथ सब परम दानी, सत्यवादी और महात्मा थे। जब वे भी मर गये, तब दूसरो की तो बात ही क्या? मृत्यु सम्पूर्ण प्राणियो को समभाव से प्राप्त होती है।'

भगवान व्यास बोले—'शूरवीर अभिमन्यु तो कृतार्थ हो चुका है। पुण्यात्मा पुरुष ब्रह्मचर्य-पालन, उत्तम ज्ञान, वेद-शास्त्रों का स्वाध्याय, ध्यान, निष्काम भाव तथा यज्ञों के अनुष्ठान से जहाँ जाते है, वही तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु भी गया है। अत. उसके लिये तुम शोक न करो।' भगवान व्यास का उपदेश सुन युधिष्ठिर को सात्वना मिली। जब भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन अत्यन्त दुष्कर कर्म करके लौटे, तब उन्हे पाण्डव-शिविर श्रीहीन दिखायी दिया।

वीर अर्जुन के पूछने पर युधिष्ठिर बोले—'महाबाहो! जब तुम सशप्तक सेना के साथ युद्ध के लिये चले गये, तब आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की। हमारी आज्ञा पाकर अनुपम पराक्रमी अभिमन्यु ने उस व्यूह में प्रवेश किया। हम भी अभिमन्यु के बनाये हुए मार्ग द्वारा उसके पीछे-पीछे उस व्यूह में घुसना चाहते थे, किन्तु नीच जयद्रथ ने भगवान शकर के वरदान से हम सब

लोगों को व्यूह मे प्रवेश करने से रोक दिया। तदनन्तर द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा ने सुभद्राकुमार को चारों ओर से घेर लिया। यद्यपि वीर अभिमन्यु पूरी शक्ति लगाकर उनसे युद्ध करता रहा, तथापि शत्रु सख्या मे अधिक थे, इसलिये शस्त्रों से आहत, रथहीन और नि:शस्त्र बालक को दु शासन-पुत्र ने गदा के प्रहार द्वारा मार डाला।'

धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर शोक-व्यथा से पीडित वीर अर्जुन पृथ्वी पर अचेत होकर गिर पडे। जब वीर अर्जुन की मूर्च्छा टूटी, उन्होंने कहा—'महाराज! मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल जयद्रथ को अवश्य ही मार डालूंगा। यदि सग्राम-भूमि मे ऐसा न कर सका तो मैं प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर जाऊंगा।' वीर अर्जुन, सुभद्रा और उत्तरा को शोक-सागर में डूबा देख भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हे सान्त्वना दी।

सजय ने कहा—'राजन्! सिधुराज जयद्रथ को जब अर्जुन की इस प्रतिज्ञा का पता चला, तब वह डर के मारे दु ख और शोक से युक्त हो, द्रोणाचार्य, दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण, शल्य तथा दु शासन के पास गया।'

भय से व्याकुल और विलाप करते हुए जयद्रथ से राजा दुर्योधन बोले—'पुरुषसिह! तुम्हें अर्जुन से भयभीत नही होना चाहिये। तुम्हारी रक्षा के लिये हमारे पक्ष के सभी महारथी तत्पर रहेगे।'

द्रोणाचार्य ने भी उसकी रक्षा करने का आश्वासन दिया।

जब वीर अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की, तब भगवान श्रीकृष्ण ने कुन्तीपुत्र अर्जुन से कहा—'धनजय! तुमने अपने भाइयो का और मेरा मत जाने बिना ही यह दु:साहस पूर्ण प्रतिज्ञा क्यो कर ली? यदि यह पूर्ण नही हुई तो सम्पूर्ण लोकों मे हम सब उपहास के पात्र बनेगे।'

पाण्डुपुत्र अर्जुन बोले—'भगवन्! जहाँ आप हैं, वहाँ विजय अवश्य होगी। इस युद्धस्थल में कौरवो के पास कौन-सी ऐसी

शक्ति है, जो आपकी कृपा से मेरे लिये अजित हो ?'

श्रीकृष्ण ने कहा—'धनजय ! जो कार्य करना है, 'उसे प्रयत्नपूर्वक करो। उद्योगहीन पुरुष का शोक उसके लिये शत्रु के समान है। पार्थ ! पाशुपत नामक एक परम उत्तम अस्त्र है, जिसका प्रयोग कर युद्ध मे भगवान महेश्वर ने दैत्यो का सहार किया था। यदि वह अस्त्र आज तुम्हे विदित हो, तो तुम अवश्य ही कल जयद्रथ को मार सकते हो। यदि तुम्हे इसका ज्ञान नही है, तो भगवान शिव की शीघ्र आराधना करो। उनके दया-प्रसाद से तुम उस महान अस्त्र को प्राप्त कर लोगे।'

भगवान श्रीकृष्ण का यह वचन सुनकर वीर अर्जुन महादेवजी का चिन्तन करने लगे। महाबाहु अर्जुन को तपस्या के प्रभाव से भगवान वृषभध्वज का दर्शन हुआ। अर्जुन ने ब्रह्मस्वरूप शिव को प्रणाम कर इस प्रकार स्तुति की—'हे देवाधिदेव ! आप जगत के आदि कारण, लोकस्रष्टा, अजन्मा, ईश्वर, अविनाशी, मन की उत्पत्ति के प्रधान कारण, पचभूतो के आश्रय, ब्रह्मवेत्ताओ की प्रत्यक्ष निधि, चराचर विश्व की सृष्टि और सहार करने वाले परमात्मा है। सूक्ष्म अध्यात्म पद की अभिलाषा रखने वाले विद्वान जिनकी शरण लेते है, उन्ही कारण स्वरूप अजन्मा भगवान की मैं शरण लेता हूँ। भव, शर्व, रुद्र, पशुपति नामो से प्रसिद्ध आप शिव को मेरा प्रणाम है। आप तीन नेत्र धारण करने वाले, शान्ति-स्वरूप और अधकार का विनाश करने वाले को मेरा प्रणाम है। प्रभो ! मैं आपसे दिव्य-अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ।' तब भगवान शिव ने प्रसन्न हो अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान किया।

रात्रि के समाप्त होने पर राजा युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण से बोले—'प्रभो ! जैसे देवता इंद्र का आश्रय लेते है, उसी प्रकार हम लोग आपका सहारा लेकर युद्ध मे विजय पाना चाहते है। हम सबका जीवन आपके ही अधीन है, अतः जिस प्रकार अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ण हो, उसी प्रकार के कार्य का आदेश हमे दे।

जैसे आप यादवों के संरक्षक है, वैसे ही इस सकट से आप हमारा उद्धार कीजिये ।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन् ! वीर अर्जुन महापराक्रमी, अस्त्रज्ञान-सम्पन्न और तेजस्वी है, अतः यह आपके शत्रुओं को अवश्य मार डालेगा। आज विजयशील अर्जुन जयद्रथ को मारकर ही आपके पास आयेगा। तदनन्तर वीर अर्जुन ने महाराजा युधिष्ठिर को प्रणाम किया और उन्होने भी उसका आलिगन कर उसे उत्तम आशीर्वाद दिये ।

सूर्योदय के पश्चात गुरु द्रोणाचार्य ने कौरव-सेना का चक्र-गर्भ शकट व्यूह वनाकर जयद्रथ से कहा—'तुम, कृतवर्मा, जलसध, दुर्योधन, भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन तथा कृपाचार्य यहाँ से दूर व्यूह में डटे रहो। मै व्यूह के अग्र-भाग मे रहूँगा।'

## जयद्रथ-वध

पाण्डुपुत्र अर्जुन ने युद्ध-स्थल मे जाकर जहाँ दुर्योधन का छोटा भाई दुर्भर्षण खडा था, वहाँ व्यूह का छेदन कर डाला। यह देख दु शासन उनसे युद्ध करने लगा, पर वीर अर्जुन ने अपने तेज वाणो द्वारा उसे व्यथित और परास्त कर दिया, अतः वह रणभूमि से भाग गया।

तदनन्तर वीर अर्जुन आचार्य को दूर से प्रणाम कर सामने गया और वोला—'गुरुश्रेष्ठ ! आप मेरे कल्याण के लिए मुझे आशीर्वाद दीजिये। मैं आपकी कृपा से ही इस दुर्भेद्य व्यूह मे प्रवेश करना चाहता हूँ। आप मेरे लिए पिता पाण्डु, भ्राता युधिष्ठिर, सखा श्रीकृष्ण के समान है। जैसे अश्वत्थामा आपके लिये रक्षणीय है, उसी प्रकार मैं भी सदैव आपसे सरक्षण पाने का अधिकारी हूँ। मैं आपकी कृपा-प्रसाद से जयद्रथ को मारना चाहता हूँ, अत. आप मेरी इस प्रतिज्ञा की रक्षा कीजिये।'

महाबाहु अर्जुन के ऐसा कहने पर द्रोणाचार्य ने हँसते-हँसते कहा—'वीर अर्जुन ! मुझे पराजित किये विना जयद्रथ को जीतना असभव है ।' फिर दोनो वीरो मे युद्ध होने लगा । उस युद्ध मे अधिक समय बीतता देख भगवान श्रीकृष्ण ने दोणाचार्य के सामने से अपने रथ को दूसरी ओर आगे वढाया । यह देख कौरव वीर जय, कृतवर्मा, काम्वोज नरेश तथा श्रुतायु ने उनसे युद्ध करना आरम्भ कर दिया । श्रुतायु को एक अजेय गदा वरुण देवता ने उसकी आराधना से प्रसन्न हो प्रदान की थी और उससे कहा था कि इसका प्रयोग, जो युद्ध नही करता हो उस पर न करना, नही तो यह तुम्हारा ही नाश कर डालेगी । इस आज्ञा का उल्लघन कर उसने उस गदा के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण पर प्रहार किया, अत स्वय ही उसके द्वारा मारा गया । तत्पश्चात सुदक्षिण वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा, पर वह भी उनके हाथो से मारा गया । यह देख अच्युतायु, नियुतायु, दीर्घायु और अम्बष्ठ, पाण्डु पुत्र अर्जुन के साथ युद्ध करने लगे, किन्तु उन्हे भी वीर अर्जुन ने यमलोक भेज दिया । जब युद्ध मे द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को अत्यन्त दु खित देखा तब उन्होने उसे मत्रों द्वारा विभूषित एक कवच पहिनाकर अर्जुन से युद्ध के लिए भेजा । यह देख धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर धावा वोल दिया । जैसे ग्रीष्म ऋतु के अत मे भयकर वायु महासागर मे क्षोभ उत्पन्न कर देती है उसी प्रकार दोनो वीरों मे युद्ध होने लगा । जैसे वर्षाकालीन नदी प्रखर प्रवाह से किसी महान सेतु को तोड डालना चाहती हो परन्तु उस असीम जलराशि को पर्वत रोक देता है, वैसे ही द्रोणाचार्य ने पाण्डवो के आक्रमण को रोक दिया । द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न से पीडित हुए पाण्डव-कौरव योद्धा प्राणो का मोह छोड पूरी शक्ति लगा कर युद्ध कर रहे थे । विविशति, चित्रसेन, विकर्ण, विन्द, अनुविन्द और क्षेमधूर्ति भीमसेन से युद्ध करने लगे । वाह्लीकराज द्रौपदी के पुत्रो से सग्राम कर रहे थे । काशीराज ने अभिभू के

पराक्रमी पुत्रो का सामना किया। राजा युधिष्ठिर से राजा शल्य भिड़ गए और दु.शासन ने सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। माद्रीपुत्र नकुल ने शकुनि का सामना किया। कृतवर्मा घटोत्कच से युद्ध करने लगे और जलम्बुष कुन्तीभोज से। इस प्रकार वह भयकर जन-सहार आरम्भ हो गया।

धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को मारने के लिये अपनी तलवार से हमला किया, किन्तु उन्होने अपने पैने बाणों से उसकी तलवार और ढाल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वीर सात्यकि उसी स्थल पर आ पहुँचा और उसने उसे द्रोणाचार्य के हाथ से बचा लिया। जब द्रोणाचार्य का पाण्डवो के योद्धाओं से युद्ध हो रहा था तब सूर्य भगवान अस्ताचल के शिखर की ओर ढल चुके थे। जब विजयाकांक्षी योद्धा युद्ध मे अनुरक्त थे तब वीर अर्जुन और श्रीकृष्ण जयद्रथ को प्राप्त करने को आगे बढ़ते जा रहे थे। व्यूह के मध्य भाग में पहुँच कर भूख-प्यास से पीड़ित उनके उत्तम घोड़े परिश्रम से थक गये, अत. मंदगति से चलने लगे। इसी समय अवन्ती के वीर राजकुमार विद और अनुविद दुर्धर्ष अर्जुन से युद्ध करने लगे, किन्तु वीर अर्जुन के द्वारा दोनो भाई मारे गये। रथ के उत्तम अश्वो की थकावट मिटाने के लिए कुन्तीपुत्र अर्जुन रथ से उतर पड़े और गाण्डीव धनुष हाथ मे लेकर पर्वत के समान अविचल भाव से खडे हो गये। भगवान श्रीकृष्ण के आदेश से वीर अर्जुन ने पृथ्वी पर आघात करके जल से भरा हुआ सरोवर उत्पन्न कर दिया और घोड़ो की रक्षा करने लगे। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण ने घोडो को रथ से खोला, पानी पिलाया और उनकी चिकित्सा की, जिससे वे कष्टमुक्त हो गये। भगवान श्रीकृष्ण ने अश्वों को पुनः रथ मे जोड दिया और वीर अर्जुन सहित वे रथ पर आरूढ हो गये। तदनन्तर वीर अर्जुन जयद्रथ की खोज मे बडे वेग से आगे बढे, परन्तु सूर्यदेव अस्ताचल की ओर ढलने लगे। उसी समय दुर्योधन की सेना ने उन्हें घेर लिया। कौरवो की सेना को लाघ कर

भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन राहु के मुख से छूटे हुए सूर्य और चन्द्रमा के समान दिखाई दिये। जब उन्होने जयद्रथ को देखा, तब वे हर्ष से उल्लसित हो उठे। वे उस पर सहसा कुपित हो उसी प्रकार टूट पडे जैसे दो बाज माँस पर झपट रहे हो। द्रोणाचार्य से मन्त्रित कवच को धारण कर दुर्योधन जयद्रथ को बचाने हेतु शीघ्रता से वहाँ आया और वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'पार्थ ! दुर्योधन ही पाण्डवों के सारे अनर्थों की जड है। आज यह तुम्हारे बाणो की मार मे आ पहुँचा है। तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे इसका विनाश हो जाए। भगवान श्रीकृष्ण का आदेश पाकर वीर अर्जुन ने दुर्योधन पर अपने बाणो से प्रहार किया, किन्तु उसके बाण दुर्योधन के कवच मे लगकर फिसल गये। कुतीनन्दन अर्जुन को विदित हो गया कि दुर्योधन आचार्य द्रोण द्वारा मन्त्रित कवच पहिने हुए है, इसलिये उसने उसके सारथी, घोड़ो और रक्षकों को मार गिराया। फिर उसने दुर्योधन का धनुप काट दिया और उसकी हथेली को बाणो से छेद डाला। दुर्योधन वेदना से व्याकुल हो युद्ध-भूमि से भाग गया। जयद्रथ की रक्षा में नियुक्त भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, मद्रराज शल्य, महारथी अर्जुन की गति को रोकने के लिये उनसे युद्ध करने लगे। दूसरी ओर पाण्डवो और कौरवो मे महायुद्ध हो रहा था। द्रोणाचार्य ने राजा युधिष्ठिर को रथहीन कर दिया, इसलिये वे सहदेव के रथ पर चढकर युद्ध-स्थल से भाग गये। कैकयराज ने कौरव-पक्ष के योद्धा क्षेमधूर्ति को मार गिराया। धृष्टकेतु ने वीरधन्वा को यमलोक भेज दिया। सहदेव ने त्रिगर्त राजा के पुत्र निरमित्र को धराशायी कर दिया। सात्यकि ने मगध-नरेश के राजकुमार व्याघ्रदत्त का सिर धड से अलग कर दिया। सहदेवकुमार ने सोमदत्तकुमार शल का वध कर डाला। हिडिम्ब कुमार वीर घटोत्कच ने अद्भुत पराक्रम दिखाकर अलम्बुष को रथ से

पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। द्रोणाचार्य ने जब कौरव-सेना को सात्यकि के द्वारा पीड़ित देखा, तब उन्होंने उस पर आक्रमण कर दिया। शूरवीर द्रोणाचार्य चुन-चुनकर पाण्डवो के योद्धाओं को मार रहे थे। सहसा राजा युधिष्ठिर ने कौरव-सेना का हर्षनाद और शंखराज पाचजन्य की ध्वनि सुनी। इससे कुन्तीकुमार युधिष्ठिर का हृदय व्याकुल हो उठा।

वे सात्यकि से बोले—'शैनेय! साधु-पुरुषों ने विपत्ति के समय में सुहृद के कर्तव्यों के विषय में जिस धर्म का वर्णन किया है, आज उसीके पालन का अवसर उपस्थित हुआ है। इस दृष्टि से विचार करने पर मैं समस्त योद्धाओ में किसीको तुमसे बढकर सुहृत नही समझता हूँ। तुम नित्य निरंतर पाण्डवों के प्रति अनुराग रखते हो, इसलिये महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन करने में उपयुक्त हो। नरश्रेष्ठ! वीर अर्जुन तुम्हारा भाई, मित्र एव गुरु हैं। वह युद्ध-भूमि में संकट मे पड़ा हुआ है। तुम सत्यव्रती, शूरवीर तथा मित्रों को अभय देने वाले हो, इसलिये वीर अर्जुन की रक्षा करो।'

धर्मराज का यह प्रेमपूर्ण, मधुर वाणी से युक्त, सामयिक तथा न्यायसगत वचन सुन सात्यकि ने कहा—'आपकी आज्ञा पाकर मैं देवताओ से भी युद्ध कर सकता हूँ। मै सकुशल वीर अर्जुन की रक्षा करूँगा और जयद्रथ के मारे जाने पर उनके साथ ही आपके पास लौट आऊँगा। परन्तु नरेश्वर! भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन ने मुझे आपकी रक्षा का भार दिया है। यदि द्रोणाचार्य ने आपको बदी बना लिया तो जयद्रथ का वध न हो सकेगा। महामते! मै अपने आचार्य के आदेश का न तो उल्लघन कर सकता हूँ, न आपकी आज्ञा को ही त्याग सकता हूँ। आपके मन में वीर अर्जुन के लिये भय नही होना चाहिये, क्योकि इस पृथ्वी पर उनका सामना करने वाला वीर है ही नहीं।'

राजा युधिष्ठिर बोले—'महाबाहो ! भीमसेन मेरी रक्षा कर लेंगे। तुम मेरी आज्ञा से वीर अर्जुन के पास जाओ।'

सात्यकि ने कहा—'राजन् ! आपका कल्याण हो।' तत्पश्चात सात्यकि राजा युधिष्ठिर की आज्ञा शिरोधार्य कर वीर अर्जुन के पास चला गया। सात्यकि को व्यूह मे प्रवेश करते देख कौरव-योद्धाओ ने उस पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि ने भी अपने तीक्ष्ण बाणो से अनेक योद्धाओ को यमलोक पहुँचा दिया और व्यूह के भीतर घुस गया। जब भीमसेन आदि योद्धाओ ने कौरव सेना पर आक्रमण किया, तब द्रोणाचार्य और कृतवर्मा ने उनके प्रयास को विफल कर दिया। उस महासमर मे कौरव योद्धाओ का सिंहनाद सुन वीर सात्यकि ने कृतवर्मा को रथहीन कर तुरन्त आगे बढ गया। यह देख जलसंध उनसे युद्ध करने लगा, किन्तु सात्यकि ने उसके विशाल मस्तक को काट गिराया। जलसंध की मृत्यु के पश्चात कृतवर्मा, दुर्योधन, चित्रसेन, दु शासन, दुर्भर्षण, दु सह और विकर्ण सात्यकि से युद्ध करने लगे। उन वीरो को पराजित कर सात्यकि वीर अर्जुन की सहायता करने आगे बढा। सात्यकि के द्वारा कौरवो की यह पराजय द्रोणाचार्य से सहन नही हुई। वे रोष में भरकर सात्यकि से युद्ध करने लगे। तत्पश्चात सात्यकि ने द्रोणाचार्य के सारथी और घोडो को मार गिराया। द्रोणाचार्य सात्यकि को रोकने का प्रयत्न छोड पुन व्यूह के द्वार पर खडे हो गये और सात्यकि व्यूह मे आगे बढा। नृपश्रेष्ठ सुदर्शन ने सात्यकि को व्यूह मे शीघ्रता से जाते देख उस पर आक्रमण कर दिया। तदनन्तर शनिवश के प्रमुख वीर सात्यकि ने सुदर्शन के मस्तक को अपने तीक्ष्ण बाणो से काट डाला और आगे बढ गया।

सात्यकि के बाणो से पीडित हो दु शासन जब द्रोणाचार्य के निकट गया, तब द्रोणाचार्य ने उसे क्रोधपूर्वक डाँटते हुए कहा—'दु शासन ! ये सारे रथी यहाँ क्यो भागे आ रहे है ?

राजा दुर्योधन कुशल तो है न ? क्या जयद्रथ अभी तक जीवित है ? तुम तो राजा के बेटे, राजा के भाई, महारथी वीर हो और युवराज के पद पर हो, फिर युद्ध-स्थल से क्यों भाग रहे हो ? दु.शासन ! तुमने द्रौपदी से कहा था—तू जुए में जीती हुई दासी के समान है, अत. हमारी इच्छा के अनुसार आचरण कर और दूसरा पति कर ले। अब तुम्हारे पाँचो पति छोटे तिलो के समान भी नही हैं। पहले ऐसी बाते कहकर तुमने पाण्डवो से स्वय ही भारी वैर ठाना है, अब उसका परिणाम देखो। युद्ध-स्थल मे अकेला सात्यकि तुम्हारे पक्ष के अनेक योद्धाओ से युद्ध कर रहा था, फिर तुम क्यों प्राण बचाने के लिये भयभीत हुए ? क्या तुम जुए मे पासे उठाते समय नही जानते थे कि ये एक दिन भयकर विषधर सर्प के समान विनाशकारी बन जायेगे ? पूर्वकाल मे पाण्डवो और द्रौपदी को जो कष्ट पहुँचाया था, उसकी जड तुम ही हो ? कहाँ गया तुम्हारा वह दर्प और अभिमान ? कहाँ है तुम्हारा पराक्रम ? जब तुम्हें वीर अर्जुन और भीमसेन से युद्ध करना पडेगा, तब तुम कहाँ भागोगे ? वीर ! अब तुम शीघ्र अपनी माता गान्धारी की गोद मे छिप जाओ, अन्यथा मुझे तुम्हारे जीवन की रक्षा दिखायी नही देती। ओ मूर्ख ! क्या तुम भीमसेन के पराक्रम को नही जानते ? क्या वह तुम्हारा रण मे वध किये बिना शान्त होगा ?'

द्रोणाचार्य के ऐसा कहने पर दु.शासन वहाँ से चला गया और द्रोणाचार्य ने पाण्डव-सेना पर पुन आक्रमण कर दिया। अब वे सोमको, सृ जयो तथा केकयो का पुन. सहार करने लगे। केकय महारथी बृहत्क्षेत्र आचार्य द्रोण से भिड गये, किन्तु कुछ ही समय मे वे उनके द्वारा मारे गये। यह देख अत्यन्त बल-सम्पन्न चेदिराज धृष्टकेतु द्रोणाचार्य का वध करने के लिये उसी प्रकार दौड़ा, जैसे पतगा आग पर टूट पडता है। पर द्रोणाचार्य ने कुछ ही समय मे धृष्टकेतु को धराशायी कर

दिया। धृष्टकेतु के मारे जाने पर उसका पुत्र अमर्ष आचार्य से युद्ध करने लगा, किन्तु उन्होने उसे भी यमलोक पहुँचा दिया। उन पाण्डव योद्धाओ के इस प्रकार नष्ट होने पर जरासध के वीर पुत्र सहदेव ने आचार्य पर धावा किया, किन्तु उन्होने उसे भी काल के गाल मे डाल दिया। अव धृष्टद्युम्न कुमार क्षेत्रधर्मा आचार्य से युद्ध करने लगा, किन्तु वह भी वीर-गति को प्राप्त हो गया। जैसे काल आने पर यमराज प्राणियो को ग्रस लेता है, उसी प्रकार द्रोणाचार्य ने जो-जो वीर उनके सामने आये, उन्हे मौत के घाट उतार दिया।

तदनन्तर युधिष्ठिर सव्यसाची अर्जुन और सात्यकि को देखने के लिये व्यथित हो उठे। उन्होने भीमसेन से कहा—'महावाहो भीम! तुम्हारा कल्याण हो। मैं वीर अर्जुन और सात्यकि के लिये चिन्ताग्नि मे जल रहा हूँ। परतप! महावाहु अर्जुन और सात्यकि के जीवन के विषय मे जो मेरे मन मे सशय हो रहा है, वह दूर करो। धर्मज्ञ! सात्यकि ने मेरा प्रिय करने की इच्छा से अर्जुन के उस दुर्गम एव भयकर मार्ग का अनुसरण किया है, जो शूरवीर पुरुषो के लिये भी अगम्य है। तुम भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन और सात्वतवशी सात्यकि को सकुशल देखकर उच्च स्वर से सिंहनाद करना, जिससे मुझे उनकी सूचना मिल सके।'

भीमसेन ने कहा—'महाराज! भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन के लिये आपको चिन्ता नही करनी चाहिये। मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके पास जा रहा हूँ।'

भीमसेन राजा युधिष्ठिर को धृष्टद्युम्न के सरक्षण मे सौप और वडे भाई को प्रणाम कर जिस मार्ग पर अर्जुन गये थे, उसी दिशा मे चल दिये। धर्मराज युधिष्ठिर ने उन्हे अनेक आशीर्वाद दिये। जव भीमसेन कौरव सेना मे प्रविष्ट हुए, उस समय पाचजन्य शख की भयकर ध्वनि उन्होने सुनी। उस ध्वनि से आनन्दित हो उन्होने शत्रुओ पर धावा बोल दिया। इस पर

कौरवों ने भीमसेन का सामना किया। राजन् ! आपके पुत्रों कुण्डभेदी, सुषेण और दीर्घलोचन को भीमसेन ने यमलोक भेज दिया तथा अभय, रौद्रकर्मा तथा दुर्विमोचन को भी धराशायी कर दिया। भीमसेन ने हंसते-हँसते विद, अनुविद और सुवैर्मा को मृत्यु के घाट उतार दिया। पाण्डुनण्दन भीमसेन को रोकने की इच्छा से आचार्य ने उन पर वाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। यह देख कौरव योद्धाओं ने भीमसेन को सब ओर से घेर लिया। भीमसेन ने अपनी अत्यन्त भयकर गदा योद्धाओं पर दे मारी। भीमसेन से भयभीत हो कौरव सैनिक इधर-उधर भाग गये। यह देख द्रोणाचार्य ने भीमसेन का सामना किया। तव भीमसेन पैदल ही द्रोणाचार्य की ओर दौडे। उन्होंने द्रोणाचार्य के रथ को हाथ से पकडकर दूर फेंक दिया। द्रोणाचार्य दूसरे रथ पर आरूढ होकर भीमसेन से पुन लडने लगे, किन्तु इस रथ को भी भीमसेन ने दूर फेंक दिया। इस प्रकार द्रोणाचार्य के आठ रथ युद्ध-भूमि में भीमसेन के द्वारा फेंके गये। द्रोणाचार्य को युद्ध-भूमि में छोड भीमसेन सात्यकि के पास पहुँच गये। फिर उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन को देख भीषण सिंह-नाद किया। भीमसेन की गर्जना सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुये। यह देख वलवान कर्ण ने महाबली भीमसेन पर आक्रमण किया। वीर भीमसेन भी कर्ण के ऊपर तीक्ष्ण बाण वरसाने लगे। भीमसेन ने कर्ण के सारथी और घोडों के प्राण हर लिये। कर्ण भीमसेन के भय से वृषसेन के रथ पर जा बैठा। कौरव दु शल, दुर्जय और दुर्मुख कर्ण की सहायता के लिये वहाँ आये, किन्तु भीमसेन के द्वारा शीघ्र ही मारे गये।

जब कौरव-दल के अनेक महारथी पाण्डवों द्वारा मारे गये, तव दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाकर घबराहट के स्वर में बोला—'आचार्य ! अर्जुन, भीम और सात्यकि मेरी विशाल सेना को पराजित कर जयद्रथ के निकट पहुँच गये है। सारे योद्धा यह कह रहे है कि धनुर्वेद के पारगत आचार्य द्रोण इनसे

कैसे पराजित हो गये ? आप अपने कर्तव्य मे च्युत न हो। वास्तव मे मेरा भाग्य ही बुरा है, इसलिये इस युद्ध मे मेरा विनाश अवश्यम्भावी है।'

द्रोणाचार्य ने कहा—'तात! मैं अपने कर्तव्य को अच्छी तरह जानता हूँ। जहाँ वीर अर्जुन और श्रीकृष्ण है, वहाँ मुझे भय की आशका है। वीर सात्यकि और भीमसेन, जयद्रथ को ही लक्ष्य करके वहाँ गये है। इस समय हमे जयद्रथ की रक्षा करनी चाहिये। तुम शीघ्र यहाँ से चले जाओ और जयद्रथ की रक्षा करो।'

धृतराष्ट्र,भीम के द्वारा अपने पुत्रो का वध सुन दु खित हो सजय से बोले—'सजय! पुरुषार्थ तो व्यर्थ है। मैं दैव को ही वडा मानता हूँ। मूर्ख दुर्योधन ने मुझसे कहा था कि कर्ण वलवान, शूरवीर और धनुर्धर है। कर्ण को देवता भी पराजित नही कर सकते। परन्तु रणक्षेत्र मे विषहीन सर्प के समान कर्ण को भीम ने पराजित कर दिया। दुर्योधन ने मेरे अनेक पुत्रो को जो युद्ध की कला से अनभिज्ञ थे और जो पाण्डवो के सामने पतंगो के समान थे, भीम रूपी भीषण अग्नि मे झोक दिया, जबकि अश्वत्थामा, महाराज शल्य, कृपाचार्य और कर्ण सब मिलकर भी भीम के सामने नही ठहर सके। वे भी वायु के तुल्य तेजस्वी भीमसेन के अत्यन्त घोर वल को जानकर उससे भयभीत रहते है। ऐसी दशा मे मेरे कुबुद्धि पुत्रो ने यम, काल और अतक समान भीमसेन से क्यो वैर बाँधा। मनुष्य यमलोक मे जाकर लौट सकता है, परतु भीमसेन के सामने जाकर कदापि जीवित नही लौटता। कुबुद्धि दुर्योधन ने सभा मे वार-वार कहा था कि मैं, कर्ण तथा दु शासन पाण्डवो को युद्ध मे जीत लेंगे। अब उनका गर्व कहाँ गया ? मेरे पुत्रो का जीवन भारी विपत्ति मे पड गया है, ऐसी मेरी मान्यता है।'

सजय ने कहा—'राजन्! यह महान भय जव सिर पर आ गया है, तव आप शोक करने बैठे है। आप ही तो कौरवो के

विनाश के कारण है। कालकूट विष को पीकर अव उसके सारे परिणाम आप ही भोगिये। अव युद्ध के समाचार सुनिये। कर्ण को भीमसेन से पराजित देख दुर्योधन के भाई दुर्मर्षण, दु सह, दुर्मद, दुर्धर और जय भीमसेन से युद्ध करने लगे, किन्तु कुछ ही समय मे वे उनके द्वारा मारे गये। अपने भाइयो को भीमसेन के हाथ मरा देखकर चित्र, विचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन और चित्रवर्मा भीमसेन से घोर युद्ध करने लगे। महापराक्रमी भीमसेन ने शीघ्रतापूर्वक उन सभी को अपने तीक्ष्ण बाणो से धराशायी कर दिया। कौरव-पुत्रो को मरा देख आँसुओ की धारा बहाता हुआ वीर कर्ण फिर भीमसेन से युद्ध करने लगा। तत्पश्चात कर्ण की रक्षा करने के लिये दुर्योधन की आज्ञा पाकर उसके सात भाइयो ने भीमसेन पर धावा बोल दिया। भीमसेन ने तीखे बाणो द्वारा शत्रुजय, शत्रुसह, चित्र-वाण, चित्रायुध, दृढवर्मा, चित्रसेन और विकर्ण को मार गिराया। राधानन्दन कर्ण के देखते-देखते उन सातो भाइयो को मारकर पाण्डुनन्दन महाबाहु भीम ने भयकर सिहनाद किया। भीमसेन के उस महानाद को सुन बुद्धिमान धर्मराज युधिष्ठिर को बडी प्रसन्नता हुई।'

व्यूह-भूमि मे राजा अलम्बुष ने सात्यकि पर हमला कर दिया पर कुछ ही समय मे सात्यकि राजा अलम्बुष को पुत्र और पौत्र सहित मारकर अर्जुन की ओर वढे।

सात्यकि को आते देख भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'पार्थ! देखो, तुम्हारे चरणो का अनुगामी शिनि पुत्र सात्यकि अनेक योद्धाओ को परास्त कर अपनी ओर आ रहा है। प्रतीत होता है, इसने बाणो द्वारा द्रोणाचार्य और कृतवर्मा का भी तिरस्कार किया है और अब धर्मराज युधिष्ठिर को हमारी सूचना देगा।' भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुन वीर अर्जुन हर्षित नही हुए। उनके मन में महाराज युधिष्ठिर की कुशलता के बारे में तरह-तरह के सकल्प-विकल्प होने लगे। सात्यकि

को वीर अर्जुन के निकट जाता देख भूरिश्रवा ने उन पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि अन्य वीरो से युद्ध करते-करते श्रमित हो गया था, इसलिये भूरिश्रवा से परास्त होने लगा। यह देख वीर अर्जुन ने भूरिश्रवा की दाहिनी भुजा अपने तीक्ष्ण वाणों से काट दी।

भूरिश्रवा ने अर्जुन से कहा—'पार्थ! मनस्वी पुरुष, असावधान, डरे हुए, रथहीन, प्राणो की भिक्षा मागने वाले तथा सकट मे पडे हुए मनुष्य पर प्रहार नही करते। श्रेष्ठ पुरुष के लिये नीच कर्म अत्यन्त पापमय होता है। तुम कुरुकुल मे उत्पन्न होकर क्षत्रिय धर्म के ज्ञाता हो। तुममे तो उत्तम शील विद्यमान है, और तुम श्रेष्ठ व्रतो का पालन करते हो। इसलिये तुमने अस्त्र-धर्म को क्यो त्यागा?'

अर्जुन वोले—'राजन्! मै सग्राम के धर्मो को और वेद-शास्त्र के अर्थज्ञान को जानता हूँ, इसलिये अनर्थ नही करता। क्षत्रिय भाई, पिता, पुत्र, सम्वन्धी और मित्रो को साथ लेकर शत्रुओ से युद्ध करते है। वे सव प्रधान योद्धाओ के आश्रित रहते है। सात्यकि मेरा शिष्य और सम्वन्धी है। यह मेरे ही लिये अपने दुस्त्यज प्राणो का मोह छोडकर युद्ध कर रहा है। उसे तुम्हारे द्वारा कष्ट पाते देख मै कैसे उसकी उपेक्षा कर सकता था। रणभूमि मे केवल अपनी रक्षा करना उतना ही उचित और आवश्यक है जितना कि अपने आश्रित की। यदि मैं युद्ध मे अपने सामने सात्यकि को मरते देखता, तो भयकर पाप का भागी होता। धर्म के स्वरूप को जाने विना आपको मेरी निन्दा नही करनी चाहिये। वालक अभिमन्यु शस्त्र, कवच और रथहीन हो चुका था, उस दशा मे आपके महारथियो द्वारा उसका वध किया गया। वह कहाँ का धर्म था? आप उस समय कहाँ चले गये थे?'

वीर अर्जुन के ऐसा कहने पर महायशस्वी भूरिश्रवा रण-भूमि मे आमरण अनशन लेकर वैठ गया। पर सोमदत्तकुमार

भूरिश्रवा का सात्यकि ने अपनी पैनी तलवार से वध कर डाला।

अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'भगवन्! जिस ओर जयद्रथ खड़ा है, उसी ओर मेरे रथ को शीघ्रतापूर्वक ले चलिये और मेरी प्रतिज्ञा सफल करवाइये।' अश्वविद्या में निपुण महाबाहु श्रीकृष्ण ने रथ को शीघ्रता से जयद्रथ की ओर बढाया। यह देख दुर्योधन, कर्ण, महाराजा शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और स्वय जयद्रथ उनसे युद्ध करने लगे।

दुर्योधन कर्ण से बोले—'नरवीर! अब दिन का थोडा ही भाग रह गया है। तुम शत्रु को घायल कर उसके कार्य मे बाधा डालो। सूर्यास्त होने तक यदि सिधुराज जयद्रथ सुरक्षित रह गया, तो अर्जुन अग्नि मे प्रवेश कर जायेगा। अर्जुन के बिना उसके भाई दो घडी भी जीवित नही रह सकते। पाण्डवो के नष्ट हो जाने पर हम लोग वसुधा का निष्कण्टक राज्य भोगेगे। दैव के कारण अर्जुन की बुद्धि विपरीत हो गई थी, इसलिये विना विचारे उसने जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है, जिसकी रक्षा मै, दु शासन, अश्वत्थामा और तुम जैसे दुर्धर्ष वीर कर रहे है। हमारे जीते जी अर्जुन सिधुराज को सूर्यास्त के पहले कैसे मार सकेगा ?'

कर्ण ने कहा—'आर्य! धनुर्धर भीमसेन ने सग्राम मे मेरे शरीर को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है। यद्यपि मैं उसके बाणो के आघात से सतप्त हूँ, तथापि ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे धनजय सिधुराज को नही पा सके। विजय की प्राप्ति तो दैव के ही अधीन है।' जब रणक्षेत्र मे कर्ण और दुर्योधन इस तरह वार्तालाप कर रहे थे, उस समय अर्जुन ने महाबाहु भीम और सात्यकि की सहायता से कौरव सेना का सहार पुन आरम्भ कर दिया। कौरव योद्धा दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, महाराजा शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा स्वय जयद्रथ ने अर्जुन को सब ओर से घेर लिया। वे सब सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रहे

थे। वीर अर्जुन ने सब योद्धाओ के देखते-देखते कर्ण के घोडे और सारथी को यमलोक पहुँचा दिया। तब कर्ण शीघ्रता से अश्वत्थामा के रथ पर आरूढ हो गया। कुन्तीकुमार अर्जुन शत्रुओ के जीवन और यश को मिट्टी मे मिलाते हुए मूर्तिमान मृत्यु के समान सग्राम कर रहे थे। वीर अर्जुन के बाणो से आहत हो जयद्रथ का ध्वजदण्ड कटकर पृथ्वी पर गिर पडा।

जब सूर्यदेव लाल हो तीव्र गति से अस्ताचल की ओर जा रहे थे, तब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'नरश्रेष्ठ अर्जुन! रणभूमि मे इन छ महारथियो को परास्त किये बिना सिंधुराज को जीता नही जा सकता। शीघ्र ही अज्ञानवश अकेला सिंधुराज सूर्य को स्पष्ट रूप से अस्त हुआ समझेगा। यह दुराचारी हर्षपूर्वक तुम्हारे विनाश के लिये उतावला होकर अपने आपको योद्धाओ के पृष्ठ भाग मे न रख सकेगा। ऐसा अवसर आने पर तुम उस पर अवश्य प्रहार करना।'

वीर अर्जुन बोला—'प्रभो! ऐसा ही होगा।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'भरतश्रेष्ठ! सिंधुराज अब तुम्हारा भय छोडकर सूर्यदेव की ओर दृष्टिपात कर रहा है। इस दुरात्मा के वध का यही अवसर है। तुम शीघ्र इसका मस्तक काट डालो और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। धनजय! जयद्रथ-वध के विषय मे मेरी बात को ध्यान से सुनो। सिंधुराज के पिता वृद्धक्षत्र ने दीर्घकाल के पश्चात जयद्रथ को पुत्र-रूप मे पाया था। इसके जन्म पर ज्योतिष शास्त्र के विद्वानो ने उनसे कहा था—नरेन्द्र! तुम्हारा यह पुत्र शील और सयम आदि सद्‌गुणो से क्षत्रियो मे श्रेष्ठ माना जायेगा। परन्तु सग्राम-भूमि मे युद्ध करते समय कोई क्षत्रिय शिरोमणि इसका मस्तक काट डालेगा। यह सुनकर सिंधुराज वृद्धक्षत्र ने कहा था कि जो मेरे इस पुत्र के मस्तक को पृथ्वी पर गिरा देगा, उसके सिर के भी टुकडे-टुकडे हो जायेगे। ऐसा कहकर राजा वृद्धक्षत्र ने जयद्रथ को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया और स्वय वन मे जाकर घोर तपस्या

करने लगे। तुम दिव्य-अस्त्र के द्वारा जयद्रथ का मस्तक काट-कर उसे वृद्धक्षत्र की गोद में गिरा दो।'

भगवान श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर वीर अर्जुन ने एक दिव्य अस्त्र को धनुष पर चढाया, जिसकी नित्य पूजा की जाती थी। फिर उसने मन्त्रो द्वारा उसे अभिषिक्त कर जयद्रथ का मस्तक काट डाला। गाण्डीव धनुष से छूटा हुआ वह शीघ्रगामी बाण जयद्रथ का मस्तक ले राजा वृद्धक्षत्र की गोद मे जा गिरा। यह देख वृद्धक्षत्र सहसा उठ खड़े हुए। तब उनके पुत्र जयद्रथ का मस्तक पृथ्वी पर गिर पडा। मस्तक के पृथ्वी पर गिरते ही राजा वृद्धक्षत्र के सिर के भी टुकडे-टुकडे हो गये। वीर अर्जुन द्वारा जयद्रथ के मारे जाने पर कौरव योद्धाओ ने सूर्य देव की ओर दृष्टि डाली, जो अभी पूर्ण रूप से अस्ताचल मे नही गये थे। जब कुन्तीकुमार अर्जुन द्वारा जयद्रथ मारा गया तब भग-वान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन ने अपना-अपना शख बजाया। तत्पश्चात भीमसेन और सात्यकि ने पृथक-पृथक शख बजाये। इस महान सिंहनाद को सुन महाराज युधिष्ठिर को निश्चय हो गया कि अर्जुन ने जयद्रथ को मार डाला है। इससे उनके हर्ष और प्रसन्नता का पारावार न रहा।

अब कृपाचार्य और अश्वत्थामा ने वीर अर्जुन पर धावा कर दिया। वीर अर्जुन अपने अस्त्रो द्वारा अश्वत्थामा और कृपाचार्य के अस्त्रो का निवारण कर उनके ऊपर मन्द वेग से बाण चलाने लगे, किन्तु उनसे भी उन्हे भारी चोट पहुँची। कृपाचार्य अर्जुन के बाणो से पीडित हो मूर्छित हो गये। यह देख दयावश अर्जुन की आँखो से आँसुओ की धारा बह चली और वे अपने कार्य के लिये पश्चाताप करने लगे। राधापुत्र कर्ण को वीर अर्जुन के रथ की ओर आते देख युद्धामन्यु, उत्तमोजा और सात्यकि ने उन पर धावा कर दिया। कर्ण ने भूरिश्रवा और जलसध के वध को याद कर सात्यकि को मथ डाला। सात्यकि ने भी कर्ण के रथ को ध्वस कर दिया। सूर्यास्त होने पर सब

कौरव अपने शिविर मे चले गये। भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर के शिविर मे गये।

वहाँ दोनो ने हर्षपूर्ण हृदय से उन्हे प्रणाम किया और भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन्! सौभाग्य से आपका शत्रु जयद्रथ मारा गया है और वीर अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है।'

महाराजा युधिष्ठिर ने उन दोनो को आनन्द के आँसू बहाते हुए हृदय से लगाया और बोले—'कमलनयन कृष्ण! जैसे तैरने की इच्छा रखने वाला समुद्र का पार नही पाता, उसी प्रकार आपके मुख से यह प्रिय समाचार सुन मेरे हर्ष की सीमा नही है। जिनके आप आश्रय है, उनके लिये विजय और सौभाग्य निश्चित है। मधुसूदन! आप जिनके रक्षक है, उनके लिये कुछ भी कार्य दुष्कर नही है। गोविन्द! आपकी कृपा से हम शत्रुओ पर निश्चय ही विजय पायेगे। उपेन्द्र! आप सदा सब प्रकार से हमारे प्रिय और हित साधन मे लगे रहते है। आपकी ही बुद्धि, बल और पराक्रम से अर्जुन ने यह असम्भव कार्य कर दिखाया है।'

फिर उन्होने वीर अर्जुन को आलिगन कर कहा—'भरत श्रेष्ठ! आज तुमने बडा भारी कार्य कर दिखाया है।' तदनन्तर बाणो से क्षत-विक्षत हुए महाबाहु भीमसेन और महारथी सात्यकि महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम कर भूमि पर खडे हो गये। कुन्तीकुमार युधिष्ठिर ने उन दोनो का प्रेमपूर्वक अभिनन्दन किया और उनसे कहा—'महाभागो! बडे सौभाग्य की बात है कि तुम दोनो ने सग्राम-भूमि मे शत्रुओ पर विजय पायी है। ये सब भगवान श्रीकृष्ण की ही कृपा से सम्भव हो सका है।

सिंधुराज जयद्रथ के मारे जाने पर दुर्योधन अश्रु बहाता हुआ बहुत दु खी हो गया। उसे निश्चय हो गया कि इस युद्ध-भूमि मे अर्जुन के समान कोई दूसरा योद्धा नही है। जिसका भरोसा करके मैंने युद्ध के लिये शस्त्र-सग्रह किया था, वह कर्ण

युद्ध-स्थल मे पाण्डवो से परास्त हो गया और जयद्रथ अर्जुन के द्वारा मारा गया।

## द्रोणाचार्य

इस प्रकार सोचते-सोचते दुर्योधन आचार्य के पास जाकर बोला—'गुरुदेव ! मेरे अनेक शूरवीर मारे गये है। सव्यसाची अर्जुन ने मेरी सात अक्षौहिणी सेना का सहार कर जयद्रथ को भी मार डाला है। मैं अपने मित्रो का सहार कराकर अनेक यज्ञो से भी अपने आपको पवित्र नही कर सकता। मुझ लोभी तथा धर्मनाशक पापी के मित्र यमलोक चले गये है। दुर्धप वीर भीष्म और अपने कुटुम्बियो को पडा देख मेरे जीवित रहने का क्या प्रयोजन है ? सत्यप्रतिज्ञ भीष्म ने स्वय ही अपनी मृत्यु स्वीकार कर ली और आप भी हमारी उपेक्षा करते है, क्योकि अर्जुन आपका प्रिय शिष्य है। हमारी विजय चाहने वाले सभी योद्धा मारे गये, अव तो केवल कर्ण ही सच्चे हृदय से मेरी विजय चाहता है।'

पूर्वोक्त वचन सुन द्रोणाचार्य दु खी हो गये। उन्होने अत्यन्त आर्तभाव से कहा—'दुर्योधन ! मै तो सदा से ही कहता आया हूँ कि सव्यसाची अर्जुन अजेय है। जो भीष्म अवध्य थे, उन्हे युद्ध मे मारा गया देखकर मैने उसी समय यह जान लिया था कि कौरव सेना का विनाश अवश्यम्भावी है। दुर्योधन ! विदुरजी धीर और महात्मा पुरुष है। उन्होने तुम्हारे कल्याण के लिये जो मगलकारक वचन कहे थे, उन वचनो का अनादर करने से ही यह घोर सहार हुआ है। तुम और कर्ण तो कही मर नही गये थे ? कृपाचार्य, शल्य और अश्वत्थामा जीवित थे, फिर तुम सबके रहते सिधुराज की मृत्यु क्यो हुई ? जब अर्जुन से उसकी रक्षा इतने वीरो द्वारा भी नही की जा सकी, तब तुम्हारी रक्षा के लिये भी मुझे कोई स्थान

नही दिखाई देता। दैव के विधान मे उलट-फेर नही हो सकता। मनुष्य को सदा उद्योगशील होकर निशक भाव से अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये, परन्तु उसकी सिद्धि दैव के ही अधीन है। यह दैव का ही प्रभाव है, जिसने तुम्हारा पुरुपार्थ नष्ट कर दिया है। दुर्योधन ! मैं समरागण मे वही कार्य करूँगा, जिसमे तुम्हारा हित हो। राजन् ! तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामा से कहना कि जीवन की रक्षा करते हुए दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणो मे स्थिर रहो।' दुर्योधन द्रोणाचार्य के वचन सुन वहाँ से चला गया। वह सिधुराज के वध से बहुत दु खी हो गया था, अत मरने का ही निश्चय कर युद्ध करने लगा। अब रात्रि के समय भी कौरवो और पाण्डवो मे युद्ध होने लगा। आचार्य द्रोण ने पाण्डव-सेना का बहुत सहार किया। उन्होने धृष्टद्युम्न के पुत्रो और राजा शिबि को यमलोक भेज दिया। कलिग राज-कुमार को भीमसेन ने मृत्यु के घाट उतार दिया। तदनन्तर भीमसेन ने ध्रुव, जयरात, दुर्मद और दुष्कर्म को मार डाला। यह देख अश्वत्थामा वही युद्ध-स्थल मे आ पहुँचा। उसे भीमसेन पर आक्रमण करते देख घटोत्कच और उसके पुत्र अजनपर्वा ने अश्वत्थामा पर धावा बोल दिया। अब इन दोनो मे घमासान युद्ध होने लगा, किन्तु कुछ ही समय मे अजनपर्वा अश्वत्थामा के द्वारा मारा गया। इस पर घटोत्कच ने अपने बाणो द्वारा अश्वत्थामा को बडी पीडा पहुँचायी। घटोत्कच की सहायता के लिये भीमसेन, धृष्टद्युम्न और द्रुपद पुत्र अश्वत्थामा से युद्ध करने लगे, किन्तु अश्वत्थामा ने शीघ्र ही सुरथ, शत्रुजय, बला-नीक, जयानीक और जयाश्व द्रुपद-पुत्रो को यमलोक पहुँचा दिया। फिर द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न ने राजा श्रुताहव पृषध्र और चन्द्रसेन का वध कर दिया। अश्वत्थामा ने अपने एक तीखे बाण द्वारा घटोत्कच के पुत्र को यमलोक भेज दिया। अश्वत्थामा से अब युधिष्ठिर, भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकि युद्ध करने लगे। अश्वत्थामा की सहायता के लिये रणभूमि में सोमदत्त,

बाह्लीक आ गये। भीमसेन ने अपने तीखे बाणों से बाह्लीक का सिर धड़ से अलग कर दिया। बाह्लीक के मारे जाने पर उसके दस पुत्र भीमसेन से युद्ध करने लगे, किन्तु वे भी कुछ ही समय में भीमसेन द्वारा मारे गये। तदनन्तर कर्ण का पुत्र वृषसेन भीमसेन से युद्ध करने लगा। भीमसेन ने शकुनि के सात भाई और शतानन्द को काल के गाल में भेज दिया। यह देख सोमदत्त ने सात्यकि पर आक्रमण किया, किन्तु वह सात्यकि द्वारा मारा गया।

अब भूरि ने सात्यकि पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि ने भूरि को एक अत्यन्त वेगशाली शक्ति द्वारा यमलोक पहुँचा दिया। मद्रराज शल्य से राजा विराट और उसका भाई शतानीक युद्ध कर रहे थे। मद्रराज शल्य ने राजा विराट के सारथी और घोड़ों को मारकर शतानीक को यमलोक पहुँचा दिया। यह देख बलशाली नकुल कौरव सेना का भयकर सहार करने लगा। उसका सामना करने के लिये सुबल-पुत्र शकुनि आया। पर नकुल के बाणों के आघात से अत्यन्त घायल हो जाने पर उसका सारथी उसे रणभूमि से दूर ले गया। तदनन्तर नकुल द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगा। इसी समय शिखण्डी कृपाचार्य से वही युद्ध कर रहा था। दोनो पाण्डव-वीर आचार्य के वाण की मार से पीड़ित हो रणभूमि से भाग गये। तब धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य से युद्ध करने लगा। द्रोणाचार्य की सहायता करने द्रुमसेन, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कर्ण और धृष्टद्युम्न की रक्षा हेतु सात्यकि युद्ध-स्थल पर आ पहुँचे। अब वहाँ भीषण सग्राम होने लगा। कुछ ही समय में धृष्टद्युम्न ने द्रुमसेन को यमलोक पहुँचा दिया। जब बड़े-बड़े वीरो का सग्राम चल रहा था तब दुर्योधन ने सात्यकि पर धावा बोल दिया। सात्यकि ने दुर्योधन के सारथी और घोड़े को मार गिराया। तब दुर्योधन कृतवर्मा के रथ पर आरूढ हो युद्ध-भूमि से भाग गया। यह देख आचार्य द्रोण और वीर कर्ण पाण्डव-सेना का भीषण सहार करने लगे।

कुन्तीनन्दन अर्जुन और भीमसेन अव उनसे युद्ध करने लगे। कर्ण ने धृष्टद्युम्न को अपने वाणो से घायल कर दिया। भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से घटोत्कच ने कर्ण पर आक्रमण किया। जटासुर को पूर्वकाल मे कुन्तीकुमार अर्जुन ने मार डाला था। अव उसका पुत्र अलम्वुप उनमे वदला लेने घटोत्कच से युद्ध करने लगा। अमित पराक्रमी घटोत्कच अपनी पैनी तलवार से महावली अलम्वुप का सिर धड से अलग करने के पश्चात पुन कर्ण से युद्ध करने लगा। उस अत्यन्त भयकर और उग्र सग्राम को देखकर कौरव योद्धा भयभीत हो युद्ध-स्थल से भागने लगे। इस प्रकार कर्ण और घटोत्कच का युद्ध चल ही रहा था कि पराक्रनी राक्षसराज अलायुध घटोत्कच से युद्ध करने आया, क्योकि उसका कुटुम्वी वकासुर भीमसेन द्वारा मारा गया था। भीमसेन घटोत्कच की रक्षा हेतु अलायुध से युद्ध करने लगा। तदनन्तर हिडिम्वा कुमार घटोत्कच ने अलायुध को अपनी तीक्ष्ण तलवार से मार डाला ओर भयकर सिहनाद किया, जिसे सुन कौरव योद्धाओ के मन मे अत्यन्त दारुण भय समा गया। यह देख वीर कर्ण ने घटोत्कच, युधामन्यु, उत्तमौजा और महारथी सात्यकि को अपने वाणो से घायल कर दिया। घटोत्कच ने भी कर्ण को अपने वाणो से विदीर्ण कर दिया। कर्ण के मन मे अव भय होने लगा कि कही घटोत्कच मुझे भी नही मार डाले, अत उसने इद्र द्वारा दी हुई शक्ति से उसका वध कर डाला। घटोत्कच को मरा गया देख पाण्डवो के नेत्रो से आँसू वहने लगे, परन्तु वासुदेव भगवान ने वडे हर्ष से सिहनाद किया। उन्होने अर्जुन को अपनी छाती से लगा लिया।

अर्जुन ने कहा—'मधुसूदन ! घटोत्कच के वध से हम शोक सागर मे डूवे हुए है, किन्तु आप तो हर्पित हो रहे है, इसका क्या कारण है ? जैसे समुद्र का सूखना और मेरु पर्वत का विचलित होना असम्भव-सा जान पडता है उसी प्रकार आज मै आपके हर्प को आश्चर्यजनक मानता हूँ।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'धनजय ! आज वास्तव मे मुझे अत्यन्त हर्ष का अवसर प्राप्त हुआ है । वीर अर्जुन । कर्ण ने इद्र की दी हुई शक्ति का प्रयोग घटोत्कच पर कर दिया है, अत अब कर्ण की मृत्यु निश्चित ही समझो । इस समय युद्ध-स्थल मे कोई ऐसा योद्धा नही है, जो शक्तिशाली कर्ण से युद्ध कर सके । यदि कर्ण कवच और कुण्डल से युक्त होता, तो वह अकेला ही रणभूमि मे पाण्डवो को परास्त कर सकता था । कर्ण ने कवच और कुण्डल स्वय ही अपने शरीर से कतर कर इद्र को दे दिये थे, इसलिए यह वैकर्तन कहलाया । जब तक कर्ण के पास इद्र की दी हुई शक्ति थी, तब तक मैं तुम्हे उसके द्वारा मरा ही मानता था । कर्ण ब्राह्मण-भक्त, सत्यवादी, तपस्वी, व्रत और नियम का पालन करने वाला है, इसलिये उसे बपु (धर्मात्मा) कहा गया है । महाबाहु कर्ण युद्ध मे कुशल सिह के समान पराक्रमी तथा महारथियो का घमड चूर करने वाला है । तुम्हारे महामनस्वी श्रेष्ठ योद्धा उसे दोपहर के सूर्य की भाँति देख भी नही सकते । पाण्डवनन्दन ! कर्ण अब कवच और कुण्डल-हीन तथा इन्द्र की दी हुई शक्ति से शून्य, साधारण मनुष्य के समान हो गया है । सूतपुत्र कर्ण, जरासध, शिशुपाल और निषादनन्दन एकलव्य यदि दुर्योधन का पक्ष लेते तो पृथ्वी को अवश्य ही जीत लेते । तुम लोगो का हित करने के लिए मैने उनका एक-एक करके वध कराया है ।'

घटोत्कच की मृत्यु पर राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दीन और दु खी हो गये । यह देख भगवान श्रीकृष्ण बोले—'भरत श्रेष्ठ ! आपको वीर घटोत्कच की मृत्यु के लिये व्याकुल नही होना चाहिये ।'

राजा युधिष्ठिर ने कहा—'महाबाहो ! मुझे धर्म की श्रेष्ठ गति विदित है । जो मनुष्य किसी के उपकार को याद नही रखता, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है । जब हम लोग वन में थे, तब हिडिम्बाकुमार बालक होने पर भी हमारी बडी

सहायता करता था। प्रभो! युद्ध के आरम्भ से ही इसने दुष्कर कर्म कर मेरी सहायता की है। वह मेरा भक्त था, इसलिये उस पर मेरा स्वाभाविक प्रेम भी रहता था।'

उसी समय महर्षि व्यास राजा युधिष्ठिर के पास आये और बोले—'राजन्! कर्ण के साथ अर्जुन युद्ध करने नही गये, यह बहुत अच्छा हुआ। यदि वीर अर्जुन कर्ण पर दिव्य-अस्त्रो का प्रयोग करता, तो कर्ण उन्हे इन्द्र से प्राप्त की हुई शक्ति से मार गिराता। वास्तव मे इन्द्र की शक्ति को निमित्त बनाकर काल ने वीर घटोत्कच का वध किया है। तुम्हारे हित के लिये ही यह राक्षस युद्ध मे मारा गया है, ऐसा समझकर तुम न तो किसी पर क्रोध करो न शोक ही। तुम प्रसन्नतापूर्वक कौरवो से युद्ध करो। तुम्हे सदा धर्म का चिन्तन तथा दया, तपस्या, दान, क्षमा और सत्य आदि सद्गुणो का ही सेवन करना चाहिये। जिसके पक्ष मे धर्म है उसीकी विजय होती है।'

व्यासजी के ऐसा कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने धृष्ट-द्युम्न से कहा—'वीर! तुम द्रोणाचार्य से युद्ध करो। तुम्हारा जन्म आचार्य के विनाश के लिये ही हुआ है।' यह सुन उसने पाण्डव-योद्धाओ की सहायता मे द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया।'

तब दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाकर बोला—'युद्ध मे आपकी समानता कोई भी धनुर्धर नही कर सकता। आप सम्पूर्ण अस्त्रो के ज्ञाता है। आप युद्ध में पाण्डवो को क्षमा करते हैं, क्योंकि आपके वे शिष्य है, यही मेरा दुर्भाग्य है।'

द्रोणाचार्य कुपित होकर बोले—'दुर्योधन! यद्यपि मैं बूढा हो गया हूँ, तथापि तुम्हारी विजय के लिये पूर्ण शक्ति लगाकर युद्ध करता हूँ। वीर अर्जुन अजेय है, उसे कोई भी जीत नही सकता।'

दुर्योधन ने कहा—'आचार्य मैं, दु शासन, कर्ण और मामा शकुनि युद्ध में अर्जुन को मार डालेंगे।'

द्रोणाचार्य बोले—'अरे मूर्ख ! क्षत्रिय शिरोमणि गाण्डीव-धारी अजेय अर्जुन को युद्ध मे कौन क्षत्रिय मार सकता है ? जब भगवान श्रीकृष्ण उसकी सहायता करते है, भला युद्ध मे अर्जुन का सामना करके कौन सकुशल घर लौट सकता है ? तुम निष्ठुर और पापपूर्ण विचार मन मे रखते हो, अतः श्रेष्ठ पुरुषो पर भी सर्वदा सदेह करते हो। तुम्हारे मामा शकुनि तो पासा फेंकने मे कुशल है। इनमें कुटिलता, शठता, छल, विद्या और धूर्त्तता ही कूट-कूटकर भरी हुई है। तुमने भरी सभा मे राजा धृतराष्ट्र से कहा था कि मै, कर्ण और भाई दुःशासन तीनो मिल-कर समर-भूमि मे पाण्डवो का विनाश कर डालेगे। अपनी उस प्रतिज्ञा को अब पूर्ण क्यो नही करते ? तुमने जीवन मे दान, भोग, स्वाध्याय कर लिया है और ऐश्वर्य भी पा लिया है। तुम देवता, ऋषि और पितरो के ऋण से भी मुक्त हो गये हो, अतः वीर अर्जुन के साथ युद्ध करो।' दुर्योधन से ऐसा कह द्रोणाचार्य पाण्डवो से पुन युद्ध करने लगे। तदनन्तर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि वीर अर्जुन से जा भिडे।

सग्राम में विचरते हुए रण-दुर्जेय द्रोणाचार्य पर राजा विराट, द्रुपद और उनके तीनो पौत्रो ने आक्रमण किया, किन्तु आचार्य ने अपने तीखे बाणो द्वारा द्रुपद के पौत्रो के प्राण हर लिये। फिर उन्होने राजा द्रुपद और विराट को भी यमलोक भेज दिया। यह देख धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य पर चढाई कर दी। उसकी सहायता के लिये भीमसेन युद्धभूमि मे पहुँच गये। सूर्योदय होने पर फिर दोनो दलों में घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। द्रोणाचार्य ने वसुदान को यमलोक भेज दिया। द्रोणा-चार्य के बाणो से आच्छादित पाण्डव-सेना मे चारो ओर से भयकर आर्त्तनाद होने लगा, इससे पाण्डवो के मन से विजय की आशा जाती रही। वे सोचने लगे कि इस समय युद्ध-भूमि मे कोई भी योद्धा आचार्य की ओर देखने मे समर्थ नही है, और धर्मज्ञ अर्जुन उनके साथ युद्ध करते नही।

भगवान श्रीकृष्ण ने वीर अर्जुन से कहा—'पार्थ ! द्रोणाचार्य सम्पूर्ण धनुर्धरो मे श्रेष्ठ है। जब तक इनके हाथ मे धनुष रहेगा, तब तक इन्हे देवता भी जीत नही सकते। जब ये सग्राम मे हथियार डाल देगे, तभी मारे जा सकते हैं। पार्थ ! गुरु का वध करना उचित नही है। इस धर्म-भावना का त्याग कर उन पर विजय पाने का कोई प्रयत्न करो। ऐसा न हो कि आचार्य तुम लोगो का वध कर डाले। मेरा विश्वास है कि अश्वत्थामा के मारे जाने पर वे युद्ध नही करेगे। किसी को उनसे कहना होगा कि युद्ध मे अश्वत्थामा मारा गया।' कुन्ती पुत्र अर्जुन को यह बात अच्छी नही लगी। महाराजा युधिष्ठिर भी इस मन्त्रणा पर बडी कठिनाई से राजी हुए। तद्पश्चात भीमसेन ने अपनी ही सेना में एक विशाल हाथी को मार डाला, जिसका नाम अश्वत्थामा था। उसे मारकर भीमसेन लजाते-लजाते द्रोणाचार्य के पास गये और बडे जोर से बोले—'अश्वत्थामा मारा गया।' भीमसेन का यह अप्रिय वचन सुन द्रोणाचार्य शोक से व्याकुल हो गये। उनका सारा शरीर शिथिल हो गया। उनके मन मे सदेह उत्पन्न हुआ कि यह बात कही झूठी हो, क्योकि वे अपने पुत्र के पराक्रम को जानते थे।

अवध्य क्षत्रियो का और विनाश न हो, यह निश्चय कर बहुत से ऋषि उनके पास आये और बोले—'द्रोण अब तुम्हारी मृत्यु का समय आ गया है, इसलिये यह क्रूरतापूर्ण कर्म न करो। तुम वेदो के विद्वान, सत्य और धर्म मे रहने वाले हो, अत· क्रूर कर्म तुम्हें शोभा नही देता, इसलिये अस्त्र-शस्त्र को त्याग दो।'

तद्पश्चात द्रोणाचार्य ने राजा युधिष्ठिर से अपने पुत्र के बारे मे पूछा। आचार्य का यह कथन भगवान श्रीकृष्ण ने सुना। वे जानते थे कि आचार्य पाण्डवों को मारना चाहते हैं, इसलिये उन्होने राजा युधिष्ठिर से कहा—'इस समय असत्य भाषण का महत्व सत्य से भी बढकर है। प्राण-रक्षा के लिये

यदि असत्य बोलना पड़े तो उससे आपको पाप नही लगेगा। आप द्रोणाचार्य से कह दीजिये कि अश्वत्थामा मारा गया।' राजा युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण की बात मन मे ग्लानि होने पर भी मान ली। उन्होने आचार्य को उच्च स्वर से कहा—'अश्वत्थामा मारा गया' परन्तु मध्यम स्वर मे यह भी कहा कि 'वह हाथी था।' इस असत्य भाषण को कहने से पहले राजा युधिष्ठिर का रथ पृथ्वी से चार अगुल ऊचा चलता था, किन्तु अब वह पृथ्वी पर आ टिका। युधिष्ठिर के मुँह से यह अप्रिय बात सुन महारथी द्रोणाचार्य की चेतना-शक्ति लुप्त हो गयी। उन्होने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये, समाधि लगाकर ज्ञान स्वरूप मे स्थित हो गये। द्रोणाचार्य के ब्रह्मलोक में चले जाने पर धृष्टद्युम्न ने अपनी तलवार से उनके सिर को धड़ से अलग कर दिया। द्रोणाचार्य के मारे जाने पर पर कौरव निष्प्राण से हो गये। उनकी मृत्यु का समाचार सुन शकुनि और अनेक योद्धा भय के मारे युद्ध-भूमि से भाग गये।

जब अश्वत्थामा को पता चला कि धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को छल से मार डाला है, तब वह नेत्रो मे आँसू भर क्रोध से जल उठा और दुर्योधन से बोला—'धर्म का ढोग रखने वाले युधिष्ठिर ने जो पाप और नीचतापूर्ण कर्म किया है उसका मुझे ज्ञान है। काम, क्रोध, अज्ञान और हर्ष के कारण धर्म के विरुद्ध जो मनुष्य कार्य करते है, वे श्रेष्ठ-पुरुष का अपमान कर बैठते है। क्रूर और दुरात्मा द्रुपद-पुत्र ने यह पाप कर्म किया है, अत उस धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिर को इस पाप का अत्यन्त भयकर परिणाम भोगना होगा।' यह कह अश्वत्थामा ने जोर से सिहनाद किया।

राजा युधिष्ठिर ने वीर अर्जुन से पूछा—'यह सिंहनाद किस वीर ने किया है?

धनजय ने कहा—'महाराज! यह सिंहनाद अश्वत्थामा का है। उस वीर ने जन्मते ही उच्चैःश्रवा अश्व के समान हिन-

हिनाकर नाद किया था, अत ऋषियो ने उसका अश्वत्थामा नाम रखा है। द्रुपदकुमार धृष्टद्युम्न ने अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्म के द्वारा आचार्य को मारा है, इसलिये उसे अश्वत्थामा क्षमा नही करेगा। आपने धर्मज्ञ होते हुए भी राज्य के लोभ से झूठ बोलकर अपने गुरु को जो धोखा दिया है, वह महान पाप है, अत आपकी अपकीर्ति चिरस्थायी हो जायेगी। मैं आचार्य के प्राणो की रक्षा चाहता हुआ चिल्लाता ही रह गया, किन्तु शिष्य होकर भी धृष्टद्युम्न ने धर्म की अवहेलना कर गुरु की हत्या कर ही डाली। आचार्य कौरवो से जीविका वृत्ति पाकर भी मुझे पुत्र से भी बढकर मानते थे। उन्होने आपका और मेरा हित करने के लिये युद्ध-भूमि मे अस्त्र डाल दिये। यदि वे युद्ध करते तो उन्हे देवता भी पराजित नही कर सकते थे। बुद्धि लोभ से ग्रस्त होने के कारण हमने वृद्ध आचार्य के प्रति नीच और पाप कर्म किया है, अत मै जीने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझता हूँ।'

वीर अर्जुन का कथन सुन भीमसेन क्रोधपूर्वक अर्जुन से बोले—'भरत श्रेष्ठ! जो सकट मे अपना या दूसरे का त्राण करता है, युद्ध मे शत्रुओ को क्षति पहुँचाता है, साधु और स्त्रियो पर क्षमा भाव रखता है, वही श्रेष्ठ मनुष्य है। उसे ही राज्य, धर्म, यश और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तुम सर्व गुणो से सम्पन्न होकर भी हमारी निंदा कर रहे हो, यह तुम्हे शोभा नही देता। सौभाग्य की बात है कि तेरह वर्ष के सचित कष्ट को भूलकर तुम धर्म का ही अनुसरण करते हो और तुम्हारी बुद्धि क्रूरता की ओर न जाकर दया भाव मे ही रम रही है, परन्तु हम सबके धर्म मे तत्पर रहने पर भी शत्रुओ ने हमारा राज्य अधर्म से छीन लिया, द्रौपदी को भरी सभा मे अपमानित किया, हमे तेरह वर्ष के लिये वन मे निर्वासित किया, यह सब दुखद एव अप्रिय घटनाएँ मैंने चुपचाप सह ली। परन्तु अब उनके उन नीचतापूर्ण पाप-कर्मों को याद कर मैं तुम्हारे साथ

उन शत्रुओ को मार डालूंगा। तुमने ही पहले युद्ध करने के लिये कहा था, अव उसीके अनुसार हम यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे है, किन्तु तुम हमारी निन्दा कर रहे हो? तुम्हें अपने क्षत्रिय-धर्म को जानना चाहिये। एक तो हम भय से पीड़ित है, इस पर तुम वाग्वाणो द्वारा हमारे मर्म-स्थान को भेद उन पर नमक बरसा रहे हो।'

धृष्टद्युम्न ने कहा—'वीर श्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ करना और करवाना, वेद पढना और पढ़ाना, दान देना और प्रतिग्रह स्वीकार करना, ये छ कर्म ही ब्राह्मणो के लिये प्रसिद्ध है। इसमे से किस कर्म मे द्रोणाचार्य प्रतिष्ठित थे? उन्होने तो क्षत्रिय धर्म का ही आश्रय ले रखा था। वे दिव्य-अस्त्रो द्वारा हम लोगो का सहार करते थे। ऐसी अवस्था मे यदि मैने आचार्य का वध किया, तो तुम मेरी निन्दा क्यों करते हो? तुम धर्म के तत्व को जानकर भी मुझे गुरु की हत्या करने वाला बताते हो, यह उचित नही। युद्ध करते समय जो कर्तव्य और अकर्तव्य को समान समझता है, उसे तुम ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय ही कैसे कह सकते हो? जो क्रोध से उत्तेजित होकर ब्रह्मास्त्र न जानने वालो पर भी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करे, उसका सभी उपायो से वध करना उचित है। जिसने मेरे बन्धुओ का इस युद्ध-भूमि मे वध किया, उसे मारकर भी मेरा क्रोध और सताप शान्त नही हुआ है। शत्रुओ का रणभूमि मे वध न करना अधर्म है और वध करना ही धर्म है। द्रोणाचार्य मेरे शत्रु थे, अत मैने युद्ध में धर्म के अनुसार ही उनका वध किया है। तुमने युद्ध मे पितामह को मारकर भी अपने लिये धर्म माना, किन्तु मेरे द्वारा शत्रु के मारे जाने पर इस कार्य को धर्म नही समझते। धनजय! तुम्हारे बडे भाई युधिष्ठिर असत्यवादी नही है और न मैं ही अधर्मी हूँ।'

धृष्टद्युम्न के वचन सुन सात्यकि क्रोधित हो उठा। भगवान श्रीकृष्ण ने उसे शान्त किया।

# कर्ण

तद्पश्चात अश्वत्थामा ने पाण्डव सेना पर नारायण-अस्त्र का प्रयोग किया। यह देख भय से पीडित हो युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न और अन्य योद्धाओ से अपनी सेना लेकर भाग जाने को कहा।

श्रीकृष्ण वोले—'योद्धाओ! तुम सव अपने अस्त्र-शस्त्र डाल दो और वाहनो से उतर जाओ। परमात्मा नारायण ने इस अस्त्र के निवारण के लिये यही उपाय निश्चित किया है। जो वीर हाथ जोडकर इस अस्त्र को नमस्कार करेंगे, उन्हे यह अस्त्र नही मारेगा।'

भगवान वासुदेव का यह कथन सुन योद्धाओ ने अपने वाहनो से उतरकर सव अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये और नारायण-अस्त्र को हाथ जोडकर नमस्कार किया। ऐसा करने पर अश्वत्थामा दूसरी वार उस अस्त्र का प्रयोग नही कर सका। नारायण-अस्त्र विफल हुआ मान अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न पर तीक्ष्ण वाणो से आक्रमण किया। सात्यकि, मालवराज सुदर्शन, अर्जुन, भीमसेन, वृद्धक्षत्र, चेदिदेश के युवराज उसकी रक्षा हेतु अश्वत्थामा से युद्ध करने लगे। अश्वत्थामा को सात्यकि द्वारा घायल देख दुर्योधन, कृतवर्मा, वृपसेन, कृपाचार्य और कर्ण उसकी सहायता करने वहाँ आये। अव दोनो पक्षो मे घमासान युद्ध होने लगा। अश्वत्थामा ने अपने तेज वाणो द्वारा मालवराज सुदर्शन और वृद्धक्षत्र को धराशायी कर दिया। फिर अश्वत्थामा ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, जिससे पाण्डव सेना का भयानक सहार होने लगा, किन्तु वीर अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण पर इस अस्त्र का कुछ भी प्रभाव नही पडा। इस पर अश्वत्थामा दुखित हो गये।

उसी समय वेदव्यास उसके पास आये और कहने लगे—'हमारे पूर्वजो के पूर्वज भगवान नारायण हैं। वे अपनी मर्यादा

से कभी च्युत नही होते, इसलिये उन्हें अच्युत कहा गया है। उन्हे ही आदिदेव, जगन्नाथ, लोककर्ता, आदि कारण और आदि अनन्त से रहित कहा गया है। श्रुतियां उन्ही के तत्व का विवेचन करती है। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी परम महान है। उनका हृदय विशाल है। वे सारे क्लेशों को हरने वाले हैं। जल, दिशा, आकाश, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि तथा काल उन्ही के स्वरूप है। वे अजन्मा, अव्यक्त और कारण स्वरूप है। मुक्ति पाने हेतु उन्ही देव की उपासना की जाती है। भगवान नारायण अवतार लेकर इस समय श्रीकृष्ण के ही रूप मे ससार मे विचरण कर रहे है। तू अर्जुन को भगवान नर का अवतार समझ। ये दोनो धर्म की मर्यादा रखने के लिये युग-युग में अवतार लेते है।' व्यासजी की यह बात सुन अश्वत्थामा ने उन्हें प्रणाम कर भगवान श्रीकृष्ण की महत्ता को स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर व्यासजी वीर अर्जुन के पास पहुँचे और कहा—'तुम भगवान शकर को नित्य प्रणाम किया करो। वे अपने भक्तो को मनोवाछित फल देने वाले हैं। वे ही तुम्हारी विजय के कारण है। उन्होंने ही कौरव सेना का सहार किया है, तुम तो निमित्त मात्र हो।'

द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद दुर्योधन आदि और सहायक राजाओ का मन उत्साह-हीन हो गया। दुर्योधन ने सात्वनापूर्ण मधुरवाणी में राजाओं से कहा—'बुद्धिमान नरेशो! हम लोगो को क्या करना चाहिये ? हमारा क्या कर्तव्य है ?'

राजा दुर्योधन के ऐसा कहने पर युद्ध की इच्छा वाले नरेशो और अश्वत्थामा ने कहा—'राजन्! विद्वानो ने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि कराने वाले ये चार उपाय बताये है: राग (राजा के प्रति सैनिकों की श्रद्धा), योग (साधन-सम्पत्ति), दक्षता (उत्साह, बल एव कौशल) तथा नीति, परन्तु ये सभी दैव के अधीन है। यदि सारे कार्य उत्तम नीति द्वारा किये जाये, तो

दैव भी अनुकूल हो सकता है, अत. हम सर्वगुण सम्पन्न नरश्रेष्ठ कर्ण का ही सेनापति के पद पर अभिषेक करेंगे। वीर कर्ण अत्यन्त वलवान, शूरवीर, अस्त्रों के ज्ञाता एव यमराज के समान है, इसलिये रणभूमि मे शत्रुओ पर विजय पा सकते हैं।' सवका ऐसा आग्रह देख दुर्योधन ने वीर कर्ण को सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया।

सेनापति पद पाने पर वीर कर्ण दुर्योधन से वोला—'राजन् ! मैं पाडवो और श्रीकृष्ण को परास्त कर दूँगा।' वीर कर्ण के ऐसा कहने पर दुर्योधन उत्साह से पूर्ण हो गया। उसने शास्त्रोक्त विधि से कर्ण का अभिषेक किया। सूर्योदय होने पर वीर कर्ण ने योद्धाओ के साथ रणभूमि मे प्रवेश किया। उसने अपनी सेना का मकराकार व्यूह वनाया और उसके मुख्य भाग मे स्वय खडा हो गया। तदनन्तर दोनो सेनाओ में भीषण सग्राम होने लगा। शत्रुओ द्वारा मारे गये वीर उसी प्रकार गिर रहे थे, जैसे स्वर्गवासी पुण्य क्षीण होने पर पृथ्वी पर गिर पडते हैं। अव भीमसेन ने कौरव सेना पर आक्रमण कर दिया। वे मध्याह्न काल के सूर्य के समान अपने तेज से शत्रुओ को दग्ध करने लगे। यह देख क्षेमधूर्ति ने उनका सामना किया, किन्तु कुछ ही समय मे वह भीमसेन द्वारा मारा गया। वीर कर्ण के द्वारा जव पाण्डव सेना का सहार होने लगा, तव पाण्डुनन्दन नकुल ने उसका सामना किया। अव भीमसेन अश्वत्थामा से और सात्यकि केकय देश के विंद और अनुर्विंद से भिड गये। दुर्योधन ने धर्मराज युधिष्ठिर पर और वीर अर्जुन ने ससप्तक-गणो पर धावा कर दिया। सेनापति धृष्टद्युम्न कृपाचार्य से भिड गये। अव दोनो सेनाओ मे घमासान युद्ध होने लगा। सात्यकि ने कुछ ही समय मे विंद और अनुर्विंद को धराशायी कर दिया। द्रौपदी पुत्र श्रुतवर्मा और प्रतिविन्ध्य युद्धभूमि मे उपस्थित हो गये। उन्हे वहाँ आया देखकर अभिसार के राजा चित्रसेन ने उन पर धावा कर दिया। तदनन्तर श्रुतवर्मा ने

महामना चित्रसेन के शिरस्त्राण सहित मस्तक को काट गिराया। प्रतिविन्ध्य के राजा चित्र को धराशायी कर दिया।

शत्रुनाशक अर्जुन ने समुद्र के समान अपार ससप्तक सेना में प्रवेश कर उसे उसी प्रकार मथ डाला, जैसे प्रचण्ड वायु शान्त सागर मे विशाल तरगे पैदा कर देती है। यह देख अश्वत्थामा ने वीर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। उसने अपने तीखे बाणो से भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन को पीडा पहुँचाई।

श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ! मै इस युद्ध मे तुम्हारे अन्दर अत्यन्त अद्भुत परिवर्तन देखता हूँ। क्या तुम्हारे हाथ में गाण्डीव धनुष है? क्या तुममे पहले के समान बल और पराक्रम है? क्यो इस समय सग्राम मे अश्वत्थामा तुमसे बढा-चढा है? यह मेरा गुरुपुत्र है, ऐसा मानकर तुम इसकी उपेक्षा न करो। तुम क्यो प्रमाद कर रहे हो? यदि इसकी उपेक्षा की जायेगी, तो यह और भी विनाश करेगा। जिस रोग की चिकित्सा न की जाय, वह अधिक कष्टदायक हो जाता है।'

भगवान श्रीकृष्ण का यह कथन सुन वीर अर्जुन ने अश्वत्थामा के बाणों के टुकड़े-टुकडे कर दिये। अर्जुनरूपी प्रलयकालिक सूर्य ने ससप्तक सैन्यरूपी महासागर को अपनी बाणरूपी प्रचण्ड किरणो से सोख लिया और अश्वत्थामा को भी बेध डाला। इसलिये अश्वत्थामा ने वीर अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा त्याग दी। जब वीर अर्जुन ने उसके घोडो की बागडोर काट दी, तब वे अश्वत्थामा के रथ को युद्धभूमि से दूर ले भागे। यह देख वीर दण्डधार पाण्डुनन्दन अर्जुन से युद्ध करने लगा। वह पराक्रम मे भगदत्त के समान था। उसने वीर अर्जुन को अपने बाणो से बडी पीडा दी, किन्तु वीर अर्जुन ने कुछ ही समय मे उसके मस्तक को अपने बाणो से काट गिराया। अपने भाई दण्डधार के मारे जाने पर दण्ड वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा, पर वह भी उसके द्वारा धराशायी हो गया। वीर अश्वत्थामा ने

पुन. युद्धभूमि में प्रवेश किया और राजा पाण्ड्य के साथ युद्ध करने लगा। मलयध्वज पाण्ड्य नरेश ने अश्वत्थामा को अपने अस्त्रो मे वीध डाला, किन्तु वह द्रोण-पुत्र द्वारा मारा गया। दूसरी ओर वीर कर्ण पाण्डव-सेना का भीषण सहार कर रहा था। उसकी वाण-वर्षा से पाण्डव सेना भयभीत हो इधर-उधर भागने लगी।

श्रीकृष्ण वोले—पार्थ ! मैं राजा युधिष्ठिर को नही देख रहा हूँ। युद्धस्थल मे मुझे अन्य पाण्डव भी नही दिखायी दे रहे है। मेरी धारणा है कि अश्वत्थामा के सकल्पो के अनुसार वीर कर्ण ने सृ जयो का भयकर सहार कर डाला है, अतः हमें वही चलना चाहिए। जव वीर अर्जुन के धनुष की प्रत्यचा की टकार और रथ के पहियो की घरघराहट कौरवो ने सुनी, तव वे युद्ध से निराश हो गये। पचाल राजा धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, सात्यकि और द्रौपदी के पुत्र मिलकर वीर कर्ण से लड़ रहे थे। दुर्योधन की आज्ञा पाकर वहुत से योद्धाओ ने अपने हाथियो द्वारा धृष्टद्युम्न पर आक्रमण कर दिया। जव घोर सग्राम हो रहा था तव पाण्डुकुमार नकुल ने अगराज का अपने पैने वाणो से सिर धड से अलग कर दिया। वीर सहदेव क्रोध से भर कौरव सेना को जव दग्ध करने लगा, तव दु.शासन ने उस पर आक्रमण कर दिया। वीर सहदेव ने दु शासन के धनुष और ध्वजा को काट गिराया तथा अपने पैने वाणो से उसे मूर्छित कर दिया। यह देख उसका सारथी उसे रणभूमि से दूर ले गया। वीर कर्ण माद्रीनन्दन नकुल से युद्ध करने लगा। यद्यपि वीर नकुल ने कर्ण को अपने अस्त्रो द्वारा वीध डाला, किन्तु उसने नकुल को अपने अस्त्रो से मूर्छित कर दिया। यह देख नकुल का सारथी उसे युद्धभूमि से दूर ले गया। भीषण युद्ध द्वारा कृपाचार्य ने धृष्टद्युम्न को और कृतवर्मा ने शिखण्डी को युद्धभूमि से भगा दिया। वीर अर्जुन दूसरी ओर कौरव सेना को वैसे ही छिन्न-भिन्न कर रहे थे, जैसे तेज वायु रुई के ढेर को विखेर

देती है। धनजय का सामना करने के लिये त्रिगंत, शिवि, कौरवों सहित शल्व, ससप्तकगण तथा नारायणी सेना के योद्धा आगे वढ़े। सत्यसेन, चंद्रदेव, मित्रदेव, श्रुतजय, सोश्रति, चित्रसेन और मित्रवर्मा—इन सात भाइयो से रक्षित त्रिगर्तराज सुशर्मा ने वीर अर्जुन पर आक्रमण किया। जैसे गरुड को देख सर्प अपने प्राण खो देता है, उसी प्रकार शत्रु योद्धा वीर अर्जुन के पास जाते ही काल के गाल में चले जाते थे। जैसे पतगा आग पर टूट पड़ता है, उसी प्रकार युद्ध करते समय योद्धा अर्जुन पर आक्रमण करते-करते मृत्युलोक में पहुँच जाते थे। कुछ ही समय में पाण्डुनन्दन अर्जुन ने राजा श्रुतजय, सोश्रुति और चद्रदेव को यमलोक पहुँचा दिया। जब सत्यसेन ने महात्मा श्रीकृष्ण पर अस्त्र चलाया, तब उनके हाथ से चाबुक और बागडोर गिर पडी। भगवान श्रीकृष्ण के शरीर मे घाव देख वीर अर्जुन को अत्यन्त क्रोध आ गया। उसने अपने तीक्ष्ण वाणो से सत्यसेन, मित्रदेव और मित्रवर्मा को धराशायी कर दिया। धनुर्धर पाण्डुकुमार के अस्त्रो की मार खाकर शत्रु सेना क्षण भर के लिये भी युद्धभूमि मे न ठहर सकी। अब दुर्योधन ने राजा युधिष्ठिर का सामना किया। कुतीनन्दन युधिष्ठिर ने दुर्योधन के सारथी एव घोडो को मार गिराया। यह देख कर्ण और अश्वत्थामा उसकी सहायता के लिये वहाँ आ पहुँचे। राजा युधिष्ठिर की सहायता करने पाण्डव योद्धा भी आ गये। अब दोनो दलो मे घमासान युद्ध होने लगा। कौरव सैनिक बाणो से घायल हो गये। उनके कवच, आयुध और वाहन नप्ट हो गये। उनके स्वरो मे दीनता थी। वे शत्रुओ से पराजित होने के कारण दु:खी थे। उनकी दशा उस सर्प की-सी थी, जिसके दॉत तोडकर विप नष्ट कर दिया गया हो।

रात्रि मे जब कौरव पक्ष के योद्धाओ ने दुर्योधन के शिविर मे एकत्रित होकर मत्रणा की, तब कर्ण ने उनसे कहा—'शूरवीरो! अर्जुन सावधान, दृढ, चतुर और धैर्यवान है। समय-

समय पर श्रीकृष्ण उसे कर्तव्य का ज्ञान कराते रहते है, इसलिये उसने अनेक अस्त्रो का प्रयोग कर हमे दीन कर दिया है। कल मैं उनके सारे मनोरथ असफल कर दूँगा। या तो मैं वीर अर्जुन को मार डालूँगा या वह मेरा वध कर देगा। शारीरिक बल, शौर्य और अस्त्र-विज्ञान मे सव्यसाची अर्जुन मेरी समानता नही कर सकता। मेरे धनुष का नाम 'विजय' है। इसे विश्व-कर्मा ने इन्द्र के लिये बनाया था। इसी दिव्य धनुष को देवराज इन्द्र ने परशुरामजी को दिया और उन्ही से मुझे यह प्राप्त हुआ है। यह 'विजय' धनुष गाण्डीव से श्रेष्ठ है। यह वही धनुष है, जिसके द्वारा परशुरामजी ने पृथ्वी पर इक्कीस बार विजय पाई थी। जैसे वृक्ष अग्नि का आक्रमण सह नही सकता, उसी प्रकार अर्जुन मे कोई ऐसी शक्ति नही है, जो मुझसे युद्ध कर सके। किन्तु उसके धनुष की प्रत्यचा और तरकस दिव्य है, जो कभी खाली नही होते एव अग्नि का दिया हुआ दिव्य रथ है। उसके सारथी श्रीकृष्ण है, जो अश्व विद्या मे निपुण है। उसकी ध्वजा पर आश्चर्य मे डालने वाला वानर बैठा रहता है। श्रीकृष्ण जगत के स्रष्टा है। वे अर्जुन के उस रथ की रक्षा करते है। राजा शल्य श्रीकृष्ण के समान अश्व विद्या मे निपुण है, यदि वह मेरे सारथी का कार्य करे तो तुम्हारी विजय निश्चित है। ऐसी व्यवस्था होने पर मैं गुणो मे पार्थ से बढ जाऊँगा और उसे अवश्य युद्धभूमि मे मार डालूँगा। इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता भी मेरा सामना नही कर सकेगे।' वीर कर्ण के ऐसा कहने पर दुर्योधन ने योद्धाओ को अपने-अपने शिविर मे जाकर विश्राम करने को कहा।

दुर्योधन मद्रराज शल्य के पास जाकर विनीत भाव मे बोला—'सत्यव्रत! आपने कर्ण की बात सुनी है। मैं मस्तक झुकाकर आपसे याचना करता हूँ कि आप अर्जुन के विनाश और मेरे हित के लिये प्रेमपूर्वक कर्ण का सारथ्य करना स्वीकार कीजिये। आपके सारथी होने पर राधापुत्र कर्ण मेरे शत्रुओ को

जीत लेगा। इस समय अश्व विद्या के ज्ञान मे आपके समान कोई श्रेष्ठ व्यक्ति नही है। जैसे ब्राह्माजी ने सारथी बनकर महादेवजी की सहायता की थी और श्रीकृष्ण अर्जुन की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार कर्ण की रक्षा कीजिये। महाराज! आज आप राधापुत्र का प्रतिपालन कीजिये। भूपाल! कुन्तीकुमार, मेरी शेप सेना को नष्ट न कर सके, ऐसा उपाय कीजिये। आज कर्ण अर्जुन से युद्ध करना चाहता है, किन्तु उसके घोडो को अच्छी प्रकार से चलाने वाला आपके समान दूसरा कोई इस भूतल पर नही है। जैसे संग्राम भूमि मे अर्जुन के श्रेष्ठ सारथी श्रीकृष्ण हैं उसी प्रकार आप भी कर्ण के सारथी बन जाइये। जैसे अरुण के साथ सूर्य अधकार का नाश करते है, उसी प्रकार आप महासमर में कर्ण के साथ रहकर अर्जुन का वध कीजिये। कर्ण रथियों में श्रेष्ठ है और आप सारथियो के शिरोमणि है। यह दोनो का सयोग न तो कभी हुआ था, न कभी आगे होगा।'

दुर्योधन की बात सुन महाराजा शल्य क्रोधित हो गये। उन्हें अपने कुल, ऐश्वर्य, शास्त्रज्ञान और बल का बडा अभिमान था। वे बोले—'गांधारी पुत्र! तुम मेरा अपमान और कर्ण को मुझसे श्रेष्ठ मानकर उसकी प्रशसा कर रहे हो। परन्तु युद्ध-स्थल मे राधापुत्र कर्ण को मै अपने समान नही मानता। आज मैं अकेला युद्ध करूँगा। तुम मेरे पराक्रम को देखना। मै शत्रुओ का दमन करने में पूर्णतया समर्थ हूँ, अत. इस नीच सूतपुत्र का सारथी नही बनूँगा। मै श्रेष्ठ होकर इस नीच और अत्यन्त पापी पुरुष की दासता नही करूँगा। जो श्रेष्ठ पुरुष को नीच के अधीन कर देता है, उसे महान पाप लगता है। सूत जाति के लोग क्षत्रियों के सेवक होते है। मेरा उच्च कुल मे जन्म है, तथा मैं विख्यात महारथी हूँ, इसलिये सूतो द्वारा सेव्य और बदीजनो द्वारा स्तुति के योग्य हूँ। ऐसा प्रतिष्ठित और शत्रु सेना का सहार करने में समर्थ होकर मैं युद्धस्थल में एक सूतपुत्र के सारथी का कार्य कदापि नही करूँगा और आज ही अपने घर

लौट जाऊँगा ।' ऐसा कह महाराज शल्य अमर्ष से भर सभा से उठकर जाने को उद्यत हो गये ।

इस पर दुर्योधन ने उन्हे प्रेम और आदर से सान्त्वनापूर्ण वचन कहे—'महाराज शल्य ! आप अपने विषय मे जैसा कहते हैं, वह अक्षरश सत्य है । भूपाल ! न तो कर्ण आपसे श्रेष्ठ है; न आपके प्रति मैं सदेह ही करता हूँ । मुझे विदित है कि आप कोई ऐसा कार्य नही कर सकते, जो आपकी सत्यप्रतिज्ञा के विपरीत हो ।'

दुर्योधन के वहुत अनुनय-विनय करने पर महाराजा शल्य ने कर्ण का सारथ्य स्वीकार कर लिया । उन्होने कहा—'मैं कर्ण के प्रति अपनी इच्छानुसार भाव प्रकट करने मे स्वतन्त्र रहूँगा ।' दुर्योधन इस पर राजी हो गया और उसने कर्ण को भी मना लिया । महाराज शल्य ने कहा, 'यदि सूतपुत्र कर्ण कुन्तीपुत्र अर्जुन को मार डालेंगे तो श्रीकृष्ण स्वय युद्ध करेंगे और तुम सवको जलाकर भस्म कर देगे ।'

प्रात काल होने पर वीर कर्ण ने रथ की विधिपूर्वक पूजा और परिक्रमा की । तत्पश्चात उसने सूर्यदेव की उपासना कर मद्रराज शल्य से रथ पर सारथी के स्थान पर विराजमान होने को कहा । राजा शल्य को रथ पर सारथी के पद पर देख हर्ष सहित कर्ण भी रथ पर आरूढ हो गया । जैसे आकाश मे एक साथ वैठे हुए सूर्य और अग्नि प्रकाशित हो रहे हो, उसी प्रकार वीर कर्ण और महाराज शल्य रथ पर आरूढ हो शोभा पा रहे थे ।

युद्ध-कुशल राजा शल्य से वीर कर्ण ने कहा—'महावाहो ! आज मैं पाण्डवो का वध करना चाहता हूँ, इसलिये मेरे रथ को शीघ्रता से उनके सामने वढाइये ।' वीर कर्ण ने अपने मन मे निश्चय कर रखा था कि अव मृत्यु ही उसे युद्ध से निवृत्त कर सकेगी । भीष्म और द्रोण तो अवध्य थे, जव शत्रुओ ने उन्हे भी मार डाला, तव उसकी क्या गिनती है । इस ससार में सब

वस्तुए अनित्य है, तब आगामी सूर्योदय तक जीवित रहने का भी कौन दृढ विश्वास कर सकता है ? अस्त्र, बल, पराक्रम, किसी मनुष्य को सफल बनाने मे समर्थ नही है, क्योकि दैव ही सबकी गति का विधान करता है। विद्वान हो या मूर्ख, आयु समाप्त होने पर सभी को यमलोक जाना पड़ता है, अत. आज दुर्योधन के मनोरथ की सिद्धि के लिये मै अपने जीवन को भी त्याग दूंगा ।'

महाराज शल्य बोले—'सूतपुत्र ! तुम पाण्डवो की अवहेलना क्यों करते हो ? वे सबके सब सम्पूर्ण अस्त्र के ज्ञाता, महाधनुर्धर अजेय और सत्य-पराक्रमी है। तुम आवेश मे हो अपनी शक्ति से अधिक बडी बात कह गये। कहाँ श्रेष्ठ अर्जुन और कहाँ तुम ? वीर अर्जुन ने यदुवशियों द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरी से सुभद्रा का अपहरण किया और भगवान शकर को युद्ध मे प्रसन्न किया था। यदि युद्ध-भूमि से नही भागे तो अवश्य ही वीर अर्जुन द्वारा मारे जाओगे। तुम अज्ञानवश महामना श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन को मार डालना चाहते हो, यह तुम्हारा गर्व व्यर्थ ही है। यह उसी प्रकार है, जैसे गीदड युद्ध मे सिंह को मार डालना चाहे। जान पडता है तुम्हारे कोई सुहृद नही है, जो तुम्हें जलती आग में गिरने से रोक सके। नि.सदेह तुम काल के वश में हो, अतः तुम्हें कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान नही है। जो जीवित रहना चाहता है, वह असत्य बाते नही कहता। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो व्यूह रचकर सैनिकों से सुरक्षित हो जाओ और फिर अर्जुन से युद्ध करो।'

कर्ण ने कहा—'शल्य ! तुम तो ऊपर से मित्र के वस्त्र पहने हुए हो, किन्तु वास्तव में शत्रु हो। मैं अपने बाहुबल का भरोसा करके अर्जुन को मारूँगा। मेरे इस निश्चय से मुझे आज कोई पीछे हटा नही सकता।'

महाराजा शल्य बोले—'सूतपुत्र ! जैसे अपनी माँ की गोद में सोया हुआ बालक चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है, उसी

प्रकार तुम अर्जुन को परास्त करना चाहते हो। जैसे मृग सिंह के पास जाकर मारा जाता है, उसी प्रकार तुम भी वीर अर्जुन के पास जाकर नष्ट हो जाओगे। जैसे कोई सर्प वैनतेय (गरुड) का आह्वान करता है, उसी प्रकार तुम भी वीर अर्जुन को बुला रहे हो। जैसे झूठ और सत्य तथा विष और अमृत अपना अलग-अलग प्रभाव रखते है, उसी प्रकार तुम अर्जुन अपने-अपने कार्यों के लिये विख्यात हो।'

कर्ण ने क्रोधित होकर कहा—'शल्य! गुणवान पुरुष के गुणो को गुणवान ही जानता है, गुणहीन नही। तुम तो समस्त गुणो से शून्य हो, फिर गुण-अवगुण को क्या समझो? तुमने मेरे प्रति जो कटु वचन कहे है, उन्हे मैं अपनी प्रतिज्ञा को याद कर तुम्हें क्षमा करता हूँ। मित्र-द्रोह महापाप है, इसलिये तुम अब तक जीवित हो।'

जब दुर्योधन ने कर्ण और शल्य को क्रोधित देखा, तब उसने मित्रभाव से हाथ जोडकर दोनो को शान्त किया। तदनन्तर कौरवो और पाण्डवो ने अपनी-अपनी सेना द्वारा व्यूह रचना की। अब दोनो दल के योद्धा परस्पर युद्ध करने लगे। वीर अर्जुन ने ससप्तको पर आक्रमण कर दिया। उनका भयकर सहार कर वह दूसरी दिशा मे जा युद्ध करने लगा। राधापुत्र कर्ण ने धृष्टद्युम्न और पाण्डव वीरो पर धावा कर दिया। उसने शीघ्रतापूर्वक अस्त्र चलाकर पाण्डव सेना के योद्धा भानुदेव, चित्रसेन, सेनाबिंद, तपन और सूरसेन का सहार कर डाला। कुछ ही समय मे भीमसेन ने कर्ण के पुत्र भानुसेन को यमलोक पहुँचा दिया। वीर कर्ण ने कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उनके बाणो द्वारा वह घायल हो गया। कर्ण ने क्रोधित हो युधिष्ठिर के सारथी तथा घोड़ो को मार डाला। तब पाण्डुनन्दन रणभूमि से दूर चले गये। यह देख वीर कर्ण भीमसेन से युद्ध करने लगा। बलवान भीमसेन के हाथों से छूटे वज्र और विद्युत के समान बाणो ने वीर कर्ण को घायल कि

दिया, जिससे वह अचेत हो गया। तब शल्य भीमसेन से बोले—'पाण्डुनन्दन! पराक्रमी अर्जुन ने कर्ण के वध की प्रतिज्ञा की है। तुम कर्ण को न मारो और वीर अर्जुन की प्रतिज्ञा को सफल होने दो।'

भीमसेन ने कहा—'नृपश्रेष्ठ! मैं अर्जुन की प्रतिज्ञा को जानता हूँ। इसने राजा युधिष्ठिर का तिरस्कार किया है, अतः इसकी जीभ खींच लेना ही चाहता हूँ। मामाजी! आपने जो युक्ति-युक्त बात मुझसे कही है, उसे कडवी दवा के समान मैंने ग्रहण कर लिया है। यदि अर्जुन की प्रतिज्ञा भग हो गयी तो वह जीवित नही रहेगे। और उसके नष्ट होने पर श्रीकृष्ण सहित हम सब यमलोक चले जायेंगे।' तदनन्तर मद्रराज शल्य अचेत सूतपुत्र कर्ण को युद्ध-स्थल से दूर ले गये। वीर कर्ण को भीमसेन द्वारा अचेत देख दुर्योधन ने अपने भाइयो को कर्ण की रक्षा करने का आदेश दिया। दुर्योधन की आज्ञा पाकर श्रुतर्वा, दुर्धर, विपित्सु, विकटानन, सम, निषगी, कवची, पाशी, नद, उपनद, दुषप्रधर्ष, सुबाहु, बातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसंध, शल और सह ने भीमसेन पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन ने विवित्सु, विकटानन, सम, क्राथ नद और उपनद को यमलोक पहुँचा दिया। तदनन्तर शेष कौरव कुमार काल, अतक और यम के समान भयानक भीमसेन को देख भय से व्याकुल हो वहाँ से भाग गये। कौरव-पुत्रो को मरा देख सूत-पुत्र कर्ण के मन मे बड़ा दुःख हुआ और उसने भीमसेन पर पुन आक्रमण किया। भीमसेन ने कर्ण की गज-सेना का भीषण सहार किया। भीमसेन की सहायता करने के लिये सात्यकि कर्ण से युद्ध करने लगा। जब दोनों सेनाओं का सहार करने वाला यह भयानक युद्ध चल रहा था, उसी समय दूसरी ओर जोर-जोर से गाण्डीव धनुष की टकार सुनायी दी। वहाँ पाण्डुनन्दन अर्जुन ससप्तको, कौशल देशीय योद्धाओ और नारायणी सेना का सहार कर रहे थे। वीर अर्जुन को कौरव सेना का

प्रहार करते देख कृतवर्मा, कृपाचार्य, शकुनि और दुर्योधन उनकी रक्षा के लिये वहाँ उपस्थित हुए। यह देख शिखण्डी, चित्रकेतु का महाबली पुत्र सुकेतु वीर अर्जुन की सहायता के लिये पहुँच गये। अब शिखण्डी और सुकेतु से कृपाचार्य युद्ध करने लगे। कृपाचार्य ने शिखण्डी का रथ विध्वस कर दिया, पर वह रणभूमि से भाग गया। तदनन्तर कृपाचार्य ने सुकेतु को यमलोक पहुँचा दिया। यह देख धृष्टद्युम्न शीघ्रता से वहाँ आ पहुँचा और कृतवर्मा से युद्ध करने लगा। कृतवर्मा धृष्टद्युम्न के अस्त्रो से आहत हो पृथ्वी पर गिर पडा और श्रुतर्वा उसे अपने रथ पर बैठाकर रणभूमि से दूर ले गया। राजा युधिष्ठिर को सात्यकि और द्रौपदी के पुत्रो द्वारा ही सुरक्षित देख अश्वत्थामा ने उन पर आक्रमण कर दिया। धर्मराज युधिष्ठिर, द्रौपदी-पुत्र तथा सात्यकि अश्वत्थामा पर अपना पराक्रम न दिखा सके। अश्वत्थामा ने सात्यकि को रथहीन कर दिया। तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर अश्वत्थामा के अस्त्रो से पीडित होकर रणभूमि से भाग गये।

दूसरी ओर जब दुर्योधन ने युद्धभूमि में नकुल और सहदेव को अपने अस्त्रो से घायल कर दिया तब धृष्टद्युम्न दुर्योधन से युद्ध करने लगा। कुछ ही समय में धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के रथ को विध्वस कर उसका कवच और सब आयुध काट दिये। यह देख उसके भाई उसे रथ पर बैठाकर रणभूमि से दूर ले गये। अब अश्वत्थामा अर्जुन के पास जाकर उससे युद्ध करने लगा, किन्तु कुछ ही समय मे वीर अर्जुन के अस्त्रो से वह आहत हो गया। उसी अवस्था मे अश्वत्थामा का सारथी उसे युद्धभूमि से दूर ले गया।

अश्वत्थामा वीर अर्जुन से पराजित हो दुर्योधन, कर्ण और मद्रराज शल्य के पास जाकर बोला—'योद्धाओ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि धृष्टद्युम्न को मारकर ही अपना कवच शरीर से उतारूँगा। यदि अर्जुन और भीम उसकी रक्षा करेगे तो उन्हे

भी मैं युद्धभूमि में मार डालूँगा।' अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अश्वत्थामा युद्धभूमि में आकर धृष्टद्युम्न से युद्ध करने लगा, जो पहले से ही कर्ण से युद्ध कर रहा था। धृष्टद्युम्न को दो वीरो से घिरा देख वीर अर्जुन उसकी सहायता के लिये वहाँ आ पहुँचे। उन्होने अश्वत्थामा को अपने अस्त्रों से अत्यन्त घायल कर दिया। द्रोणकुमार को विह्वल देख उसका सारथी उसे समरागण से दूर ले गया।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—'कुन्तीनन्दन ! दुर्योधन की आज्ञा से कर्ण और अन्य वीर महाराजा युधिष्ठिर को युद्ध में पीडा दे रहे हैं। दुर्योधन भी धर्मपुत्र युधिष्ठिर को मार डालने की इच्छा से अपने दिव्य अस्त्र ले उनका पीछा कर रहा है। मुझे तो भय है कि कौरव-योद्धा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को यमलोक पहुँचा देगे। भरतकुल शिरोमणि राजा युधिष्ठिर उपवास करने से अत्यन्त दुर्बल हो गये है। यद्यपि वे ब्रह्मबल में स्थित है, पर बल प्रकट करने मे असमर्थ है। कर्ण महाराजा युधिष्ठिर का वध करे, उसके पहले ही तुम सूतपुत्र कर्ण को मार डालो। महाबाहो ! कर्ण दुर्योधन के साथ अपने विशाल धनुष से विषधर सर्प के समान विषैले बाणो की वृष्टि करता हुआ तुम्हारे साथ द्वैरथ युद्ध करने इधर आ रहा है। तुम यश, राज्य और सुख की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये दुष्टात्मा कर्ण का वध कर डालो। भरतभूषण ! तुम उसको धर्मात्मा युधिष्ठिर का अपराधी समझ समयोचित कर्तव्य का पालन करो। क्रोध में भरा हुआ सूत-पुत्र यमराज के समान युद्ध कर रहा है। पार्थ ! कर्ण ने राजा युधिष्ठिर को अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया है। उनसे मिलकर उन्हें धीरज बँधाओ।' ऐसा निश्चय कर वे दोनो पुरुष शिरोमणि राजा युधिष्ठिर के पास गये और उन्होने उनके चरणो में प्रणाम किया। अपने समीप आये हुए वीरो का युधिष्ठिर ने अभिनन्दन किया। महान् शक्तिशाली श्रीकृष्ण और अर्जुन को देख उन्हें विश्वास हो गया कि वीर अर्जुन ने युद्ध

स्थल मे कर्ण को मार डाला है। उन्होने कहा—'अर्जुन! कर्ण ने युद्ध मे मेरा पीछा कर मुझे कटु वचनो से अपमानित किया है। मैं इस समय भीमसेन के प्रभाव से ही जीवित हूँ। मैं कर्ण द्वारा किये हुए अपमान को सह नही सकता। मुझे इस जीवन और राज्य से क्या प्रयोजन? आज जिस प्रकार से तुमने कर्ण को मारा है, उसका पूर्ण रूप से वर्णन करो।'

क्रोध से भरे हुए महात्मा युधिष्ठिर की यह बात सुन विजयशील अर्जुन ने कहा—'महाराज! मैं युद्ध मे कर्ण को अवश्य मार डालूँगा। यदि मैं ऐसा न कर सका तो मुझे अधम गति प्राप्त होगी।'

तपस्वी युधिष्ठिर दुःखी होकर बोले—'पार्थ! क्या तुम कर्ण से भयभीत हो भीमसेन को अकेले रणभूमि में छोड़ यहाँ आये हो? यदि तुम यह कह देते कि मैं कर्ण से युद्ध नही करूँगा, तो मैं समयोचित कर्तव्य का निश्चय कर उसके अनुसार कार्य करता। तुमने मुझसे कर्ण के वध की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु तुमने अभी तक उसे पूर्ण नही किया है, इसका मुझे खेद है। वीर अर्जुन! मैंने बहुत से मंगलमय अभीष्ट पदार्थ प्राप्त करने की अभिलाषा की थी, किन्तु उनसे मुझे अब निराश होना पड रहा है।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ! धर्मात्मा युधिष्ठिर अस्वस्थ है, इसलिए हमें रणभूमि से चलना चाहिये। जो करने योग्य होने पर भी असाध्य हो और जो साध्य होने पर भी निषिद्ध हो, ऐसे कर्मो को जो करता है, वह पुरुष अज्ञानी माना जाता है। इस निर्णय को न जानने वाला मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्य का हितकर निश्चय न कर सकने के कारण विवेक-शून्य माना जाता है। जो अज्ञानवश अपने को धर्मज्ञ मानकर धर्म की रक्षा करता है, किन्तु प्राणी की हिंसा पाप न समझकर करता है, वह यथार्थ धर्म को नही समझता। सत्य बोलना उत्तम है। सत्य से वढकर दूसरा कुछ है ही नही, परन्तु सत्पुरुषो द्वारा

आचरण में लाये सत्य के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान अत्यन्त कठिन है। जहाँ मिथ्या बोलने का परिणाम सत्य बोलने के समान मंगलकारक हो, अथवा जहाँ सत्य बोलने का परिणाम असत्य भाषण के समान अनिष्टकारी हो, वहाँ सत्य न बोलकर असत्य ही बोलना उचित है।'

भगवान श्रीकृष्ण के शिक्षाप्रद वचन सुन वीर अर्जुन महाराज युधिष्ठिर से बोला—'भगवन् ! आपको मेरा प्रणाम है। आप मेरे अपराधो को क्षमा करे। महाराज ! अब कर्ण के वध मे विलम्ब नहीं होगा। मैं अभी भीमसेन को सग्राम से छुटकारा दिलाने और सूतपुत्र का वध करने जा रहा हूँ। मेरा जीवन आपका प्रिय करने के लिये ही है।'

महाराज युधिष्ठिर ने कहा—'कुन्तीनन्दन अर्जुन ! अवश्य ही मैने अच्छा कर्म नही किया, जिससे तुम लोगो पर सकट आ पडा है। अब मै वन मे चला जाऊँगा, तो तुम लोगो को कष्ट नही होगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने उनके चरणो मे प्रणाम कर कहा—'राजन् ! वीर अर्जुन सत्य-प्रतिज्ञ है। अब सूतपुत्र कर्ण शीघ्र ही मारा जायेगा। आप जिसका वध चाहते है, उसका जीवन समाप्त ही समझिये।'

युधिष्ठिर हृषिकेश से हाथ जोडकर बोले—'गोविन्द ! आज आपके द्वारा हम लोग घोर विपत्ति से बच गये है।' तदनन्तर वीर अर्जुन ने भक्तिभाव से राजा युधिष्ठिर को प्रणाम किया। धर्मराज युधिष्ठिर ने धनजय को अपने चरणो मे गिरा देख बडे स्नेह से उठा हृदय से लगाया और अनेक आशीर्वाद दिये। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन ने युद्धभूमि की ओर प्रस्थान किया।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'पार्थ ! सग्राम करते समय कर्ण की उपेक्षा न करना। वह महारथी, बलवान, अभिमानी, अस्त्र-विद्या का विद्वान, युद्ध-कुशल, अद्भुत रीति से युद्ध करने

वाला तथा देश-काल को समझने वाला है। कर्ण तेज मे अग्नि के सदृश, वेग मे वायु के समान, दण्ड मे यमराज के तुल्य और दुर्योधन के हित मे तत्पर रहने वाला है। आज तुम पाण्डवों के प्रति दुर्भावना रखने वाले कर्ण का वध कर धर्मराज को प्रसन्न करो। यह तुम्हारे लिये पुण्य कर्म होगा। आज युद्ध का सत्रहवाँ दिन है। दोनो पक्ष की सेना प्राय नष्ट हो गयी है। जैसे चन्द्र और नक्षत्रो से रहित आकाश श्रीहीन-सा जान पडता है, वैसी ही दशा कौरव सेना की है। कर्ण की मृत्यु के पश्चात कौरव-सेना की वह शक्ति भी नष्ट हो जायेगी, अत. कर्ण को मारना अति आवश्यक है।' भगवान श्रीकृष्ण का आदेश सुन वीर अर्जुन हर्ष और उत्साह से सम्पन्न हो गया।

अर्जुन बोला—'गोविन्द! जब आप मेरे स्वामी और सरक्षक है, तब कर्ण पर युद्ध मे मेरी विजय निश्चित है। आज मैं अपने पैने बाणो से कर्ण को मारकर धर्मराज युधिष्ठिर को चिन्तामुक्त कर दूँगा और वे संतुष्ट एव सुखी हो जायेंगे।'

सजय ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज! ग्रीष्म ऋतु बीत जाने पर जैसे मेघ गर्जना करते हैं, उसी प्रकार दोनो पक्ष की सेना युद्धभूमि मे एकत्र हो गर्जना करने लगी। क्रूरतापूर्ण युद्ध मे बिना ऋतु की अनिष्टकारी वर्षा के समान दोनों सेनाओ का सहार होने लगा। रथी रथी को और पैदल पैदल सैनिक को यमलोक पहुँचाने लगे। कृपाचार्य शिखण्डी से, सात्यकि दुर्योधन से, श्रुतश्रवा अश्वत्थामा से, युधामन्यु चित्रसेन से, सहदेव शकुनि से और उत्तमौजा कर्ण-पुत्र सुषण से युद्ध करने लगे। नकुल-पुत्र शतानी ने कर्ण-पुत्र वृषसेन को अपने अस्त्रो से घायल कर दिया। अब नकुल ने कृतवर्मा पर और धृष्टद्युम्न ने कर्ण पर आक्रमण कर दिया। भीमसेन दु.शासन से घोर युद्ध करने लगे। कुछ ही समय मे उत्तमौजा ने कर्णपुत्र सुषेण को यमपुर भेज दिया। युद्ध-स्थल मे वीर अर्जुन के रथ को आया देख अनेक कौरव-योद्धा उनसे युद्ध करने लगे, किन्तु जैसे आँधी बादलो

को छिन्न-भिन्न कर देती है, उसी प्रकार वीर अर्जुन ने बाणों की वर्षा द्वारा उन आक्रमण करने वाले योद्धाओ का सहार कर डाला। जैसे टूटी हुई नौका वाले नाविक किसी द्वीप की शरण लेकर आश्वस्त होते है, उसी प्रकार कौरव-योद्धा वीर अर्जुन से पीडित हो कर्ण के पास पहुँच निर्भय हो गये। फिर मृत्यु को ही युद्ध से निवृत्त होने की निश्चित सीमा समझ वे कर्ण को आगे कर पुनः युद्ध करने लगे। जैसे ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त प्रज्वलित आग सूखे काठ एव घासफ़ूस को जला देती है, उसी प्रकार वीर कर्ण पाण्डव सेना को दग्ध करने लगा। दुर्योधन, दु.शासन, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और शकुनि कर्ण की सहायता करने वही युद्ध-स्थल मे आ पहुँचे।

यह देख वीर अर्जुन श्रीकृष्ण से बोले—'हृषीकेश! मेरे रथ को कर्ण के सामने खडा कर दीजिये। मैं उससे द्वैरथ युद्ध करूँगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने रथ को कर्ण की ओर वढाया।

महाराज शल्य ने कर्ण से कहा—'मान्यवर कर्ण! पाण्डु-पुत्र अर्जुन के रथ का यह घरघर घोष इन्द्र के वज्र की गडगड़ाहट तथा मेघ के समूहों की गर्जना के समान प्रतीत होता है। सत्य पराक्रमी अर्जुन अप्रमेय, आत्मबल से सम्पन्न है। वह कौरव-सेना का सहार करता हुआ इधर ही आ रहा है। यदि तुम उसे आज मार डालोगे, तो वह हम लोगो के लिये श्रेयस्कर होगा। तुम दया और प्रमाद को छोड परशुरामजी से प्राप्त दिव्य-अस्त्रो का स्मरण कर महारथी अर्जुन का सामना करो। तुमने धर्मराज युधिष्ठिर को रथहीन एव घायल कर दिया था। यह देख अर्जुन के नेत्र रक्तवर्ण हो गये है। वे राजाओ का संहार करते हुए तुम्हारे ऊपर चढे आ रहे है। रणभूमि मे तुम्ही कृष्ण और वीर अर्जुन को परास्त करने की शक्ति रखते हो, अतः सव्यसाची अर्जुन से युद्ध करो। जीभ लपलपाते हुए सर्प, गरजते हुए साँड़ एव. भयकर व्याघ्र के समान वीर अर्जुन का

तुम वध करो।'

कर्ण ने कहा—'शल्य ! आज तुम मेरी इन दोनों भुजाओ का बल देखोगे। मैं अकेला ही पाण्डवो की विशाल सेना का सहार कर डालूँगा। मैं वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन का वध किये बिना पीछे नही हटूँगा। यद्यपि ससार मे अर्जुन के समान श्रेष्ठ कोई महारथी उत्पन्न नही हुआ है, फिर भी मैं उससे युद्ध करूँगा। यदि मैं उसके द्वारा मारा गया, तो कौरव योद्धाओ का विनाश निश्चित है। श्रीकृष्ण और अर्जुन को देखकर मुझे बडा भय लगता है, क्योकि अर्जुन युद्ध मे समस्त धनुर्धारियो मे श्रेष्ठ है, और नारायणस्वरूप वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण अपनी मर्यादा से कभी विचलित नही होते। ये दोनो वीर शौर्यसम्पन्न, बलवान और समृद्ध आयुधो वाले महारथी हैं। शल्य ! ऐसे अर्जुन और श्रीकृष्ण का सामना करने के लिये मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन समर्थ है ? वीर अर्जुन से युद्ध करने मे जो मेरा मनोरथ है, वह आज सफल होगा।'

कर्ण की आज्ञा से कौरव-योद्धा वीर अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। जैसे विशाल दावानल वन को भस्म कर डालती है, उसी प्रकार वीर अर्जुन के बाणो द्वारा कौरव-सेना दग्ध होने लगी। सव्यसाची अर्जुन को इस प्रकार पराक्रम प्रकट करते देख कौरव सैनिक जीवन से निराश हो सम्पूर्ण दिशाओ में भागने लगे। जैसे जीव मृत्यु से डरकर धर्म की शरण लेते हैं, उसी प्रकार कौरव वीर अर्जुन के भय से महाधनुर्धर कर्ण की ओट मे छिपने लगे, तब उसने अर्जुन के वध का निश्चय किया। कुछ ही क्षण मे सूतपुत्र कर्ण ने अपने तीक्ष्ण अस्त्रो द्वारा केकय राजकुमार विशोक, उसके सेनापति उग्रकर्मा और वीर सात्यकि ने कर्ण के पुत्र प्रसेन को यमपुर पहुँचा दिया। तदनन्तर राधापुत्र कर्ण ने क्रोधित हो धृष्टद्युम्न के पुत्र को यमलोक भेज दिया। यह देख दु शासन उत्साहपूर्वक भीमसेन से युद्ध करने लगा। भीमसेन ने अपने पुराने वैर, दु ख और अपमानो का

स्मरण कर दुःशासन के सारथी को मार डाला। दु.शासन दूसरे रथ पर बैठकर पुनः भीमसेन से भयकर युद्ध करने लगा। भीमसेन ने गदा के प्रहार से उस रथ को भी चूर-चूर कर उसे घायल कर दिया। फिर भीमसेन रथ से उतरकर शीघ्रता-पूर्वक अर्धमृत दु शासन की ओर दौडे। भीमसेन ने दुर्योधन, कर्ण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा के देखते-देखते अपने तीखे अस्त्रों द्वारा दु.शासन का सिर धड़ से अलग कर दिया और उसका रक्त पीने लगे। भीमसेन का प्रलयकालीन स्वरूप देख अनेक योद्धा भय से मूर्छित हो गये।

भीमसेन ने भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन से कहा—'वीरो! मैंने दु.शासन के रक्त का पान करने की प्रतिज्ञा आज सत्य कर दी है। जब दूसरा यज्ञ-पशु दुरात्मा दुर्योधन मेरे द्वारा मारा जायेगा, तब मुझे शान्ति प्राप्त होगी।' दु.शासन की मृत्यु से दुःखित हो उसके दस भाई निषगी, कवची, पाशी, दण्ड-धर, धनुर्गह, अलोलुप, शल, सन्ध, वातवेग और सुवर्चा भीम-सेन से युद्ध करने लगे, किन्तु कुछ ही समय मे वीर भीमसेन ने उन्हे यमलोक पहुँचा दिया। शूरवीर युधामन्यु ने अवसर पाकर चित्रसेन का मस्तक काट डाला। अपने छोटे भाई की मृत्यु से दु खित हो राजा दुर्योधन किंकर्तव्यविमूढ हो गया। सब कौरव शोकसागर मे डूबे हुए दुर्योधन को घेर कर खड़े हो गये।

अश्वत्थामा ने दुर्योधन को सान्त्वना देते हुए कहा—'राजन्! पाण्डवो से सधि कर लो। विरोध से कोई लाभ नही है। मेरे पिता और भीष्म पितामह अस्त्र विद्या के महान ज्ञाता थे। जब वे दोनो युद्ध मे मारे गये, तब दूसरो की तो बात ही क्या? सधि होने पर पाण्डवो के साथ मिलकर तुम चिरकाल तक राज्य करना। वीर अर्जुन मेरे कहने से शान्त हो जायेगा। श्रीकृष्ण भी तुम लोगो से विरोध नही चाहते। युधिष्ठिर तो सभी प्राणियो के हित मे ही लगे रहते है, अत. वे भी मेरा कथन स्वीकार कर लेगे। भीम, नकुल और सहदेव धर्मराज के अधीन

है, इसलिये वे भी मान जायेंगे। पाडवो के साथ सधि होने पर ही प्रजा का कल्याण होगा, अतः प्रसन्न हो जाओ। यदि मेरी बात नही सुनोगे तो निश्चय ही युद्ध मे शत्रुओ के हाथ से तुम भी मारे जाओगे। धर्मराज युधिष्ठिर दयालु, सामर्थ्यशाली, बुद्धिमान, धैर्यवान और सम्पूर्ण शास्त्रो के ज्ञाता हैं, अत तुम्हे तुम्हारा उचित राज्य, भाग दे देंगे। धर्मात्मा युधिष्ठिर आपस के वैर को भूल जायेंगे, क्योकि वे आत्मीय जन की भूल को अक्षम्य अपराध नही मानते, अत निश्चित ही वे युद्ध से निवृत्त हो जायेंगे। यदि तुम जीवित रहे, तो तुम्हे राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति पुन हो सकती है। मैं तुम्हारा हितैषी और मित्र हूँ, अत मेरी बात मान लो। मेरी यह निश्चित धारणा है कि कर्ण नरश्रेष्ठ अर्जुन को कदापि जीत नही सकता, अत. भयकर विनाश होगा।'

दुर्योधन ने कहा—'सखे! भीमसेन ने जिस प्रकार दु शासन का वध किया है, वह भीषण दृश्य इस समय भी मेरे हृदय मे स्थित होकर पीडा दे रहा है। जैसे भयकर वायु महापर्वत मेरु का सामना नही कर सकती, उसी प्रकार अर्जुन रणभूमि मे वीर कर्ण का वेग नही सह सकता। इस समय अर्जुन अत्यधिक परिश्रम से थक गया है, अत कर्ण उसे मार डालेगा, इसलिये सधि असभव है।'

जैसे जीव को यमराज का भय रहता है, उसी प्रकार भीमसेन का पराक्रम देख कर्ण के मन मे अत्यन्त भय समा गया। महाराजा शल्य कर्ण के मुख की आकृति देख उसके मन का भाव समझ गये। वे शत्रुदमन कर्ण से बोले—'राधानन्दन! तुम खेद न करो और पुरुषार्थ का भरोसा कर वीर अर्जुन पर आक्रमण कर दो। यदि विजय हुई, तो तुम्हारी बहुत बडी कीर्ति ससार मे फैलेगी, और पराजय होने पर अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति निश्चित है।' अमित तेजस्वी शल्य की यह बात सुन वीर कर्ण ने अर्जुन से युद्ध करने का दृढ निश्चय किया। उसने

भीमसेन पर आक्रमण कर दिया जो दण्डधारी काल के समान गदा लिये कौरवों का वध कर रहे थे। कृपाचार्य, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, शकुनि पुत्र उलूक, वृक, क्राथ और देवावृध ने वीर कर्ण की सहायता करने के लिए पाण्डव वीरो पर आक्रमण किया। कृपाचार्य ने कुलिन्द राजा के पुत्रों को यमलोक पहुँचा दिया। सहदेव के पुत्र ने वृक और देवावृध को धराशायी कर दिया। यह देख कर्ण पुत्र वृषसेन ने वीर अर्जुन पर आक्रमण किया, परन्तु धनुर्धर अर्जुन ने उसे मृत्यु के घाट उतार दिया। तदनन्तर वीर कर्ण ने भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। महामना अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम कर कर्ण से युद्ध करने लगे। पुरुषसिह कर्ण और वीर धनजय को युद्ध करते देख योद्धाओं के मन में किसकी विजय होगी, इस पर सशय होने लगा। दोनो के पास श्रेष्ठ आयुध थे और दोनों के ही कार्य विख्यात थे। कुछ कहते थे कि प्रलय काल के दो सूर्य रणभूमि में चराचर जगत को दग्ध करने के लिये प्रकट हुए है। ये दोनों ही अजेय और शत्रुओ का विनाश करने वाले हैं। वीर कर्ण की सहायता के लिये दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि और कृपाचार्य पहुँच गये। इन सबने एक साथ वीर धनजय और भगवान श्रीकृष्ण पर आक्रमण कर दिया। किन्तु अजेय अर्जुन ने उनके अस्त्रों को शीघ्रता से काट डाला। सूतपुत्र कर्ण और वीर अर्जुन दोनो तीक्ष्ण अस्त्रों द्वारा एक-दूसरे को क्षत-विक्षत कर रहे थे। शत्रु-विजयी अर्जुन जिन-जिन अस्त्रों द्वारा राधानन्दन पर प्रहार करते, उन्हे वे शीघ्र ही नष्ट कर डालते। जब वीर अर्जुन ने कर्ण पर आग्नेय-अस्त्र का प्रयोग किया, तब वीर कर्ण ने वरुणास्त्र से उसे शान्त कर दिया। अब दोनो महापराक्रमी वीर एक-दूसरे पर अनेक दिव्य एव तेजस्वी अस्त्रो का प्रयोग और निवारण करने लगे।

वसुदेवनदन बोले—'वीर अर्जुन ! तुमने जितने दिव्य अस्त्रों से कर्ण पर प्रहार किया है, उसने अपने अस्त्रो द्वारा उन्हे नष्ट

कर डाला है। तुमने जिस धैर्य से अनेक बार शत्रुओं को परास्त किया है, उसी धैर्य को धारण कर आज कर्ण को भी मार डालो और यह समृद्धशालिनी पृथ्वी राजा युधिष्ठिर को दे अनुपम यश प्राप्त करो।'

अर्जुन ने कहा—'प्रभो! मैं जगत के कल्याण और सूतपुत्र के वध के लिये अनेक दिव्य और भयकर अस्त्रो को प्रकट करूँगा, इसके लिए आप मुझे आज्ञा दे।' भगवान श्रीकृष्ण से आज्ञा पाकर सव्यसाची अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र को प्रकट करने के पहले ब्रह्माजी को नमस्कार किया। जब वीर कर्ण ने उस ब्रह्मास्त्र का भी निवारण कर डाला, तब अर्जुन दूसरे दिव्य अस्त्रो का कर्ण पर प्रयोग करने लगे। वीर अर्जुन के दिव्य अस्त्रो द्वारा कर्ण और कौरव-सेना पीडित होने लगी और राजकुमार सभापति को अर्जुन ने यमलोक भेज दिया। इसी समय पाण्डु-पुत्र अर्जुन के धनुप की प्रत्यचा अधिक खीचने के कारण सहसा भीषण घोप के साथ टूट गयी। उस अवसर पर सूतपुत्र कर्ण ने वीर अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण पर बडे वेग से अस्त्र चलाये। यह देख कौरव-योद्धा सिहनाद करने लगे कि अर्जुन और श्रीकृष्ण अब वीर कर्ण के वश मे हो गये है। अतिशीघ्र कुन्तीकुमार अर्जुन ने नूतन प्रत्यचा गाण्डीव पर चढा ली और कौरव वीरो को क्षत-विक्षत करने लगे। वीर अर्जुन के गाण्डीव से वेगपूर्वक छूटे हुए भयकर वेगशाली अस्त्रो की चोट से कर्ण के अग विदीर्ण हो गये। अस्त्रो के कठिन आघात से कर्ण विचलित हो उठा, किन्तु धैर्य धारण कर रणभूमि मे ही डटा रहा। कौरव योद्धा कर्ण की यह अवस्था देख रणभूमि से भाग गये। सम्पूर्ण धनुर्धारियो मे श्रेष्ठ वे दोनो दुर्जय वीर शरीरो का मोह छोड़ युद्ध कर रहे थे। जब दोनो वीरो मे घमासान युद्ध हो रहा था, तब पाताल निवासी अश्वसेन नामक नाग, जो अर्जुन से खाण्डव वन दाह के समय पीडित हो गया था, वैर का बदला लेने वीर कर्ण के तरकस मे वाण बनकर घुस गया।

वीर कर्ण जब उस सर्पमुख वाण का अर्जुन पर प्रयोग कर रहा था, तब महामनस्वी मद्रराज शल्य ने कर्ण से कहा—'कर्ण! तुम्हारा यह वाण शत्रु के कंठ में नही लगेगा, अतः सोच-विचारकर प्रयोग करना।' यह सुन सूतपुत्र कर्ण के नेत्र लाल हो गये। 'मद्रराज! कर्ण दो बार वाण का सधान नही करता। मैं कपटपूर्वक युद्ध भी नहीं करूँगा।' ऐसा कह कर्ण ने उस वाण को वीर अर्जुन पर छोड़ दिया। उस प्रज्वलित वाण को वीर अर्जुन की ओर वेग से आते देख भगवान श्रीकृष्ण ने शीघ्रता से अपने रथ को हटा लिया। कर्ण का चलाया हुआ वह सर्पमुख वाण वीर अर्जुन के किरीट में जा लगा। उस वाण के आघात से वीर अर्जुन का वह जगमगाता हुआ तेजस्वी किरीट विषाग्नि से प्रज्वलित हो पृथ्वी पर गिर पडा। दिव्य मुकुट के गिर जाने पर वीर अर्जुन को तनिक भी व्यथा नही हुई। वीर अर्जुन ने क्रोधित हो अनेक शस्त्रों द्वारा कर्ण पर प्रहार किया, जिनके आघात से उसके मस्तक के आभूषण और दोनो कुण्डल पृथ्वी पर गिर पड़े, और कवच विक्षत हो गया। तत्पश्चात वीर अर्जुन ने कर्ण पर एक तेज वाण का प्रयोग किया, जिससे वह मूर्छित हो गया, किन्तु पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ने सकट में पडे कर्ण को मारने की इच्छा नहीं की। जब कर्ण मूर्छा से जागा, तब धैर्य धारण कर पुनः वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा। अब काल प्रभावित कर्ण के रथ का बायाँ पहिया पृथ्वी में धंसने लगा। यह देख सूतपुत्र समरांगण में व्याकुल हो खिन्न मन से धर्म की निन्दा करने लगा। उसने मन ही मन कहा कि धर्मज्ञ पुरुषों ने सदा ही कहा है कि धर्मपरायण पुरुष की धर्म सदा रक्षा करता है। मैंने अपनी शक्ति और ज्ञान के अनुसार सदा धर्म पालन करने का प्रयत्न किया है, फिर वह अपने भक्तों की रक्षा क्यों नही करता ? यह विचार कर कर्ण पुनः वीर अर्जुन से युद्ध करने लगा। अपने पहिये को पृथ्वी में अधिक फंसा देख कर्ण रथ से कूद पड़ा और उसे निकालने का प्रयत्न करने लगा।

उसने धनुर्धर अर्जुन से कपट त्यागकर धर्म मे स्थित हो दो घडी युद्ध बन्द करने को कहा—'पाण्डुनन्दन ! तुम अद्वितीय धनुर्धर एव विशिष्ट वीर हो, अत कायरो के मार्ग पर न चलो। तुम्हे कपटपूर्ण व्यवहार का परित्याग करना चाहिये। जो युद्ध से मुँह मोड चुका हो, जो ब्राह्मण हो, जो प्राणो की भीख माँगता हो, जो हाथ जोडकर शरण मे आया हो और जिसके कवच-आयुध नष्ट हो गये हो, उस पर उत्तम व्रत का पालन करनेवाले, शस्त्रो का प्रहार नही करते। तुम युद्ध के धर्मों को जानते हो, वेदान्त का तुमने अध्ययन किया है, तुम आत्म-वल और सदाचार से सम्पन्न हो, इसलिये जव तक मैं रथ पर न वैठ जाऊँ, तव तक मुझे अपने अस्त्रो से व्याकुल न करो।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा—'राधानन्दन ! सौभाग्य की वात है कि अव तुम्हे धर्म की याद आ रही है। प्राय नीच पुरुप विपत्ति मे पडने पर ही देव की निन्दा करते हैं, अपने किये हुए कुकर्मो की नही। जव तुम और कौरवो ने द्रौपदी को अप-मानित किया था, तव तुम्हारे मन मे धर्म का विचार कहाँ चला गया था ? कौरव सभा मे जूए के खेल द्वारा शकुनि ने युधिष्ठिर को छलपूर्वक हराया, दुर्योधन ने तुम्हारी ही सम्मति से भीमसेन को अन्न मे विष मिलाकर खिलाया और उन्हे सर्पो से डसवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? जव युद्ध मे वहुत-से महारथियो ने मिलकर नि.शस्त्र वालक अभिमन्यु को मार डाला, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ गया था ? उन अवसरो पर भी जव यह धर्म नही था, तो आज भी नही है। अव धर्म का आश्रय लेने से तुम्हारा छुटकारा इस मृत्यु से नही हो सकता। पाण्डव सदैव अपने धर्म से सुरक्षित हैं, अत इनके द्वारा धृतराष्ट्र के पुत्रो का नाश अवश्य होगा।' भगवान श्रीकृष्ण के आदेश से वीर अर्जुन ने एक तेजस्वी वाण द्वारा कर्ण का सिर धड से अलग कर दिया। इस अद्भुत दृश्य को देख पाण्डव वीरो ने भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के साथ उच्च स्वर मे शख

वजाये। शूरवीर कर्ण को वाणो से विधा पृथ्वी पर पड़ा देख मद्रराज शल्य रथ सहित वहाँ से भाग गया। अपने पुत्र की ओर वार-वार देखते हुए मन्द किरणों वाले सूर्यदेव धीरे-धीरे अस्ताचल को चले गये।

वीर कर्ण के मारे जाने पर दुर्योधन की आँखों मे आँसू भर आये और वह दीन-दुःखी हो गया। महाराजा शल्य विमूढचित्त होकर दुःख से आँसू बहाते हुए दुर्योधन के पास जाकर वोले—'राजन्! आज कर्ण और अर्जुन में जैसा युद्ध हुआ है, वैसा पहले कभी नही हुआ था। कान्तिमान कर्ण प्रज्वलित अग्नि के तुल्य प्रकाशित था, किन्तु पार्थ के वाणरूपी जल से वह शान्त हो गया है। युद्ध के द्वारा उत्तम यज्ञ का उपार्जन कर पुत्र सहित कर्ण अर्जुन के तेज से भस्म हो गया है। याचको के माँगने पर जिसने कभी, 'नही' नही कहा, वह धर्मात्मा कर्ण द्वैरथ युद्ध मे वीर अर्जुन के द्वारा मारा गया है। जिसका सहारा लेकर कौरवों ने पाण्डवो से वैर किया था, वह वीर कर्ण कौरवो की विजय की आशा और सुख लेकर स्वर्ग को चला गया है। निश्चय ही देव पाण्डवों के पक्ष मे है। वह उनकी तो रक्षा करता है और हमारा विनाश। तुम्हारे अर्थ की सिद्धि के लिये प्रयत्न करने वाले योद्धा प्राय. शत्रुओ के हाथ से मारे गये है। यह सव प्रारब्ध का खेल है, ऐसा जानकर धैर्य धारण कर शोक न करो।'

महाराज शल्य की वात सुन दुर्योधन उदास एव दु.खी हो गया। वीर कर्ण की मृत्यु का अप्रिय समाचार सुन राजा धृत-राष्ट्र और माता गाधारी निश्चेष्ट हो पृथ्वी पर गिर पडे। महात्मा विदुर और सजय ने उन दोनों को सभाला और भवि-तव्यता को ही प्रवल मान आश्वासन दिया, तव वे दोनो अचेत-से हो चुपचाप बैठ गये।

भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन ने अब अपने-अपने शखों से ध्वनि की, जिसके भय से कौरव-योद्धा रणभूमि छोड-

कर भाग गये । वे दोनो वीर महात्मा युधिष्ठिर के और अन्य पाण्डव अपने-अपने शिविरो मे चले गये । भगवान श्रीकृष्ण और वीर अर्जुन ने शिविर मे नृपश्रेष्ठ युधिष्ठिर का दर्शन कर प्रणाम किया। उन्हे देख वे आनन्द के आँसू वहाने लगे । वसुदेव-नन्दन कृष्ण ने कर्ण के मारे जाने का वृतान्त उन्हे कह सुनाया । उन्होने कहा—'राजन् । अव आप लोग सग्राम से मुक्त हो गये, अत आगे जो कार्य करने है, उन्हे शीघ्र पूर्ण कीजिये ।'

धर्मपुत्र ने कहा—'प्रभो ! आपके रहते इस महान कार्य का सम्पन्न होना कोई आश्चर्य की वात नही है । महावाहो ! आपकी वुद्धि के प्रसाद से ही पार्थ ने प्रयत्नपूर्वक कर्ण का वध किया है। भगवन् ! आपकी कृपा से ही धनजय युद्ध में शत्रुओ पर विजयी हुआ है। गोविन्द ! जव आप युद्ध मे अर्जुन के सारथी वने थे, तभी हमे विश्वास हो गया था कि हमारी विजय निश्चित एव अटल है । माधव ! आप जैसे स्वामी और सरक्षक के द्वारा सुरक्षित होकर आज मैं भाइयो सहित भूमण्डल का राजा कहलाऊँगा।'

प्रात काल होने पर अश्वत्थामा और अन्य राजाओ की सलाह से राजा दुर्योधन ने महाराजा शल्य को विधिपूर्वक सेना-पति वनाया।'

तपस्वी कृपाचार्य वोले—'महाराज ! क्षत्रियों के लिए युद्ध-धर्म से वढकर कोई कल्माणकारी मार्ग नही है । अनघ ! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, वीर कर्ण, जयद्रथ, तुम्हारे सभी भाई और तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण स्वर्ग चले गये हैं, अव कौन बचा है, जिसका हम आश्रय ग्रहण करें ? श्रीकृष्ण की क्षत्रछाया मे रहने के कारण वीर अर्जुन अजेय है। अत्यन्त भयकर सग्राम को आरम्भ हुए आज सत्रह दिन हो गये । इसी समय मे पाण्डवों ने हमारी विशाल सेना को नष्ट कर दिया है। जिस समय जयद्रथ वीर अर्जुन के वाणो का निशाना वना, उस समय वीर कर्ण, द्रोणाचार्य, कृतवर्मा, दु शासन, तुम और मैं उसकी सहायता

न कर सके। हम सबको परास्त कर वीर अर्जुन ने जयद्रथ को यमलोक पहुँचा दिया। अपनी सेना में अब कौन वीर है, जो पाण्डु-पुत्र अर्जुन पर विजय पा सके। जैसे चन्द्रमा के उदित न होने पर रात्रि अंधकारमयी दिखायी देती है, उसी प्रकार हमारी सेना योद्धाओं के मारे जाने से श्रीहीन हो रही है। राजन् ! द्यूत-सभा मे भीमसेन ने जो बात कही थी, उसे सत्य कर दिखाया और जो शेष है उसे भी वह अवश्य पूर्ण करेगा। पाण्डव साधु-पुरुष हैं, तो भी तुमने अकारण ही उनके साथ बहुत से अनुचित व्यवहार किये, उन्हीं का यह परिणाम तुम्हें भोगना पड रहा है। अब तुम अपने जीवन की रक्षा करो, क्योंकि आत्मा ही समस्त सुखो का भाजन है। जैसे पात्र के फूट जाने पर उसमे रखा हुआ जल चारो ओर वह जाता है, उसी प्रकार शरीर के नष्ट होने से सुख का भी अन्त हो जाता है। विद्वानो ने कहा है कि जब अपना बल कम या बराबर जान पड़े, तब शत्रु के साथ संधि कर लेनी चाहिए। हम लोग इस समय बल और शक्ति में पाण्डवों से हीन हो गये है, अतः मै उनसे संधि करना ही उचित समझता हूँ। जो अपने कल्याण की बात नही सुनता और श्रेष्ठ पुरुषो का अपमान करता है, वह नष्ट हो जाता है। यदि राजा युधिष्ठिर से नम्रतापूर्वक हम अपना राज्य माँगे तो श्रेयस्कर होगा। धर्मराज युधिष्ठिर दयालु है। वे राजा धृतराष्ट्र और श्रीकृष्ण के कहने से तुम्हें उचित राज्य-भाग दे देगे। मैं संधि को ही तुम्हारे लिये कल्याणकारी मानता हूँ, अतः अब पाण्डवों के साथ युद्ध न करो।'

तपस्वी कृपाचार्य के ऐसा कहने पर दुर्योधन दो घड़ी तक सोचता रहा, फिर बोला—'आचार्य ! एक हितैषी सुहृद को जो कुछ कहना चाहिये, वह सब आपने मुझसे कहा है। जैसे मरणासन्न रोगी को औषधि अच्छी नही लगती, उसी प्रकार आपने जो उत्तम मार्ग मुझे बताया है, वह मुझे स्वीकार नही होता। हम लोगों ने छल से जूए में राजा युधिष्ठिर का धन हरण किया

था, अत. अब वे हम लोगो पर विश्वास नही करेंगे। श्रीकृष्ण मेरे यहाँ दूत बनकर आये थे, किन्तु मैंने उन्हे अपमानित किया था, इसलिए मेरे अपराध को वे अब क्षमा नही कर सकते हैं। सभा मे अपमानित द्रौपदी ने जो विलाप किया था, उसे भीम कैसे सहन कर सकते है? अस्त्रहीन, असहाय अभिमन्यु को हमारे योद्धाओ ने क्रूरता के साथ मारा था, उसे याद कर वीर अर्जुन हमे यमलोक क्यो नही पहुँचायेंगे? धृष्टद्युम्न और शिखण्डी के बन्धुओ को मेरे योद्धाओ ने स्वर्ग पहुँचा दिया है, अत वे मेरे हित की बात सोचेंगे भी नही। जब से द्रौपदी को हमने क्लेश दिया है, तब से वह मिट्टी की वेदी पर सोती है। उसने मेरे विनाश का सकल्प कर रखा है, अत· बदला चुकाये बिना वह हमारे करुण वचन सुनेगी भी नही। द्रौपदी अपने पतियो के अभीष्ट की सिद्धि के लिये नित्य कठोर तपस्या करती है और वैर की अग्नि को प्रज्वलित करती रहती है, जो किसी प्रकार बुझाई नही जा सकती। मैं समस्त राजाओ के ऊपर सूर्य के समान प्रकाशित होकर अब दास की भाँति युधिष्ठिर के पीछे-पीछे कैसे चल सकता हूँ? मैं बहुत-से भोग भोगकर और प्रचुर दान दे अब दीन पुरुषों की भाँति जीवन कैसे यापन कर सकता हूँ? आपने जो स्नेहवश हित की बात कही है, उसमे न तो मैं दोष निकालता हूँ, न इसकी निन्दा ही करता हूँ। मेरी यह मान्यता है कि अब किसी प्रकार सधि का अवसर नही रह गया है। अब युद्ध ही उत्तम नीति का पालन होगा। ससार मे कोई भी सुख सदा नही रहता, फिर राष्ट्र और यश कैसे स्थिर रह सकते हैं? अब युद्ध के अतिरिक्त दूसरे उपायो से कीर्ति मुझे नही मिल सकती। जो बड़े-बडे यज्ञो का अनुष्ठान या सग्राम मे शरीर का त्याग करे, वह क्षत्रिय ही महत्व को प्राप्त होता है। जिनके आचरण श्रेष्ठ हैं, जिनका धर्म सत्य है, जो आदिदेव भगवान का स्मरण करते है, वे बुद्धिमान निश्चय ही स्वर्ग मे जाते हैं। वृद्ध पितामह, बुद्धिमान आचार्य, द्रोण,

जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन और अनेक योद्धा युद्ध में प्राणो को त्याग कर इन्द्रलोक मे प्रतिष्ठित है। यदि सबका वध कराने के पश्चात मै अपने प्राणो की रक्षा करूं, तो सारा ससार मेरी निन्दा करेगा। इसलिये अब युद्ध के द्वारा मै भी स्वर्गलोक प्राप्त करूंगा।'

दुर्योधन की यह बात सुन सबने उसका अभिनन्दन किया और युद्ध करने के लिये तत्पर हो गये। दुर्योधन ने अपने योद्धाओ से कहा—'वीरो ! आज मै अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन और अन्य पाण्डवो को मारूँगा, तभी कर्ण के ऋण से मुक्त हो सकूंगा।'

## शल्य

कौरव-सेना का हर्षनाद सुन महाराजा युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'माधव ! दुर्योधन ने मद्रराज शल्य को सेनापति बनाया है। अब जो उचित और आवश्यक कार्य हो, उसका सम्पादन कीजिये।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'महाराज ! मद्रराज शल्य बलशाली, महातेजस्वी, महामनस्वी, विद्वान, अद्भुत युद्ध करने वाले और शीघ्रतापूर्वक अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग करने वाले है। पुरुषसिह ! आपका पराक्रम सिह के समान है। आपके अतिरिक्त युद्धस्थल मे दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है, जो महाराजा शल्य का सामना कर सके। युद्ध मे मद्रराज के मारे जाने पर आपकी विजय निश्चित है। 'ये मेरे मामा है' ऐसा समझकर आपको उनपर दया नही करनी चाहिये।'

कौरव वीरो ने निश्चय किया कि हम लोग शत्रुओ के साथ अव अकेले युद्ध नही करेगे। ऐसा नियम बनाकर वे सब महारथी मद्रराज शल्य को आगे कर युद्धभूमि मे बढे। प्रतापी

शल्य ने कौरव-सेना से सर्वतोभद्र नामक व्यूह की रचना की। मद्रराज शल्य उस व्यूह के मुख्य स्थान मे थे। राजा युधिष्ठिर ने शल्य को मार डालने की इच्छा से उन पर आक्रमण किया, तदनन्तर दोनो पक्षों की सेनाओ मे भयकर युद्ध होने लगा। भीमसेन ने अपनी चतुरगिनी सेना द्वारा कौरवो को चारो ओर से घेर लिया और सैनिको का सहार करने लगे। धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने धर्मराज युधिष्ठिर को आगे कर मद्रराज शल्य पर धावा कर दिया। महारथी सात्यकि शकुनि पर टूट पडे। रण-दुर्मद नकुल ने कर्ण-पुत्र चित्रसेन को यमलोक पहुँचा दिया। अपने भाई को मरा देख कर्ण के दो महारथी पुत्र सुषेण और सत्यसेन वीर नकुल से भिड गये। नकुल ने कुछ ही समय मे महारथी सुषेण और सत्यसेन को मृत्यु के घाट उतार दिया। वीर कर्ण के पुत्रो की मृत्यु देख मद्रराज शल्य क्रोध मे भर पूर्ण वेग से अब पाण्डव सेना का सहार करने लगे। प्रलय-काल के यमराज के समान मद्रराज शल्य ने अपने तीखे बाणो द्वारा पाण्डव सेना को आच्छादित कर दिया। यह देख भीमसेन ने अपने अस्त्रो द्वारा उन्हें घायल कर दिया। मद्रराज शल्य को चारो ओर से अवरुद्ध हुआ देख कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृत-वर्मा, उलक, शकुनि और कौरव-पुत्र उनकी रक्षा करने लगे। शल्य-पुत्र ने सहदेव पर धावा किया, किन्तु कुछ ही समय मे वह सहदेव के द्वारा मारा गया। भीमसेन ने कृतवर्मा और मद्र-राज शल्य के घोड़ो को मार गिराया। मद्रराज शल्य अब भीम-सेन से गदा-युद्ध करने लगे। भीमसेन की गदा के प्रहार से मद्रराज व्याकुल हो गये, तब कृपाचार्य उन्हें अपने रथ पर बिठाकर युद्ध भूमि से दूर ले गये। महाराजा दुर्योधन से चेकि-तान भिड गया, पर उसे दुर्योधन ने यमपुर भेज दिया। कौरव-वीर स्वर्ग प्राप्ति की अभिलाषा से युद्ध कर रहे थे। उन्होने महाराजा युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया, किन्तु चन्द्रसेन और द्रुमसेन उनके द्वारा मारे गये। मद्रराज शल्य पुन युद्ध-

भूमि मे आ पहुँचे और पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर से युद्ध करने लगे। मद्रराज शल्य ने अद्भुत पराक्रम प्रकट किया, किन्तु परस्पर अस्त्रो के आघात से दोनो वीरो के शरीर से रक्त की धारा बहने लगी। अश्वत्थामा और दूसरे कौरव-योद्धा वीर अर्जुन से युद्ध कर रहे थे। जैसे वर्षा ऋतु में दो विशाल मेघखण्ड पानी बरसाते है, उसी प्रकार वे दोनो वीर वहाँ भयकर बाणो की वर्षा कर रहे थे। भरद्वाजनन्दन अश्वत्थामा ने सबके देखते-देखते महारथी सुरथ को यमलोक पहुँचा दिया। सव्यसाची ने दो घडी तक गुरुपुत्र का आदर करने के पश्चात अश्वत्थामा के रथ को सारथी एव घोड़ो सहित विध्वस कर दिया। यह देख कौरव योद्धा अश्वत्थामा को युद्धभूमि से दूर ले गये। महात्मा युधिष्ठिर मद्रराज शल्य से इस प्रकार युद्ध कर रहे थे, जिस प्रकार इन्द्र ने राजा बलि से किया था। तत्पश्चात महात्मा युधिष्ठिर ने शौर्यशाली नरवीर योद्धाओ मे श्रेष्ठ नरेश्वर शल्य को अपने तीक्ष्ण अस्त्रों से घायल कर दिया। तदनन्तर महात्मा युधिष्ठिर ने एक भयकर तथा दैदीप्यमान शक्ति मद्रराज पर चलाई। वह शक्ति कालरात्रि और ब्रह्मदण्ड के समान अमोघ थी। वह ब्रह्मद्रोहियो का विनाश करने वाली तथा लक्ष्य वेधने में अचूक थी। वह भीषण शक्ति मद्रराज की छाती मे समा गई और वे वज्राहत पर्वत शिखर की भाँति पृथ्वी पर गिरकर यमलोक चले गये।

## दुर्योधन की मृत्यु

मद्रराज के छोटे भाई विचित्र ने कुन्तीनन्दन पर आक्रमण कर दिया, किन्तु वह भी उनके द्वारा मारा गया। कुछ ही समय मे सात्यकि ने राजा शल्व और क्षेमधूर्ति का वध कर डाला। यह देख कौरव-सेना युद्धभूमि से भाग गयी। भीष्म, द्रोण और कर्ण के मारे जाने पर कौरव-सैनिक एव योद्धाओ को जो भय

और दु ख प्राप्त हुआ था, वही शोक और भय पुन महाराजा शल्य के मारे जाने पर उनके हृदय को विदीर्ण करने लगा। वे कह रहे थे कि आज सत्यपरायण राजा युधिष्ठिर शत्रुहीन हो गये है और पापी दुर्योधन अपनी देदीप्यमान लक्ष्मी से भ्रष्ट हो गया है। सम्पूर्ण जगत के स्वामी जनार्दन श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं और जिन्होने धर्म का आश्रय ले रखा है, उनकी विजय क्यो न हो ? अपनी सेना का पलायन देख राजा दुर्योधन स्वय ही पाण्डवो से घोर युद्ध करने लगा। उसने अपने सहस्रो तीखे वाणों से पाण्डवो को आच्छादित कर अद्‌भुत पराक्रम प्रकट किया। धर्मराज युधिष्ठिर ने दुर्योधन और कृपाचार्य को रथ मे विहीन कर दिया, तव अश्वत्थामा उन्हे अपने रथ पर चढाकर अन्यत्र ले गया। अव शकुनि कौरव-योद्धाओ को अपने सामने रखकर पाण्डवो से युद्ध करने लगा, किन्तु दो घडी युद्ध करने के पश्चात वह रणभूमि से भाग गया।

यद्यपि शूरवीर कौरव-योद्धा रण से हटने वाले नही थे, किन्तु वीर अर्जुन के गाण्डीव धनुप की मार खाकर वे दुर्योधन के देखते-देखते रणभूमि मे भाग गये। अव दुर्योधन ने धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के रथ का अपने तीखे वाणो द्वारा ध्वस कर उसे पराजित कर दिया। विपत्ति मे पडा दुर्योधन एक घोडे पर सवार हो रणभूमि से दूर भाग गया। थोडी दूर जाने के पश्चात राजा दुर्योधन को धर्मशील वुद्धिमान विदुरजी की वात याद आने लगी। उसका हृदय शोक और दु ख से सतप्त हो गया। शरीर मे भीपण घाव थे, अत उसने एक सरोवर मे प्रवेश किया। इसी समय दुर्मर्पण, श्रुतान्त, जैय, भूरिवल, रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विपह, शत्रुनाशक, दुर्विमोचन, सुदर्शन, सुशर्मा, दुष्प्रधर्ष और श्रुतर्वा ने भीमसेन पर धावा किया, किन्तु कुछ ही समय मे भीमसेन ने उन्हे यम-लोक भेज दिया। कौरव-पुत्रो को मरा देख शकुनि और उनके पुत्र उलूक ने सहदेव पर आक्रमण किया, किन्तु सहदेव ने उन्हे

धराशायी कर दिया। यह देख कौरव सेना के योद्धाओ ने पाण्डवो पर आक्रमण किया, किन्तु वीर अर्जुन और भीम द्वारा वे यमलोक भेज दिये गये। कौरवो के पास युद्ध के आरम्भ में ग्यारह अक्षौहिणी सेना थी, परन्तु युद्ध मे पाण्डव-वीरों ने उसका विनाश कर डाला। यह देख कौरवों का भाई युयुत्सु जो पाण्डव वीरो को सहयोग देने उनकी सेना मे महारथी बनाया गया था, अब महाराजा युधिष्ठिर और भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा ले कौरव पत्नियों को युद्धस्थल से हस्तिनापुर ले गया। पारस्परिक युद्ध से भरतवशियों का जो घोर सहार हुआ था, उसकी चिन्ता करते-करते युयुत्सु शोक-मग्न हो गया। कौरव-पक्ष के तीन ही योद्धा अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा बचे थे। वे भी दुर्योधन से सरोवर के निकट मिलकर दूर चले गये। पाण्डव दुर्योधन का पता लगा रहे थे। एक व्याध ने दुर्योधन के सरोवर में छिपने का स्थान धन के लोभ से उन्हे बता दिया। राजा युधिष्ठिर अपने भाइयो सहित भगवान श्रीकृष्ण को आगे कर शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये।

उत्तम और कठोर व्रत का पालन करने वाले कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने दुर्योधन से हँसते हुए कहा—'सुयोधन ! तुमने किसलिये पानी मे रहकर यह अनुष्ठान आरम्भ किया है ? सम्पूर्ण क्षत्रियो और अपने कुल का सहार करवाने के पश्चात अपने प्राण बचाने के लिये तुम सरोवर में क्यो छिपे हो ? तुम कुलीन क्षत्रिय और कुरुकुल की सतान हो, अत. अपने कुल और जन्म का स्मरण कर हमसे युद्ध क्यों नही करते ? तुम्हारे सभासद तुम्हें शूरवीर कहा करते थे, अतः युद्ध न करना अथवा युद्ध से पीठ दिखाकर भागना सनातन धर्म नही है। नीच पुरुष ही ऐसे कुमार्ग का आश्रय लेते हैं, इसलिये उन्हे स्वर्ग की प्राप्ति नही होती। युद्धभूमि में गिरे हुए अपने पुत्र, भाइयों, मित्रों, सबधियों और राजाओं को देखो, इन सबका वध कराकर तुम्हें जीवित रहने की इच्छा कैसे हुई ? तुम कर्ण और दुर्बुद्धि शकुनि

का सहारा ले अपने को अजर-अमर मानते थे, अव युद्ध से विमुख क्यो हो गये ? कहाँ गया तुम्हारा पौरुष, कहाँ है तुम्हारा अभिमान और कहाँ है वह तुम्हारा गर्जन-तर्जन और अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान ? या तो हमे परास्त कर पृथ्वी का सुख भोगो अथवा हमारे हाथो से स्वर्ग चले जाओ।'

दुर्योधन वोला—'महाराज ! यदि किसी भी प्राणी के मन मे भय समा जाये तो आश्चर्य की वात नही है। मेरे पास न तो रथ है, न धनुष-तरकस ही। मेरी सेना और समस्त योद्धा नष्ट हो चुके है, इसलिये अकेला रह गया हूँ। मैं न तो प्राणो की रक्षा के लिये, न किसी भय और विषाद के ही कारण इस जल मे छिपा हूँ। मैं केवल थकान मिटाने के लिये यहाँ विश्राम कर रहा हूँ। मैं जिनके लिये राज्य चाहता था, वे सभी भाई मारे जा चुके है, अत. पृथ्वी का भोग करने के लिये मेरे हृदय मे उत्साह नही है। जव भीष्म पितामह, द्रोण और वीर कर्ण मारे जा चुके, तव अव युद्ध की कोई आवश्यकता नही। इस सूनी पृथ्वी का तुम ही उपभोग करो। तुम लोगो के अधीन जव सारा विशाल राज्य हो जायेगा, तव मैं मृगचर्म धारण कर वन मे चला जाऊँगा और वही रहकर मृत्यु का आह्वान करूँगा।'

महायशस्वी युधिष्ठिर ने दुर्योधन के ये करुणायुक्त वचन सुन कहा—'सुर्योधन ! तुम आर्त पुरुषो के समान विलाप न करो। यदि तुम पृथ्वी को देने मे समर्थ होते तो भी मैं तुम्हारी दी हुई पृथ्वी का पालन नही करता। मैं तुमसे पृथ्वी को अधर्म-पूर्वक नही लूंगा, क्योकि क्षत्रियो के लिये दान त्याज्य और अधर्म है, इसलिये तुम्हे युद्ध मे परास्त कर ही मैं इस वसुधा का उपभोग करूँगा। जव तुम स्वय ही इस पृथ्वी के स्वामी नही रहे, तव इसका दान कैसे कर सकते हो ? हम लोगो ने कुल मे शाति रखने के लिये धर्म के अनुसार अपना ही राज्य-भाग माँगा था, उस समय तुमने हमारा राज्य क्यो नही दिया ? तुम तो पहले हमे सुई की नोक से जितनी पृथ्वी विंध सकती हो, वह भी नही

देना चाहते थे, अव सारा राज्य क्यों दे रहे हो। इस समय तुम्हारा जीवन मेरे हाथ मे है, अतः तुम स्वेच्छा से जीवित रहने में असमर्थ हो।'

अभिमानी दुर्योधन अपने छत्र की छाया भी सहन नही कर सकता था, ऐसे कठोर वचन कैसे सुन सकता था ? वह युधिष्ठिर से वोला—'मैं अकेला, थका-मादा, रथहीन और अस्त्र-शस्त्र से रहित तुम सवसे कैसे युद्ध कर सकता हूँ ? तुम मुझे युद्ध के लिये विवश करते हो, यह अन्याय है। साधु-पुरुषो की कीर्ति का मूल कारण धर्म है। मैं तुम्हें धर्म और कीर्ति का पालन करने के लिये कहता हूँ। मैं तुम लोगों से एक-एक करके युद्ध करूँगा और सवको नष्ट कर दूंगा।'

युधिष्ठिर ने कहा—'मैंने तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार किया। तुम्हें जो अस्त्र पसन्द हो, उसीको ले हमारे एक भाई से युद्ध करो।'

दुर्योधन ने उत्तर दिया—'राजन् ! ऐसा ही होगा। तुम मुझे एक गदा दे दो और जो वीर मुझे जीतने का अभिमान रखता हो, वह मेरे साथ गदा-युद्ध करे।' यह कह दुर्योधन जल से बाहर आया। वह क्रोध में भरे यमराज तथा रुद्र के समान दीखता था।

राजा युधिष्ठिर ने कहा—'दुर्योधन ! जब तुम और तुम्हारे बहुत-से महारथियों ने मिलकर युद्ध में नि.शस्त्र अभिमन्यु को मारा था, उस समय तुम्हारे मन मे ऐसा विचार क्यो नही उत्पन्न हुआ। वास्तव मे यह क्षत्रिय धर्म बड़ा क्रूर, किसी की अपेक्षा न रखने वाला तथा अत्यन्त निर्दयी है। धर्मज्ञ, शूरवीर तथा युद्ध में शरीर का विसर्जन करने को उद्यत होने पर भी तुमने असहाय अभिमन्यु का वध किया। प्रायः जब प्राणी सकट में पडते है, तब अपनी रक्षा के लिये धर्म की दुहाई देने लगते है। तुम कवच धारण कर लो और युद्ध की आवश्यक सामग्री, जो तुम्हारे पास न हो, उसे भी ले लो। पाँचो पाण्डवों

मे से जिसके साथ युद्ध करना चाहो, उस एक का ही वध कर देने पर तुम राजा हो सकोगे।'

तदनन्तर दुर्योधन ने कवच और शिरस्त्राण धारण किया और वोला—'आज जो मेरे साथ युद्ध करने को उद्यत हो, वह अपनी गदा उठा ले।' यो कहकर दुर्योधन वार-वार गर्जना करने लगा।

तव भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त कुपित होकर कहा—'युधिष्ठिर ! यदि दुर्योधन तुम्हे, अर्जुन, नकुल और सहदेव को युद्ध के लिये वरण करे, तो क्या होगा ? मै नही मानता कि आप चारो गदा-युद्ध मे दुर्योधन का सामना करने मे समर्थ है। इसने भीमसेन का वध करने का इच्छा से उनकी लोहे की मूर्ति के साथ तेरह वर्षों तक गदा-युद्ध का अभ्यास किया है। आपने दयावश यह दु साहसपूर्ण वचन क्यो कहे ? मैं भीमसेन के अतिरिक्त किसी को नही देखता, जो गदा-युद्ध मे दुर्योधन का सामना कर सके। राजन् ! आपका यह जूआ शकुनि के जूए से कही अधिक भयकर है। यद्यपि भीमसेन वलवान और समर्थ है, परन्तु दुर्योधन को गदा-युद्ध का अधिक अभ्यास है, अत. वही वडा माना जायेगा। भला कौन ऐसा होगा, जो सव शत्रुओं को जीत लेने के पश्चात, एक शेप शत्रु को जो सकट मे पडा हो, उसके साथ इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर राज्य को दाँव पर धर दे। यदि भीमसेन पर युद्ध का भार रखा जाये, तो भी मुझे उसके विजयी होने मे सदेह है, अत. राजा पाण्डु की सतान राज्य भोगने की अधिकारी नही है।'

भीमसेन वोले—'मधुसूदन ! मै आज वैर की अतिम सीमा पर पहुँच गया हूँ। श्रीकृष्ण ! मैं अवश्य ही युद्ध मे दुर्योधन को मार डालूंगा। मेरी गदा दुर्योधन की गदा से डेढ गुनी भारी है। अत माधव ! आप व्यथित न हो, मैं इससे भिडने का उत्साह रखता हूँ।'

भीमसेन के कथन से भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त प्रसन्न

होकर कहा—'महाबाहो! इसमे सन्देह नहीं कि तुमने कौरव-पुत्रों का अधिक से अधिक सहार कर उज्ज्वल राज्य-लक्ष्मी धर्मराज युधिष्ठिर को अर्पण की है। अवश्य ही रणभूमि मे तुमसे टक्कर लेकर पापी दुर्योधन नष्ट हो जायेगा। किन्तु तुम्हे दुर्योधन के साथ सतर्क हो युद्ध करना चाहिये, क्योकि वह गदा-युद्ध मे अभ्यास-कुशल और युद्ध-कला में पारगत है।'

भीम महाराजा युधिष्ठिर से बोले—'भैया! मै रणभूमि मे दुर्योधन के साथ लडूंगा। मेरे हृदय मे दीर्घकाल से ही जो क्रोध सचित है, उसे इस दुर्बुद्धि पर निकालकर सबको परम शान्ति दूंगा। आज मैं आपके गले में कीर्तिमयी माला पहनाऊँगा और दुर्योधन अपनी राज्य-लक्ष्मी और प्राणो का परित्याग करेगा।' ऐसा कहकर पराक्रमी भीमसेन गदा उठा युद्ध के लिये उठ खडे हुए। कौरव-पुत्र दुर्योधन भीमसेन की ललकार को न सह सका और युद्ध के लिये उसके सामने उपस्थित हो गया। उस समय दुर्योधन के मन में न घबराहट थी, न भय, न ग्लानि थी, न व्यथा। वह सिह के समान निर्भय खड़ा था।

भीमसेन ने कहा—'दुर्योधन! तूने हम लोगो के साथ जो-जो अत्याचार किये थे, उन सब पाप-कर्मो को अब याद कर ले। तेरे ही कारण महायशस्वी पितामह आज शरशय्या पर पडे है। तेरी इन करतूतों से आचार्य द्रोण, वीर कर्ण, प्रतापी शल्य और अनेक अवध्य योद्धा रण मे मारे गये है। नराधम! एक-मात्र तू ही सबका नाशक है। अतः तुझे मारकर ही सबके लिये मैं प्रायश्चित करूँगा।'

दुर्योधन बोला—'वृकोदर! बढ-बढकर बाते बनाने से क्या लाभ? मेरे साथ भिडने पर मैं तुम्हे शीघ्र हो यमलोक भेज दूंगा। आज कौन ऐसा शत्रु है, जो मेरे हाथ से गदा रहते हुए मुझे मार सके?' जब यह अत्यन्त भयकर युद्ध आरम्भ होने वाला था, उसी समय धर्मात्मा एव यदुकुल के प्रमुख वीर बल-रामजी वहाँ आ पहुँचे। यह देख श्रीकृष्ण ने पाण्डवो सहित

उनका चरण स्पर्श किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की। तदनन्तर दुर्योधन ने भी उनको प्रणाम किया और रोमाचकारी युद्ध आरम्भ कर दिया। महामनस्वी भीमसेन ने अपनी गदा द्वारा दुर्योधन पर वडे वेग से आक्रमण किया। दुर्योधन ने उस प्रहार को बचाकर भीमसेन का सामना किया। अव वे एक-दूसरे को जीतने की इच्छा से भयकर एव रोमाचकारी युद्ध करने लगे। गदा से गदा टकराने से आग की चिनगारियाँ निकलने लगी। जव भीमसेन अपनी गदा को जोर से घुमाता तव उससे भयानक शव्द होने लगता था। दोनो वीर एक-दूसरे से अपनी रक्षा के लिये प्रयत्नशील हो आघात-प्रतिघात कर रहे थे। भीमसेन ने क्रोध मे भर दुर्योधन पर अपनी गदा से प्रहार किया, किन्तु दुर्योधन ने उसे उछलकर विफल कर दिया। उसी क्षण दुर्योधन ने अपनी गदा चलाई जो भीमसेन की पसली में लगी, किन्तु इस आघात से वे विचलित नही हुए। दुर्योधन की अपूर्व युद्ध-कला देख पाण्डव चिंतित होने लगे। अव भीमसेन ने जोर से आक्रमण कर दुर्योधन पर गदा से प्रहार किया, उसकी चोट से वह पृथ्वी पर घुटने टेककर गिर पडा। यह देख पाण्डवो ने सिहनाद किया। दुर्योधन को यह सहन नही हुआ, अत उसने अमर्ष से कुपित हो दौडकर पराक्रमी भीमसेन पर प्रहार किया, किन्तु उस चोट का उन पर कोई प्रभाव नही पडा। वीर अर्जुन ने अपनी वाँई जाँघ ठोककर भीमसेन को सकेत से जूए के समय दुर्योधन की जाँघ तोडने की उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराया। उस प्रतिज्ञा को स्मरण कर भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघ पर वडे जोर से अपनी गदा द्वारा आघात किया, जिससे दुर्योधन की जाँघ टूट गई और वह पृथ्वी पर आर्तनाद करता हुआ गिर पडा। यह देख भगवान श्रीकृष्ण, पाण्डव और अन्य योद्धाओ ने भीषण सिहनाद किया।

भीमसेन द्वारा धराशायी दुर्योधन के मस्तक पर पदाघात देखकर युधिष्ठिर ने कहा—'भीम! तुम अव वैर से उऋण

हुए । दुर्योधन के सब भाई, मंत्री मारे गये और यह स्वय भी युद्ध मे मारा गया है। इस दशा मे यह शोक के योग्य है, उपहास का पात्र नही ।' राजा युधिष्ठिर दुर्योधन के पास गये और गद्‌गद कण्ठ से बोले—'तात ! तुम्हे खेद या क्रोध नही करना चाहिये, क्योंकि जीव अपने कर्मो का ही फल भोगता है। तुमने लोभ, मद और अविवेक के कारण यह सकट प्राप्त किया है। तुम्हारे पापों से ही तुम्हारे भाई, स्वजन और मित्र युद्धभूमि मे मारे गये है।' ऐसा कह धर्मपुत्र युधिष्ठिर दुःख से आतुर हो विलाप करने लगे ।

दुर्योधन के मस्तक पर भीमसेन द्वारा पैर का प्रहार देख वलरामजी को बडा क्रोध आया। उन्होने कहा—'भीम ! तुमने नाभि के नीचे दुर्योधन पर जो गदा का प्रहार किया है, वह गदा-युद्ध के सिद्धान्त के विरुद्ध है, अत: मै तुम्हे मार डालूंगा।'

उनका यह रुद्ररूप देखकर विनयशील भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी भुजाओं से उन्हें पकड़ लिया और बोले—'भैया ! बूआ के पुत्र होने के कारण पाण्डव हमारे स्वजन एव मित्र है। शत्रुओ ने इनके साथ बहुत छल-कपट किये थे। अपनी प्रतिज्ञा का पालन करना धर्म है। कौरव-सभा में भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघ तोडने की प्रतिज्ञा की थी। अतः अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के कारण मैं भीमसेन को दोषी नही मानता हूँ।' भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुन वलरामजी शान्त हो द्वारका चले गये।

पाण्डव-पक्ष के योद्धाओ ने कहा—'भीम ! शत्रुओ पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में भाग्यवश ससार में आपका महान यश फैलेगा। कौरव निर्लज्ज एव पापी थे, अत. उन्होने सुहृदों की वात नही मानी। उनके पाप के कारण पूज्य पितामह और आचार्य जो अजेय थे, युद्धभूमि मे मारे गये। कौरवो ने अत्यन्त लोभ और तृष्णा के वशीभूत हो घृणित कार्य किये थे, उन्ही का परिणाम उन्हे मिला है।' तदनन्तर पाण्डव सहायक योद्धा शख बजाते, विश्राम करने प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने

शिविर मे चल दिये। कौरव-शिविरो की ओर पाण्डवो के पीछे-पीछे रथो पर स्थित हो महाधनुर्धर वीर युयुत्सु, सात्यकि, धृष्ट-द्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पुत्र गये। वहाँ पहुँचने पर भगवान श्रीकृष्ण ने कुन्तीपुत्र अर्जुन से गाण्डीव, धनुष और दोनो वाणो से भरे हुए अक्षय तरकसो को लेकर रथ से उतरने को कहा। वीर अर्जुन के ऐसा करने पर वे स्वय भी रथ से उतर पडे। समस्त प्राणियो के ईश्वर-परमात्मा श्रीकृष्ण के उतरते ही गाण्डीवधारी अर्जुन का ध्वजचिह्न दिव्य वानर उस रथ से अतर्धान हो 'गया और वह विशाल रथ, जो भीष्म, द्रोण और कर्ण के दिव्य-अस्त्रो द्वारा प्राय. दग्ध हो गया था, अव सहसा अग्नि से प्रज्वलित हो भस्म हो गया।

उस रथ को भस्मीभूत हुआ देखकर समस्त उपस्थित योद्धा आश्चर्य से चकित हो उठे, तव वीर अर्जुन ने हाथ जोड-कर भगवान श्रीकृष्ण से पूछा—'गोविन्द ! यह रथ अकस्मात् कैसे भस्म हो गया ?'

भगवान वोले—'अर्जुन यह रथ नाना प्रकार के दिव्य-अस्त्रो के आघात से पहले ही जल चुका था, किन्तु समरागण में मैं उस पर वैठता था, इसलिये यह भस्म न हो सका। आज जव तुम अपना अभीष्ट कार्य पूर्ण कर चुके हो, तव मैंने इसे त्याग दिया है।' तत्पश्चात भगवान श्रीकृष्ण ने महात्मा युधिष्ठिर को हृदय से लगाया और कहा—'कुन्तीनन्दन ! सौभाग्य से आपकी विजय हुई है और आप लोग सव सकुशल हैं। अव आगे समयानुसार कार्य शीघ्र कर डालिये।'

# राजा धृतराष्ट्र और माता गांधारी को सांत्वना

भगवान के प्रेमपूर्वक वचन सुन युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर उनसे कहा—'भगवन् ! आपकी ही कृपा से शत्रुओ का विनाश हुआ है। आपके द्वारा अनेको बार हमारे कार्यों की सिद्धि हुई है और शुभ परिणाम प्राप्त हुए है । व्यासजी ने मुझसे कहा था कि जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण है, और जहाँ श्रीकृष्ण है, वहाँ विजय है।' रात्रि मे पुण्यसलिला ओघवती नदी के तट पर सबने विश्राम किया।

सूर्योदय होने पर युधिष्ठिर भगवान श्रीकृष्ण से बोले—'माधव ! इस समय क्रोध मे जलती हुई गांधारी देवी को शात करने के लिये आपका हस्तिनापुर जाना मुझे उचित लगता है। आप युक्ति और समयोचित वक्तव्य द्वारा गांधारी देवी को शीघ्र ही शान्त करे । हमारे पितामह व्यास भी वही होगे।' युधिष्ठिर के आग्रह पर भगवान श्रीकृष्ण रथ पर आरूढ हो हस्तिनापुर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होने धृतराष्ट्र के महल में प्रवेश किया। मुनिश्रेष्ठ व्यासजी को उन्होने पहले से ही वहाँ उपस्थित देखा। उन्होंने व्यास, राजा धृतराष्ट्र और माता गाधारी को प्रणाम किया। यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र का हाथ अपने हाथ में लेकर फूट-फूटकर रोने लगे।

उन्होने धृतराष्ट्र से कहा—'भारत ! काल के द्वारा जो कुछ भी हुआ है और हो रहा है, वह सब आपको ज्ञात है। नृपश्रेष्ठ ! समस्त पाण्डव सदा से आपकी इच्छा के अनुसार आचरण करने वाले है। किसी तरह हमारे कुल और क्षत्रिय समूह का विनाश न हो, इसके लिये उन्होने बहुत प्रयत्न किया था। धर्मवत्सल युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ नियत समय तक चुपचाप कष्ट सहते रहे। जब युद्ध का समय उपस्थित हुआ,

उस समय मैंने स्वय आकर शान्ति स्थापना करने के लिये सबके सामने आपसे केवल पाँच ही गाँव माँगे थे, किन्तु काल से प्रेरित हो आपने लोभवश वे पाँच गाँव भी पाण्डवो को नही दिये। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान विदुर ने भी सदा आपसे शान्ति स्थापना करने के लिये याचना की थी, किन्तु आपने उनका भी निवेदन स्वीकार नही किया। इसे कालयोग से भिन्न और क्या कहा जा सकता है? भाग्य ही सबसे बडा आश्रय है। परतप! धर्म, न्याय और स्नेह की दृष्टि से पाण्डव दोषी नही हैं, ऐसा जानकर आपको पाण्डवों के प्रति दोष दृष्टि नही रखनी चाहिये। अब तो आपका वश पाण्डवो से ही चलने वाला है। राजन्! आप और गाधारी देवी को पाण्डव ही पिण्ड-पानी और पुत्र से प्राप्त होने वाला फल देंगे, अत पाण्डवो के प्रति कल्याणभावना रखिये और उनसे स्नेह करिये। धर्मराज युधिष्ठिर के मन मे आपके प्रति भक्ति और स्वाभाविक स्नेह है। वे नरसहार कर दिन-रात शोक की आग मे जलते रहते हैं। आप पुत्रो के शोक से सतप्त है, ऐसी दशा मे वे अत्यन्त लज्जित होने के कारण आपके सामने नही आते।' फिर उन्होंने देवी गाधारी से कहा—'शुभे! इस ससार मे तुम्हारे जैसी तपोबल-सपन्न स्त्री दूसरी नही है। तुमने दुर्योधन से कहा था—ओ मूढ! जहाँ धर्म है, उसी पक्ष की जीत होगी।'

भगवान श्रीकृष्ण का कथन सुन देवी गाधारी बोली—'केशव! ये राजा अधे और असमर्थ है। इनके सभी पुत्र मारे गये, अब पाण्डव और तुम ही इनके आश्रयदाता हो।'

माता गाधारी और राजा धृतराष्ट्र को सान्त्वना दे भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे विदा ली और रणभूमि मे आकर उन्होने पाण्डवो को सारा वृतान्त सुनाया।

दुर्योधन के घायल होने का समाचार सुन अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा उसके पास आकर बैठ गये। अश्वत्थामा ने दुर्योधन से कहा—'महाराज! इस मृत्युलोक मे कुछ भी सत्य

नही है, सभी नाशवान है। काल की गति को जानना दुष्कर है। किस कारण मे कौन-सा कार्य होगा, इसको समझना अति कठिन है।'

दुर्योधन बोला—'मित्रो! इस मृत्युलोक का ऐसा ही नियम है। काल की गति को कोई रोक नही सकता। काल क्रम मे एक न एक दिन सम्पूर्ण प्राणियो के विनाश की घड़ी आ ही जाती है। विधाता ने ही इसका निर्देश किया है। वही विनाश का समय अब मुझे भी प्राप्त हुआ है। मैं युद्धभूमि मे प्राण त्याग रहा हूँ, इससे मुझे पूर्ण सन्तोष है। आप लोगों का मुझपर स्वाभाविक स्नेह है। मेरी मृत्यु से आपको दु:ख और संताप नहीं करना चाहिये, क्योंकि वेद शास्त्रो के अनुसार मैं अक्षय लोक प्राप्त करूँगा।' इतना कह दुर्योधन चुप हो गया।

दुर्योधन की दयनीय दशा देख अश्वत्थामा क्रोध से प्रज्वलित हो उठा और बोला—'मै सत्य की शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि सभी उपायो द्वारा श्रीकृष्ण के देखते-देखते पाण्डवों का वध करूँगा।' अश्वत्थामा की यह बात सुन दुर्योधन ने उसका सेनापति के पद पर अभिषेक किया। वे तीनो वीर दुर्योधन से विदा ले एक जंगल में विश्राम करने चले गये। सूर्यदेव के अस्ताचल पर चले जाने के पश्चात रात्रि देवी का सर्वत्र आधिपत्य हो गया। रात्रि मे विचरने वाले प्राणी अपनी इच्छानुसार घूमने-फिरने लगे और दिन मे विचरने वाले जीव निद्रा के अधीन हो गये। नाना प्रकार के जीव-जन्तुओ से पूर्ण उस वन में अश्वत्थामा की दृष्टि एक वट वृक्ष पर पडी, जो कौवो का आश्रय-स्थान बना हुआ था। कौवो के निर्भय होकर सो जाने पर एक बलवान उल्लू उधर आया। कालरूपधारी उस विहग ने सोये हुए बहुत-से कौवो को अपने पञ्जों से मार डाला। उल्लू के कपटपूर्ण, क्रूरकर्म को देख अश्वत्थामा ने स्वय भी वैसा ही करने का सकल्प किया। उसने मन मे विचार किया कि अपवित्र अन्त:करण वाले पाण्डवो ने पद-पद

पर छलपूर्ण, निंदा और घृणा के योग्य कार्य किये। न्याय पर दृष्टि रखने वाले धर्मचिन्तक एव तत्वदर्शी पुरुषो ने आपत्ति काल मे इन कर्मो को अधर्म नही वताया है क्रूर-वुद्धि का आश्रय लेकर उसने मामा कृपाचार्य और कृतवर्मा को अपना सकल्प सुनाया, किन्तु वे अश्वत्थामा का विचार सुन लज्जा से गड गये।

कृपाचार्य ने कहा—'महावाहो ! सभी पुरुप प्रारब्ध और पुरुषार्थ के कर्मो से वधे हुए है। उन दोनो से ही उत्तम-अधम कार्य होते है। उन्ही से प्रवृत्ति और निवृत्ति कार्य भी सपादित होते है। दैवरहित पुरुप का पुरुषार्थ व्यर्थ है और पुरुपार्थ शून्य दैव भी व्यर्थ हो जाता है। मनुष्य की सारी सिद्धि दैव और पुरुषार्थ के सहयोग पर अवलम्बित है। इन दोनो मे दैव वलवान है। वह स्वय ही निश्चय कर फल-साधन मे प्रवृत्त हो जाता है, किन्तु विद्वान पुरुषार्थ का ही आश्रय लेते हैं। प्राय उनका किया हुआ कर्म निष्फल नही होता, परन्तु कर्म न करने से दु ख की ही प्राप्ति होती है, अत कर्म को महान फलदायक समझना चाहिये। प्रतिदिन विद्वानो से अपने हित की वात पूछनी चाहिये, क्योकि वे अप्राप्य की प्राप्ति कराने वाले उपायो के मुख्य हेतु हैं। सही उपाय ही सिद्धि का कारण कहा गया है। अपने मन को न वश मे रहने वाला पुरुष राग, लोभ और क्रोध से जव किसी कार्य की सिद्धि के लिए चेष्टा करता है, तव उसका ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है। कार्य को आरम्भ करने से ही प्रयोजन सिद्ध नही होता, परन्तु पुरुषार्थ और दैव की अनुकूलता से ही कार्य सिद्ध होते हैं।'

अश्वत्थामा वोला—'मामाजी ! प्रत्येक मनुष्य मे पृथक्-पृथक् वुद्धि होती है। उसे अपनी ही वुद्धि उचित लगती है और उसी का आश्रय ले वह सव कार्य करता है। सभी लोग अपने आपको वुद्धिमान समझते हैं और अपनी वुद्धि की प्रशसा करते हैं। सयोग से जिनके विचार परस्पर मिल जाते हैं, वे एक-

दूसरे की प्रशंसा और अन्य विचार वालों की निन्दा करते है। जैसे कुशल वैद्य रोगी को अपनी योग्यतानुसार औषध प्रदान करता है, वैसे ही मनुष्य कार्य की सिद्धि के लिये अपनी विवेक-शक्ति द्वारा विचार कर कार्य करता है, तो भी दूसरे उसकी निन्दा करते है। मनुष्य जब किसी सकट में पड जाता है अथवा उसे ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है, तब उसकी बुद्धि मे क्रमश. शोक एव हर्षरूपी विकार उत्पन्न हो जाते है। उस विकार के कारण उसी समय उसके भिन्न-भिन्न विचार प्रकट होते है, परन्तु अवसर अनुकूल न होने पर कुछ समय पश्चात उसकी अपनी ही बुद्धि उस कार्य के लिये अरुचिकर हो जाती है। जैसे जलती हुई आग सूखे जगल या तिनको की राशि को जला डालती है, उसी प्रकार मैं सोते हुए धृष्टद्युम्न और पाण्डवों पर आक्रमण कर उन्हें मौत के घाट उतार दूंगा। उनका सहार करने से ही मुझे शान्ति मिलेगी और पिता के ऋण से मुक्त हो जाऊँगा। मैं धृष्टद्युम्न का वध किये बिना जीवित नही रह सकता, अतः मैंने अपनी बुद्धि से सोते हुए शत्रुओं का सहार करने का दृढ निश्चय किया है।' रात्रि में अश्वत्थामा शत्रुओ के शिविर मे घुस गया और कृपाचार्य एव कृतवर्मा को द्वार पर खडा कर दिया। तत्पश्चात अश्वत्थामा ने शिविर मे सोये हुए धृष्टद्युम्न, उत्तमौजा और युधामन्यु का क्रूरतापूर्वक वध कर दिया। धृष्ट-द्युम्न और अन्य वीरो की स्त्रियो का कोलाहल सुन प्रभद्रगण, द्रौपदी-पुत्र और सुतसोम आदि वीरो ने अश्वत्थामा का सामना किया। पाण्डव वीरो के दिव्य अस्त्रों और कवच-कुण्डलों से वञ्चित होने के कारण अश्वत्थामा ने सबको यमलोक पहुँचा दिया। जो वीर भागकर अपना जीवन बचाना चाहते थे, उन्हें कृतवर्मा और कृपाचार्य ने द्वार पर मार डाला। राजन्! वे तीनो वीर पाण्डव-योद्धाओ और सभी द्रौपदी-पुत्रों का वध कर दुर्योधन के पास गये। उन्होने देखा कि दुर्योधन की चेतनाशक्ति लुप्त-सी हो गयी है और हिंसक जीव उन्हे पीडा दे रहे है।

कृपाचार्य ने कहा—'राजन् ! अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पाँचो पुत्र और सब महारथियो को मार डाला है। अब शत्रु-पक्ष मे पाँच पाण्डव, श्रीकृष्ण एव सात्यकि ही बचे है।' मन को प्रिय लगनेवाली यह बात सुनकर दुर्योधन मे पुन चेतनाशक्ति आ गयी और वह बोले—'मित्रवर ! आज कृपाचार्य, कृतवर्मा के साथ मिलकर तुमने अपूर्व कार्य किया है। सब वीरो को मरा सुन मैं अपने को इन्द्र के समान समझता हूँ। तुम सब लोगों का कल्याण हो।' द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय कार्य समझ द्रौपदी के सोते हुए पुत्रो के सिर काटकर उसे भेट किये। यह घटना दुर्योधन को भी अप्रिय लगी।

प्रात काल होने पर धृष्टद्युम्न के सारथी ने रात के समय नि सकोच सोते हुए महारथियो का जो सहार अश्वत्थामा ने किया था, उसका समाचार धर्मराज युधिष्ठिर से कहा। यह अमगलमय कथन सुन कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर पुत्रो के शोक से सतप्त हो पृथ्वी पर गिर पडे और आर्त्त हो विलाप करने लगे। वे मन-ही-मन कहने लगे, कभी-कभी अनर्थ भी अर्थ-सा हो जाता है और अर्थ के रूप मे दिखाई देने वाली वस्तु अनर्थ के रूप मे परिणत हो जाती है। इसी प्रकार हमारी यह विजय भी पराजय का रूप धारण करके आई थी, अत. जय भी पराजय बन गई। यदि विजय लाभ के पश्चात् मनुष्य विपत्ति मे पड जाता है, तो उसे पराजित ही कहना चाहिये। प्रमाद से बढकर ससार मे मनुष्य के लिये दूसरी कोई मृत्यु नही है। प्रमादी मनुष्य को शुभ कर्म त्याग देते हैं और अशुभ बिना बुलाये ही उसके पास आ जाते हैं। जिन वीरो ने प्रचण्ड रण-समुद्र को पार कर लिया था, वे ही महारथी प्रमादवश मारे गये। प्रमादी पुरुष विद्या, तप, वैभव और महान यश कभी प्राप्त नही कर सकता, अत. साधु पुरुष का ही अनुकरण करना चाहिये। इस प्रकार आर्त्त स्वर मे विलाप करते हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने द्रौपदी को

सान्त्वना दी, किन्तु वह शोक से व्याकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। भीमसेन ने उसे पृथ्वी पर से उठा लिया और धीरज बधाया।

द्रौपदी राजा युधिष्ठिर से बोली—'पापाचारी द्रोण-पुत्र ने मेरे सोते हुए पुत्रों का वध किया है, अतः यदि आज आप उसके प्राण नही हर लेगे, तो मैं भी जीवन का अत कर दूंगी।' अर्जुन ने द्रौपदी को सान्त्वना देते हुए कहा—'मैं उस अधम ब्राह्मण का सिर गाण्डीव धनुष के बाणो से काटकर तुझे भेट करूँगा।' बच्चो की हत्या मे अश्वत्थामा का मन उद्विग्न हो गया था। जब उसने देखा कि अर्जुन उसकी ओर झपटा आ रहा है, तब उसने अपने बचाव का एकमात्र साधन ब्रह्मास्त्र ही समझा। यद्यपि उसके लौटाने की विधि उसे मालूम न थी, फिर भी प्राण सकट में जान उसने उसी अस्त्र का सधान किया।

उसका तेजोमय अमोघ रूप देख अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण की इस प्रकार स्तुति की—'हे कृष्ण! तुम सच्चिदानन्द-स्वरूप परमात्मा हो। तुम्हारी शक्ति अनन्त है और तुम्ही भक्तो को अभय देने वाले हो। तुम प्रकृति से परे आदिपुरुष साक्षात परमेश्वर हो और अपनी चिद्शक्ति से त्रिगुणमयी माया को दूर कर तुम अपने अद्वितीय स्वरूप मे स्थित हो। तुम्हारा यह अवतार पृथ्वी का भार हरण करने तथा भक्तजनो के निरन्तर ध्यान और स्मरण करने के लिए ही हुआ है। यह भयकर तेज सब दिशाओ से मेरी ही ओर क्यों आ रहा है?'

भगवान ने कहा—'अर्जुन! यह अश्वत्थामा का चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है। तुम शस्त्रास्त्र-विद्या में निपुण हो, इसलिए ब्रह्मास्त्र के तेज से ही इस ब्रह्मास्त्र की प्रचड आग को बुझा दो।'

अर्जुन ने भगवान की बात सुनकर ब्रह्मास्त्र के निवारण के लिये ब्रह्मास्त्र का ही सधान किया। अब दोनो अस्त्रों की लपटो से प्रजा जलने लगी। लोको का नाश होते हुए देखकर भगवान की अनुमति से अर्जुन ने उन दोनो को ही लौटा लिया। फिर

उन्होने अश्वत्थामा को पकडकर बाँध लिया। भगवान श्रीकृष्ण ने उससे कहा, 'अरे दुष्ट ! धर्मवेत्ता पुरुष असावधान, मतवाले, पागल, सोये हुए, वालक, स्त्री, विवेक-शून्य, शरणागत और भयभीत पुरुष का वध कभी नही करते। जो दुष्ट दूसरो को मारकर अपने प्राणोका पोषण करता है, उसका वध ही कल्याण-कारी है।'

यद्यपि अर्जुन के मन मे गुरु-पुत्र के प्रति दया आई, उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर उसे शिविर मे ले जाकर द्रौपदी को सौप दिया। गुरु-पुत्र को पशु के समान बाँधकर लाया जाना सती द्रौपदी को भी अच्छा नहीं लगा। उसने अर्जुन से कहा— 'इन्हे आप छोड दीजिये। ये हम लोगो के अत्यन्त पूजनीय हैं। आर्यपुत्र ! गुरु-वश की नित्य वदना और पूजा करनी चाहिये।' द्रौपदी की वात धर्म और न्याय के अनुकूल थी। वहाँ पर उप-स्थित सव नर-नारियो एव युधिष्ठिरादि सभी भाइयो ने द्रौपदी की इस वात की वडी सराहना की, पर भीमसेन ने तो उसका वध ही उचित समझा। इस पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन की ओर सकेत करते हुए कहा—'पतित ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहिए, परन्तु आततायी तो सदा वध्य ही है। इसलिए तुम उचित कार्य करो।' अर्जुन ने श्रीकृष्ण की वात समझकर अश्वत्थामा के सिर की मणि उसके वालो के साथ उतारकर उसे मुक्त कर दिया। वह श्रीहीन होकर वहाँ से चला गया।

कुछ काल वाद पाण्डवो से विदा लेकर सात्यकि के साथ जव श्रीकृष्ण द्वारकापुरी पधारने के लिए रथ पर सवार हुए, उसी समय भय से विह्वल अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा उनके पास दौडी आई, उसने अत्यन्त कातर स्वर से प्रार्थना की— 'जगदीश्वर ! सूर्य के समान एक तेज मेरी ओर तीव्र गति से दौडा आ रहा है। यह भले ही मुझे जला डाले, पर मेरे गर्भ-स्थित शिशु का अमगल न हो, अत आप कृपा कर मेरी रक्षा कीजिए।' भक्तवत्सल भगवान यह सुनते ही समझ गये कि

अश्वत्थामा ने पांडवों के वंश को निर्वीज करने के विचार से ब्रह्मास्त्र का पुनः प्रयोग किया है।

उत्तरा के गर्भ मे स्थित शिशु परीक्षित जब अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के तेज मे जलने लगा, तब उसने देखा कि एक ज्योतिर्मय पुरुष उसके सामने खडा है। वह देखने में तो अगूठे-भर का है, परन्तु उसका स्वरूप अत्यन्त निर्मल है। उसका अति सुन्दर श्याम शरीर है और पीताम्बर धारण किये वह उसके चारों ओर घूम रहा है एव चक्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र के तेज को शान्त करता जा रहा है। इस प्रकार शिशु के सामने ही भगवान श्रीकृष्ण ने ब्रह्मास्त्र के तेज को शान्त कर उसकी रक्षा की और अन्तर्धान हो गये। शुभ समय मे पाडु के वशधर परीक्षित का जन्म हुआ।

विदुरजी राजा धृतराष्ट्र को सान्त्वना देने उसके पास गये और बोले—'राजन् ! शोक त्यागिये और अपने मन को स्थिर कीजिये, क्योकि समस्त प्राणियो की मृत्यु ही अन्तिम गति है। ससार मे सग्रह का अन्त क्षय, सयोग का वियोग, उन्नति का पतन और जीवन का अन्त मृत्यु है। शूरवीर और कायर दोनो को यमपुर जाना पडता है। देव के विधान से जो युद्ध नही करता, वह भी मरता है और जो युद्ध करता है, वह जीवित रह जाता है। जन्म के पहले प्राणी व्यक्त नही थे, बीच में व्यक्त होकर दिखाई देते हैं और मृत्यु के बाद पुन· व्यक्त नही रहते। काल के न तो प्रिय है न अप्रिय। जो जीव ससार की यात्रा में आये है, उन सबको एक दिन परलोक जाना ही होगा। जीव अदृश्य जगत से आता है और पुनः अदृश्य जगत में चला जाता है। माता-पिता, भाई-बन्धु न उसका है, न वह उनका है। शोक और भय के हजारो स्थान है। वे प्रतिदिन मूढ मनुष्य पर ही अपना प्रभाव डालते है विद्वान पर नही। रूप, युवावस्था, धन, आरोग्य तथा प्रियजनों का एक साथ निवास अनित्य है, अतः विद्वान पुरुष इनमें आसक्त नही होते। शोक न अर्थ का साधक

है, न धर्म और सुख का ही। इसके द्वारा मनुष्य अपने कर्तव्य-पथ से भ्रष्ट होकर धर्म, अर्थ और काम से भी वचित हो जाता है। शरीर समय पर नष्ट हो जाता है, किन्तु उसमे स्थित जो सत्यस्वरूप आत्मा है, वह नित्य है। विद्वान पुरुष को चाहिये कि जिन-जिन साधनो से मन दु ख अथवा सुख से मुक्त हो जाता है, उन्ही मे मन को नियमपूर्वक लगाकर शान्ति प्राप्त करे। जो भगवान के ध्यान मे लगे रहते है, उनकी सब विपत्तियो से रक्षा होनी सम्भव है, परन्तु शास्त्रानुसार जो नही चलते, उन्हे तो कष्ट ही उठाना पडता है। विद्वान पुरुष को चाहिये कि वह अपने मन को वश मे कर ज्ञान की शरण ले।'

विदुरजी का उपदेश सुन धृतराष्ट्र, देवी गाधारी और माता कुन्ती देवी युद्धभूमि मे गये। पाण्डवो ने उन्हे श्रद्धा सहित प्रणाम किया और राजा धृतराष्ट्र ने पहले धर्मात्मा युधिष्ठिर को हृदय से लगाया। तदनन्तर उनके मन मे दुर्भावना जाग उठी। वे भीम को इस प्रकार खोजने लगे मानो आग बनकर उसे जला देना चाहते हो। शोकरूपी वायु मे वढी क्रोधाग्नि उनके मुख पर दिखायी देती थी। भीमसेन के प्रति उनके अशुभ सकल्पो को जानकर भगवान श्रीकृष्ण ने उनकी लोहे की मूर्ति धृतराष्ट्र के सामने कर दी। वलवान राजा धृतराष्ट्र ने उस लोहे की वनी मूर्ति को असली भीमसेन ही समझा और उसे दोनो वाहो से दवाकर तोड डाला। जव उनके रोप का आवेश दूर हो गया तव वे भीमसेन को याद कर विलाप करने लगे।

उन्हे भीमसेन के वध से दु.खित और क्रोध-शून्य हुआ जान पुरुपोत्तम श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—'महाराजा धृत-राष्ट्र ! आप शोक न करे। भीमसेन आपके हाथ से मारा नही गया है। प्रभो ! आपने लोहे की प्रतिमा को ही चूर-चूर कर डाला है। आपका मन पुत्रो के शोकवश धर्म से विचलित हो गया था, इसलिये आपके सामने भीमसेन की लोहे की प्रतिमा

नही रखी गई थी। हम लोगो ने सर्वत्र शान्ति स्थापन करने का प्रयत्न किया है, उसका आप भी अनुमोदन करे। आपने वेदो एव शास्त्रो का अध्ययन एवं श्रवण किया है, अत. आपको क्रोध तथा शोक नही करना चाहिये। आप बुद्धिमान और बलाबल का निर्णय करने मे समर्थ होकर भी अपने ही अपराध से जो विनाश हुआ है, उसके लिये शोक क्यों करते है? मैंने तो आपको सधि के लिये बहुत समझाया था, परन्तु बल और शौर्य मे पाण्डवो को बढा-चढा जानकर भी आपने मेरा वचन नही माना। राजन्! आप अपने मन को वश मे न रखकर सदा दुर्योधन के अधीन रहे, उसी का यह परिणाम है।'

जब भगवान श्रीकृष्ण ने राजा धृतराष्ट्र को समझाया तब वे बोले—'माधव! आपका कथन सत्य है, परन्तु मै पुत्रो के स्नेह में बधकर धैर्य से विचलित हो गया था। अब मैं शान्त हूँ, मेरा क्रोध और शोक दूर हो गया है। अपने सब पुत्रो के मारे जाने पर अब मै पाण्डवों से प्रेम करूँगा, जो मेरे हित-चितक है।' तदनन्तर उन्होंने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव को हृदय से लगाकर उन्हे अनेक आशीर्वाद दिये।

यद्यपि भगवान श्रीकृष्ण के समझाने पर राजा धृतराष्ट्र और माता गाधारी कुछ समय के लिये अपने शोक को भूल गये थे, तथापि माता गाधारी को पुन क्रोध आ गया। वह पाण्डवों को शाप देना चाहती थी। सती-साध्वी देवी के मन के आन्तरिक भाव को महर्षि व्यास जान गये।

महातपस्वी व्यासजी माता गाधारी से बोले—'तुम्हे पाण्डु-पुत्रो पर क्रोध नही करना चाहिये। प्रतिदिन दुर्योधन विजय की अभिलाषा मे तुम्हारे पास आकर आशीर्वाद माँगता था और तुम सदा यह ही कहती थी कि 'जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है।' तुमने कभी झूठ नही बोला है और प्राणियो के हित मे सदा तत्पर रहती आयी हो। युद्ध मे पाण्डवो ने जो विजय पायी है, इससे यह सिद्ध होगया कि 'धर्म का बल सबसे अधिक

है।' सावित्र ! तुम तो सदा से क्षमाशील हो, अव पाण्डवों को क्षमा क्यो नही करती ? अपने धर्म को स्मरण कर शोक और क्रोध को त्याग दो।'

माता गाधारी ने कहा—'भगवन् ! मैं पाण्डवो के प्रति दुर्भावना नही रखती हूँ, न उनका विनाश ही चाहती हूँ, किन्तु पुत्रो के शोक से मेरा मन व्याकुल हो जाता है। कुन्ती के पुत्र जिस प्रकार कुन्ती से रक्षणीय है, उसी प्रकार मुझे भी इनकी रक्षा करनी चाहिये। कुरुकुल का सहार तो दुर्योधन, मेरे भाई शकुनि, कर्ण और दु शासन के अपराध से ही हुआ है, इसके लिये पाण्डव दोषी नही है, किन्तु भीमसेन ने गदा-युद्ध मे दुर्योधन के साथ उचित व्यवहार नही किया। धर्मज्ञ नीतिज्ञो ने गदा-युद्ध के लिये नाभि से नीचे प्रहार करना अन्याय वताया है, अत भीमसेन ने ऐसा कर पाप किया है।' उसी समय पाण्डव, द्रौपदी और भगवान श्रीकृष्ण वहाँ उपस्थित हो गये।

भीमसेन ने माता के वचन सुन डरते-डरते विनयपूर्वक कहा—'माताजी ! यह धर्म हो या अधर्म, मैंने दुर्योधन से डर-कर अपने प्राण वचाने के लिये ही ऐसा किया है, अत आप मेरा अपराध क्षमा करें। दुर्योधन ने अधर्म से राजा युधिष्ठिर को जुए का खेल खिलाकर जीता था, इसलिये मैंने भी उसके साथ विषम व्यवहार किया है।'

भीम का कथन सुन माता गाधारी वोली—'तात ! तुमने मेरे पुत्र की प्रशसा की है, अत वह अमर हो गया। तुमने जो कुछ कहा है, उससे प्रतीत होता है कि दुर्योधन अपराधी था; परन्तु तुमने दु शासन को युद्ध मे मारकर उसका रक्त पी लिया, यह सत्पुरुषो द्वारा निंदित और क्रूरतापूर्ण कार्य है।'

भीमसेन ने कहा—'द्यूत क्रीडा के समय दु शासन ने जब द्रौपदी के केश खीचे थे, उस समय क्रोध मे भरकर मैंने प्रतिज्ञा की थी कि दु शासन का रक्त पीऊँगा। यदि मैं उस प्रतिज्ञा को

पूर्ण न करता तो क्षत्रिय-धर्म से गिर जाता। माँ ! आप शोक न करें। वह रक्त मेरे दाँतों और होठो को लाँघ कर आगे न जा सका। जैसा मेरा शरीर है वैसा ही भाई का था, इसलिये जब मैं अपना रक्त नही पी सकता, तब भाई का कैसे पीता ? अतः आप मुझपर प्रसन्न हों।' पाण्डवो और द्रौपदी ने अपने अश्रु भरे नेत्रों से माता कुन्ती को प्रणाम किया। माता कुन्ती ने सबको धीरज बधाया और फिर वह द्रौपदी को गाधारी के पास ले गयी। माता गांधारी द्रौपदी को देखकर स्नेह से गद्‌गद हो गई और उससे वोली—'तुम दुःख से इस प्रकार व्याकुल न होओ। मैं भी तो दु ख महासागर मे डूबी हुई हूँ। काल से प्रेरित होकर यह नरसंहार हुआ है, यह विनाश अवश्यम्भावी था। जब सधि कराने में श्रीकृष्ण सफल नही हुये, उस समय बुद्धिमान विदुरजी ने जो महत्त्वपूर्ण वात कही थी, उसीके अनुसार युद्ध के परिणामस्वरूप कुल का सहार हुआ है। तदनन्तर महर्षि व्यास की आज्ञा से भगवान श्रीकृष्ण, पाण्डव, राजा धृतराष्ट्र, माता गाधारी, कुन्ती, द्रौपदी और कौरव-कुल की स्त्रियाँ युद्ध-स्थल मे मृतको को जलाजली देने गईं। अपने सुहृदो को रणभूमि मे मृत देखकर उन सबकी दयनीय दशा हो गयी।

# शान्ति-पर्व

## कर्ण

पाण्डव, विदुर, धृतराष्ट्र और सम्पूर्ण स्त्रियो ने गगाजी मे अपने सुहृदो को श्रद्धाजलि प्रदान की। जव गगातट पर राजा युधिष्ठिर ठहरे हुए थे, उस समय वहुत-से श्रेष्ठ ऋषि-मुनि, जिनमे मुख्य द्वैपायन व्यास, नारद, महर्षि देवल, देवस्थान और कण्व थे, उनसे मिलने के लिये पधारे। राजा युधिष्ठिर ने उन सवका वहुविध सत्कार किया।

नारदजी ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर से कहा—'भगवान श्रीकृष्ण की कृपा तथा धर्म के प्रभाव से आपने शत्रुओ पर **विजय** पायी है। अव क्षत्रिय धर्म के पालन करने में तत्पर रहकर आप प्रसन्न तो है न ? इस राज्य लक्ष्मी को पाकर आपको कोई शोक तो नही सता रहा है ?'

युधिष्ठिर वोले—'भगवान श्रीकृष्ण के वाहुवल का आश्रय लेने से मैंने विजय प्राप्त की है, पर मेरे हृदय मे निरतर यह महान दु ख वना ही रहता है कि मैंने लोभवश अपने वधु-वाधवों का सहार करवा डाला। सुभद्रा कुमार अभिमन्यु और द्रौपदी के प्यारे पुत्रो को मरवाकर यह विजय भी मुझे पराजय-सी जान पडती है। द्रौपदी के भाई-वन्धु मारे गये, किन्तु वह हम लोगो के प्रिय और हितकर कार्यों मे सदा लगी रहती है। जव मैं यह देखता हूँ, तव मेरे मन मे अधिक पीडा होने लगती है। मेरी माता कुन्ती ने श्रद्धेय कर्ण के जन्म का रहस्य छिपाकर मुझे भारी दु ख मे डाल दिया है। ससार मे जिनका सामना करने

वाला कोई भी महारथी नही था, जो बुद्धिमान, दयालु, दाता, सयमपूर्वक व्रत का पालन करने वाले थे, जिनमें विचित्र प्रकार से युद्ध करने की कला थी, जो अतिशय पराक्रमी तथा शीघ्रता-पूर्वक अस्त्र चलाने वाले थे, जो धनुर्वेद के विद्वान और मेरे बडे भाई थे, मैंने अनजाने मे राज्य के लोभ मे आकर भाई के हाथो से ही ऐसे भाई का वध करा दिया। इस बात को सोचकर चिन्ता मेरे हृदय को जलाती रहती है। अर्जुन भी उन्हे भाई के रूप मे नही जानते थे, किन्तु उत्तम व्रत का पालन करने वाले कर्ण हमे भाई के रूप मे जानते थे।

'मेरी माता कुन्ती हम लोगो मे सधि कराने की इच्छा से उनके पास गई थी और उन्हे बताया था, तुम मेरे प्रथम पुत्र हो, इसलिये तुम पाण्डवों का साथ दो। परन्तु महामनस्वी कर्ण ने माता का प्रस्ताव स्वीकार नही किया।

'कर्ण ने कहा—मै युद्ध के समय राजा दुर्योधन का साथ दूंगा, क्योकि ऐसा न करने से मेरी नीचता, क्रूरता और कृतघ्नता सिद्ध होगी। यदि मैं तुम्हारे प्रस्ताव के अनुसार इस समय युधि-ष्ठिर से मिल जाऊँ या सधि कर लूँ तो सब लोग यही समझेगे कि कर्ण अर्जुन से डर गया है, अत मै पहले अर्जुन को परास्त करूँगा, फिर युधिष्ठिर से सधि।'

'माता कुन्ती बोली—तुम इच्छानुसार अर्जुन से युद्ध करो, किन्तु अन्य चार भाइयो को अभय प्रदान करो।

'बुद्धिमान कर्ण ने हाथ जोडकर माता से कहा—देवी! तुम्हारे अन्य चार पुत्र यदि मेरे वश में आ जायेगे तो भी मै उनका वध नही करूँगा। तुम्हारे पॉच पुत्र निश्चित रूप से जीवित रहेंगे। यदि मैं मारा गया तो अर्जुन को लेकर तुम्हारे पॉच पुत्र होगे और यदि अर्जुन मारा गया तब मेरे सहित तुम्हारे पॉच ही पुत्र जीवित रहेगे। इस गुप्त रहस्य को न तो माता कुन्ती ने प्रकट किया और न कर्ण ने ही। तदनन्तर युद्ध-स्थल में महाधनुर्धर शूरवीर कर्ण, अर्जुन के हाथ से मारे गये। कर्ण

हमारे ज्येष्ठ और सहोदर भाई थे। कर्ण और अर्जुन की सहायता से तो मैं देवराज इन्द्र को भी परास्त कर सकता था। जब धृतराष्ट्र के दुष्ट पुत्रो ने मुझे बहुत क्लेश पहुँचाया, तब सहसा मेरे हृदय मे क्रोध प्रकट हुआ, परन्तु कर्ण को देखकर वह शात हो गया। मेरा विश्वास है कि कर्ण के दोनो पैर माता कुन्ती के चरणो के सदृश थे। माता कुन्ती और कर्ण के पैरो मे इतनी समानता का कारण मेरी समझ में नही आया। कर्ण को क्यों शाप हुआ था, यह प्रसग मुझे सुनाइये।'

नारदजी बोले—'राजन्! एक समय देवताओ ने विचार किया कि कौन-सा ऐसा उपाय हो, जिससे भूमण्डल का क्षत्रिय समुदाय शस्त्रो के आघात से पवित्र हो स्वर्ग-लोक मे पहुँच जाये, यह सोचकर उन्होने भगवान सूर्य द्वारा कुमारी कुन्ती के गर्भ से एक तेजस्वी बालक उत्पन्न कराया, जो सघर्ष का जनक हुआ। यही बालक सूतपुत्र कर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने गुरु द्रोणाचार्य से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। वह भीमसेन का बल, अर्जुन की स्फूर्ति, आपकी बुद्धि, नकुल-सहदेव की विनय, गाण्डीवधारी अर्जुन की श्रीकृष्ण के साथ बचपन से ही मित्रता और पाण्डवों पर प्रजा का अनुराग देख चिन्तामग्न हो जलता रहता था, इसलिए उसने बाल्यावस्था मे ही राजा दुर्योधन के साथ मित्रता कर ली और दैव की प्रेरणा से आप लोगो के साथ सदा द्वेष रखने लगा।

'अर्जुन को धनुर्वेद में अधिक विद्वान देखकर कर्ण ने गुरु द्रोणाचार्य से कहा—'गुरुदेव! मैं ब्रह्मास्त्र को चलाने और लौटाने का रहस्य जानना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं अर्जुन से युद्ध करूँ। आपका सभी शिष्यो व पुत्रो पर समभाव से स्नेह है। मुझे बडा दु:ख होगा, यदि विद्वान यह कहे कि कर्ण सभी अस्त्रो का ज्ञाता नही है।'

'कर्ण की दुष्टता को समझकर अर्जुन से स्नेह रखने वाले गुरु द्रोणाचार्य बोले—'ब्रह्मास्त्र का ज्ञान ब्रह्मचर्य का व्रत करने

वाला ब्राह्मण या तपस्वी क्षत्रिय ही प्राप्त कर सकता है, दूसरा कोई भी नहीं।'

'उनके ऐसा कहने पर गुरु द्रोणाचार्य से आज्ञा लेकर कर्ण परशुरामजी के पास चला गया और उनसे बोला—'मै भृगुवशी ब्राह्मण हूँ, मैंने गुरु भाव से आपकी शरण ली है।' इस पर परशुरामजी ने उसके गोत्र आदि सारी बातें पूछकर उसे शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। भृगु श्रेष्ठ परशुरामजी से विधि-पूर्वक धनुर्वेद सीखकर कर्ण उसका अभ्यास करने लगा! एक दिन सूर्यपुत्र कर्ण आश्रम के निकट अकेला टहल रहा था। उसी समय अग्निहोत्र में लगे हुए किसी वेदपाठी ब्राह्मण की कामधेनु उधर जा निकली। उसने अनजान मे उस धेनु को हिसक जीव समझकर मार डाला।

'कर्ण दु खित हो उस ब्राह्मण से बोला—'मैने अनजान में आपकी गाय मार डाली है, अतः आप मेरा यह अपराध क्षमा करे। मुझ पर कृपा करें।'

'ब्राह्मण उसकी बात सुनते ही कुपित हो उठा और कठोर वाणी द्वारा डाँटता हुआ बोला—'दुराचारी! तू मार डालने योग्य है। दुर्मते! तू इस पाप का फल प्राप्त करेगा। तू जिसके साथ सदा ईर्ष्या करता है उसके साथ युद्ध करते समय तेरे रथ का पहिया पृथ्वी में धँस जायेगा और तू अचेत-सा हो जायेगा। उसी असावधान अवस्था में तेरा शत्रु तेरे मस्तक को काट गिरायेगा। ब्राह्मण के शाप से कर्ण को बडा दुःख हुआ। उसने दीनतावश सिर झुका लिया और शाप का चिंतन करता हुआ परशुरामजी के पास लौट आया। राजन्! कर्ण के बाहुबल, प्रेम, इद्रिय-सयम तथा गुरु सेवा से परशुरामजी अत्यन्त सतुष्ट थे। तपस्वी परशुरामजी ने कर्ण को शान्तभाव से सम्पूर्ण ब्रह्मास्त्र के प्रयोग और उपसहार की शिक्षा दी। कर्ण के ऊपर उनका विश्वास और सौहार्द हो गया था। एक दिन बुद्धिमान परशुरामजी कर्ण के साथ अपने आश्रम के निकट ही घूम रहे थे। उपवास करने

के कारण उनका शरीर दुर्बल हो गया था। वे मन ही मन थकावट अनुभव कर रहे थे, इसलिए परशुरामजी कर्ण की गोद मे सिर रखकर सो गये। इसी समय एक भयंकर कीडा, जिसका डक तीक्ष्ण था, कर्ण के पास आया और उसने उसकी जाँघ को छेद दिया। गुरु के जगने के भय से कर्ण न तो उसे फेक ही सका, न मार ही पाया। यद्यपि कर्ण को असह्य वेदना हो रही थी, फिर भी सूर्यपुत्र ने उसे सहन कर लिया।

'परशुरामजी के शरीर में जब रक्त ने स्पर्श किया, तब भार्गव-श्रेष्ठ जग उठे और बोले—'मैं तो अशुद्ध हो गया हूँ, भय छोड़कर इस विषय मे सत्य-सत्य बता। कर्ण ने उन्हे कीडे के काटने की गाथा सुनाई। परशुरामजी ने भी उस कीड़े को देखा। परशुरामजी की दृष्टि पडते ही उस कीड़े ने प्राण त्याग दिये और वह एक विशाल राक्षस बन गया।

'राक्षस ने हाथ जोडकर पूर्ण मनोरथ परशुरामजी से कहा—प्रभु-श्रेष्ठ ! आपका कल्याण हो। मुनिवर ! आपने मुझे इस नारकीय योनि मे छुडा दिया है।'

परशुरामजी ने कहा—'तू कौन है ? किस कारण से तेरी यह दुर्दशा हुई ?'

राक्षस बोला—'मैं प्राचीन काल मे दश नाम मे एक प्रसिद्ध असुर था। एक दिन मैंने बलात भृगुजी की प्रिय पत्नी का हरण कर लिया। इस पर महर्पि ने मुझे शाप दिया और मै कीडा होकर पृथ्वी पर गिर पडा। मेरी प्रार्थना पर प्रसन्न हो उन्होने फिर कहा—परशुरामजी के दर्शन से इस शाप से तेरी मुक्ति हो जायेगी। हे पुन्य-कीर्ति प्रभो ! मैं आपको बारबार नमस्कार करता हूँ।' इतना कहकर वह राक्षस वहाँ से चला गया।

'परशुरामजी ने क्रोधपूर्वक कर्ण से कहा—ऐसा भारी दुख ब्राह्मण कदापि नही सहन कर सकता। तू स्वेच्छा से सत्य बता तू कौन है ? तेरा धर्म तो क्षत्रिय के समान है।

'कर्ण परशुरामजी के शाप के भय से डर गया और उन्हे

प्रसन्न करने की चेष्टा करते हुए बोला—'मै ब्राह्मण और क्षत्रिय से भिन्न सून जाति में पैदा हुआ हूँ। मुझे राधापुत्र कर्ण कहते हैं। भृगु-नदन! मैंने अस्त्र शिक्षा के लोभ से ऐसा किया है। वेद और विद्या का दान करने वाला शक्तिशाली गुरु पिता के ही तुल्य है, इसलिए मैंने आपके निकट आकर भार्गव गोत्र वताया है।' इतना कह डर से कॉपता हुआ कर्ण हाथ जोडे उनके चरणों मे पृथ्वी पर गिर पडा।

'परशुरामजी क्रोधित हो कर्ण से वोले—'तुमने ब्रह्मास्त्र के लोभ मे मुझसे मिथ्याचार किया है, इसलिए जब तुम सग्राम मे अपने ही समान योद्धा से भिडोगे और तुम्हारी मृत्यु का समय निकट आयेगा, तव तुम्हें इस ब्रह्मास्त्र का स्मरण नहीं रहेगा। जो ब्राह्मण या तपस्वी क्षत्रिय नही है, उसके हृदय मे ब्रह्मास्त्र स्थिर नही रह सकता। अत मे कर्ण के वहुत अनुनय-विनय करने पर उन्होने आशीर्वाद दिया कि कोई भी क्षत्रिय युद्ध मे तुम्हारी समानता नही करेगा।

'परशुरामजी को सतुप्ट कर कर्ण उनके आश्रम से चला गया और दुर्योधन के पास पहुँचकर बोला—मैने सब अस्त्र-शस्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया है और उसके साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगा। राजन्! कर्ण के बल की ख्याति सुनकर मगध देश के राजा जरासध ने उसे युद्ध के लिये ललकारा। दोनो ही दिव्य अस्त्रो के ज्ञाता और बलशाली थे, इसलिये आपस मे युद्ध मे तत्पर हो गये। वे नाना प्रकार के अस्त्रों से एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। कुछ ही समय में दोनो के तरकश खाली हो गये, धनुष कट गये और तलवारे टूट गई। तब वे दोनो वीर विजय की आकाक्षा से एक-दूसरे के साथ मल्ल-युद्ध करने लगे। कर्ण ने जरासध को पृथ्वी पर पटक दिया और चीरना चाहा। इस पर जरासंध ने वैर भाव त्यागकर उसे अग देश की मालिन नगरी दे दी। तब से कर्ण अगदेश का राजा कहलाने लगा। कर्ण की जरासध पर विजय से प्रफुल्लित हो राजा दुर्योधन ने

भी उसे चंपारन का राज्य दे दिया। इस प्रकार कर्ण अपनी अस्त्र-विद्या के प्रभाव से भूमडल पर विख्यात हो गया।

'एक दिन देवराज इद्र ने ब्राह्मण का वेश धारण कर तुम लोगो का हित करने के लिये कर्ण से उनके कवच और कुण्डल का दान माँगने जा रहे थे, जो उसके जन्म के साथ ही रक्षार्थ उत्पन्न हुए थे। इस कुमन्त्रणा का भगवान सूर्य को पता चल गया, अत वे रात्रि को स्वप्न मे कर्ण से वोले—'तात ! देवराज इद्र तुम्हारे पास आवेगे। तुम्हारी दानशीलता का उन्हे ज्ञान है, कि किसी सत्पुरुष के माँगने पर तुम उसे अभीष्ट वस्तु दे देते हो। किन्तु इन्द्र को तुम अपने कवच और कुण्डल न देना, क्योकि तुम अपने कवच और कुण्डलो द्वारा रण मे शत्रुओ के लिये अवध्य हो। यदि तुम उन्हे कवच और कुण्डल दे दोगे, तो तुम्हारी मृत्यु अवश्यभावी है।'

कर्ण ने कहा—'आप वरदायक देवता हैं। मैं आपसे प्रसन्न रहने का अनुरोध करता हूँ। यदि मैं आपका प्रिय हूँ तो आप मुझे इस व्रत से विचलित न करे। मैं श्रेष्ठ याचको को अपने प्राण भी दे दूंगा, जिससे मेरी कीर्ति तीनो लोको में विख्यात हो जायगी। शूरवीरो को प्राण देकर भी यश की रक्षा करनी चाहिये। अपयश से तो मृत्यु ही अच्छी है। ससार मे कीर्ति माता की भाँति मनुष्य को नया जीवन प्रदान करती है, अत मै इद्र को दान दे उत्तम गति प्राप्त करूँगा।' कर्ण के वचन सुन सूर्यदेव अन्तर्धान हो गये। जव कर्ण हाथ जोड जल मे खडा हो भगवान दिवाकर की स्तुति कर रहा था, उस समय देवराज इन्द्र ने ब्राह्मणो के साथ आकर उससे भिक्षा माँगी।

'अधिरथ कुमार ने पूछा—'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

'छद्मवेषी ब्राह्मणरूपधारी इन्द्र ने कहा—'अनघ ! यदि तुम सत्यवादी हो तो तुम्हारे शरीर के ऊपर जो कवच और कुण्डल हैं इन्हे काटकर मुझे दे दो।'

'कर्ण वोला—'आप भूमि, गाएँ, घर, जीवन वृत्ति ले ले,

किन्तु मै कवच और कुण्डल नही दूँगा।' कर्ण की प्रार्थना ब्राह्मण देव ने स्वीकार नहीं की। कर्ण ने पुन. कहा—'देवेश्वर! आप पधार रहे है इसका मुझे पहले से ही पता था। मै आपके मनोरथ निष्फल नही करूँगा। उचित तो यह है कि आप मुझे वर दें, क्योकि आप सब भूतों के ईश्वर तथा उन्हें उत्पन्न करने वाले है।' यद्यपि कर्ण छद्मवेषी इन्द्र को पहचान गया था और उस कुचक्र का उसे ज्ञान होते हुए भी बिना किसी संकोच के उसने उन दिव्य कवच और कुण्डलो को देवराज इद्र को दान दे दिया।

'इन्द्र बोले—'तात! मैं तुम पर प्रसन्न हो कवच और कुण्डल के वदले अमोघ शक्ति देता हूँ। तुम्हारा स्वरूप किसी प्रकार भी वीभत्स नही होगा, क्योकि तुम सत्यवादी हो। जब तक तुम्हारे पास दूसरे शस्त्र रहेगे और प्राण सकट मे न आएगा, तव तक तुम प्रमादवश उस अमोघ-शक्ति का प्रयोग न करना, नही तो यह तेरा ही सहार कर डालेगी।' इन्द्र से प्रज्वलित शक्ति ले कर्ण प्रसन्न हो गया। धृतराष्ट्रपुत्र कर्ण के कवच और कुण्डलों का दान सुनकर दीन हो गये।

'वेदपाठी ब्राह्मण और परशुरामजी का शाप, कवच और कुण्डलों का दान, राजा शल्य की ओर से कर्ण के तेज को नष्ट करने का प्रयास और भगवान श्रीकृष्ण की कर्ण के विरुद्ध नीति उसकी मृत्यु के हेतु थे।

'माता कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा—"तुम्हे कर्ण के लिए शोक नही करना चाहिये। मैने और भगवान सूर्य ने उसे बता दिया था कि पाण्डव तुम्हारे भाई है। एक हितैषी जितना समझा सकता है उतना ही समझाने का प्रयास हम दोनो ने किया, किन्तु कर्ण काल के वशीभूत था, इसलिये वह पाण्डवो के विपरीत ही सारे कार्य करने लगा। यह देखकर मैंने भी उसकी उपेक्षा कर दी।'

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर की आँखे भर आई और वे कर्ण को याद करके दु ख से सतप्त हो शोक-सागर मे डूब गये।

## युधिष्ठिर का शोक

युधिष्ठिर बोले—'हे अर्जुन! यदि हम लोग द्वारिका मे जाकर भीख माँगकर जीवन निर्वाह करते तो आज अपने कुटुम्ब का सहार कर इस दुर्दशा को प्राप्त नही होते। क्षत्रियो के आचार, वल, पुरुषार्थ और अमर्प को धिक्कार है, जिनके कारण हम ऐसी विपत्ति मे पड़ गये। क्षमा, मन और इंद्रियां का सयम, बाहर-भीतर की पवित्रता, वैराग्य, ईर्ष्या का अभाव, अहिंसा और सत्य-भाषण ये धर्म ही श्रेष्ठ है। हम लोग तो लोभ और मोह के कारण, राज्य-लोभ के सुख का अनुभव करने की इच्छा से दभ और अभिमान का आश्रय ले इस दुर्दशा मे फँस गए हैं। जव हमने अपने वन्धु-वाधवो को मरा देख लिया, तव हमे इस समय तीनो लोको का राज्य भी प्रसन्न नही कर सकता। हम लोगो ने इस तुच्छ राज्य के लिये अवध्य राजाओ की हत्या की है और वन्धु-बाधवों से हीन हो अर्थ-भ्रष्ट की भाँति जीवन व्यतीत कर रहे हैं, अत. हमे राज्य का परित्याग ही अभीष्ट होना चाहिये। सभी पिता तपस्या, ब्रह्मचर्य पालन, सत्य भाषण और तितिक्षा आदि साधनो द्वारा अनेक कल्याणमय गुणो से युक्त वहुत-से पुत्र पाना चाहते है। इसी प्रकार सभी माताए उपवास, यज्ञ, व्रत और मगलमय कृत्यों द्वारा उत्तम पुत्रो की इच्छा रखती है। उन सवका यही उद्देश्य होता है कि हमारे पुत्र सम्भावित गुणो से सम्पन्न होगे, तो हमे अत्र और परत्र सुख होगा, किन्तु उनका यह मनोरथ सर्वथा निष्फल हो गया, क्योंकि हमने उनके पुत्रो को मार डाला है। वे देवताओ और पितरो का ऋण उतारे विना ही यमलोक मे चले गए। जो लोग कामना से युक्त हो क्रोध और हर्ष के कारण अपना सतुलन

खो बैठे है, वे कभी विजय का फल नही भोग सकते। हमने शूर-वीरो को मार डाला, पाप किया और अपने ही देश का विनाश कर डाला है। हमारा क्रोध तो शान्त हो गया, किन्तु यह शोक मुझे निरंतर घेरे रहता है। किया हुआ पाप कहने से, शुभ कर्म करने से, पछताने से, दान और तपस्या से, निवृत्ति-परायण होने से, तीर्थयात्रा करने से और वेद-शास्त्रों का स्वाध्याय एव जप करने से भी दूर होता है। श्रुतियो का कथन है कि त्यागी पुरुष पाप से परिशुद्ध हो जन्म-मरण के बधन से मुक्त हो जाता है।

'धनंजय ! ज्ञानी स्थिर बुद्धि, द्वन्द्वरहित होकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। श्रुतियाँ कहती है कि सग्रह-विग्रह मे फसा हुआ मनुष्य पूर्ण धर्म नही प्राप्त कर सकता। मुझे इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है।

'मै सुखों का परित्याग कर साधु पुरुषो के मार्ग पर चलना चाहता हूँ। मैं वन में रह फल-फूल खाकर कठोर तपस्या और अग्निहोत्र करूँगा और परिमित आहार से शरीर को दुर्बल कर दूंगा। मृग चर्म, वल्कल वस्त्र, सिर पर जटा धारण कर, सर्दी-गर्मी, हवा, भूख, प्यास सहन करूँगा। वहाँ महात्माओ का दर्शन होगा। मैं एकान्त में रहकर आध्यात्मिक तत्व पर विचार करूँगा। मैं किसी का अप्रिय नही करूँगा और जैसा भी आहार मिल जाएगा उसी से जीवन निर्वाह करूँगा। यदि मै मूंड मुंडा-कर मननशील सन्यासी हो जाऊँगा तो सारे शरीर पर धूल पड़ी होगी, सूने घर में मेरा निवास होगा या किसी वृक्ष के नीचे पडा रहूँगा और प्रिय-अप्रिय का विचार छोड दूंगा। मै किसी के लिये हर्ष या शोक न करूँगा, निन्दा और स्तुति को समान समझूँगा। मै आशा और ममता को त्याग निर्द्वन्द्व हो जाऊँगा और सग्रह-विग्रह के लोभ से दूर रहूँगा। मैं इद्रियो का दमन कर मन को सदा प्रसन्न तथा प्राणियो मे सम्भावना रखूंगा और हिंसा नही करूँगा। मैं किसी के अधीन न रह

वायु के समान सर्वत्र विचरूँगा। अज्ञानवश तृष्णा ने मुझसे बडे-बडे पाप करवाये है। मनुष्य शुभाशुभ कर्म द्वारा स्वजनो का भरण-पोषण करता है, फिर अत मे जीवात्मा शरीर को त्याग पहले के किये हुए पापो को ग्रहण कर दूसरा जन्म प्राप्त करता है, क्योकि कर्ता को ही उसके कर्म का फल मिलता है। मनुष्य पर ससार मे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि का आक्रमण होता ही रहता है, किन्तु जो ससृति से निवृत्त हो जाता है, वह इन दु खो को प्राप्त नही होता। इसलिये तत्वो को जानने वाला मनुष्य ससार से क्यो प्रयोजन रखेगा? आज दीर्घकाल के पश्चात मुझे यह विवेकरूपी अमृत प्राप्त हुआ है, इसे पाकर मैं अक्षय, अविकारी एव सनातन पद को प्राप्त करना चाहता हूँ।'

उनकी ऐसी दशा देखकर अर्जुन और भाइयो ने विनय और गभीरतापूर्वक उनको समझाना आरभ किया—'राजन् यह दु ख और कष्ट की बात है कि आपकी विह्वलता पराकाष्ठा तक पहुँच गयी है। आश्चर्य है कि आप पराक्रम और धर्म द्वारा प्राप्त की हुई राज्य-लक्ष्मी का परित्याग कर रहे हैं। यदि राज्य का परित्याग ही करना था तो आपने राजाओ का वध क्यो किया और करवाया। जिसके कल्याण का साधन नष्ट हो गया है, जो निरा दरिद्र है, जिसकी ससार मे ख्याति नही है, जो असमर्थतावश प्रयास करने मे अयोग्य हो, उसे ही भीख मागकर जीवन निर्वाह करने की अभिलाषा रखनी चाहिये। जव आप राज-कुल मे जन्म लेकर राज्य छोड घर-घर भीख माँगकर जीवन-निर्वाह करेगे, तव लोग आपको क्या कहेगे? राजा नहुष ने निर्धनावस्था मे दु खपूर्वक उद्गार प्रकट किया था, कि सर्वस्व त्याग कर निर्धन हो जाना मुनियो का ही धर्म है, राजाओ का नही। राजाओ का धर्म तो धन से ही सम्पन्न होता है। जो धनहीन है वह धर्म भी नही कर सकता। दरिद्र मनुष्य को लोग इस तरह देखते है मानो वह पापी या कलकित हो। जैसे पतित मनुष्य शोचनीय होता है, वैसे ही निर्धन भी।

जैसे पर्वतों से नदियाँ बहती रहती है, उसी प्रकार धन से शुभ-कर्मों का अनुष्ठान होता रहता है। राजन् ! धन से ही धर्म, काम, स्वर्ग की सिद्धि, जीवन-निर्वाह, हर्ष की वृद्धि, शास्त्रो का श्रवण, अध्ययन और शत्रुओं का दमन सभव है। जैसे गर्मी मे छोटी-छोटी नदियाँ सूख जाती है, उसी प्रकार निर्धन मदबुद्धि मनुष्य की सारी क्रियाए छिन्न-भिन्न हो जाती है। धनी के बहुत मित्र भाई बन्धु होते है। वही पुरुष और पडित कहलाता है। धन से कुल की प्रतिष्ठा बढती है। निर्धन के लिये न तो यह लोक सुखदायक है, न परलोक ही। हम लोग पहले अशरण पुरुषों को शरण देने वाले थे, किन्तु अब हमारा ही अर्थ नष्ट समझकर इस दुर्बलता पर वे बुरी दृष्टि डालेगे। वेदशास्त्र ने भी राजाओ के लिये यही निर्णय दिया है कि वे न्यायपूर्वक धन उपार्जन करे, विद्वान बने, स्वाध्याय और यज्ञ का अनुष्ठान करे। अब आपको यज्ञ करने का अवसर प्राप्त हुआ है, इसलिए यदि आप यज्ञ नही करेगे तो आपको पाप लगेगा। क्षत्रियो के लिये यही कल्याण का सनातन मार्ग है, आप इसी मार्ग पर चलिये।

'राजन् ! जैसे मद और अर्थ ज्ञान से शून्य श्रोत्रियो की बुद्धि केवल मत्र पाठ मे ही रहती है, उसी प्रकार आपकी बुद्धि भी तात्त्विक अर्थ को समझने वाली नही है। यदि आपने आलस्यपूर्ण जीवन बिताने का ही निश्चय किया है, तो कौरवो का क्यो विनाश किया ? जैसे कोई मनुष्य परिश्रम करके कुआँ खोदे और फिर जल न पीकर वहाँ से लौट जाये, उसी प्रकार हमारा पराक्रम व्यर्थ हो गया। यदि कोई आशा लेकर कठि-नाई से सफलता प्राप्त करे, फिर फल चखे बिना ही लौट आये वैसे ही हमारी दशा है। शास्त्र का उपदेश है कि आपत्ति काल मे, बुढापे मे, शत्रुओं द्वारा सपत्ति से वचित होते से मनुष्य को सन्यास ग्रहण करना चाहिये। जो पुत्र और पौत्रो के पालन मे असमर्थ हो, देवताओ, पितरों और ऋषियो को तृप्त न कर

सकता हो, अतिथियो को भोजन देने की भी शक्ति न रखता हो, ऐसे मनुष्य को ही अकेले जगल मे रहकर जीवन विताना चाहिए। श्रेष्ठ पुरुष केवल सन्यास को ही पुण्यकारक नही मानते। यदि कोई सन्यास से ही सिद्धि प्राप्त कर ले, तव तो पर्वत और वृक्ष जल्दी ही सिद्धि पा सकते हैं। वे उपद्रव शून्य, परिग्रह रहित और निरतर ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले है। यदि अपने शरीर मात्र का भरण-पोषण करने से सिद्धि मिलती हो, तो जल-स्थल पर रहने वाले पशु पक्षियो को भी सिद्धि प्राप्त हो जानी चाहिये।

'राजन्! जव दूसरो के कर्मों द्वारा सिद्धि प्राप्त नही की जा सकती, तव तो सभी को कर्म करना पडेगा, अकर्मण्य पुरुष कभी सिद्धि प्राप्त नही कर सकता। श्रेष्ठ पुरुषो ने जो कर्म किया है, वह दूसरो से होना अत्यत कठिन है। उनके कर्म पवित्र और जीवन उत्तम है। वे धर्म-परायण पुरुष, सफल मनोरथ हो, श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुए है। वेद मे सतकर्मो का प्रतिपादन दृढ़तापूर्वक किया है, इसलिए इन कर्मो के अनुष्ठान से ही अभीष्ट सिद्धि होती है। यज्ञो का सम्पादन ही धर्म कहलाता है और गृहस्थ आश्रम ही सिद्धि का पुण्यमय क्षेत्र है। जो मनुष्य कर्म करते हुए भी कुमार्ग का आश्रय लेते है, उन्हे पाप लगता है। यज्ञ रूप कर्म तपस्या से युक्त ही तपस्वियो का तप कहलाता है। तपस्या श्रेष्ठ कर्म है, परन्तु शास्त्रो के अनुसार गार्हस्थ्य धर्म मे ही सारी तपस्या प्रतिष्ठित है। जिसके मन मे किसी के प्रति ईर्ष्या नही होती, जो सत्य-भाषण करता है, जो धर्म से प्राप्त धन का श्रेष्ठ यज्ञो मे उपयोग करता है वह मनुष्य त्यागी माना जाता है।

'राजन्! गृहस्थाश्रम मे देवता, पितर और अतिथियो के लिए किए जाने वाले आयोजन से धर्म, अर्थ और काम तीनों की सिद्धि होती है। वेद-विहित विधि का पालन करने वाले निष्ठावान त्यागी का कभी विनाश नही होता। चित्त की एका-

ग्रता, स्वाध्याय, ज्ञान और ध्यान भी यज्ञ कहलाता है। राजन् ! केवल बाहरी द्रव्यों का त्याग कर देने से सिद्धि नही मिलती, परन्तु वासनाओ का त्याग करने से, अनासक्त भाव से रहने से, सुख की प्राप्ति होती है। यह मेरा है ऐसा भाव मृत्यु है, यह मेरा नही है अमृत है। सनातन ब्रह्म अपने ही भीतर स्थिर है। यदि आपकी दृष्टि मे गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए राज्य करना अधर्म है, तो स्वायम्भुव मनु और जनक आदि नरेशों ने इसका सेवन क्यों किया ? राजाओं का धर्म दुष्ट को दण्ड देना, सत्यपुरुषों का पालन करना, युद्ध मे पीठ न दिखाना, समयानुसार क्षमा और क्रोध प्रकट करना, दान देना और कर लेना ही है।

'राजन् ! दण्ड से प्रजा के शासन, धर्म और अर्थ की रक्षा होती है, इसलिये इसे त्रिवर्ग रूप कहा गया है। दड के भय से पापी पाप नही करते। मनुष्य को प्रमाद से बचने और सन्मार्ग पर चलने के लिये जो मर्यादा स्थापित की गयी है उसी का नाम दण्ड है। ईश्वर, पुरुष, प्राण, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा और जीव इन नामो से दड का प्रतिपादन किया गया है। जो दड है, वही सनातन व्यवहार है, वही वेद है। जो वेद है, वह धर्म सत्पुरुषो का सन्मार्ग है। कोई भी वस्तु ऐसी नही है, जिसमें सर्वथा गुण या अवगुण ही हो।

'राजन् ! समस्त प्राणियो की अन्तरात्मा अवध्य है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोडकर नए अपना लेता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नूतन शरीर को ग्रहण करती है। आप सम्पूर्ण शास्त्रो के ज्ञाता है, इसलिये कायर मनुष्य के समान क्यो दीनतावश मोह में पड़े है ? आपके इस मोह से हम सब सशय मे पडे गए है। हमारे तन-मन मे व्याकुलता और निर्बलता आ गई है। मनुष्य में दो प्रकार की व्याधियाँ होती है—एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। इन दोनो की उत्पत्ति एक दूसरे पर आश्रित है। जो मनुष्य बीते हुए मानसिक अथवा शारीरिक दु.ख के लिये बारंबार शोक करता है, उसे कष्ट

भोगने पडते है। यदि शोक को रोका न जाये तो उसके द्वारा शरीर सतप्त हो उठता है और शोक विपत्तियो को दूर भी नहीं करता। सताप से कान्ति फीकी पड जाती है, तथा आयु, धर्म का भी नाश होता है। शोकहीनता, सुख और आरोग्य का उत्पादन करती है। शरीर के निरोग होने से मनुष्य फिर धन-सम्पत्ति का उपार्जन कर सकता है। विद्वान पुरुप जो वाते बीत गयी है, जो अभी सामने नही आई है या भविष्य मे होने वाली है, उनके लिए शोक या चिन्ता नही करते।

'काल-चक्र से प्राप्त सुख-दु ख मे जो लोग आहत होते है, उनके उस दु ख के लिये दूसरा कोई दोपी नही है। ऋपि, मुनि, असुर, देवता, विद्वान सव पर विपत्तियाँ आती हैं, पर जिन्हे सत-असत का विवेक है, वे मोह मे नही पडते। इसलिए पुरुप जिस-जिस अवस्था को प्राप्त हो, उसी मे उसे आनन्द मानना चाहिये। मनुष्य को प्रारब्ध के विधान से जो कुछ पाना है, उसे ही वह पाता है, जहाँ जाना है, वही वह जाता है और जो-जो सुख या दु ख उसके लिये प्राप्तव्य हैं, उन्हे वह प्राप्त करता है।

'शास्त्र शोक को दूर करने वाला, शान्तिकारक और कल्याणमय है, उसके श्रवण से मनुष्य सुखी होता है। जो वीती वात के लिये शोक करता है उसे न तो अर्थ की प्राप्ति होती है, न धर्म की और न यज्ञ की! मनुष्य उसके कारण को याद कर दु ख ही उठाता है। सभी प्राणियो को सयोग और वियोग प्राप्त होते ही रहते हैं। यदि मनुष्य निरन्तर शोक करता है तो वह एक दु ख से दूसरे दु ख को प्राप्त होता है। यदि दु ख दूर करने के लिये कोई यत्न न किया जा सके अथवा किया हुआ यत्न काम न दे, तो उसके लिये चिन्ता नही करनी चाहिये। दु ख से छूटने का उपाय अवश्य सोचना चाहिये। जो शोक छोडकर दु ख से छूटने का साधन करता है वह निश्चित ही दु खो से मुक्त हो जाता है। कौरव, जटासुर, चित्रसेन, जयद्रथ और कीचक ने जो हमे दु ख दिये उनको आप क्यो भूल गए? गुरु द्रोणाचार्य,

भीष्म पितामह के साथ जो आपका युद्ध हुआ था, वैसा ही युद्ध आपको मन के साथ करना होगा। इस युद्ध मे विजय पाये बिना ही यदि आप प्राणों का त्याग कर देगे, तो पुनः आपको शरीर धारण करना पड़ेगा।

'जो शील और सदाचार से विनीत है, जिसने अपनी इद्रियो पर नियत्रण कर लिया है, जो सफलतापूर्वक बर्ताव करता है और समस्त प्राणियों का हितैषी है, जिसको अतिथि प्रिय है, जो धर्मशील है, जिसने धर्मपूर्वक धन उपार्जन किया है, ऐसे गृहस्थ के लिए अन्य आश्रमों की क्या आवश्यकता है ?'

द्रौपदी ने कहा—'महाराज ! गृहस्थ आश्रम सब धर्मो का मूल है। इसमें रहकर अत करण के राग आदि दोषो को त्यागने पर जितेन्द्रिय मनुष्य सर्वत्र सिद्धि प्राप्त कर लेता है। उसे घर आये हुए अतिथियो का आदर-सत्कार तथा भोजन कराना चाहिये। गृहस्थ पुरुषों के लिये अतिथि से बढकर दूसरा कोई देवता नही है। यदि अतिथि पूजित होकर मन-ही-मन गृहस्थ के कल्याण का चिन्तन करे, तो उससे जो फल मिलता है उसकी तुलना दूसरे यज्ञों से नही हो सकती। जो गृहस्थ सुपात्र और सुशील अतिथि का सत्कार नही करता, तब वह अतिथि उसका पुण्य ले, अपना पाप देकर चला जाता है। उसे बडे भाई को पिता के समान, पत्नी, पुत्र, बेटी को अपने ही शरीर के समान और सेवक को धाय समान समझना चाहिये। जिसके दिन-रात धर्म पालन मे ही व्यतीत होते है, उसे लोग ब्रह्मज्ञ मानते है। कर्म-परायण मनुष्य निष्काम भाव से जिन कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, वे सब दोषो और पापो को नष्ट कर देते है। वेद का सार है सत्य वचन। दान, मन और इन्द्रियो का सयम सबसे बडी तपस्या है। सुख का सार स्वर्ग और स्वर्ग का सार शान्ति है। गार्हस्थ्य और योग धर्म दोनो का ही श्रेष्ठ पुरुषो ने आचरण किया है, दोनो ही सम फल देने वाले है।

'चारों आश्रम ही देवयान नामक सनातन मार्ग माने गये

हैं। ज्ञान प्राप्त करके परब्रह्म मे स्थित हो जाना ही यदि पुरुषार्थ की चरमसीमा है तव तो गृहस्थ धर्म का महत्व और भी बढ जाता है, क्योकि गृहस्थो का सहारा लिये विना कोई भी आश्रम न तो चल सकता है और न कोई ज्ञान की निष्ठा ही प्राप्त कर सकता है। जैसे समस्त प्राणी माता की गोद का सहारा लेकर जीवन धारण करते है, उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर ही दूसरे आश्रम टिके हैं, अत. गृहस्थ ही यज्ञ है, तप है। जो किसी भी शुभ कर्म का आचरण करता है उस धर्म का कारण गृहस्थ आश्रम ही है। गृहस्थ आश्रम मे कुटुम्ब का भरण-पोषण, दान, स्वाध्याय, यज्ञ, सरल और कोमल भावरूप जो कर्म है, वे सब अन्य मनुष्यो के लिये अत्यन्त दुष्कर हैं। जो गृहस्थ कर्तव्य समझकर निष्काम भाव से धर्म और यज्ञ का अनुष्ठान करते है, उनका फल प्रत्यक्ष देखने मे आता है। जो त्याग की भावना से लोभ और कृपणतारहित धन को सत्पात्रो को दान देते है, कभी पाप नही करते और सदा निष्काम कर्म के साधनो मे ही लगे रहते है, उनके मानसिक सकल्पो की सिद्धि होने लगती है। उन्हे विशुद्ध ज्ञानस्वरूप परब्रह्म के विषय मे दृढ निश्चय हो जाता है। जो सब प्राणियो मे समभाव रहते है, जो शुद्ध चित्त और सन्तुष्ट रहते हैं, जो शब्द ब्रह्म और परब्रह्म दोनो में श्रद्धा रखते हैं, जो आवश्यक नियमो का पालन करते हैं, वे सुख का ही अनुभव करते है और उन्हे प्रायश्चित करने की आवश्यकता नही पडती। जो काम, क्रोध से रहित, शान्ति परायण सत्सग और शुभ कर्म करते है, उन्हे स्वत अक्षय मोक्ष रूप फल मिल जाता है। ऐसे पुण्यात्मा मनुष्य यदि पुन ससार मे जन्म ग्रहण करते हैं तो पाप कर्मों मे लिप्त नही होते। जब कर्मो द्वारा चित्त के रोगादि दोष जल जाते है, तब मनुष्य स्वत ज्ञान मे स्थित हो जाता है।

'ज्ञान, सन्यास और निष्काम भाव से कर्मों को करना विद्वानो ने मोक्ष का समान ही साधन बताया है। सन्यासी

त्रिदंड आदि को धारण करता है और गृहस्थ गृह आदि को। यदि त्रिदड आदि धारण करने पर किसी को ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है तो गृह आदि रखने से दूसरे को उसी ज्ञान के द्वारा मोक्ष कैसे प्राप्त नही हो सकता ? क्योंकि परिग्रह दोनो के लिये समान है—एक त्रिदड आदि का सग्रह करता है दूसरा गृह, धन आदि का। अपने-अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये जिस मनुष्य को जिस-जिस वस्तु से प्रयोजन होता है, वे सभी अपना-अपना काम बनाने के लिये उन-उन वस्तुओ का आश्रय लेते है। जो गृहस्थ आश्रम मे दोप देख उसका परित्याग कर दूसरे आश्रम में चला जाता है, वह भी कुछ छोडता है और कुछ ग्रहण करता है, अतः उसे भी सगदोष से छुटकारा नही मिलता। मेरी तो यह धारणा है कि गेरुआ वस्त्र पहनना, मस्तक मुँडा लेना तथा त्रिदड कमण्डलु धारण करना, ये सब सन्यास मार्ग का परिचय देनेवाले चिह्न मात्र है, इनके द्वारा मोक्ष की सिद्धि नही होती। न तो अकिंचनता मे मोक्ष है न किंचनता में बन्धन ही। धन और निर्धनता दोनों ही अवस्था में ज्ञान से ही जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्षरूपी पत्थर पर रगडकर त्यागरूपी तलवार को तेज कर विषय और वासनाओं को काटने से मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है, अन्यथा नही। मनुष्य योग युक्त होकर भी यदि काम भागो मे आसक्त हो, तो उसका त्रिदड धारण करना अनुचित एव व्यर्थ है। यदि प्रजा न हो तो कोई राजा नहीं हो सकता, राजा न हो तो राज्य नही, राज्य न हो तो राजा धर्म कैसे कर सकता है और धर्म न हो तो परमात्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

'जो सर्वदा धर्मपरायण रहकर उत्तम और अधम विषयों को यथायोग्य विचारपूर्वक ग्रहण करता है और नाना प्रकार के शुभ कर्मों का आचरण करता है, उनके फलस्वरूप उसे अप्राप्य निर्दोष सुख एवं पुण्यात्मक लोक प्राप्त होते हैं।

'गृहस्थ धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले उत्तम गति

को प्राप्त होते है। जो मनुष्य अपने सत्कर्मों द्वारा धर्म को धारण करता है और निष्काम भाव से दान देता है, वह शुभ गुणो से सयुक्त होता है। उस मनुष्य का शरीर नाश हो जाने पर भी उसकी मृत्यु नही होती। धर्म पर चलने वालो का नाश नही होता, वे ही बुद्धिमान हैं। जो वन मे पैदा हुए और वही मर गए, उन्हे विना अनुभव के धर्म की प्राप्ति नही होती।

'प्राणेश्वर! मोक्ष की प्राप्ति सशयास्पद है, क्योकि प्राणी प्रारब्ध के अधीन है। इस ससार मे दाता के दान से ही साधु पुरुपो की जीविका चलती है। यदि दान देने वाला दाता ही न हो, तो साधु-सन्यासी कैसे जी सकते है? इस जगत मे अन्न से गृहस्थ का और गृहस्थो से भिक्षुओ का निर्वाह होता है। अन्न से प्राण शक्ति प्रकट होती है, अत अन्नदाता प्राणदाता होता है। जितेन्द्रिय सन्यासी गृहस्थ आश्रम से अलग होकर भी गृहस्थो के सहारे ही जीवन धारण कर प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। याचना से किसी को भिक्षु नही समझना चाहिये। जो सरल भाव से सर्वथा त्याग करता है, वही पूर्ण त्यागी है अनासक्त सग रहित,शत्रु-मित्रमे समभाव रखनेवाला ही मुक्त है। जैसे ज्ञान और विज्ञान के विना मोक्ष की प्राप्ति नही होती, उसी प्रकार सदगुरु से सम्बन्ध हुए विना ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती। गुरु इस ससार सागर से पार उतारने वाले है, और उनका दिया हुआ ज्ञान यहाँ नौका के समान वताया गया है। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है। जैसे नदी को पार कर लेने पर मनुष्य नाव और नाविक को छोड देता है, उसी प्रकार मुक्त मनुष्य गुरु और ज्ञान दोनो को छोड़ देता है। पहले के विद्वान लोक मर्यादा तथा कर्म परम्परा की रक्षा के लिये, गृहस्थ के धर्मों का पालन करते थे। नाना प्रकार के कर्मो का अनुष्ठान करते हुए शुभाशुभ कर्मो का परित्याग करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। अपने भीतर ही आत्म ज्योति का प्रकाश है, अन्यत्र नही। यह ज्योति सम्पूर्ण प्राणियो

के भीतर समान रूप से स्थित है। जिसका सशय नष्ट हो गया है, वह निश्चय के द्वारा परमगति को प्राप्त कर लेता है।

'शिष्यों का धर्म है, गुरु की सेवा करना, ब्राह्मणो का वेदो को धारण करना, तथा राजा का प्रजा का सरक्षण करना धर्म है। अतिथि सत्कार के साथ-साथ यज्ञो का अनुष्ठान करना, वैश्यो और क्षत्रियो का धर्म कहा गया है। समस्त प्राणियो के हित की इच्छा रखना गृहस्थ का धर्म है। नियमित आहार का सेवन और विधिवत व्रत का पालन करना सबका धर्म है। धर्म के पालन से इंद्रियों की शुद्धि होती है। मैं किसका हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? मेरा कौन है ? तथा जीवन का प्रयोजन क्या है ? इत्यादि वातों पर सन्यासी को सदा विचार करना चाहिये। पत्नी के लिये पतिव्रता धर्म ही सबसे बडा कहा जाता है, इसलिये उसे ऐसे वचन कहना चाहिये, जिससे कि पति का हित हो।

'मौन रहने से ज्ञान रूप फल की प्राप्ति होती है, दान देने से महान यश की। सत्य बोलने से वाणी, पटुता और परलोक में प्रतिष्ठा होती है। भूदान करने से मनुष्य आश्रम धर्म के पालन के समान उत्तम गति और न्यायपूर्वक धन उपार्जन कर श्रेष्ठ फल पाता है। अपनी रुचि के अनुकूल कर्म यदि पाप-कर्म से रहित और अपने लिये हितकर हो तो उसे करके कोई भी नरक मे नही पड़ता। अपने चित्त को भलीभाँति एकाग्र करने वाला इसको स्वय देख सकता है। जब मनुष्य मन, वाणी तथा क्रिया के द्वारा किसी भी प्राणी से द्वेष नही रखता, तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है। श्रेष्ठ पुरुष भी यदि निन्दित कर्म करता है, तो वह कर्म उसे कलकित कर देता है। अधर्म कर्ता का पीछा नही छोडता। समय आने पर कर्ता को इस पाप का फल अवश्य भोगना पडता है। जिसका मोह दूर हो गया है, जो समस्त ससर्गो का त्याग कर चुका है, वह गृहस्थ-धर्म पालन करते हुए भी बुद्धि द्वारा निर्द्वन्द्वता प्राप्त कर लेता

है। जिसकी वुद्धि किसी अनर्थ अथवा भोगो मे आसक्त नहीं होती, पर स्त्री में अनुराग और शत्रु आदि के विषय मे क्रोध नही होता, वही सच्चा वैरागी है।

'जो मूड मुडाकर गेरुवे वस्त्र पहन दड धारण कर लेते हैं, किन्तु हृदय मे कामना भरी रहती है, वे ढोंगी है। यदि हम लोग दान और तपस्या मे तत्पर हो, धर्म का अनुष्ठान करेंगे, काम, क्रोध आदि को त्याग देंगे, दया, दान का आश्रय ले प्रजा का पालन करेंगे, तथा गुरुजनो और वृद्ध पुरुषो की सेवा करेंगे, तो हमे अभीष्ट लोक प्राप्त हो जायेगा। देवता, अतिथि और समस्त प्राणियो को विधिपूर्वक उनका भाग देते हुए ब्राह्मण भक्त और सत्यवादी वने रहेंगे, तो हम सव दु खो से मुक्त हो जायेंगे।

'क्षत्रियो के लिये सग्राम मे मर जाना तो यज्ञो से भी वढकर माना गया है, जो पारलौकिक पुण्य फल की प्राप्ति कराने वाला है। तप और त्याग तो ब्राह्मण के धर्म हैं, जो मृत्यु पश्चात पर-लोक में फल देने वाले हैं। जो कुछ हुआ है, उसी रूप मे होने वाला था। दैव का उल्लघन नही किया जा सकता, इस-लिये आपको गृहस्थ आश्रम के श्रेष्ठ मार्ग पर चलना चाहिये।'

युधिष्ठिर वोले—'प्रियवर! असंतोष, प्रमाद, मद, राग, अशान्ति, मोह और उद्वेग, ये सभी पाप आप लोगों के भीतर घुस गए हैं, तभी आप लोगो को राज्य की इच्छा होती है। सकाम, कर्म और वधन से सर्वथा मुक्त होकर शान्त एवं सुखी हो जाओ। लोभ, मोह से आवृत हो जो तुम सव असीम कामना करते हो, उसकी सारी आयु पर्यन्त भी पूर्ति होनी असम्भव है। जैसे आग में जितना भी इंधन डाला जायगा, वह प्रज्वलित होती रहती है, वैसी ही दशा तृष्णा की है। योग और क्षेम धर्म तुम सवमे स्थित है, इसलिये त्याग का आश्रय लो। यत्नशील साधक विषयो का परित्याग कर सतुष्ट हो जाता है, किन्तु विषय भोगो से संपन्न समृद्धिशाली भी कभी सतुष्ट नही

होता। अपने मनोरथों के पीछे बड़े-बड़े कार्यों का आरम्भ न करो। आशा तथा ममता न रखो और उस शोकरहित पद का आश्रय लो, जो इस लोक और परलोक मे भी अविनाशी है। तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा स्वाध्याय के बल मे मृत्यु के पश्चात मनुष्य ऐसे लोक मे पहुँच जाता है, जहाँ उसे दु.ख नही सताता। शुभाशुभ किये हुए कर्मों की साक्षी आत्मा ही है। बुद्धिमान और तपस्वी ही उस गति को प्राप्त होते है, अन्य नही।

'यह दुर्लभ मानव शरीर स्वर्ग लोक में पहुंचाने के लिये सीढी के समान है। इसको पाकर अपने आपको इस प्रकार धर्म में एकाग्र करो कि फिर उसे स्वर्ग मे नीचे न गिरना पडे। जो भोगों का परित्याग कर तपोवन में जा तपस्या करते हैं, उनके लिये कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो प्राप्त न हो।

'विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है, सत्य के समान कोई तप नही है, राग के समान कोई दु.ख नही है और त्याग के सदृश कोई सुख नहीं है।

'धन खर्च करते समय बडा दुःख होता है। उसकी रक्षा में भी सुख नहीं है और उसकी प्राप्ति भी बडे कष्ट से होती है, इसलिये धन को प्रत्येक अवस्था में दु.खदायक समझकर उसके नष्ट होने पर चिन्ता नही करनी चाहिये। मनुष्य धन सग्रह करते-करते कभी तृप्त नही होते, क्योकि तृष्णा का कभी अन्त नही होता। संसार मे ऐसा कोई द्रव्य नही है जो मनुष्य की आशा को तृप्त कर दे। मनुष्य की आशा समुद्र के समान है, जो कभी भरती ही नही। कामना करने वाले मनुष्य की जब एक इच्छा पूरी हो जाती है, तब दूसरी नई उत्पन्न हो जाती है। भोगों की कामना कभी शान्त नही होती। जैसे घी की आहुति पड़ने पर अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, इसी प्रकार भोगों की कामना भी बढ़ती ही रहती है। जो लौकिक धन के लिये लोभ करता है, उसका धर्म रूपी धन नष्ट हो जाता है। धर्म का पालन करने पर जिस धन की प्राप्ति होती है उससे बढकर ससारिक

धन नही है। भोगी अधिक धन की आशा लिये ही मर जाते है। जिस धन को न राजा से भय है, न चोर से ही, तथा जो मर जाने पर भी जीव का साथ नही छोडता, उस धर्मरूपी धन का उपार्जन करो। अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त हुए धन को पर-लोक मे परस्पर बाँटना नही पडता, क्योकि वह उसकी निजी अविनाशी और अटल सम्पत्ति है, जिससे परलोक मे भी जीवन-निर्वाह हो सकता है।

'मनुष्य की हृदयभूमि मे मोहरूपी बीज से काम, क्रोध और अभिमान रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है। इच्छा जल सीचने का पात्र, प्रमाद जल और अज्ञान जड है। दूसरों के दोष देखना पत्ते, शोक, कामना, चिन्ता और तृष्णा डालियाँ है। जो वैराग्य रूपी शस्त्र द्वारा उस काम वृक्ष को काट डालता है, वह दुःख से पार हो जाता है। इसी प्रकार यह शरीर नगर है, बुद्धि इस नगर की रानी है। मन निश्चयात्मिका बुद्धि रूप रानी का मन्त्री है। इद्रियाँ इस नगर मे निवास करने वाली प्रजा है। ये मनरूपी मन्त्री की आज्ञा के अधीन रहती है। इन प्रजाओ की रक्षा के लिये मन को बडे-बडे कार्य करने पडते हैं। यहाँ रज और तम दो मार्ग है। मन, बुद्धि और जीव विषय सुख का आश्रय लेने के लिये इन मार्गो मे चलते है। बुद्धि दुर्धर्ष होने पर भी मन के साथ रहने से उसके समान ही हो जाती है और अनर्थ का ही निश्चय करती है। सत्सग, सत्कर्म और परमात्मा के स्मरण से ही इस नगर और नगरवासियो का कल्याण हो सकता है।

'मनुष्य को शब्द, स्पर्श, रूप, रस एव गध इन पाँचो विषयो का अनुभव करने के लिये पहले इच्छा होती है। फिर उनमे से किसी एक को पाकर उसके प्रति राग या द्वेष हो जाता है। जिसके प्रति राग-द्वेष होता है, उसे पाने के लिये वह प्रयत्न करता है। जिन विषयो के प्रति उसके मन मे राग उत्पन्न हो जाता है उनके प्रतिकूल विषयों से द्वेष होता है। फिर अनुकूल

विपय को प्राप्त करने के लिये लोभ होता है और लोभ के वाद उसके मन पर मोह अधिकार जमा लेता है। लोभ और मोह से घिरे हुए तथा राग-द्वेष के वशीभूत हुए मनुष्य की बुद्धि धर्म में नही लगती। वह कपट से धन कमाने मे सारी बुद्धि लगा देता है। वह राग और मोह से आवृत्त होकर पाप की ही वात सोचता है, पाप ही बोलता है और क्रिया द्वारा पाप ही करता है। ऐसे मनुष्य इस लोक और परलोक मे दु ख भोगते है। पाप कर्मो से दूर रहना, पुण्य कर्मो का अनुष्ठान करना, यही कल्याण का साधन है। विषयासक्त पुरुष की बुद्धि चचल होती है। उसे काम, क्रोध और मोह को सभी उपायो से दबाना चाहिये। क्रूर स्वभाव का परित्याग सबसे बडा धर्म है, क्षमा सबसे बडा बल है, आत्मा का ज्ञान ही सबसे उत्कृष्ट ज्ञान है और सत्य से बढकर तो कुछ है ही नही। जिनके मन मे कामना नही है, जो किसी वस्तु का सग्रह नही करता, जिसने सब कुछ त्याग दिया है, वही विद्वान है।

'तुम लोगो ने अहित मे ही हित बुद्धि कर रखी है। जो विनाशशील वस्तुएँ है, उन्हे तुम अविनाशी मानते हो, यह बात तुम सबकी समझ मे क्यो नही आती ? इस अनर्थमय जगत मे क्यो आसक्त हो रहे हो ? अपने मोक्ष का साधन क्यो नही करते ? ससार मे पाप-पुण्य के सिवाय सब कुछ नाशवान है। तुम सव कर्मो से निवृत्त, सब प्रकार के बधनो से मुक्त और सासारिक भावनाओ से रहित हो जाओ। आयु निरतर बीती जा रही है, वह पल-भर भी ठहरती नही। जब अपना शरीर ही अनित्य है, तब इस ससार की किस वस्तु को नित्य समझा जाये ? धनी हो या निर्धन सबको उपभोग काल मे ही विषयो मे किचित सुख की प्रतीति होती है, उपभोग के पश्चात नही। जो मनुष्य विनीत भाव से विचरण करता है, वही सुखी और विद्वान है। जब मनुष्य सुख को दु ख और दु ख को सुख समझने लगता है, उस समय बुद्धि, उत्तम नीति और पुरुषार्थ भी उसकी

रक्षा नही कर पाते, अत मनुष्य को स्वभावतः ज्ञान प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये, क्योकि यत्न करने वाला मनुष्य दु ख मे नही पडता।

'भाइयो! धर्म और ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले वेद मे वचन उपलब्ध हैं उन्हे मैं जानता हूँ। वे है, कर्म करो और कर्म छोड़ो। तुम सब तो अस्त्र-विद्या के पडित हो, शास्त्रो के तात्पर्य को यथार्थ रूप मे जानने की शक्ति तुममे नही है। तपस्या, त्याग और ब्रह्म ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है। तपस्या और स्वाध्याय मे लगे धर्मात्मा पुरुषो को सनातन लोको की प्राप्ति होती है। कितने ही ऐसे धीर पुरुष हुए है, जिनके शत्रु पैदा ही नही हुए और वे स्वाध्याय करके स्वर्ग को चले गये। वहुत-से पुरुषो ने इद्रियों का निग्रह कर अज्ञान को त्यागा और वे त्यागी पुरुषो के लोको में चले गये। ज्ञानयोग सब साधनों में प्रधान, अभीष्ट एव अनिर्देश्य है, किन्तु उसके स्वरूप को समझना वहुत कठिन है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि मन को कल्याण मार्ग मे लगा, तृष्णा और कर्मोका परित्याग कर, धन-जन से दूर होकर, सुखी हो जाय। मनुष्य के मन मे सतोष होने से उसे परम सुख की प्राप्ति होती है। शास्त्रो के ज्ञाता एव महान विद्वानो का कथन है कि तत्ववेत्ता पुरुष तपस्या द्वारा परम पद को प्राप्त कर लेता है। वह ज्ञानयोग से परम तत्व को उपलब्ध कर स्वार्थ त्याग के द्वारा सदा नित्य सुख का अनुभव करता रहता है।

'आप लोग मुझ पापी को आमरण अनशन के लिये बैठा हुआ समझें। अब मैं न तो अन्न खाऊँगा, न पानी पीऊँगा और यही रहकर प्राणो को सुखा दूँगा। आप लोग मुझे आज्ञा दे कि मैं अव इस शरीर को त्याग दूँ।'

# मुनियों द्वारा युधिष्ठिर को उपदेश

मुनिवर देवस्थान ने राजा युधिष्ठिर से कहा—'महाराज! तुमने धर्म के अनुसार यह राज्य जीता है, इसलिये इसे त्याग देना उचित नही है। चारो आश्रम ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये चार सीढियाँ है, जो वेद में प्रतिष्ठित है। इन्हें क्रमशः पार करो और यज्ञों का अनुष्ठान करो। स्वाध्याय-यज्ञ और ज्ञान-यज्ञ तो ऋषि लोग किया करते है। ऋषियो मे भी कुछ कर्मनिष्ठ और कुछ तपोनिष्ठ होते है। यह सत्य है कि धन के लिए विशेष चेष्टा करना दोष है। पर ब्रह्म ने यज्ञ के लिए ही धन की सृष्टि की है, और यज्ञ के उद्देश्य से उसकी रक्षा करने वाले को उत्पन्न किया है, इसलिये यज्ञ में ही धन का उपयोग करना चाहिये। तेजस्वी इन्द्र, देवाधिदेव महादेव, महाराज मरुत और राजा हरिश्चन्द्र यज्ञों के प्रभाव से विश्व में प्रतिष्ठा पा रहे है। जैसे कछुआ अपने सब अगो को सिकोड लेता है, उसी प्रकार मनुष्य अपनी सब कामनाओं को समेट ले, तब ज्योति.स्वरूप आत्मा उसके अत:करण मे प्रकाशित हो जाती है। जब मनुष्य काम और द्वेष को जीतकर किसी से भय नही मानता, न उससे दूसरे प्राणी भय मानते है, तब वह आत्म-स्वरूप का साक्षात्कार कर लेता है। जब मनुष्य मन, वाणी और क्रिया द्वारा प्राणियों से न द्रोह, न किसी वस्तु की अभि-लाषा ही करता है, तब परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। कुछ लोग प्रेमपूर्वक व्यवहार की प्रशसा करते है, तो कुछ यत्न और परिश्रम की। कोई यज्ञ को ही उत्तम बताते है, तो कोई सन्यास को; कोई भगवान के ध्यान मे लगे रहते है, तो कोई आत्म-चिन्तन में, किन्तु विद्वानों ने ऐसा निश्चित किया है कि कर्तव्य समझकर अपना धर्म पालन करना ही श्रेष्ठ धर्म है। उससे उसे परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। किसी से द्रोह न करना,

सत्य बोलना, समस्त प्राणियो को उनका भाग समर्पित करना, दया भाव, मन और इद्रियो का सयम, मृदुता, लज्जा और अचचलता गुणो को अपनाना, ये श्रेष्ठ और अभीष्ट धर्म है, ऐसा स्वायभुव मनु का कथन है। कुतीनदन ! तुम भी इन धर्मो का पालन करो। तुम सवमे समभाव रखो, यज्ञ से वचे हुए अन्न का भोजन करो, दुष्टो का दमन, साधुओ का पालन करो और शास्त्रो के यथार्थ रहस्य को जानो। शास्त्र विहित कर्म करने से मनुष्य का इहलोक और परलोक सफल हो जाता है। सन्यास के द्वारा निर्वाण प्राप्त करना अत्यन दुष्कर एव दुर्लभ है, क्योकि उसमे वहुत से विघ्न आते है।'

व्यासजी ने कहना आरम्भ किया—'युधिष्ठिर ! शास्त्रोक्त परम धर्म, गृहस्थ आश्रम का ही आश्रय लेकर टिका हुआ है। तुम शास्त्र के कथनानुसार स्वधर्म का ही आचरण करो। देवता, पितर, अतिथि, भृत्य, पशु-पक्षी और अन्य प्राणियो का गृहस्थो से ही पालन होता है। मैं तुम्हे शख और लिखित का दृष्टान सुनाता हूँ।

' शख और लिखित दो भाई थे और कठोर व्रत का पालन करने वाले थे। एक दिन लिखित वडे भाई शख के आश्रम पर गया, किन्तु शख उस समय वाहर गया हुआ था। शख की आज्ञा लिए विना ही उसने शख के आश्रम मे लगे हुए फलो को खा लिया। शख को जव यह मालूम पडा, तव वह छोटे भाई लिखित पर क्रोधित होकर वोला—'तुम चोर हो। तुम नृप-श्रेष्ठ सद्युम्न के पास जाओ और उमे उचित दड देने की आज्ञा सुनाओ।' लिखिन भाई की आज्ञा शिरोधार्य कर राजा सद्युम्न के पास गया और उससे कठोर दड देने की भिक्षा माँगी।

' राजा वोला—'मुने ! यदि आप मुझे दड देने का अधिकारी मानते है तो मुझे क्षमा करने का भी अधिकार है। आप पवित्र कर्म करने वाले महान व्रतधारी है, इसलिए मैंने आपको क्षमा करके लौटने की आज्ञा दे दी।' किन्तु राजा सद्युम्न के वार-वार

आग्रह करने पर भी लिखित ने दड देने का हठ नही छोड़ा। भूपाल ने लाचार होकर उसके दोनों हाथ कटवा दिये।

लिखित अपने भाई शख के पास जाकर आर्त होकर कहने लगा—'मैंने दड पा लिया है, मुझ दुर्बुद्धि को आप क्षमा कर दे।'

'शख बोले—'धर्मज्ञ! मैं तुम पर कुपित नही हूँ। हम दोनों निर्मल और निष्कलक रूप से विख्यात है। तुमने धर्म का उल्लघन किया था, अत. उसीका प्रायश्चित किया है। तुम शीघ्र ही बाहुदा नदी के तट पर जाकर विधिपूर्वक देवताओं, पितरों और ऋषियों का तर्पण करो, जिससे कि भविष्य मे तुम्हारा मन अधर्म की ओर न लगे।' लिखित ने वैसा ही किया। जब वे पवित्र हो तर्पण देने की चेष्टा करने लगे, उसी समय उनके दो हाथ प्रकट हो गये। लिखित ने चकित होकर अपने भाई को दोनो हाथ दिखाए, तब शख ने बताया कि मैंने तपस्या के बल से तुम्हारे हाथ नए पैदा किए है। दड देने का अधिकार तो राजा को ही है। दड देने से राजा और दड को स्वीकार करने से तुम दोनो ही पवित्र हो गये हो।

'राजन्! दड धारण ही क्षत्रिय-धर्म के अतर्गत है, मूँड मुँडाकर सन्यासी बनना नही। धर्मशास्त्रों की आज्ञा का उल्लघन करने से राजा का पतन हो जाता है, पर जो काम और क्रोध की अवहेलना करके शास्त्रीय विधि का आश्रय ले सर्वत्र पिता के समान सम दृष्टि रखता है वह कभी पाप से लिप्त नही होता। जो राजा प्रजा की रक्षा नही करता, वह पापो से सयुक्त हो जाता है।

'राजन्! तुम शोक सागर मे गोते लगा रहे हो, किन्तु न तो शोक करने से नष्ट हुई वस्तु मिल सकती है, न चिन्ता से ही। कोई ऐसा दाता भी नही है जो मनुष्य को उसकी नष्ट हुई वस्तु दे दे। मनुष्य को विधाता के विधान को स्वीकार करना पडता है। तुम उन मरे हुए व्यक्तियो का स्मरण ही क्यो करते

हो ? शोक करने से शोक की वृद्धि होगी। यह शरीर भी अपना नही है और पृथ्वी भी अपनी नही, ऐसी दृष्टि रखने वाला पुरुष कभी मोह मे नही फँसता।

'विधाता ने कर्मों के लिए तुम्हारी सृष्टि की है। तुम उन्ही का अनुष्ठान करो। उन्ही से तुम्हे सिद्धि प्राप्त होगी। तुम कर्मों के फल के स्वामी या नियता नही हो। उत्तम कुल मे जन्म, बल-पराक्रम, आरोग्य, रूप, सौभाग्य और उपभोग सामग्री, ये सब दैवाधीन हैं। रोग, ज्वर और अनेक शारीरिक व्याधियाँ जीव मृत्यु के निमित्त है। इनका उल्लघन करने वाला अभी तक कोई दिखाई नही दिया, न ये सब किसीके नियत्रण मे ही रहे है। काल के प्रभाव से समस्त प्राणियो को ये सब प्राप्त होते ही रहते हैं। जैसे नदी मे जल के प्रभाव से एक तिनका दूसरे से कुछ समय के लिये मिल जाता है फिर अलग हो जाता है, उसी प्रकार प्राणियो के सयोग और वियोग होते रहते हैं, अतः विवेकी पुरुष को अपने मन मे विचार करना चाहिये कि 'मैं कौन हूं', 'कहाँ हूँ', 'कहाँ जाऊँगा', 'यहाँ किसलिए आया हूँ।' प्राणी संसार के चक्र मे घूमता रहता है। यहाँ पिता, माता, मित्र इत्यादि का साथ मार्ग मे मिले हुए बटोहियो के समान ही है।

'राजन्! सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आता है, पर दोनो ही स्थिर नही रहते। ससार मे अत्यन्त मूर्ख या जो बुद्धि से परे पहुँच गये हैं, वे ही सुखी हैं, बीच वाले नही। सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण ये समय-समय पर क्रम से सब को आते ही रहते हैं, इसलिए धीर पुरुष इनके लिए हर्ष और शोक नही करते। जिसके मान और मोह दूर हो गए हैं, जो नाना प्रकार की आसक्तियों से रहित है, उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। जैसे पानी मे बुलबुले बनते और नष्ट हो जाते है वैसे ही ससार में प्राणियो का सयोग और वियोग होता है। सग्रह का अत विनाश, उन्नति का

पतन और जीवन का अंत मृत्यु है। जहाँ आलस्य है वहाँ दु:ख और जहाँ कार्य दक्षता है वहाँ सुख। वही ऐश्वर्य, लक्ष्मी, धृति और कीर्ति निवास करती है।

'यद्यपि विद्वान पुरुष कहते है कि परलोक न तो किसी ने देखा है, न उससे आकर किसी ने उसके विषय मे बताया है, पर अपने कल्याण की इच्छा रखने वाले पुरुषो को शास्त्रों की बातों पर विश्वास करना चाहिए। जब मनुष्य मन, वाणी और कार्यों द्वारा सम्पूर्ण भूतों के प्रति पाप बुद्धि का परित्याग कर देता है, तब वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। तुम भी शोक छोड़कर उठो और क्षत्रिय-धर्म का कर्तव्य समझकर पालन करो, जिससे परम पद को प्राप्त हो जाओगे।'

भगवान व्यास के समझाने पर भी जब राजा युधिष्ठिर नही बोले, तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहना आरम्भ किया—'राजन्! इस समरागण में जो वीर मारे गये है वे मिल जाये, यह सम्भव नही है। जैसे स्वप्न मे मिले हुए धन जागने पर मिथ्या हो जाते है, उसी प्रकार जो वीर मृत्यु के मुख मे चले गये है, उनका दर्शन दुर्लभ है। ये क्षत्रिय-धर्म में तत्पर रहने वाले, वेद शास्त्र के पारगत, शूरवीर, पुण्यमय गति को प्राप्त हुए है।

'अवीक्षित के पुत्र राजा मरुत भी मर गए, जिनके यज्ञ में इद्र, वरुण सहित देवता, प्रजापति और देवगुरु बृहस्पति पधारे थे। राजा मरुत के शासन काल मे पृथ्वी से बिना जोते ही अन्न पैदा होता था। राजन्! धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इन चारो बातो मे राजा मरुत तुम से बढे-चढे और तुम्हारे पुत्र से भी अधिक पुण्यात्मा थे। जब वे भी मर गए तब औरों की तो बात ही क्या? अतिथि सत्कार के प्रेमी राजा सुहोत्र के राज्य मे इद्र ने सोने की वर्षा की थी और नदियाँ अपने जल के साथ स्वर्ण बहाया करती थी। वे भी धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य मे तुम से बढ-चढ के थे और तुम्हारे पुत्र से भी अधिक पुण्यात्मा

थे। जब वे भी मर गए, तब दूसरो की क्या बात है ?

'अगदेश के राजा बृहद्रथ ने सौ यज्ञ किये थे और प्रचुर द्रव्य को दक्षिणा मे बाटा था। वे भी तुमसे सर्वगुणो मे अधिक थे, जब वे भी मर गए तब दूसरो की क्या बात है? राजा शिवि, दुष्यत और शकुन्तला के पुत्र महामनस्वी राजा भरत, राजा दिलीप, राजा मान्धाता, राजा ययाति, राजा भगीरथ, राजा अवरीप, राजा रतिदेव, राजा सगर, महाराजा पृथु जो तुमसे सब प्रकार से उत्तम थे, उन्होने भी परमगति पाई। राजन् ! तुम चुपचाप क्या सोच रहे हो? मेरी बात को क्यो नही सुनते ? जैसे मरणासन्न मनुष्य पर प्रयोग की हुई औषधि व्यर्थ हो जाती है, क्या उसी प्रकार मेरा प्रवचन निष्फल तो नही हो गया ?'

युधिष्ठिर ने कहा—'भगवन् ! पवित्र गधवाली माला के समान, विचित्र अर्थ से भरी हुई आपकी वाणी मैं सुन रहा हूँ। आपके वचन सम्पूर्ण शोक का विनाश करने वाले हैं। आपका दर्शन करके ही मै शोकरहित हो गया हूँ, और अमृत पान के समान उससे तृप्त नही हो रहा हूँ, इसलिए मुझे और उपदेश दे। कोई बुद्धिमान, विद्वान, कल्याण चाहने वाला जैसे उपदेश दे सकता है, वैसी ही बात आपने कही है। आपने मेरे लिए जो आदेश दिया है मैं उसका पालन करूँगा।' भगवान श्रीकृष्ण की अनुमति से व्यासजी ने कहना आरम्भ किया.

'राजन् ! तुम्हारे पिता पाण्डु तुम्हारे लिये आशा रखते थे कि मेरे पुत्र मे शूरता, बल और सत्य की वृद्धि हो। तुम्हारी माता कुन्ती की भी अभिलाषा थी कि तुम्हारी महत्ता और उदारता बढे। दान, वेदाध्ययन, यज्ञ और प्रजा का पालन—ये धर्म रूप हो या अधर्म रूप, तुम्हारा जन्म इन्ही कर्मो को करने के लिये हुआ है। राज्य आदि का धर्मपूर्वक भार वहन करने से राजा की कीर्ति चिरस्थायी होती है और उसे कोई दोष नही लगता। राजन् ! बताओ तो तुम्हारे पिता आज कहाँ है ?

तुम्हारे पितामह अब कहाँ चले गए ? यह शरीर अनित्य है, इस बात को तुम देखते हो और समझते हो, फिर जो मृत्यु ग्रस्त हो गए, उनके लिए क्यो शोक करते हो ? जरा बुद्धि लगाकर विचार करो, एक दिन तुम भी नही रहोगे। सारे पदार्थ जब ससर्ग मे आते है, तभी दृष्टिगोचर होते है, दूर हो जाने पर उनका दर्शन सम्भव नही हो पाता। ऐसी स्थिति मे ज्ञान और विज्ञान से तृप्त तुम्हारे जैसा पुरुष शोक नही करता।

'शास्त्र शोक को दूर करने वाला शान्तिकारक और कल्याणमय है। शोक के सहस्रो स्थान है, जो प्रतिदिन मूढ पुरुषो पर अपना प्रभाव डालते है। जो बीती बात के लिये शोक करता है, उसे न तो अर्थ की प्राप्ति होती है न धर्म और यज्ञ की ही। सभी प्राणियो को सयोग और वियोग प्राप्त होते ही रहते है। किसी एक पर ही यह शोक का अवसर आता हो, ऐसी बात नही है। दुःख दूर करने की सबसे अच्छी औषधि यही है कि उसका बार-बार चिंतन न किया जाय। चितन करने से वह घटता नही, किन्तु बढता ही है। इसलिये मानसिक दु ख को विचार से और शारीरिक कष्ट को औषधि सेवन द्वारा नष्ट करना चाहिये।

'दैव कर्म सबके लिये कर्तव्य है, वही यज्ञ है और वही परमात्मा का स्वरूप है। तुम्हारा हृदय कोमल और बुद्धि एक निश्चय पर डटी रहने वाली है। तुम जितेन्द्रिय हो, इसलिये तुम्हारे जैसे पुरुष को शोक नही करना चाहिये। तुमको हाथ में कपाल लेकर भीख माँगने वालों की वृत्ति की इच्छा नही करनी चाहिये, क्योंकि वह अत्यन्त पापपूर्ण दोषों से दूपित और कायरों के ही योग्य है।

'राजन्! काल ही समस्त कार्य करता है और काल के प्रभाव से ही भाँति-भाँति की क्रियाए आरभ होती हैं। इसमे कौन किसका अपराध करता है। काल ही जन्म-मृत्यु दोनों क्रियाएँ समान रूप से चलाता रहता है। जैसे आग ईंधन को

जला देती है उसी प्रकार काल समस्त प्राणियो को दग्ध कर देता है। क्षत्रिय धर्म का वारवार विचार करके शोक न करो, क्योकि ये सभी रणधीर अपने धर्म मे स्थित रहते हुए यमराज के विधान से प्रेरित हो काल के गाल मे चले गये हैं। तुम भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव उन सवका वध करने वाले नही हो। काल ने नियमानुसार उनके प्राण हरण किये है। काल जो कर्म का साक्षी है, किसी पर अनुग्रह नही करता। काल ने युद्ध को प्राणियो का वध कराने के लिये निमित्त मात्र बनाया है। वह कर्म की डोरी का सहारा ले समयानुसार कर्मों का फल देता है। जैसे लोहार या बढई का बना हुआ यत्र निर्माण करने वाले के अधीन रहता है उसी प्रकार यह जगत कालयुक्त कर्म की प्रेरणा से ही सचेष्ट रहता है। प्राणी किसी व्यक्त कारण के विना ही दैवात पैदा होता है, और देवेच्छा से ही अकस्मात उसका विनाश हो जाता है। इसलिए हर्ष और शोक करना व्यर्थ है।

'यदि एक सुहृद को त्याग देने से कुटुम्ब के शेष व्यक्तियो का कष्ट दूर हो जाये, तो वैसा करना सदाचार या धर्म ही है। किसी समय धर्म ही अधर्म रूप हो जाता है, और कही अधर्म रूप दीखने वाला कर्म ही धर्म बन जाता है। इसलिये विद्वान को धर्म और अधर्म का रहस्य अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। जो पुरुष हृदय मे पाप की भावना रखकर किसी पाप कर्म मे प्रवृत्त होता है, तथा पाप कर्म करने के पश्चात भी लज्जित नही होता, उसमे वह सारा पाप पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाता है और प्रायश्चित से भी उसका पाप नष्ट नही होता। तुम तो जन्म से ही शुद्ध स्वभाव के हो। तुम्हारे मन मे युद्ध की इच्छा न होते हुए भी शत्रुओ ने तुम्हे युद्ध के लिये विवश किया और तुम्हे युद्ध करना पडा। अब तुम युद्ध कर्म करके निरतर पश्चाताप कर रहे हो, इसलिये तुम यज्ञ का अनुष्ठान करो। ऐसा करने से प्रायश्चित हो जायेगा और तुम पापरहित भी हो जावोगे।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! किन-किन कर्मों को करने से मनुष्य प्रायश्चित का अधिकारी होता है और उसे कौन-सा प्रायश्चित करना चाहिये, जिससे कि वह पापमुक्त हो जाये।'

व्यासजी ने उत्तर दिया—'राजन् ! जो मनुष्य शास्त्रविहित कर्मों का आचरण न करके निषिद्ध कर्म करता है, वह प्रायश्चित का भागी होता है। जो सूर्योदय के बाद या सूर्यास्त होने के पहले सोता रहे, ब्रह्महत्यारा, दूसरो की निदा करने वाला, सुपात्र को दान न देने वाला, झूठ बोलने वाला, गुरु और पूज्य जनो का अपमान करने वाला और सदाचार की मर्यादा का उल्लघन करने वाला ये सभी पापी माने गये है, इन्हे प्रायश्चित करना चाहिये। स्वधर्म को त्यागने ,शरणागत को सहायता न देने एवं माता-पिता से झगड़ा करने से मनुष्य अधार्मिक होता है। मनुष्य तप, यज्ञ और दान के द्वारा पापो के नष्ट होने से पवित्र हो जाता है, किन्तु यह तभी सम्भव है जब वह फिर से पाप में प्रवृत्त न हो। जो पवित्र स्थान में मिताहारी होकर, हिसा का त्याग करके, रागद्वेष, मान-अपमान आदि से शून्य हो, मौन भाव से गायत्री मत्र का जप करता है, वह सब पापो से मुक्त हो जाता है। यदि क्रोध और मोह के वशीभूत हो अशुभ कर्म हो जाये तो शास्त्रों की दृष्टि से उपवास एव जप से पाप की शान्ति होती है।

'भरतनदन ! मनुष्य शुभ और अशुभ जो कर्म करता है, उसके पॉच महाभूत साक्षी होते है। उन कर्मों का फल उसे इस या नवजीवन में प्राप्त होता ही है। इसलिए मनुष्य को दान, तपस्या और सत्कर्मों द्वारा शुभ कर्मों की वृद्धि करनी चाहिये, जिससे कि अशुभ कर्म के फल नष्ट हो जाये। जिनमें दभ और द्वेष की प्रधानता है, उन श्रद्धाहीन पुरुषों के पाप नष्ट नहीं होते। जो इहलोक और परलोक मे सुख चाहता है, उसे श्रेष्ठ पुरुष के आचरण और धर्म का सदा ही सेवन करना चाहिये' यदि तुम्हारे मन में उन अतीत घटनाओं के कारण ग्लानि है

तो प्रायश्चित कर लो, किन्तु खेद के वशीभूत हो आत्महत्या न करो, यह पाप है।

'राजन् ! एक ही क्रिया देश काल के भेद से धर्म या अधर्म हो जाती है। चोरी करना, झूठ बोलना, हिंसा करना आदि अधर्म भी आपत्ति काल मे धर्म माने गए है। अपने या दूसरे का प्राण बचाने के लिये यदि झूठ बोला जाय, तब उसे पाप नही लगता। विज्ञ पुरुप की दृष्टि मे धर्म और अधर्म देश-काल के भेद से दो प्रकार के हैं। धर्माधर्म मे जो प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति होती है, वह भी लोक और वेद के भेद से दो प्रकार की होती है। वैदिक अप्रवृत्ति(निवृत्ति धर्म)का फल है मोक्ष, और वैदिक प्रवृत्ति का फल है स्वर्ग, जन्म-मृत्यु ससार। देवताओ के निमित्त शास्त्रीय कर्म जो कुछ किया जाता है, उससे शुभ ही फल होता है।

'राजन् ! गृहस्थ को दोपो से रहित हो सदाचार का पालन करते हुए घर मे ही रहना चाहिये। ऐसा करने से उसे धर्म का फल मिल जाता है। यश के लोभ से, भय के कारण, प्रत्युपकार करने वाले को दान देने से धर्म नही मिलता। जिस प्रकार अन्नहीन ग्राम, जल रहित कुँआ और राख मे दी हुई आहुति व्यर्थ होती है, उसी प्रकार कुपात्र को दिया हुआ दान व्यर्थ हो जाता है। तुम शोक को त्याग कर धर्म के अनुसार राज्य करो।'

युधिष्ठिर ने कहा—'महामने ! मैं सम्पूर्ण धर्मो को और राज्य धर्मो को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।'

व्यासजी बोले—'युधिष्ठिर ! यदि तुम धर्म का पूर्ण रूप से विवेचन सुनना चाहते हो, तो पितामह भीष्म के पास जाओ। गगापुत्र सम्पूर्ण धर्मो के ज्ञाता और सर्वज्ञ है। वे तुम्हारे सदेहो का निवारण करेगे। जिन्हे गगादेवी ने जन्म दिया है, जिन्होने इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओ का साक्षात दर्शन किया है, जिन शक्तिशाली भीष्म ने वृहस्पति आदि देवर्षियो की सेवा कर

राजनीति का अध्ययन किया है, जिन राजर्षि ने ऋषिच्यवन और वसिष्ठ से वेदों का अध्ययन किया है, वे तुम्हे कल्याणकारी उपदेश देगे। भीष्म पितामह ने तेजस्वी सनत्कुमार से अध्यात्म ज्ञान की शिक्षा पाई है। उन्होने मार्कण्डेयजी से यति धर्म का ज्ञान प्राप्त किया है और परशुराम तथा इन्द्र से अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा पाई है। मनुष्य योनि मे उत्पन्न होकर भी उन्होने मृत्यु को अपनी इच्छा के अधीन कर लिया है। सतानहीन होने पर भी उनके पुत्र अत्र-परत्र विख्यात है। ज्ञान, श्रेय कोई भी ऐसा विषय नही है जिसका उन्हे ज्ञान न हो। सूक्ष्म, धर्म और अर्थ के तत्व को जानने वाले वे धर्मवेत्ता भीष्म तुम्हे धर्म का उपदेश देगे। तुम उनके पास चले जाओ।'

युधिष्ठिर ने कहा—'मै पापात्मा हूँ, इसलिये कैसे उन्हें मुँह दिखा सकता हूँ?'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! भगवान व्यास जो आज्ञा देते है, वही करे। जैसे वर्षाकाल में लोग मेघ की ओर टकटकी लगाये देखते है, उसी प्रकार ये सारे ब्राह्मण और आपके तेजस्वी भाई आपसे धैर्य धारण करने की प्रार्थना करते है। राजन्! इन महामना ब्राह्मणो और स्वजनो का प्रिय करने के लिये भी आपको इनकी बात मानकर जगत के हित साधन मे लग जाना चाहिये।' भगवान श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर राजा युधिष्ठिर सबके हित के लिये उठ खडे हुए। उन्होने अपने कर्तव्य का निश्चय करके मन मे पूर्ण शान्ति पा ली थी।

## युधिष्ठिर का राज्याभिषेक और भीष्म के पास जाना

नक्षत्रो से घिरे हुए चन्द्रमा के समान राजा युधिष्ठिर राजा धृतराष्ट्र को आगे करके राजधानी हस्तिनापुर को चल

दिये। नगर मे प्रवेश करते समय धर्मज्ञ कुन्तीनन्दन ने देवताओं और ब्राह्मणो का पूजन किया। मालाओ और पताकाओ से नगर की शोभा हो रही थी। नारियाँ लजाती हुई धीरे-धीरे वोल रही थी—पाचाल राजकुमारी! तुम धन्य हो, जो इन पच महान पुरुषो की सेवा मे लगी रहती हो। तुम्हारे सभी पुण्य कर्म अमोघ है और समस्त व्रतचर्या सफल है। राजा युधिष्ठिर उस शोभा सम्पन्न मार्ग को पार कर राज-भवन मे जा पहुँचे। वहाँ ब्राह्मणो ने माँगलिक द्रव्यो द्वारा उनका अभिषेक किया और आशीर्वाद दिये। राजा युधिष्ठिर ने भी ब्राह्मणों का विधि-पूर्वक पूजन किया। तदनन्तर पूर्व की ओर मुख करके महाराजा युधिष्ठिर और महारानी द्रौपदी प्रसन्नतापूर्वक राज्य सिंहासन पर विराजमान हुए। मन्त्री, सेनापति आदि ने माँगलिक सामग्रियो से उन दोनो की पूजा की। भगवान श्रीकृष्ण ने पांचजन्य शख के जल से महाराज युधिष्ठिर और महारानी द्रौपदी का अभिषेक किया और उपस्थित सभासदो ने जय-जयकार किया।

राज्याभिषेक के पश्चात परम बुद्धिमान युधिष्ठिर ने हाथ जोडकर भगवान श्रीकृष्ण से कहा—'आपकी ही कृपा, नीति, वल और बुद्धि से मुझे पुन अपने वाप-दादा का राज्य प्राप्त हुआ है। मैं आपको वारवार नमस्कार करता हूँ। अपने मन और इद्रियो को सयम मे रखने वाले भक्त एकमात्र आपको ही अतर्यामी पुरुप और भक्तो का प्रतिपालक वताते हैं और नाना प्रकार के नामो द्वारा आपकी स्तुति करते है। यह सपूर्ण जगत आपकी लीलामयी सृष्टि है। आप इस विश्व की आत्मा है और आप ही से इस जगत की उत्पत्ति हुई है। आप ही व्यापक होने के कारण 'विष्णु', विजयी होने से 'जिष्णु', दु.ख और पाप हर लेने से 'हरि', अपनी ओर आकृष्ट करने के कारण 'कृष्ण', विकुण्ठ धाम के अधिपति होने से वैकुण्ठ, क्षर-अक्षर से पुरुष और उत्तम होने के कारण पुरुषोत्तम कहलाते हैं। मेरा

आपको नमस्कार है। आपने पुराण पुरुष परमात्मा होने के कारण माता अदिति के यहाँ अवतार लिया है। आपकी कीर्ति परम पवित्र है। आप समस्त इद्रियो के प्रेरक है। आपको ही यज्ञ पुरुष हस, दामोदर और नटवरनागर कहते है। भगवान शकर और आप एक ही है। सब देव और देवियाँ आपके ही अश है। आप कामनाओ की वर्षा करने वाले धर्म है। आपको सबके आदिकरण, निर्गुण, निराकार, परमात्मा, विराट पुरुष, महेश्वर और सर्वत्र व्यापक कहते है। आपको ही कालचक्र, श्रीपद्‌म, विभु, सूक्ष्म और सदाचार स्वरूप कहते है। आपको ही ब्रह्म, हिरण्यगर्भ, स्वधा और स्वाहा कहते है।' इस प्रकार जब धर्मराज युधिष्ठिर ने सभा मे भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की तब भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त प्रसन्न होकर भारतभूषण युधिष्ठिर का उत्तम वचनो द्वारा अभिनन्दन किया ·

तदनन्तर राजा ने कृपाचार्य के साथ गुरु शिष्य का-सा सम्बन्ध स्थापित किया और विदुरजी को पूजनीय पुरुष मानकर उन्हें सम्मान दिया। धृतराष्ट्र का उन्होने विशेप सत्कार किया।

महायशस्वी राजा प्रजा को प्रसन्न करने के पश्चात भगवान श्रीकृष्ण के निवास-स्थान पर गए और उनसे हाथ जोडकर मधुर वाणी से बोले—'आपकी रात सुख से बीती है न ? आपकी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ प्रसन्न तो है न ?' धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार कहते चले जा रहे थे, किन्तु भगवान ने उन्हें कोई उत्तर नही दिया। वे उस समय ध्यान में मग्न थे। तब युधिष्ठिर ने उनसे पूछा—'भगवन्! आप किसका ध्यान कर रहे है ? इससे मेरे मन में बडा आश्चर्य हो रहा है। गोविद! आपने सम्पूर्ण इद्रियों को बुद्धि में लीन कर लिया है और प्राणवायु अवरुद्ध हो गई है। भगवन्! जैसे वायु शून्य स्थान मे दीपक की लौ काँपती नही है उसी तरह आप भी स्थिर है। यदि मै सुनने का अधिकारी होऊँ तो इस ध्यान का यथार्थ तत्त्व मुझे

बता दीजिये। मैं आपकी शरण मे आया हूँ और आपको बार-बार प्रणाम करता हूँ।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'राजन्! बाण-शय्या पर पड़े हुए पुरुषसिंह भीष्म, जो इस समय बुझती हुई आग के समान हो रहे है, मेरा ध्यान कर रहे है, इसलिए मेरा मन भी उन्ही मे लगा हुआ है। बिजली की गडगडाहट के समान जिनके धनुष की टकार देवराज इन्द्र भी नही सह सकते थे, जिन्होने राजाओ के समुदाय को परास्त कर काशीराज की तीनो कन्याओ का अपहरण किया था, जो तेईस दिनो तक भृगुनन्दन परशुरामजी से युद्ध करते रहे, तो भी परशुरामजी उन्हे परास्त नही कर सके, वे भीष्मजी मन इन्द्रियो का निग्रह कर मेरी शरण मे आ गये है। राजन्! वे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनो कालो की बाते जानते है। धर्मज्ञो मे श्रेष्ठ पुरुषसिंह अपने कर्मों के अनुसार जब स्वर्ग को चले जायेगे, उस समय पृथ्वी अमावस्या की रात्रि के समान श्रीहीन हो जायगी, अतः गगानन्दन भीष्म के पास चलकर उनके चरणो मे प्रणाम कीजिये और आपके मन मे जो सन्देह हो उसे पूछिये। वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और राजधर्मो के अद्वितीय ज्ञाता हैं। जब भीष्मरूपी सूर्य अस्त हो जायेगा, उस समय सब प्रकार के ज्ञानो का प्रकाश नष्ट हो जायेगा।'

युधिष्ठिर ने कहा—'भगवन्! आप सम्पूर्ण जगत के विधाता है, उससे आपके कथन पर सोचने-विचारने की आवश्यकता नही है। मेरे ऊपर अनुग्रह करे और भीष्म पितामह के पास आगे-आगे चले। महाबाहो! सूर्य के उत्तरायण होते ही भीष्म पितामह देवलोक को चले जायेगे, अत. उन्हे आपका दर्शन अवश्य प्राप्त होना चाहिये।'

युधिष्ठिर की प्रेरणा से सब भाई और मित्र भीष्म पितामह का दर्शन करने कुरुक्षेत्र को चल पड़े। परिवार और मित्रों के साथ पाण्डवो एव भगवान श्रीकृष्ण ने दूर ही से भीष्म

पितामह को देखा। वे देवर्षि महात्माओं के बीच में ग्रहो से घिरे हुए चन्द्रमा के समान शोभा पा रहे थे। शर-शय्या पर ही पड़े-पड़े हाथ जोड़ पवित्र भाव से भीष्म भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे थे। ध्यान करते-करते हृष्ट-पुष्ट स्वर से उन्होंने मधुसूदन की इस प्रकार स्तुति करनी आरम्भ की :

'मैं श्रीकृष्ण की आराधना की इच्छा से जिस वाणी का प्रयोग करना चाहता हूँ, वह विस्तृत हो या सक्षिप्त, उसके द्वारा वे पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हो। जो स्वय शुद्ध है, जिनकी प्राप्ति का मार्ग भी शुद्ध है, मै उन्ही सर्वात्मा श्रीकृष्ण की शरण लेता हूँ। उनका न आदि है न अत, वे ही परब्रह्म परमात्मा है, और उन्ही मे सम्पूर्ण प्राणी स्थित हैं। जैसे सूत मणियों को सुसज्जित और.बधन करता है, वैसे ही त्रिगुणात्मक जगत भगवान श्रीकृष्ण में ओत-प्रोत है। श्रीकृष्ण सदा नित्य, सर्वत्र विद्यमान है। यह विश्व उनके ही श्री अगों में स्थित है, और उन्होने ही इसकी सृष्टि की है। उन हरि के सहस्रो सिर, नेत्र, भुजा, चरण और मुख देदीप्यमान रहते है। वे ही श्रीकृष्ण नारायण के रूप मे विश्व के आधार, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल-से-स्थूल है, और उन्ही को सत्य और सत्यकर्मा कहते है। जो वासुदेव, सकर्पण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामो द्वारा ब्रह्म, जीव, मन और अहकार रूपो मे प्रकट हुए, उन्ही भक्त प्रतिपालक भगवान श्रीकृष्ण की पूजा की जाती है। भगवान वासुदेव की प्रसन्नता के लिए तप किया जाता है, क्योकि वे सब की आत्मा, सर्वज्ञ और सबके हृदयो मे विराजमान है। सम्पूर्ण कामनाओ का त्याग कर अनन्य भाव से स्थित रहने वाला साधक अपने विशुद्ध अत.करण मे जिन गोविन्द का ज्ञानदृष्टि से साक्षात्कार करता है, उस परमेश्वर की मै शरण लेता हूँ।

'शास्त्रों मे जिनका पुरुष नाम से वर्णन किया गया है, जो युगो के आरम्भ में ब्रह्म और युगान्त मे सकर्षण कहे गए है, उन उपास्य परमेश्वर श्रीकृष्ण की मैं स्तुति करता हूँ। जो एक

होकर भी अनेक होते हैं, जो इद्रियो से अतीत है, जो सम्पूर्ण कामनाओ को पूर्ण करने वाले है, जो सत और असत से परे है, जो दु ख रूपी रोग की सबसे बड़ी औषधि है, उन श्रीकृष्ण भगवान की मैं शरण लेता हूँ। जो इस विश्व के विधाता, सम्पूर्ण कार्यों के साक्षी और अविनाशी कहलाते है, उन भगवान श्रीकृष्ण मे मेरी बुद्धि हो। जो अज्ञान से परे ज्ञान स्वरूप हैं और उन्हे जान लेने पर मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्कर से सदा छूट जाता है, उन्हे मेरा प्रणाम है। ऋक्, साम और यजु जिनके आश्रित है, गायत्री आदि सात छद जिनके सात ततु है, अग्नि जिनका मुख है, उन यज्ञरूप परमात्मा को मेरा प्रणाम है। विश्वदेव, मरुद-गण, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार, वसु, सिद्ध और साध्य ये सब जिनकी विभूतियाँ है, उन परमात्मा को नमस्कार है। जिन्होने वराह, कच्छप, वामन, मत्स्य, नरसिह, परशुराम इत्यादि अवतारो से जन-कल्याण किया था, उन्ही परमात्मा को मेरा नमस्कार है। अव्यक्त प्रकृति, बुद्धि (महत्तत्व), अहकार, मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ और उनके कार्य, ये सब जिनके ही स्वरूप है, उन तत्वमय परमात्मा को नमस्कार है। जो भूत, वर्तमान और भविष्य कालरूप है, जो पचभूत आदि की उत्पत्ति और प्रलय के कारण है, उन भूतात्मा परमेश्वर को नमस्कार है। जो समस्त प्राणियो के शरीर मे साक्षी रूप से स्थित है तथा क्षर (नाशवान) भूतो मे, अक्षर (अविनाशी) के रूप मे विद्यमान है, उन श्रीकृष्ण रूप परमात्मा को नमस्कार है। जिन्हे सर्वलोक महेश्वर, कमल नयन, पुरुषोत्तम, नारायण कहते है, उन भक्तवत्सल भगवान श्रीकृष्ण की मैं शरण लेता हूँ। जिनके हृदय मे मगलभवन देवेश्वर श्रीहरि विराजमान है, उनका सभी कार्यों मे सदा मगल होता है। जिनका व्यवहार केवल धर्म के लिये ही है, जिनकी भिन्न-भिन्न प्रकार से उपासना की जाती है, उन धर्मस्वरूप भगवान को मेरा प्रणाम है। जिन अनग की प्रेरणा से सम्पूर्ण अगधारी प्राणी पैदा होते

हैं, जो स्थूल जगत में अव्यक्त रूप से विराजमान है, जो सम्पूर्ण क्षेत्रों मे क्षेत्रज्ञ के रूप में बैठा हुआ है, उस परमात्मा को मेरा प्रणाम है। जो इद्रियो को वश मे करके शुद्ध तत्व मे स्थित हो गये है, जो निरतर योगाभ्यास मे लगे हुए है, जिनके पापो का क्षय हो गया है, वे शान्तिचित्त साधक जिसे प्राप्त करते है, उन मोक्ष रूप परमेश्वर को नमस्कार है। सृष्टि का अत करने के लिए जो प्रलयकालीन अग्नि का रूप धारण करते है, उस परमात्मा को मै प्रणाम करता हूँ। जिस पर यह विश्व टिका हुआ है, वह ब्रह्माण्ड कमल पुण्डरीकाक्ष भगवान की नाभि से प्रकट हुआ है, उन परमेश्वर को मेरा नमस्कार है। सृष्टि और प्रलय रूप सब विकार जिनसे उत्पन्न और लुप्त होते हैं, उन कारणरूप परमेश्वर को मेरा नमस्कार है। जो मेघ में विद्युत, उदर मे जठरानल के रूप में स्थित हो प्राणशक्ति को बढाते है, उन प्राणात्मा परमेश्वर को मेरा नमस्कार है। जिन्हे ऋषि, मुनि, देव, दानव और गधर्व ठीक-ठीक नही जान सके, जिनका स्वरूप किसी प्रमाण का विषय नही है, जो त्रिभुवन और सम्पूर्ण दिशाओ में व्यापक है, जो जन्मदाता और सहारकर्ता है, जो किसीसे पराजित नही होते, उन अविनाशी को मेरा प्रणाम है। मैं आपके दिव्य जन्म कर्म का रहस्य नही जानता। मै तो तत्व दृष्टि से जो उनका सनातन रूप है. उसीकी ओर लक्ष्य रखता हूँ। वे भगवान श्रीकृष्ण मेरे सारे पाप नष्ट कर दे। जो विद्या और तप के जन्मस्थान है, उन भगवान विष्णु का मैने वाणी रूप यज्ञ से पूजन किया है, वे भगवान श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों।'

फिर उन्होने कहा :

नारायण परब्रह्म, नारायण. परतप:
नारायण: परो देव, सर्व नारायण: सदा।

और 'श्रीकृष्णाय नम.' कहकर चुप हो गये।

श्रीकृष्ण, पाण्डव और अन्य साथी दूर से ही भीष्म पितामह को देखकर अपने-अपने रथो से उतर गये और महामुनियो की सेवा मे उपस्थित हुए। उन्होने सबको प्रणाम किया और भीष्म पितामह को घेरकर बैठ गये।

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'वक्ताओ मे श्रेष्ठ भीष्मजी! क्या आप प्रसन्न है, आपके शरीर मे पीडा तो नही है? प्रभो! आपने निरतर धर्म मे तत्पर रहने वाले पिता शान्तनु के वरदान से मृत्यु को अपने अधीन कर लिया है, इसलिए आपके सामने यह कहना उचित न होगा कि सभी प्राणियो के जन्म और मरण प्रारब्ध के अनुसार नियत है, अत आपको दैव का विधान समझकर मन मे दु ख नही मानना चाहिये। आप ज्ञान मे सबसे बडे हैं। आपकी बुद्धि मे भूत, भविष्य और वर्तमान प्रतिष्ठित हैं। महामते! प्राणियो का सहार कब होता है, धर्म का क्या फल है और उदय कब होता है, यह सारी बाते आपको ज्ञात है, क्योकि आप धर्म के प्रचुर भडार है। तात! मैने तीनों लोको मे सत्यवादी, धर्म मे तत्पर, शूरवीर और महापराक्रमी आपके सिवाय दूसरे प्राणी के विषय मे नही सुना है, जिसने शरीर के लिए स्वभाव सिद्ध मृत्यु को अपनी तपस्या से रोक दिया हो। सत्य, तप, दान और यज्ञ के अनुष्ठान मे धनुर्वेद और नीति-शास्त्र मे, प्रजा के पालन मे, कोमलतापूर्ण वर्ताव मे, बाहर-भीतर की शुद्धि, मन और इद्रियो के सयम तथा सम्पूर्ण प्राणियो के हित साधन मे, आपके समान मैंने दूसरे किसी महारथी को नही सुना है। आप वसुओ मे इद्र के समान है। ब्राह्मणो ने आपको आठ वसुओ से उत्पन्न नवा वसु बताया है। आप पुरुषो में उत्तम और पराक्रम मे देवताओ मे भी विख्यात है। नरेन्द्र! मनुष्यो में आपके समान गुणो से युक्त पुरुष न तो मैंने देखा है न सुना ही। अत आपसे यह निवेदन है कि धर्मराज युधिष्ठिर अपने कुटुम्बियो के वध से बहुत सतप्त हो रहे हैं, आप इनका शोक दूर करने के लिये सब धर्मो का उपदेश करे। गगानदन!

संसार मे सदेहग्रस्त विषय का समाधान करने वालों में आप श्रेष्ठ है, इसलिए मोह मे पडे हुए मनुष्य के शोक और संताप को दूर कर उसे शान्ति दे सकते है।'

भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुनकर भीष्मजी ने अपना मुँह ऊपर उठाया और हाथ जोडकर कहा—'सम्पूर्ण लोकों की उत्पत्ति और प्रलय के अधिष्ठान भगवान श्रीकृष्ण आपको मेरा नमस्कार है। पूज्यवर! आपने मेरे सम्बन्ध मे जो बात कही है, उन भावों का मै सत्कार करता हूँ। गोविन्द! आपका जो सनातन रूप है, उसे मै देख रहा हूँ। मै आपकी शरण मे आया हुआ आपका भक्त हूँ और उत्तम गति को प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे लिए जो कल्याणकारी उपाय हो, उसीका आप सकल्प कीजिये।'

श्रीकृष्ण ने कहा—'पुरुष श्रेष्ठ! मुझमे आपकी पराभक्ति है, इसलिए मैंने आपको अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया है। जो मेरा भक्त है, किन्तु सरल और शान्त स्वभाव का नही है, उसे मेरे स्वरूप का दर्शन नही होता। वीर भीष्म! अब आप परलोक में चले जायेगे, अतः उसके पहले ही इन्हे ज्ञान और धर्म का उपदेश दे।

श्रीकृष्ण का धर्म और अर्थ से युक्त हितकर वचन सुनकर शान्तनुनन्दन हाथ जोडकर बोले—'हे अच्युत! आपके वचन सुन मैं आनन्द के समुद्र मे निमग्न हो गया हूँ। भला मैं आपके समीप क्या कह सकता हूँ? जबकि सारा विषय आपकी वेदमयी वाणी मे प्रतिष्ठित है। देव! जो कर्तव्य किया जाता है, वह सब आपसे ही प्रकट हुआ है। मधुसूदन! इन बाणों के गड़ने से जो जलन हो रही है, उसके कारण मेरे मन मे बडी व्यथा है, इसलिए बुद्धि काम नही करती। गोविन्द! ये बाण, विष और अग्नि के समान मुझे निरंतर पीडा दे रहे है, अतः मुझमे कुछ भी कहने की शक्ति नही है और चित्त भ्रान्त हो गया है। मुझे न तो दिशाओं का ज्ञान है और न आकाश एव पृथ्वी का ही।

मैं तो आपके प्रभाव से ही जी रहा हूँ। इसलिए आप स्वय, धर्मराज को उपदेश दे, क्योकि आप शास्त्रो के भी शास्त्र है।' आप जगत के कर्ता सनातन पुरुष है। आपके रहते हुए मेरे जैसा कोई पुरुष कैसे उपदेश दे सकता है ? क्या गुरु के रहते शिष्य उपदेश का अधिकारी है ?'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'भीष्मजी आप महापराक्रमी, परम धैर्यवान, स्थिर तथा सर्वार्थदर्शी है। आपका यह कथन युक्ति सगन है। मै प्रार्थना करता हूँ कि आपकी पीडा शीघ्र दूर हो जाय। आपको दाह, मूर्छा, रोग, भूख, प्यास का भी कष्ट न रहे। आपके अत करण मे सम्पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हो उठे। आपकी वुद्धि किसी भी विषय मे कुण्ठित न हो। आपका मन सत्वगुण मे स्थित रहे। आप जिस विषय का चिन्तन करे, उसमे आपकी वुद्धि सफलतापूर्वक आगे वढती जाय। नृपश्रेष्ठ ! आप ज्ञान दृष्टि से सम्पन्न हो ससार वधन मे पडे जीवो को यथार्थ रूप मे देख सके।'

दूसरे दिन भगवान श्रीकृष्ण, पाण्डव और उनके मित्रो के साथ भीष्मजी के पास जाकर वोले—'आपकी रात सुख से वीती है न ? क्या आपको सभी ज्ञातव्य विपयो को स्पष्ट रूप से दर्शन कराने वाली निर्मल वुद्धि प्राप्त हो गयी ? क्या आपके अत करण मे सव प्रकार के ज्ञान प्रकाशित हो रहे है ?'

भीष्मजी ने कहा—'आपकी कृपा से मेरे शरीर की जलन, मन का मोह, थकावट, विकलता, ग्लानि तथा रोग ये सव दूर हो गये है। पुरुषोत्तम ! अव मै भूत, भविष्य और वर्तमान तीनो कालो की सभी वाते स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ। वेद, वेदान्तो मे जो धर्म वताए गए है, वे सव धर्म मुझे स्मरण हो गये हैं। देश, जाति, राजधर्म और कुल के धर्मो का भी इस समय मुझे पूर्ण ज्ञान है। जिस विषय मे जो कुछ भी कहने योग्य वात है, वह सव मैं कहूँगा। आपकी कृपा से मेरे हृदय मे निर्मल और कल्याणमयी वुद्धि का आवेश हुआ है। आप स्वय ही पाण्डव

पुत्र युधिष्ठिर को कल्याणकारी उपदेश क्यों नही देते ? मेरा आपको वार-वार नमस्कार है।'

भगवान श्रीकृष्ण वोले—'आप शास्त्र ज्ञान तथा सदाचार मे सम्पन्न है। श्रेप्ठ विद्वान से जब कुछ पूछा जाये, तब उसे उचित है कि वह लोगों को धर्म का उपदेश दे। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक पूछने वाले को उपदेश नही देता, उसे दोष की प्राप्ति होनी है।'

## भीष्म पितामह का युधिष्ठिर को उपदेश

श्रीकृष्ण की वात सुनकर महातेजस्वी भीष्म ने कहा—'गोविन्द! आप सम्पूर्ण भूतो की सनातन आत्मा है। आपके प्रसाद से मेरी वाक् शक्ति दृढ है, अतः मै समस्त धर्मों का प्रवचन करूँगा। अव राजा शिरोमणि धर्मपरायण महात्मा युधिप्ठिर मुझसे प्रश्न करे। जिनमें धर्म, इद्रिय सयम, क्षमा, धैर्य और तेज सदा विद्यमान रहते है, उन पाण्डव पुत्र युधिष्ठिर के प्रश्नो का मैं उत्तर दूंगा। जो सबधियो, अतिथियो और शरणागतो का सत्कार करते है, वे युधिष्ठिर तो धर्म परायण है। जिनमे सत्य, दान, तप, शान्ति और दक्षता है तथा श्रम का अभाव है, वे तो धर्म के ज्ञाता है। जो कामना, क्रोध, भय और लोभ से अधर्म नही करते, वे युधिष्ठिर तो धर्मज्ञो मे श्रेष्ठ है। उन्होने शास्त्रो के रहस्य का श्रवण किया है और सदा स्वाध्याय से लगे रहते है, फिर भी उनके प्रश्नो का मैं यथाशक्ति उत्तर दूंगा।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'पुरुषश्रेष्ठ! धर्मराज युधिष्ठिर बहुत लज्जित है। उन्होने माननीय गुरुजनो, सबधियों एव बधु-बाधवो का सहार किया है, इसलिए आप शाप न दे दे, इस भय से आपके निकट नही आते।'

भीष्म पितामह बोले—'भगवन्! जैसे दान, अध्ययन

और तप ब्राह्मणो का धर्म है, उसी प्रकार समरभूमि मे शत्रुओ को मार गिराना क्षत्रियों का धर्म है। जो असत्य के मार्ग पर चलने वाले पिता, भाई, गुरुजन, वधु-वाधव और धर्म मर्यादा का उल्लघन करने वाले पापाचारी को समरभूमि मे मार डालता है, उसका वह कार्य अधर्म नही है। सग्राम में शत्रु ललकारने पर क्षत्रियो को युद्ध के लिये उद्यत रहना चाहिये। युद्ध क्षत्रियो के लिये धर्म का पोषक, स्वर्ग की प्राप्ति का साधन और लोक मे यश फैलाने वाला है।'

भीष्मजी के ऐसा कहने पर धर्मपुत्र युधिष्ठिर उनके पास जाकर एक विनीत पुरुष के समान खड़े हो गये और उन्होंने उनके दोनो चरणो को पकड लिया। भीष्म पितामह ने उन्हें आश्वासन देकर प्रश्न करने की आज्ञा दी। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण और भीष्म को प्रणाम कर समस्त गुरुजनो की अनुमति ले महाराज युधिष्ठिर ने पितामह से प्रश्न किया :

'पितामह! धर्मज्ञ विद्वानो की मान्यता है कि राजाओ का धर्म श्रेष्ठ है, पर मैं इसे वहुत वडा भार मानता हूँ, अतः मेरी शका निवारण करे और मुझे राजधर्म का उपदेश दे। राजन्! मुझे वताया गया है कि राजा सम्पूर्ण जीवो का परम आश्रय है। राजा के धर्म मे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का समावेश है। यदि राजा प्रमाद कर वैठे तो ससार की व्यवस्था ही विगड जाएगी और सव लोग दु.खी हो जायेंगे। जैसे सूर्यदेव के उदय होने से अधकार का नाश होता है, उसी प्रकार राज धर्म मनुष्यों के अशुभ आचरणो का निवारण करता है।'

भीष्मजी ने महान धर्मात्मा ब्राह्मणो और विश्वविधाता भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार कर कहा—'महाराजा युधिष्ठिर! राजाओ को प्रजा को प्रसन्न रखने की इच्छा से देवताओ और ब्राह्मणो के प्रति शास्त्रोक्त विधि से पूजन और वर्ताव करना चाहिए, इससे वे उनसे ऋणमुक्त हो जाते है। राजा को सदा पुरुपार्थी और प्रयत्नशील रहना चाहिये, केवल प्रारब्ध से

प्रयोजन सिद्ध नही हो सकता। यद्यपि कार्य की सिद्धि के लिये प्रारब्ध और पुरुपार्थ दोनों ही कारण माने गये है, किन्तु मै पुरुपार्थ को ही प्रधान मानता हूँ, क्योंकि प्रारब्ध तो पहले से ही निश्चित है। बीज के विना कुछ भी पैदा नही होता, इसलिये जैसा वीज वोया जाता है, वैसे ही फल-फूल इत्यादि उससे उत्पन्न होते है। इसी प्रकार जैसा कर्म किया जाता है, वैसा ही फल मनुप्य को मिलता है, अतः बीज की तरह प्रारब्ध भी पुरुपार्थ के विना नही सिद्ध होता। पुरुपार्थ खेत है, और दैव बीज। खेत और बीज के सयोग से ही अन्न, फल और फूल पैदा होते है। इसी प्रकार अपना किया हुआ कर्म सर्वत्र ही फल देता है। पुरुपार्थी मनुष्य सर्वत्र भाग्य के अनुसार प्रतिष्ठा पाता है, परन्तु जो अकर्मण्य है, वह सम्मान से भ्रष्ट हो दुःख भोगता है। जो पुरुषार्थ नही करते वे ऐश्वर्य और लक्ष्मी का भी उपभोग नही कर सकते। यदि अपने कर्म का फल न प्राप्त हो तो सारा कर्म ही निष्फल हो जाये और मनुष्य भाग्य पर ही आश्रित हो कर्म से उदासीन हो जाये। दैव पुरुषार्थ का अनुसरण करता है, परतु पुरुषार्थ न करने पर दैव किसी को कुछ नही दे सकता। यह निश्चित है कि दैव के बिना पुरुषार्थ की उत्पत्ति नही हो सकती, अत. कर्म मे प्रवृत करने मे दैव का ही हाथ है। देवताओ का आश्रय पुण्य है। पुण्य से ही सव कुछ प्राप्त होता है, इसलिए पुण्यात्मा का दैव कुछ अनिष्ट नही कर सकता। जैसे छोटी-सी भी आग वायु का सहारा पाकर बडी हो जाती है, उसी प्रकार पुरुषार्थ का सहारा पाकर दैव भी मनुष्य पर विशेष अनुग्रह कर देता है। राजा बलि को देवताओ ने धर्मपाश से बाँध लिया था, किन्तु अपने पुण्य के प्रभाव से वे पाताल के अधिपति बन गए। जैसे तेल समाप्त हो जाने से दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार सुकर्म क्षीण हो जाने पर दैव भी सहायक नही रहता। जो दान करने के कारण निर्धन हो गया है, ऐसे सत्पुरुष के देवता भी सहायक हो जाते है। पर जहाँ सत्कर्म

नही होता है, वह घर श्मशान के ही तुल्य जान पडता है। दैव मे इतनी शक्ति नही है कि वह मनुष्य को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग मे लगा दे। जैसे शिष्य गुरु को आगे करके चलता है, उसी प्रकार दैव पुरुषार्थ को आगे करके स्वय पीछे चलता है। सचित पुरुषार्थ मनुष्य को जहाँ चाहता है, ले जाता है। केवल दैव या पुरुषार्थ से फल की सिद्धि नही होती। प्रत्येक वस्तु का कार्य एक ही साथ पुरुषार्थ और दैव दोनो से ही गुँथा हुआ है। दैव की अनुकूलता से ही शुभ कार्यो का सम्पादन होता है। जहाँ मनुष्य की बुद्धि नही पहुँच सके, ऐसे कर्म शुभ हो या अशुभ, दैव की प्रेरणा से ही उत्पन्न माने जाते है। दैव और पुरुषार्थ दोनो के सहयोग से कर्म सम्पन्न होता है। जैसे भूमि खोदने से जल तथा काष्ठ का मथन करने से अग्नि की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार पुरुषार्थ करने पर दैव का सहयोग स्वत प्राप्त हो जाता है। यदि आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा न हो सके अथवा उसमे बाधा पड जाये तो इसके लिए किसीको दु ख नही करना चाहिये, उसको ईश्वर का स्मरण कर पुरुषार्थ मे लगे ही रहना चाहिये। विद्या, तप तथा धन उद्योग से प्राप्त हो सकते है, अत उद्योग को ही सिद्धि का साधन समझना चाहिये। जो राजा उद्योगहीन होता है, वह बुद्धिमान होने पर भी विषहीन सर्प के समान सदैव शत्रुओ के द्वारा परास्त होता रहता है।

'राजन्। सत्य सिद्धिकारक है, वह इहलोक और परलोक मे भी सुख देता है। जो गुणवान, शीलवान, मन और इन्द्रियो को सयम मे रखने वाला, कोमल स्वभाव वाला, धर्मपरायण, जितेन्द्रिय, प्रसन्न मुख और उदारचित्त है, वह कभी लक्ष्मी से भ्रष्ट नही होता। राजा को कोमलता और सरलता का पालन करना चाहिये, किन्तु जो उसकी आज्ञा का उल्लघन करे, उसके साथ कठोरता का वर्ताव भी करना होगा। जैसे वसत ऋतु का सूर्य न तो अधिक ठड पहुँचाता है न कडी धूप ही। अग्नि जल से, क्षत्रिय ब्राह्मण से और लोहा पत्थर से प्रकट हुआ है। इनका

तेज अन्य सब स्थानों पर तो अपना प्रभाव दिखाता है, परन्तु अपने को उत्पन्न करने वाले कारण से टक्कर लेने पर स्वय ही शान्त हो जाता है। ऐसा सोचकर ब्राह्मणो को सदा नमस्कार ही करना चाहिये। यदि वेदान्त का पारगत ब्राह्मण अनीति पर चले, तो उन पर भी नियत्रण करना उचित है।

'राजन् ! कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान न रखने वाला कुमार्गी मनुष्य यदि अपना ही क्यो न हो, उसे भी दड देना सनातन विधान है। राजा सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमजस को त्याग दिया था, क्योकि वह पुरवासी बालको को पकड-कर सरयू नदी मे डुबा दिया करता था। उद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्राह्मणों के साथ मिथ्या और कपटपूर्ण व्यवहार करने के कारण त्याग दिया था। जैसे समुद्र की यात्रा मे टूटी हुई नौका त्याग दी जाती है, उसी प्रकार उपदेश न देने वाले आचार्य, वेदमत्रों के अज्ञानी ऋत्विज, रक्षा न करनेवाले राजा और कटु वचन बोलने वाली स्त्री का त्याग कर देना चाहिये। यदि दण्ड नीति नष्ट हो जाये तो धर्म रसातल में चला जायेगा और समाज के नियमो का नाश हो जायेगा। जो राजा अपने धर्म के अनुसार कार्य करता है, वह धर्मज्ञ है। जो ब्राह्मणो के प्रति भक्ति रखते है, वे सबके प्रिय होते है। मरु, जल, पृथ्वी, वन, पर्वत और जीवो मे मानव ही प्रधान है।

'जो मनुष्य व्यसनो में पड़ा रहता है, उसे दु:ख उठाना पडता है, इसलिए इनका त्याग ही उचित है, किन्तु धैर्य, साहस का त्याग करना उचित नही। व्यसन नीचे लिखे प्रकार के होते है : शिकार, जुआ, दिन मे सोना, परनिन्दा, परस्त्री सेवन, मद, वाद्य, नृत्य और मदिरा पान ये कामज है। चुगली, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थ दूषण, वाणी और दड की कठोरता ये क्रोधज व्यसन है।

'राजन् ! तुम्हें सेवको के साथ अधिक हँसी-मजाक नही करनी चाहिये। राजा से जीविका चलाने वाले सेवक अधिक

मुंह लगे हो तो मालिक का अपमान कर बैठते है। वे अपनी मर्यादा मे स्थिर नही रहते और स्वामी की आज्ञा का उल्लघन करने लगते हैं। वे जब किसी कार्य से भेजे जाते हैं, तब उसकी सिद्धि मे सदेह उत्पन्न कर देते हैं। वे राजा की गोपनीय त्रुटियो को भी सबसे कह देते है।

'प्रजा की रक्षा ही राजा का कार्य है। प्रजा का सुख ही उसका सुख है। प्रजा को जो प्रिय है, वही उसका प्रिय है। प्रजा के हित मे ही उसका हित और सर्वस्व है। जहाँ राजा क्षमाशील न हो वहाँ अधर्म नही होता। अशिष्ट पुरुषो को दड देना और शिष्ट का पालन करना राजा का धर्म है।

'जिसने अपने मन को वश मे कर लिया है, क्रोध को जीत लिया है, शास्त्रो के सिद्धान्त का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयत्न मे सदा लगा रहता है, जो अपने गुप्त विचारो को प्रकट नही करता वही राजा होने योग्य है। प्रजा की रक्षा न करने से राजा को पाप लगता है।

'राजन्! राजा को न्याय करने मे धर्मराज और धन सग्रह करने मे कुबेर के समान होना चाहिये। जो शूरवीर, भक्त, कुलीन, नीरोग हो और शिष्ट पुरुषो से सम्बन्ध रखते हो, जो आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए दूसरो का कभी अपमान न करते हो, जो धर्म परायण, विद्वान और लोक व्यवहार के ज्ञाता हो, जिनमे साधुता भरी हो, जो पर्वतो के समान अटल रहने वाले हो, ऐसे लोगो को ही सहायक बनाना चाहिये। जैसे पुत्र अपने पिता के घर मे निर्भय होकर रहते हैं, वैसे ही राजा के राज्य मे प्रजा निर्भय होकर विचरे तो वह राजा श्रेष्ठ माना जाता है। जिस राजा के राज्य मे कूटनीति, कपट और ईर्ष्या का सर्वथा अभाव हो, उसीके द्वारा सनातन धर्म का पालन होता है। जो ज्ञान और ज्ञानियो का सत्कार करता है, जो शास्त्र के विषयो को समझता है तथा परहित करने वाला और स्वार्थ

त्यागी है, वही राजा योग्य है ।

'राजन् ! सभी धर्मों में राजधर्म प्रधान है, क्योंकि उसके द्वारा सभी वर्णों का पालन होता है। राज धर्म मे सभी प्रकार के त्याग का समावेश है और त्याग को सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया गया है। संसार के सारे कर्म राज धर्म पर अवलवित है। अतः जो राजधर्म के तत्व को नही जानते, वे युक्त-अयुक्त वचनो द्वारा लोगो के विश्वास को नष्ट कर देते हैं। जो धर्म प्रत्यक्ष है, अधिक सुखमय है, छल रहित है तथा सर्वलोक हितकारी है, वह राजधर्म में प्रतिष्ठित है। इस विषय का मैं तुम्हे एक आख्यान सुनाता हूँ।

'राजन् ! मानधाता नाम के एक पराक्रमी नरेश हुए थे। उन्होंने भगवान विष्णु की आराधना की। श्रीहरि ने देवराज इन्द्र का रूप धारण कर उन्हे दर्शन दिया और पुन पूछा : 'आप भगवान विष्णु का क्यो दर्शन चाहते हो ? वे तो अप्रमेय है और अपनी अनन्त माया शक्ति, असीम धैर्य और वल-पराक्रम से सम्पन्न है। तुम्हे उनसे कौन-सी वस्तु प्राप्त करने की इच्छा है ? तुम्हारे हृदय मे और कोई कामना हो तो उसे मैं पूर्ण कर दूंगा।'

'मानधाता ने कहा—'भगवन् ! मैं आपकी कृपा से आदिदेव भगवान विष्णु का दर्शन प्राप्त कर लूंगा। इस समय मै समस्त कामनाओं का परित्याग कर केवल धर्म-सम्पादन की इच्छा से वन मे जाना चाहता हूँ, क्योकि सभी सत पुरुष अत मे इसी सन्मार्ग का दिग्दर्शन करा गये है। क्षात्रधर्म के प्रभाव से मैंने उत्तम लोक प्राप्त किये है, किन्तु भगवान विष्णु से जिस धर्म की प्रवृत्ति हुई है, उस धर्म का आचरण करना मै नही जानता।'

'इन्द्र बोला—'राजन् ! भगवान विष्णु से तो पहले राजधर्म ही प्रवृत्त हुआ है, अन्य सभी धर्म उसके अग है। जो राजा शक्ति से सम्पन्न नही है, वह धर्मपरायण होने पर भी दूसरों को परमगति की प्राप्ति नही करा सकता। पूर्वकाल में भगवान

विष्णु ने क्षात्रधर्म के द्वारा ही दुष्टो का दमन कर देवताओ और साधु पुरुषो की रक्षा की थी। यदि भगवान श्रीहरि असुरो का सहार नही करते तो न कही ब्राह्मण का पता लगता, न ब्रह्माजी का ही। धर्म सैकडो वार नष्ट हो चुके है, परन्तु क्षात्र धर्म ने उनका पुन उद्धार किया है। युद्ध मे अपने शरीर की आहुति देना, प्राणियो पर दया करना, प्रजा की रक्षा करना, ये सब वाते क्षात्र धर्म मे ही विद्यमान है। राजा के भय से लोग पाप नही करते। यद्यपि ऋषि, मुनि त्याग को ही श्रेष्ठ वताते है, किन्तु युद्ध मे जो राजा अपने शरीर का त्याग करते है, वे सवसे श्रेष्ठ हैं। प्रिय-अप्रिय की भावना का परित्याग कर समभाव प्रतिष्ठित करने से जो गति सन्यासियो को प्राप्त होती है, वह राजा को भी मिल जाती है। जो सकट मे पडे हुए अपने सजातियो, सम्वन्धियो और सुहृदो का उद्धार करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। राष्ट्र और राष्ट्रवासियो का सवसे वडा कार्य अच्छे राजा को नियुक्त करना है, क्योकि विना राजा के राज्य निर्वल होता है, वहाँ निवास नही करना चाहिये। जिस देश मे निर्वल राजा के कारण अराजकता रहती है, वहाँ धन या स्त्रियां सुरक्षित नही रहते। यह सत्य है कि सदा मिथ्याचार मे प्रवृत्त होने वाले मनुष्यो पर शासन करना वडा कठिन कार्य है, पर दण्ड का भय दिखाकर उन्हे भी सन्मार्ग पर लाना चाहिए। जैसे सूर्य और चन्द्रमा का उदय न होने पर समस्त प्राणी घोर अधकार मे डूव जाते हैं, इसी प्रकार विना राजा के सारी प्रजा आपस मे लड-झगडकर नष्ट हो जाती है। यदि राजा स्वधर्म का पालन न करे तो व्यभिचार से किसीको घृणा न होगी, व्यापार चौपट हो जायगा और अन्याय एव अत्याचार फैल जाएगा।'

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह! राजा शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई? जिसे हम राजा कहते है, वह गुणो मे दूसरे के समान ही है। उसके इद्रियाँ अन्य के तुल्य ही हैं। वह भी दूसरे की

भाँति' सुख-दु:ख और जरा-मृत्यु का अनुभव करता है। फिर वह विशिष्ट बुद्धि रखने वाले अनेक शूरवीरो और सत्पुरुषों पर प्रभुत्व स्थापित कर पृथ्वी का पालन करता है और कैसे सब उसकी प्रसन्नता चाहते है, उस व्यक्ति को देवता के समान समझकर सब नमस्कार करते है, इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए।'

भीष्म बोले—'आदि सतयुग में न तो राज्य था न राजा, न दण्ड था न दण्ड देने वाला। समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक-दूसरे की रक्षा करती थी। कुछ समय बाद सब लोग पारस्परिक सरक्षण के कार्य में महान कष्ट का अनुभव करने लगे। जब उन पर लोभ, मोह, काम और क्रोध छा गया, तब कर्तव्याकर्तव्य ज्ञान से शून्य होने के कारण धर्म मार्ग से वे च्युत हो गये। धर्म का विप्लव हो जाने पर वेदों के स्वाध्याय और यज्ञ आदि कर्मों का भी लोप हो गया। सासारिक मनुष्यों की ऐसी स्थिति देखकर विद्वानो ने नीति शास्त्र की रचना की, जिसमें धर्म, अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन है। वह त्रिवर्ग नाम से विख्यात है और चौथा वर्ग मोक्ष है, जिसमें सत्व, रज और तम की गणना है। नीतिशास्त्र में आत्मा, देश, काल, उपाय, कार्य और सहायक इन छः वर्गों का भी वर्णन है। इस ग्रथ में वेदत्रयी और राजनीति का भी निरूपण किया गया है। सुना जाता है कि सबसे पहले प्रथु ने शासन नीति अपनाई और कृषि कर्मों में सुधार किया, इस पर ब्राह्मणो ने पृथु का राजा के पद पर अभिषेक किया। तब से विद्वानों ने यह घोषणा कर दी कि देव और नरदेव समान है।

'राजा को पहले अपने मन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, इसके बाद शत्रु पर। जो अपनी इद्रियों को वश में नही रख सकता, वह शत्रुओं का दमन नही कर सकता। जो बुद्धिमान राजा राज्य का हित चाहे, उसे युद्ध को टालने का प्रयत्न करना चाहिए और साम, दाम, दड, भेद से कार्य सफल करना चाहिए।

जिन राज्यो मे स्त्रियो की प्रधानता है और जिन्हे विद्वानो ने छोड रखा है, वे राज्य मूर्ख मन्त्रियो से सतप्त हो पानी की बूंद के समान सूख जाते हैं। जब लोग अपने कर्मों में सलग्न रहते हैं, तब धर्म मर्यादा मे सकीर्णता नही आती। प्रजा निर्भय एव कुशलपूर्वक रहने लगती है और प्रजा के योग, क्षेम स्वत सिद्ध होते रहते हैं। राजा को धर्म का आचरण करना, आस्तिक बनना, क्रूरता का त्याग करना, मर्यादा का उल्लघन न करना, प्रिय भाषण करना, बढ-बढकर बाते न कहना, कुपात्र को दान न देना, दुष्टो से मेल न करना, बधुओ से झगडा न करना, अपने गुणो का स्वय ही वर्णन न करना, श्रेष्ठ पुरुष का धन न छीनना, नीच पुरुष का आश्रय न लेना, विनीत रहना, गुरुजनो की सेवा करना, दभहीन और अवसरगामी होना चाहिये। जब ससार मे पाप फैल जाता है तब मनुष्य के हृदय मे आत्मरूप से निवास करने वाले सहारकारी रुद्रदेव प्रकट हो जाते है और वे सबका सहार कर डालते है, अत विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह पापियो के साथ किसी तरह भी सम्पर्क स्थापित न करे। राजा जिस-जिस धर्म का आदर करता है, प्रजा को वही अपनाना अच्छा लगता है। प्रजा जो स्वाध्याय, दान, होम और पूजन करती है, उसका चौथाई भाग धर्मपूर्वक पालन करने वाले नरेश को प्राप्त होता है। जैसे सब प्राणी वर्षा के सहारे जीवन निर्वाह करते हैं, वैसे ही धार्मिक राजा के आश्रित हो प्रजा जीवनयापन करती है।

'राजा को पराक्रमी, कीर्तिमान, प्रतिज्ञा पर स्थिर रहने वाले, समर्थ एव सुशील पुरुषो का सम्मान करने वाले, ईर्ष्या, कामना, भय, क्रोध, लोभ से धर्म का उल्लघन न करने वाले, सत्यवान और क्षमाशील पुरुपो को ही मन्त्री, पुरोहित या सहायक बनाना चाहिये। जिनका उत्तम कुल मे जन्म हो, सदा श्रेष्ठ पुरुषो के सम्पर्क मे रहे, सहनशील, कार्यदक्ष और कृतज्ञ हो वे ही मन्त्री, पुरोहित या सहायक के योग्य है। विवेकहीन

मन्त्री से कर्म. कर्तव्य और अकर्तव्य का सत्य निर्णय नहीं होता।

'जो अधर्म के कार्यों से राजा को सदा बचाने का प्रयत्न करता है तथा उसकी हानि से भयभीत हो उठता है, उसे उत्तम मित्र समझना चाहिये। जो नीतिज्ञ नही है, जिसने अपने मन को वश में नहीं किया है, जो सहायकों से सम्पन्न नही है, वह भारी भार नही उठा सकता। जैसे जलती हुई आग के पास मनुष्य सचेत होकर रहता है, वैसे ही मनुष्य को राजा के पास सावधानी से रहना चाहिये। यह राजनीति एक नदी के समान है, राजकीय पुरुष उसमें मगर और मत्स्य है। जिस प्रकार ऐसी नदी को पार करना मृत्यु से लडना है, उसी प्रकार दुष्ट अधिकारियों से युक्त राज्य मे रहना कठिन है।'

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह! कौन-से ऐसे धर्म है जो सभी वर्णो के लिए उपयोगी है?'

भीष्मजी बोले—'युधिष्ठिर! वेद में सर्वत्र सभी आश्रमों के लिए स्वर्ग प्राप्ति कराने वाली तपस्या का उल्लेख है। धर्म के वहुत से द्वार है। ससार मे ऐसी कोई क्रिया नही है जिसका कोई फल न हो। जो पुरुष जिस विषय मे पूर्ण निश्चय को पहुँच जाता है उसीको वह कर्तव्य समझता है। जो पुरुष जिस अवस्था में, जिस देश अथवा काल में, जिस उद्देश्य से जैसा कर्म करता है वह उस धर्म का वैसा ही फल पाता है। काल के उलटफेर से प्रभावित तथा स्वभाव से प्रेरित हुआ मनुष्य विवश होकर उत्तम, मध्यम और अधम कर्म करता है। जो कल्याणकारी और मगलकारी शुभाशुभ कर्म है, वे ही इस शरीर का निर्माण करते है और शरीर के साथ ही उनका भी अत हो जाता है।

'राजन्! क्रोध न करना, सत्य बोलना, धन को बॉटकर भोगना, क्षमा भाव रखना, बाहर-भीतर से पवित्र रहना, अपनी ही पत्नी से सतान पैदा करना, किसीसे द्रोह न करना, सरल भाव रखना, योग्य व्यक्तियों का भरण-पोषण करना—यह नौ

धर्म सभी वर्णो के लिए उपयोगी है।

'जो विद्वान उत्तम लक्षण से युक्त सर्वत्र समान दृष्टि रखने वाला है, ऋक्, यजु' और सामवेद का अध्ययन करके शुद्ध कर्मों मे लगा रहता है, जो मन, वाणी और इद्रियो का सयम करता है और शान्त रहता है वही ब्राह्मण है।

'तप, अध्ययन, अध्यापन, यजन-याजन, दान, परिग्रह से ब्राह्मण का यश बढता है। वेदो के प्रवचन मे निपुण, अध्यात्म-ज्ञान मे कुशल, सत्वगुण सम्पन्न, सत्य प्रतिज्ञ, सतो की सेवा करने वाले ब्राह्मण, महान भाग्यशाली है। ईश्वर का पूजक, धैर्यवान, प्रमाद रहित, इद्रिय और मन को वश में रखने वाला ब्राह्मण उत्तम है। जो ब्राह्मण षोडस अग्निहोत्री को जानता है, वही यज्ञ सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान से सम्पन्न है। ब्राह्मण होकर क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्मो को जो करता है, वह मद बुद्धि पुरुष इस लोक मे निदित और परलोक मे नरकगामी होता है।

'दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, दुष्टो को दड देना, रणभूमि मे पराक्रम प्रकट करना और प्रजा का पालन करना, ये सब क्षत्रियो के धर्म हैं। क्षत्रियो के लिए शास्त्र में ऐसे स्वर्ग साधक कर्म बताए है, जो हिंसा प्रधान है—जैसे युद्ध। जैसे यज्ञ के अत में यज्ञ करने वाले मनुष्य पवित्र हो जाते है, वैसे ही युद्ध मे शस्त्रो द्वारा मारे जाने से वीर पाप नष्ट हो जाने के कारण पवित्र हो जाते है। खाट पर मरना क्षत्रियो के लिए अधर्म है, वीरो के लिए यह कायरता की बात है।

'दान देना, अध्ययन और यज्ञ करना, सत्यपूर्वक धन सग्रह करना, कृषि-गोरक्षा करना वैश्यो का धर्म है। सब की सेवा करना शूद्र का धर्म है। सभी वर्ण वाले अपने-अपने धर्म का अनुष्ठान करने से परम सिद्धि को पाते है, इसलिए सभी वर्ण वाले मानव अच्छे हैं। विद्वानो ने चारो वर्णो का विभाजन किया है, इसलिए वे ब्राह्मणो के समान और उनके जाति भाई

या कुटुम्बी है। जैसे ऋक्, यजुः और साम एक ही ओकार से प्रकट होने के कारण परस्पर से अभिन्न है, उसी प्रकार यदि तत्व से निश्चय किया जाय तो ब्राह्मण के साथ सबकी अभिन्नता है।

'सब धार्मिक कर्मों के प्रतिपादन के लिए श्रद्धा आवश्यक है, इसलिए श्रद्धा को सबसे बडा देवता माना गया है। मानसिक संकल्पो द्वारा जो भावनात्मक यज्ञ होता है, उसे सभी वर्णों को करना चाहिए। मानसिक यज्ञ करने वाले यजमान के यज्ञ मे देवता प्रतिष्ठित रहते है, क्योंकि वह यज्ञ श्रद्धा के कारण परम पवित्र होता है। यदि कोई पापी भी यज्ञ करता है, उसे सभी 'साधु' ही कहते है। यज्ञ के समान कोई धर्म नही है, इसलिए दोष दृष्टि का परित्याग कर श्रद्धा से शास्त्रीय विधि का आश्रय ले अपनी शक्ति और इच्छा के अनुसार यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये।

'राजन्! ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास यह चार आश्रम है। सन्यास का अवलबन केवल ब्राह्मणो ने किया है। उपनयन के अनतर द्विजत्व को प्राप्त हो, वेदाध्यन पूर्ण कर गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करना चाहिये। वहाँ इद्रियो का सयम रखते हुए वानप्रस्था श्रम मे प्रवेश करें। तत्पश्चात विधिपूर्वक सन्यास ग्रहण करे। सन्यासी को चाहिये कि वह मन और इद्रियों का सयम करे, और मुनि वृत्ति से रहे। किसी वस्तु की कामना न करे। अपने लिये मठ या कुटी न बनाए। निरतर घूमता रहे। जहाँ सूर्यास्त हो जाय वही ठहर जाए। प्रारब्ध से जो कुछ मिल जाए, उसीसे जीवन निर्वाह करे। आशा-तृष्णा का सर्वथा त्याग कर सबके प्रति समान भाव रखे। भोगो से दूर रहे, और हृदय मे किसी प्रकार का विकार न आने दे।

'जो वेदों का अध्ययन करने के पश्चात धर्म से युक्त हो गार्हस्थ्य धर्म का पालन करता है, वह उत्तम पुरुष है, जो शठता और कुटिलता से दूर रहता है, परमित आहार करता

है, देवताओ की आराधना मे तत्पर रहता है, उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ रहता है, सत्य और मृदुभापा बोलता है, क्रूर नही होता है, और क्षमा भाव रखता है, इद्रियो का सयम कर गुरुजनो की आज्ञा मानता है, निरतर अन्न दान करता है और ईर्ष्या-द्वेप से दूर रहता है, वह पुरुष उत्तम है। जो गृहस्थ पुरुष सरलता, अतिथि सत्कार, धर्म, अर्थ का सेवन इस लोक मे करता है, वह परलोक मे भी सुख पाता है। परिवार का भरण-पोपण, शास्त्रो का स्वाध्याय, गृहस्थ पुरुप का कर्तव्य है। ब्रह्मचारी को आचार्य की परिचर्या मे सलग्न रहना चाहिये और किसी भी असत कर्म मे प्रवृत्त नही होना चाहिये।

'महाराज! मनुष्य को प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम—इन चारो प्रमाणो द्वारा सदा अपने-पराये की पहचान करते रहना चाहिये। जिनके मन मे शुद्ध भाव नही हैं, वे ईर्ष्या-वश निर्दोप पर भी दोषारोपण कर देते है। अपने धार्मिक कर्मो मे लगे हुए मुनियो के भी शत्रु और मित्र पैदा हो जाते है। ससार मे वहुत से असभ्य प्राणी सभ्य की तरह, और सभ्य असभ्य की तरह सम्मान पाते है। आकाश औधी की हुई तेल से भरी कढाई के समान दिखाई देता है, और जुगनू अग्नि के सदृश, परन्तु न तो आकाश मे तेल है, और न जुगनू मे अग्नि ही। इसलिये प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वस्तु की भी परीक्षा करनी चाहिये। जैसे कौआ व्यर्थ की काँव-काँव किया करता है वैसे ही मूर्ख भी अकारण ही निन्दा करता रहता है। इसलिये अच्छे राजा को चाहिये कि वह टिटिहरी या रोगी की तरह टाँव-टाँव करते हुए उस निदाकारी पुरुष की उपेक्षा कर दे। कुलीन पुरुप यदि विना अपराध के तिरस्कृत हो जाय, तो भी तिरस्कार करने वाले का अनिष्ट मन मे नही लाता, किन्तु नीच कुल का व्यक्ति साधु स्वभाव के पुरुप का आश्रय पाकर भी एक वार अपमानित होने पर शत्रु वन जाता है, अत राजा को कुलीन मनुष्य को ही मित्र और मत्री वनाना चाहिये। मूर्ख मत्री या

निर्बल शत्रु, जवान अथवा बूढा ही क्यों न हो असावधान रहने वाले को आपत्ति मे डाल देता है। व्यापारी राष्ट्र के वाणिज्य, व्यवसाय तथा खेती की उन्नति करते हैं, अतः बुद्धिमान राजा को चाहिये कि उन पर प्रेम भाव, दयालुता रखे और कर इतना ही लगाये जो वे वहन कर सके। मदिरालय, वेश्याए, जुआरी, राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाले है, इन पर नियत्रण करना चाहिये। ये कल्याण मार्ग पर चलने वाली प्रजा को हानि पहुँचाते है। विद्वानों का निर्णय है कि आपत्ति काल को छोडकर मनुष्य भीख न माँगे, नही तो कोई भी कर्म न करेगा। विद्वान, शूरवीर, धनी, धर्मनिष्ठ, तपस्वी, सत्यवादी तथा बुद्धिमान मनुष्य ही प्रजा की रक्षा करते है। जो धर्मज्ञ, धैर्यवान और सग्राम मे कभी पीठ न दिखाने वाले शूरवीर है, वे सब राजा की प्रशंसा करें या निदा, उसे उनका सत्कार ही करना चाहिये, क्योंकि किसी का कोई भी काम सबको अच्छा लगे, ऐसा सम्भव नही है। राजा धर्म का पालन और प्रचार करने के लिये ही होता है, विषयों का उपभोग करने के लिये नही। सभी प्राणी धर्म के ही आधार पर स्थित है, और धर्म राजा के उदर में प्रतिष्ठित है। जो अपने धर्म के पालन में तत्पर रहते हैं, उन्हे ही अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि होती है। राजा को सान्त्वनापूर्ण, मधुर एव स्नेहपूर्ण वचन बोलना चाहिये। इसके समान वशीकरण साधन दूसरा नही है। राजन्! राजा को प्राणियो को नही सताना चाहिये, क्योकि वे उसे अपनी दु ख की क्रोधाग्नि से जला डालते है, और उसके कुल मे कोई अकुर भी नही उत्पन्न होता। झूठे अपराध लगाये जाने पर मनुष्यो के जो आँसू गिरते है, वे मिथ्या कलक लगाने वाले के कुल का नाश कर डालते है। यदि दीन की लोभवश, युक्ति से कोई सम्पत्ति हर ले, तो वह विनाशकारक हो जाती है। जब कोई दीन, अनाथ और वृद्धो के आँसू पोछता है और उनके हृदय में हर्ष उत्पन्न करता है, वह उत्तम पुरुष कहलाता

है। जो धर्म को अर्थसिद्धि की अपेक्षा बडा मानता है, वह धर्म के कारण ही वडी शोभा पाता है। वलवान शत्रु का अपकार करके दूर रहकर भी निश्चिंत नही रहना चाहिये, क्योंकि जैसे वाज पक्षी अचेत पक्षी पर झपट्टा मारता है उसी प्रकार दूरस्थ शत्रु भी असावधान पर टूट पडता है। जो द्वेपवश कल्याणकारी गुणोवाले वधुओ का सम्मान नही करता और चचल चित्त से सव समय उन पर क्रोधित रहता है वह कष्ट मे पड जाता है।'

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह! जो शूरवीर शत्रु के साथ युद्ध करके मृत्यु को प्राप्त होते हैं वे किस लोक मे जाते हैं, यह वताइये।'

भीष्मजी वोले—'युधिष्ठिर! इस विषय में राजा अम्वरीष और इन्द्र के सवाद का उदाहरण दिया जाता है।

'नाभाग-पुत्र अम्वरीप ने स्वर्ग लोक मे जाकर देखा कि उसका सेनापति सुदेव इन्द्र के साथ विराजमान है। अपने शक्तिशाली सेनापति को निज से भी समृद्धवान देख राजा आश्चर्य से चकित हो उठा और इन्द्र से वोला—'देव! मैं पृथ्वी का विधिपूर्वक शासन और सरक्षण करता था। मैंने ब्रह्मचर्य का पालन, गुरु की सेवा, वेदो का अध्ययन और राजशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की है। अन्न का दान दिया है, अतिथियों की सेवा, स्वाध्याय और यज्ञों द्वारा ऋषि और देवताओं की पूजा की है। यह सुदेव जो मेरा सेनापति था, उसने यज्ञ से ब्राह्मण, ऋषि, देवताओ को तृप्त भी नही किया है, इसलिये इसे ऐसा ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हुआ?'

'इन्द्र ने कहा—'पूर्व काल मे आपके तीन शत्रु—संयम, विषम और सुभम महावली राक्षसो ने आप पर विशाल सेना ले आक्रमण किया, और आपकी प्रजा और सैनिकों को वंदी वना लिया। सेनापति सुदेव के विरुद्ध मन्त्रियो की वात सुन आपने उसे सेनापति के पद से हटा दिया। फिर उन्ही मन्त्रियों की कपटपूर्ण सलाह से सुदेव को सेनापति के अधिकार पर पुन. स्थापित

कर दिया, और उसे उन राक्षसों से युद्ध करने की आज्ञा दी, जो दुर्जय थे। सुदेव ने जब राक्षसों की विशाल सेना देखी, तब वह इस निर्णय पर पहुँचा कि शत्रु सेना देवता या दानवो से भी परास्त नही की सकती फिर महाराज अम्बरीष या मेरी तो बात ही क्या। ऐसा विचार कर उसने भगवान शकर की आराधना आरम्भ कर दी, और कुछ समय बाद खड्ग ले अपना ही सिर काटने पर उद्यत हो गया।

'अपने भक्त को बचाने के लिये भगवान शकर प्रकट होकर बोले—'तुम आत्मबलिदान क्यों करना चाहते हो ?'

'सुदेव ने भगवान शंकर को प्रणाम कर कहा—'भगवन् ! मैं इन राक्षसो को युद्ध मे पराजित नही कर सकता, इसलिए जगतपते ! आप मुझ आर्त्त को शरण दे। भगवन् ! मन्त्रियो सहित महाराजा अम्बरीष मुझ पर कुपित है। उन्होने मुझे स्पष्ट रूप से आज्ञा दी है कि शत्रु सेना को पराजित किये बिना लौटकर न आना।'

'भगवान शंकर ने सुदेव पर प्रसन्न होकर उसे एक दिव्य रथ दिया और बोले—'सुदेव ! तुम इस रथ पर बैठकर दानवों को परास्त कर सकोगे, जो अस्त्र-अस्त्रों से सुसज्जित है। पर रथ से उतरना नही।'

'सुदेव ने रथ पर सवार होकर राक्षसों को परास्त किया, किन्तु बाहु युद्ध करते समय वह भी राक्षसो से मारा गया।

'राजन् ! जो युद्ध द्वारा इसी तरह सग्राम यज्ञ सम्पादित करता है, उसकी परमगति होती है। सुदेव को भी वही उत्तम स्थान मिला, जो दूसरे रणधीरो को मृत्यु के बाद प्राप्त होता है। इसलिए युद्ध स्थल मे मारे गये शूरवीरो के लिये किसी प्रकार भी शोक नही करना चाहिये। इन्द्र के यह वचन सुन राजा अम्बरीष ने स्वीकार किया कि 'योद्धाओ को स्वतः सिद्धि प्राप्त होती है।'

भीष्म ने कहा—'युधिष्ठिर ! तुम्हें मैं राजा जनक का भी

इतिहास सुनाता हूँ—मिथला नरेश जनक बड़े महात्मा एव सम्पूर्ण तत्वो के ज्ञाता थे। उन्होने अपने योद्धाओ से कहा—जो निर्भय होकर युद्ध करने वाले वीर है, वे युद्ध में मरने के पश्चात् अविनाशी शोक और ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते है, किन्तु जो युद्ध मे पीठ दिखाकर भागते हैं, उन्हे नरक और अपकीर्ति मिलती है। यही स्वर्ग और नरक है। वीरो और कायरो के पेट, पीठ, हाथ और पैर समान ही होते है, पर कायर जगत मे अपमान को प्राप्त होते है, और वीर सम्मान को। जो अपने प्राणो की परवाह न कर पतग की भाँति निर्भय हो हाथ मे हथियार उठाये, अग्नि के समान विनाशकारी सग्राम मे प्रवेश कर जाता है, वह स्वर्गलोक मे जाता है।'

## भिन्न-भिन्न कारणो से शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है

भीष्म ने आगे कहना प्रारम्भ किया—'राजन्! मनुष्य तीन प्रकार के होते है। एक अनागत-विधाता, दूसरा प्रत्युत्पन्न-मति और तीसरा दीर्घसूत्री। प्रथम सकट आने के पहले ही अपना बचाव कर लेता है, दूसरा समय आने पर ही आत्म-रक्षा का उपाय करता है, तीसरा प्रत्यक्ष कार्य मे अनावश्यक विलम्ब करता है, उसे दीर्घसूत्री कहते है। इस विषय मे तुम तीन मत्स्यो का आख्यान जानते ही हो। इनमें दो बच गये, और तीसरा दीर्घसूत्री अपने आलस्य के कारण मारा गया।

'राजन्! भिन्न-भिन्न कार्यो का ऐसा प्रभाव पडता है, जिसके कारण कभी शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है। अत देश-काल को समझकर कर्तव्य-अकर्तव्य का निश्चय करना चाहिये। इस विषय मे एक विलाव और चूहे का मैं तुम्हे दृष्टान्त सुनाता हूँ

'राजन्! एक वन मे विशाल बरगद का वृक्ष, जो लता

समूहों से आच्छादित और भाँति-भाँति के पक्षियों से सुशोभित था। उसकी छाया शीतल होने के कारण वह बहुत से सर्पों औ पक्षियों का आश्रय बना हुआ था। बरगद की डाली पर एव लोमेश नाम का बिलाव रहता था, जो पक्षियों को खा जाय करता था। उसी वन में एक चाण्डाल भी रहता था, जो पक्षिय को जाल में फँसा लेता था। एक दिन यह बिलाव उस चाण्डाल के जाल में फँस गया। उसके शक्तिशाली शत्रु के जाल में फँस जाने पर सब पक्षी और चूहे निर्भय हो विचरने लगे और अपने फँसे हुए शत्रु पर हँसने लगे। इतने मे एक चूहे ने जो जाल के पास खेल रहा था, एक विशाल शत्रु नेवले को देखा। बरगद की शाखा पर जब उस चूहे ने एक उल्लू को भी देखा, तब दोनों बलवान शत्रुओं से प्राण बचाने की उसे चिता हो गई। उसने सोचा कि बुद्धिमान, विद्वान और नीतिशास्त्र मे निपुण विपत्ति मे पडकर भी उससे छूटने की चेष्टा करता है। इसमे सन्देह नही कि बिलाव मेरा महान शत्रु है, परन्तु यदि सम्भव हो तो इसे स्वार्थ सिद्ध करने की बात पर राजी करे। यह निश्चय कर वह चूहा जाल को काटकर उसमे घुस गया। उसने बिलाव को सान्त्वना देते हुए मधुर वाणी में कहा :

'भैया बिलाव! मै चाहता हूँ कि तुम्हारा जीवन सुरक्षित रहे, इसमें हम दोनो की भलाई है। मैंने तुम्हारी जीवन रक्षा के लिए एक उपाय सोचा है। यदि तुम मेरी हिसा नही करोगे, तो मैं तुम्हारे सारे बंधन काट डालूँगा। इस प्रकार हम दोनो की मैत्री चिरस्थायी हो जाएगी।'

'बिलाव ने उत्तर दिया—'सौम्य! मैं तुम्हारे प्रस्ताव का अभिनन्दन करता हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। तुम निर्भय हो मुझे जीवन प्रदान करो। मेरे मुक्त हो जाने पर तुम्हारे किये हुए उपकार का बदला मैं अवश्य चुकाऊँगा। इस समय मै तुम्हारा भक्त और शिष्य हूँ। मै तुम्हारी शरण ग्रहण करता हूँ।'

'अपने-अपने प्रयोजन की सिद्धि करने के लिये चूहे और

विलाव ने आपस मे सधि कर ली और चूहा धीरे-धीरे जाल को काटने लगा। चूहे और विलाव को कार्यवश सधि-सूत्र मे वधे देख उल्लू और नेवला निराश हो, अपने-अपने स्थान पर चले गये। इतने मे यमदूत के समान चाण्डाल आ पहुँचा। तदनन्तर चूहे ने विलाव का अतिम बधन भी काट डाला। उस भारी सकट से छुटकारा पाकर विलाव वृक्ष की शाखा पर जा बैठा और चूहा विल मे घुस गया। चाण्डाल ने उस जाल का सब ओर से निरीक्षण किया और जब कोई भी जानवर उसमें फसा नही मिला तब निराश होकर घर को लौट आया। इस भारी भय से मुक्त हो दुर्लभ जीवन पाकर वृक्ष की शाखा पर बैठे हुए विलाव ने चूहे से कहा

'मित्र! तुमने विपत्ति के समय मेरा विश्वास किया है और मुझे जीवन दान दिया है, अव सुख भोगने का समय आया है इसलिये मेरे पास आओ। अव से मेरे सभी मित्र और परिवार के लोग तुम्हारी पूज्यजनो के समान सेवा करेगे।' बिलाव की ऐसी शान्तिपूर्ण वाणी सुन उत्तम मत्रणा के ज्ञाता चूहे ने कहा:

'लोमेश! तुमने जो कहा है वह सब मैंने ध्यान देकर सुना है। अव मेरी वुद्धि मे जो विचार स्फुरित हो रहा है, उसे मैं तुम्हे सुनाता हूँ। इस जगत मे मित्र और शत्रु की पहचान अत्यत सूक्ष्म है। अवसर आने पर कितने ही मित्र शत्रु वन जाते है और कितने ही शत्रु मित्र। जव वे काम और क्रोध के अधीन हो जाते है, तव उन्हे समझना असम्भव है कि वे मित्र हैं या शत्रु। मैत्री कोई स्थिर वस्तु नही है, क्योकि स्वार्थ वडा बल-वान है। जो विश्वासपात्र न हो, उस पर कभी विश्वास नही करना चाहिये। माता-पिता, पुत्र, बधु-वाधव सब मे स्वार्थ के सम्वन्ध से ही स्नेह होता है। यदि अपना प्यारा पुत्र भी पतित हो जाय, तो माँ-वाप उसे त्याग देते है, अत इस जगत मे स्वार्थ ही वलवान है। किसी कारण को लेकर उत्पन्न होने वाली प्रीति, जव तक वह कारण रहता है, तव तक ही वह वनी

रहती है। कारण नष्ट हो जाने पर प्रीति भी स्वत. निवृत्त हो जाती है। समय कारण के स्वरूप को बदल देता है, और स्वार्थ उस समय का अनुकरण करता रहता है। मैं तुम्हारे स्वार्थ को अच्छी तरह समझता हूँ। तुम जाति से ही मेरे शत्रु हो, किन्तु प्रयोजन से मित्र बन गये थे। अब वह प्रयोजन सिद्ध कर लेने के पश्चात पुनः तुम्हारी प्रकृति शत्रु भाव को प्राप्त हो गई है। इसलिये अब मैं तुमसे नही मिलूँगा। इस विषय पर शुक्राचार्य ने कहा है कि जब अपने पर और शत्रु पर एक सी विपत्ति आये, तब निर्बल को बलवान शत्रु के साथ मेल करके बड़ी सावधानी और युक्ति से अपना काम निकाल लेना चाहिये।' इतना कहकर चूहा बिल मे घुस गया।

'राजन्! मैं तुम्हे इसी विषय पर एक और आख्यान सुनाता हूँ। काम्पिल्य नगर मे ब्रह्मदत्त नाम के एक राजा राज्य करते थे। उनके अत.पुर मे पूजनी नाम से प्रसिद्ध एक चिडिया निवास करती थी जो समस्त प्राणियों की बोली समझती, और सम्पूर्ण तत्वों को जानने वाली थी। एक दिन उसने राजमहल मे एक बच्चा दिया और उसी दिन राजा के भी एक बालक उत्पन्न हुआ। वह कृतज्ञ पूजनी चिडिया प्रतिदिन दोनो बच्चो के लिये दो फल ले आती थी।

'एक दिन राजपुत्र ने चिडिया के बच्चे को खेल-खेल मे मार डाला। अपने बच्चे को मरा देख वह दु.ख से सतप्त हो कहने लगी—'राजा मे सगति निभाने की भावना नही होती। उनमे न प्रेम होता है न सौहार्द्र। वे स्वार्थ से ही दूसरे का सम्मान करते है। जब काम निकल जाता है तब उसे त्याग देते है, इसलिए इन पर कभी विश्वास नही करना चाहिये। यह राजकुमार कृतघ्न, अत्यन्त क्रूर और विश्वासघाती है। मैं इससे इस वैर का बदला लूँगी।' ऐसा कहकर उसने अपने पजों से राजकुमार की दोनों आँखे फोड डाली और उडकर राजा से बोली—इस जगत में स्वेच्छा से जो पाप किया जाता है उसका

फल तत्काल ही कर्ता को मिल जाता है। उसके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म भी नष्ट नही होते। उनका फल भी कर्ता को समय आने पर भोगना ही पडेगा। अब मैं यहाँ नही रहूँगी क्योकि तुम्हारा-मेरा वैर स्थापित हो गया है। वैर पाँच कारणो से हुआ करता है, स्त्री, घर-जमीन, कठोर वाणी, जातिगत और किसी समय किये हुए अपराध के कारण। जैसे लकडी के भीतर आग छिपी रहती है उसी प्रकार वैर करने वाले के हृदय मे वैर भाव छिपा रहता है। जिस प्रकार वडवानल समुद्र मे भी शान्त नही होती, उसी प्रकार क्रोधाग्नि न धन से, न कठोरता दिखाने से, न मीठे वचनो से, न शास्त्र ज्ञान से शान्त होती है। जैसे प्रज्वलित वैराग्नि एक पक्ष को दग्ध किये बिना नही वुझती, उसी प्रकार अपराधजनित कर्म अपराधी का अनिष्ट किये विना शात नही होता। इसलिए शत्रु की वातो पर विश्वास करने वाले मारे जाते हैं। विद्या, शूरवीरता, दक्षता वल और धैर्य—ये पाँच मनुष्य के स्वाभाविक मित्र है और यज्ञ, दान, दया, सत्य, तप और स्वाध्याय धर्म है। वुद्धिमान इन्ही का आश्रय लेते है। जैसे मनुष्य अपने रोगी नेत्रो से सूर्य को देखता है या तीव्र हवा की ओर रखता है तव उनके उन नेत्रो मे पीडा वढ जाती है,वैसे ही जो अपनी शक्ति का ध्यान न कर मोहवश दुर्गम मार्ग पर चल देता है, उसका जीवन वही समाप्त हो जाता है। जो पथ्य छोडकर अपथ्य का सेवन करता है वह रोग ग्रस्त हो जाता है। जव-जव तुम अपने पुत्र को देखोगे तव-तव तुम्हारे हृदय मे क्रोध और प्रज्वलित हो उठेगा। इनके आधीन हो तुम किसी दिन मुझे मार डालोगे, अत. मैं अव तुम्हारे पास नही रहूँगी। वलवान से वैर करना कभी अच्छा नही होता। इतना कहकर पूजनी चिडिया राजा से विदा ले उड गयी।'

## पाप का अधिष्ठान क्या है ? धर्म, अर्थ और काम में श्रेष्ठ कौन है ?

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! पाप का अधिष्ठान क्या है ? और किससे इसकी प्रवृत्ति होती है ?'

भीष्म ने उत्तर दिया—'पाप का अधिष्ठान लोभ है। लोभ से मनुष्य अधर्म, छल-कपट और नाना प्रकार के पाप करने लगता है। फिर क्रोध, काम, मोह, अभिमान और उद्दण्डता प्रकट होते है। मनुष्य में षट् दोषो के कारण असहनशीलता, निर्लज्जता, चिन्ता, और अपयश उत्पन्न हो जाते है। लोभ से ही कृपणता, शास्त्र विरुद्ध कर्मों मे प्रवृत्ति, सबके प्रति अविश्वास, द्रोह और कुटिलतापूर्वक वर्ताव होते है। लोभ मनुष्य से पराये, माता-पिता तथा गुरुजन के धन का अपहरण कराता है। उससे वाणी और मन का वेग उत्पन्न होता है और निन्दा, मिथ्या भाषण करने की प्रवृत्ति होती है। जैसे बहुत सी नदियों के जल से भी समुद्र नही भरता, उसी प्रकार लोभी मनुष्य वहुत धन उपार्जन करने पर भी सतुष्ट नही होता। बडे-बडे विद्वानो की भी बुद्धि लोभ के कारण मारी जाती है और वे निरतर क्लेश उठाते रहते है। जिसने अपने मन और इद्रियों को वश में कर लिया है उस पुरुष को मोह सहित लोभ को जीतना चाहिए। लोभ से अज्ञान हृदय मे आता है, अज्ञान से षट् दोष, निद्रा, आलस्य, हर्ष, शोक, और पाप होते है, और जीव को नाना प्रकार की योनियो मे जन्म लेना पडता है।

'क्रोध दूसरों के दोष एव प्रतिकूल व्यवहार को देखने से वढता है और क्षमा से इसकी निवृत्ति होती है। काम सकल्प से उत्पन्न होता है। इसका जितना भी सेवन किया जाय, उतना ही बढता रहता है, किन्तु उससे विरक्त होने से नष्ट हो जाता है। मोह अज्ञान से उत्पन्न होता है किन्तु विद्वानो के ससर्ग से

नष्ट हो जाता है। जिस पर प्रेम हो उसके वियोग से शोक प्रकट होता है किन्तु ज्ञान का आधार लेने से उसकी शान्ति हो जाती है । नीच मनुष्य के द्वेषपूर्ण तथा अप्रामाणिक वचनो को सुन भ्रम मे पड जाने से मनुष्य 'को दूसरो की निन्दा करने की प्रकृति हो जाती है। इससे उनका साथ त्यागना चाहिए।

'लोभ और अज्ञान का नाश करने के लिए दम अर्थात् संयम, तप और सत्य की साधना करनी चाहिए। ये तेज की वृद्धि करते है और सात्विक कर्मो मे मन को लगाते हैं। इनसे मनुष्य अगाध गाम्भीर्य धारण करता है। जैसे समुद्र अनन्त जलराशि पाकर भी भरता नही, उसी प्रकार वह भी धर्म सचय से कभी तृप्त नही होता। वह सदाचार, शील और आत्म तत्व को जानने वाला होता है। कर्तृत्वाभिमान और फलाशक्ति से शून्य मनुष्य इस लोक मे सत्कार और परलोक मे परमगति पाता है। सयमी पुरुप जहाँ भी रहे, उसके लिए वह स्थान वन और आश्रम है।' तदनन्तर पितामह की आज्ञा से पाण्डव अपने विश्रामस्थल पर गये।

वहाँ युधिष्ठिर ने चारो भाइयो और विदुरजी से पूछा, 'धर्म, अर्थ और काम मे कौन श्रेष्ठ है ?'

विदुरजी वोले—'राजन् ! शास्त्रो का अनुशीलन, तपस्या, त्याग, क्षमा, दया, सत्य और सयम ये धर्म की ही जड है। धर्म से ही देवताओ की उन्नति हुई है और धर्म मे अर्थ भी स्थित है, अत मन को वश मे करके धर्म को अपना प्रधान ध्येय वनाना चाहिये और सम्पूर्ण प्राणियो के साथ समभाव रखना चाहिये।

'राजन् ! कोई मानते है कि धर्म सत्य से, कोई मानते हैं युक्ति से, कोई श्रेष्ठ आचरण से और कोई दान, दया, यज्ञ, अहिसा आदि उपायो से स्थित रहता है, परन्तु माता-पिता तथा गुरुजनो का सम्मान करना ही धर्म की स्थिरता मे अधिक महत्वपूर्ण है। जो उनकी आज्ञा के पालन में सलग्न रहते है

उनको दूसरे सभी धर्म स्वतः सिद्ध हो जाते है। प्राणियों के अभ्युदय और कल्याण के लिए ही धर्म का प्रवचन किया गया है,अतः जो कर्म इस उद्देश्य से युक्त हो वही धर्म है। धर्म का नाम धर्म इसलिए पडा है कि वह सवको धारण करता है—अधोगति से वचाता है और जीवन की रक्षा करता है।

'राजन् ! आत्मा शुभ कर्मों के लिए प्रेरणा देती है। यदि कोई आश्रम में रहकर किसी की हत्या करे तो उसे क्या पाप नहीं लगेगा और यदि घर में रहकर दान देता है, स्वधर्म पालन और भगवान का भजन करता है तो क्या वह व्यर्थ हो जायेगा? धर्म, अर्थ और काम एक साथ प्रकट हुए है। धर्म अर्थ की प्राप्ति का कारण है और काम अर्थ का फल है। इन तीनो का मूल है संकल्प और संकल्प है विषय रूप। धर्म से शरीर की रक्षा होती है और धर्म का उपार्जन करने के लिए धन की आवश्यकता होती है और काम है भोग। ये सभी गुणमय है, अतः आसक्ति और फलेच्छा का त्याग कर त्रिवर्ग का सेवन किया जाये तो मनुष्य का कल्याण ही होता है। धर्म, अर्थ, सदाचार, वल और लक्ष्मी शील के ही आधार पर रहते है। मन, वाणी, क्रिया द्वारा किसी प्राणी से द्रोह न करना, दया करना और दान देना यह शील कहलाता है। जो मन के प्रतिकूल होने के कारण सुहृद की बात नही सुनता और अर्थ सिद्धि के वचनों को सुनता है वह धर्म से गिर जाता है। जो द्वेषवश कल्याणकारी गुणोंवाले बंधुओं का सम्मान नही करता और चचल चित्त से सब समय उन पर क्रोधित रहता है वह कष्ट में पड जाता है।

'जैसे ज्ञान का फल चाहने वाले के लिए ज्ञान से परिचित होना आवश्यक है उसी प्रकार धर्म का फल चाहने वाले को भी धर्म का परिचय प्राप्त करना चाहिये। दुष्ट पुरुष यदि धर्म की इच्छा करे तो भी उसके द्वारा विशुद्ध कर्म का सम्पादन होना कठिन है। पहले निवृत्ति और प्रवृत्ति मार्ग का निश्चय कर

मन, वाणी और शरीर द्वारा श्रद्धापूर्वक धर्म के पालन मे लग जाओ। देश, काल और कर्म विशेष पर विचार करने से एक ही कर्म, धर्म और अधर्म हो जाता है। सभी प्राणियो के मन मे शुभ और अशुभ विचार उठते रहते हैं। मनुष्य को चाहिये कि चित्त को सदा अशुभ विचारो से हटाकर शुभ विचारो मे लगाये। धर्म के अनुसार मनुष्य की जिस कर्म मे रुचि हो, उसे तत्परता से पालन करना चाहिये। जो सत्पुरुषो का सग करता है उसे उनके प्रभाव से कोई ऐसा उपाय प्राप्त हो जाता है जो इहलोक और परलोक मे भी कल्याण करने वाला होता है।

'शास्त्रो मे जो सुकर्म वताये हैं उन्हें ही लोग धर्म मानते हैं। सबके साथ प्रेमपूर्वक वर्ताव करने से जो कुछ प्राप्त होता है वह भी धर्म है। लोकयात्ता का निर्वाह करने के लिए महर्षियो ने कर्म की जो मर्यादा स्थापित की है वह भी धर्म है। धर्म का पालन करने से इहलोक और परलोक मे सुख मिलता है। धर्म के यज्ञ, दान, तप आदि वहुत से द्वार है अत जगत मे धर्म की कोई भी क्रिया निष्फल नही होती। जो मनुष्य जिस-जिस साधन द्वारा सफलता को प्राप्त कर लेता है उसी साधन या धर्म को वह श्रेष्ठ समझता है।'

विदुरजी की वात समाप्त होने पर धर्म और अर्थ के तत्व को जानने वाले अर्जुन ने युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर कहना आरम्भ किया—'राजन्! यह कर्मभूमि है। यहाँ जीविका के साधन, कर्मो की ही प्रशसा होती है। अर्थ ही समस्त कर्मो के पालन मे सहायक है। विना अर्थ के धर्म और काम की भी सिद्धि नही होती। धनवान धन के द्वारा उत्तम कर्मों का पालन और दुर्लभ कामनाओ की प्राप्ति कर सकता है। श्रुतियो का कथन है कि धर्म और काम अर्थ के ही दो अवयव है। जैसे प्राणी ब्रह्मा की उपासना करते हैं उसी प्रकार धनवान की उपासना भी मनुष्यो से होती है। जो धनवान है उन्ही के स्वजन उनके साथ स्वजनोचित वरताव करते हैं। दरिद्रो के स्वजन

तो उनके जीते-जी ही उन्हे छोड देते हैं । निर्धन मनुष्य सैकड़ों यत्न करके भी धन उपार्जन।नही कर सकते, अतः धन की रक्षा करनी चाहिये तथा विधिपूर्वक उसका दान करना चाहिये। धन सकटों से छुडाने वाला है इसलिए विपत्ति निवारक कहलाता है ।

'अर्थ की प्राप्ति के लिए ही विद्या, कर्म, पवित्रता और ज्ञान का सहारा लिया जाता है । जटा और मृगचर्म धारण करने वाले ब्रह्मचारी, सग्रह से रहित विद्वान, और नियम और धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ भी धन की इच्छा रखते है । लक्ष्मी के कारण ही मनुष्य का सर्वत्र आदर-सत्कार होता है। लक्ष्मी मनुष्य के सारे दोषों को ढक देती है । आस्तिक-नास्तिक, सयम-नियमपरायण भी अर्थ के इच्छुक होते है, अतः अर्थ की प्रधानता को न जानना अज्ञान् है, जानना सुख है ।'

नकुल और सहदेव ने निवेदन किया--'धन अत्यन्त प्रिय और दुर्लभ वस्तु है। इसकी प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य ससार में सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। जो धर्म से युक्त हो और धर्म धन से सम्पन्न हो वह अमृत के समान है। निर्धन की कामना पूर्ण नही होती और धर्महीन को धन भी कैसे मिल सकता है, इसलिए मनुष्य को मन सयम में रखकर धर्माचरण करना चाहिये जिससे कि धन का साधन हो सके, फिर काम स्वत सिद्ध हो जायेगा। धन और धर्म दोनो सत्य के ऊपर प्रतिष्ठित हो तो वे मनुष्य की रक्षा करते है ।'

भीमसेन ने कहा—'धर्मराज ! जिसके मन में कोई कामना नही है, उसे न तो धन कमाने की इच्छा होती है और न धर्म करने की ही । किसी न किसी कामना से सयुक्त हो ऋषि-मुनि इद्रियों का सयम करके तपस्या में मन लगाते है। कामना से ही मनुष्थ शास्त्रो का अध्ययन करके पारगत विद्वान हो जाते हैं। कामना से ही यज्ञ, दान और दैव-कर्मों से प्रवृत्ति होती है।

व्यापारी, किसान और शिल्पी कामना से ही अपने-अपने कर्मों में लगे रहते है। कामनारहित प्राणी न कही है, न कभी था और न भविष्य मे होगा ही। अत यह काम ही त्रिवर्ग का सार है। धर्म और अर्थ भी इसीमे स्थित है।'

धर्मराज युधिष्ठिर ने पूर्व वक्ताओ के वचनो पर विचार करके कहना आरम्भ किया—'वधुओ ! आप लोगो ने धर्म-शास्त्रो के सिद्धान्तो पर विचार कर जो अपना-अपना निर्णय वताया है इसे मैंने ध्यान से सुना है। अव आप मेरी वात को भी अनन्य चित्त होकर अवश्य सुनिये। जो न पाप मे लगा है न पुण्य मे, न अर्थोपार्जन मे तत्पर है न धर्म मे, न काम मे ही वह सव प्रकार के दोपो से रहित हो, सुख-दु ख को देने वाली सिद्धियो से सदा के लिए मुक्त हो जाता है और सव से समभाव से वर्त्ताव करता है। मनुष्य नाना मकार के दु खो से पीडित हो निरतर मुक्ति की ही प्रशसा करते है, पर जिसके मन मे आसक्ति है, उसकी कभी मुक्ति नही होती। आसक्ति-शून्य ज्ञानी ही मोक्ष को प्राप्त होते है। विधाता सभी प्राणियों को विभिन्न कार्यो के लिए प्रेरित करता है, अत: विधाता ही प्रवल है। मनुष्य कर्मों के द्वारा अप्राप्य अर्थ नही पा सकता। जो होनहार है वही होता है, अत मोक्ष का उपाय ज्ञान ही वास्तविक कल्याणकारक है।

'मनुष्य को जव कभी विषय-भोग से वैराग्य हो जाता है, तव विरक्त होने पर वह हर्ष-शोक को त्याग देता है और ज्ञानमय धन पाकर नित्य सुख का अनुभव करने लगता है। जो धन से ही सुख मानते है, उन मनुष्यो के लिए मैं निरतर शोक करता हूँ। ज्ञानी ऐसा मानते है कि जो है वह दु ख है और जो नही है वह सुख है। राज्य लक्ष्मी आकर भी जा सकती है और जिसके पास नही होती उसके पास भी आ सकती है।

'उत्तम आचार-विचार वाले राजा भरत ने समृद्धिशाली राज्य का परित्याग कर दिया था, इसी प्रकार अन्य भूपालो

ने भी। वे सबके सब जगल में फल-मूल खाकर तपस्या कर दु:ख से पार पहुँच गये। भोग प्रारब्ध के अधीन और अस्थिर है फिर भी मनुष्य नही चाहने योग्य विषयो को चाहते है। जो तुम्हे सुख के रूप मे प्रतीत होते है वे वास्तव में दु.ख रूप ही है। धनी, लोभ और क्रोध के वश मे आकर पाप-कर्म में सलग्न रहता है। जैसे वायु शरद ऋतु के बादलों को उडा ले जाती है उसी प्रकार सपत्ति मन को हर लेती है। जो धन के कारण ऊँचे या महत्वपूर्ण पद पर पहुँच जाता है, उसके धन की यदि हानि हो जाय तब उसे मृत्यु के तुल्य कष्ट होता है। इस राज्य सपत्ति को अनित्य समझकर भी भला कौन प्राप्त करने की इच्छा करेगा। उत्तम कुल में उत्पन्न हुए कुछ ही मनुष्य ऐसे है, जो धर्म की शरण लेते है और समस्त लौकिक व्यवहार एव धन-सम्पत्ति को त्याग देते है, क्योकि कुल में वैर की आग प्रज्वलित करने वाले दो ही दोष है—लोभ और अमर्ष। जब मैं तीनो लोकों पर दृष्टि डालकर देखता हूँ तब मुझे शुद्ध एव वैराग्य सम्पन्न पुरुष के समान कोई नही दिखाई देता है।

'मनुष्य जैसे-जैसे ससार के पदार्थो को सारहीन समझता है, वैसे ही वैसे इनसे उसका वैराग्य हो जाता है। जगत अनेक दोषो से परिपूर्ण है, ऐसा निश्चय कर बुद्धिमान पुरुष अपने मोक्ष के लिये प्रयत्न करते है। मूर्ख अपने कर्मों के परिणाम को न सोच-कर सुख से सोता है क्योकि वह अज्ञान से आवृत रहता है। जिसके कारण शोक, ताप और दु ख उठाना पडे उन्हें बुद्धिमान मनुष्य को त्याग देना चाहिये। ये अमोघ रात्रियाँ नित्य आती है और चली जाती है। रात बीतने के साथ ही आयु कम हो जाती है और मृत्यु क्षण-भर के लिए भी नही ठहर सकती है। जैसे भेड के पास अचानक व्याघ्री पहुँच जाती है और उसको दबोचकर चल देती है, उसी प्रकार मृत्यु जीव को लेकर चल देती है, अत: सबको सन्यास धर्म का आचरण करना चाहिये, क्योकि जीवन अनित्य है। तपस्वियो की गति सर्वत्र है, उनका

कही भी प्रतिरोध नही होता, क्योकि वे दूरदर्शी है। वे योग्य व्रत का आचरण करने से देदीप्यमान हो जाते है, तथा ज्ञान और विज्ञान उनकी शोभा बढाते है। जो मनुष्य मोह मे डूबा हुआ, न करने योग्य काम कर अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करता है और शुभ कर्म नही करता, ऐसे आसक्त हुए मनुष्य को काल अपने वश मे कर लेता है। अमृत और मृत्यु दोनो इस शरीर मे ही स्थित है। मनुष्य मोह से मृत्यु को और शुभ कर्म से अमृत को प्राप्त करता है। मनुष्य कैसा ही चतुर क्यो न हो, जो उसके भाग्य मे नही है, उस धन को प्रयत्न कर भी नही पा सकता। यदि कोई पुरुषार्थ सफल होता है, तो वह दैव के सहयोग से ही सिद्ध होता है। मनुष्य धनी हो जाने पर राज्य पाना चाहता है, राज्य से देवत्व की इच्छा और देवत्व से इद्रपद प्राप्त करना चाहता है। तृष्णा धन से नही बुझती, धन पाकर तो वह और भी प्रज्वलित होती है। काम, क्रोध आदि दोषो से युक्त बुद्धि की प्रेरणा से मन पाप-कर्मो मे प्रवृत होता है। इस प्रकार मनुष्य अपने ही कार्यो द्वारा पाप करके दु ख भोगता है। वह पापाचारी दरिद्र से दरिद्र हो मृतक तुल्य हो जाता है और अत्यन्त क्लेश और भय पाता है। जिस-जिस मनुष्य ने जैसा कर्म किया है वह कर्म उसके पीछे लगा रहता है और उसका साथ नही छोडता। पूर्व जन्म के कर्मों का भी फल मनुष्य अकेला ही भोगता है। जैसे फूल और फल बिना किसी की प्रेरणा के ही समय पर वृक्षो पर लग जाते है, उसी प्रकार पहले के किए हुए कर्म भी अपने फल भोग कर समय का उल्लघन नही करते। सम्मान-अपमान, लाभ-हानि, उन्नति-अवनति, दु ख और सुख, वर्तमान और पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार वारबार प्राप्त होते है, और प्रारव्ध भोग के पश्चात निवृत्त हो जाते है। जीव माता की गर्भ शय्या मे आते ही पूर्व जन्म द्वारा उपार्जित सुख-दु ख का भोग करने लगता है। जैसे क्षार आदि से धोने से कपडा साफ हो जाता है उसी प्रकार तपस्या आदि सत-कर्मो से पाप धुल

जाते है। इसलिए जिस कार्य से आत्मा की उन्नति हो वही कर्म करना चाहिये।'

## परम तत्व

दूसरे दिन युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! मुझे तत्वों एवं जीवात्मा के विषय मे उपदेश दे।'

भीष्म ने उत्तर दिया—'भगवान नारायण सम्पूर्ण जगत स्वरूप है, वे ही सबकी आत्मा और सनातन पुरुष है। वे कूटस्थ, अविनाशी, अव्यक्त, निर्लेप, सर्वव्यापी, प्रकृति से परे और इद्रियातीत है। उन भगवान नारायण के हृदय में जब सृष्टि विषय के सकल्प का उदय हुआ, तब उन्होने एक पुरुष को उत्पन्न किया, जो मानस देव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह अनादि, अत, अभेद्य, अजर और अमर, अव्यक्त, शाश्वत और अक्षय था। वही सब प्राणियों के जन्म और मृत्यु का कारण है। उस स्वयम्भू देव ने पहले महतत्व (समष्टि बुद्धि) फिर अहकार की सृष्टि की। फिर सम्पूर्ण भूतों को धारण करने वाले भगवान ने आकाश को उत्पन्न किया। आकाश से वायु, वायु से जल, जल से अग्नि और अग्नि से पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ। प्राणियों का शरीर और सारा स्थावर जगम जगत इन पाँच भूतो से ही युक्त है।

'आत्मा शरीर में स्थित होकर शरीर की रक्षा करती है और प्राण शरीर को चेष्टाशील बनाता है। प्राण से सयुक्त आत्मा ही जीव है। प्राण के द्वारा इद्रियाँ परिचालित होती है। शरीर को त्याग देने पर जीव आकाश की भाँति स्थित होता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण दृष्टि मे नही आता। जीव के चले जाने पर शरीर अचेतन हो पृथ्वी पर गिरकर पार्थिव भाव को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि पृथ्वी ही उसका आधार है। मन भी पच भौतिक ही है। एकमात्र अतरात्मा ही इस

शरीर का भार वहन करता है। वही रूप, रस, गध, स्पर्श, शब्द और सुख-दु ख का अनुभव करता है। जब उसका शरीर के साथ सम्बन्ध छूट जाता है, तब शरीर को सुख का भान नही होता। आत्मा जब प्राकृत गुणो से युक्त होता है, तब उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और जब उन्ही गुणो से मुक्त हो जाता है, तब परमात्मा कहलाता है। आत्मा शरीर मे रहकर भी कमल पत्र पर पड़े हुए जल विंदु की तरह उससे पृथक है। देह का नाश होने पर भी जीव का नाश नही होता। वह एक देह को त्याग कर दूसरे शरीर मे चला जाता है। तत्वदर्शी पुरुष शुद्ध बुद्धि से आत्मा को अपने हृदय मे भी साक्षात कर अनन्त आनन्द का अनुभव करते है।

'सत्य से बढकर कोई वस्तु नही है। जैसे जहाज समुद्र से पार होने का साधन है उसी प्रकार सत्य ही स्वर्गलोक में पहुँचने की सीढी है। सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तप है, सत्य ही सृष्टि रचता है, सत्य के ही आधार पर ससार टिका हुआ है और सत्य के प्रभाव से मनुष्य स्वर्ग को जाता है। असत्य अहकार का रूप है, और अज्ञानान्धकार से घिरे हुए मनुष्य तमो गुणो से ग्रस्त हो ज्ञान के प्रकाश को नही देखते। सत्य और अनंत से युक्त जो मानव योनि है वह ज्ञान और अज्ञान दोनो के सम्मिश्रण से जगत के जीवो को प्राप्त होती है। जो सत्य और असत्य है, वह ही धर्म और अधर्म, प्रकाश और अधकार तथा सुख और दुःख है। धर्म और अर्थ सत्य के अग है, अत सुख के उद्देश्य से ही सुकर्म किया जाता है। सत्य ही प्राणी का सच्चा सुख है। जिसका सशय रहित कामनायुक्त मन अच्छी तरह वश मे हो जाता है वह मनुष्य इहलोक और परलोक में भी सुखी होता है।

'ब्रह्म की उपासना ध्यान योग से भी की जाती है। साधक अपने मन को द्वद्वो और दोषो से मुक्त कर सत्व गुणो में स्थित हो नियमो का पालन करते हुए इद्रियो को विषयो से हटाकर

स्थिर भाव से परमात्मा का ध्यान करे। जैसे पत्ते पर पडी हुई पानी की बूंद हिलती रहती है, उसी प्रकार ध्यान मे स्थित साधक का मन भी प्रारम्भ मे चचल रहता है किन्तु उसे ऊबना नही चाहिये तथा पुनः ध्यान योग द्वारा अपने कल्याण का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार मनोनिग्रहपूर्वक ध्यान करने वाले योगी को जो दिव्य सुख मिलता है वह पुरुषार्थ या दैव योग से भी नही मिल सकता और वह योगी निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है।

'सांख्य और योग—इन दोनो मार्गों मे भी मनोनिग्रह और इद्रियसयम आवश्यक माने गये है। सत्य, अग्निहोत्र, एकान्त सेवन, ध्यान, तपस्या, दम, क्षमा, अनुसूया, मिताहार, विषयों का संयम, मित भाषण तथा शम ये प्रवर्तक यज्ञ है, निर्वतक यज्ञ जप है। निवृत्ति मार्ग तीन तरह का है—व्यक्त, अव्यक्त और अनाश्रय। साधक विषयों का चिन्तन न करे। वेद सहिता का पाठ एव प्रणव और गायत्री मंत्र का जप करे। फिर समाधि में स्थित होने पर जप को भी त्याग दे। ऐसे साधक समाधि से विशुद्ध परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप मे प्रवेश कर जाता है और पुनः इस ससार में जन्म नही लेता।

'कर्मपरायण मनुष्य जो प्रवृत्ति या निवृत्ति रूप मे संलग्न रहता है, वह उसी के महान फल का भागी होता है। भगवान नारायण प्रजा के आदि, मध्य और अन्त है, वे ही धाता, धेय, कर्ता और कार्य है। वे ही तप, तेज, यश और वाणी के स्वामी एव सरक्षक है। निष्काम भाव से समस्त कर्म करने वाले भक्तो की परमगति वे ही है। वे ही सम्पूर्ण प्राणियों के वासस्थान है, इसलिये उनका नाम वसुदेव कहा गया है। सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा जगत को प्रकाशित करते है और वे उनके केश कहलाते है। उन केशो से युक्त होने के कारण द्विज और मुनि उन्हे केशव कहते है। पृथ्वी को उन्होंने पुनः वाराह रूप धारण कर प्राप्त किया था, इसलिये उनका नाम गोविन्द पडा। वे ही कर्ता,

करण, कार्य हेतु, आज्ञा, विधि और तपस्वरूप हैं। उन भगवान को भक्त से बढकर दूसरा कोई प्रिय नही है।

'जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है, जो इद्रियो, विषयो और सम्पूर्ण भूतो मे परे है वही सब प्राणियो की अतरात्मा है, अत क्षेत्रज्ञ नाम से कहा जाता है। वही गुणातीत पुरुष कहलाता है। उसी से त्रिगुणमय अव्यक्त की उत्पत्ति हुई है, उसी को व्यक्त भाव से स्थित, अविनाशिनी, अव्यक्त, प्रकृति कहा गया है। वही सर्वसद्‌गुणसम्पन्न तथा निर्गुण कहलाता है। ज्ञान योग के द्वारा उसका साक्षात्कार होता है। जो सदा उसका स्मरण करते हैं तथा अनन्य भाव से उसकी शरण लेते हैं वे उसके परमपद को पाते हैं। पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ आत्मा से पृथक होने पर भी काष्ठ में सटे हुए लोहे के समान आत्मा के साथ जुडी हुई है परन्तु इनमे स्वतत्र कोई प्रेरणा शक्ति नही है।

'वेद ही मनुष्य के उत्तम नेत्र हैं, वेद ही उनके परम बल है, वेद ही उनके आश्रय हैं तथा वेद ही उनके सर्वोत्तम उपास्य देव हैं। तपस्या के परम फल भगवान नारायण ही हैं तथा नारायण की प्राप्ति ही सर्वोत्तम गति है। निवृत्ति और प्रवृत्ति रूप धर्म भी नारायण का ही स्वरूप है। अधिष्ठान, कर्ता, भिन्न-भिन्न प्रकार के करण, नाना प्रकार की चेष्टाएँ और पाँचवा देव—इन पाँच कारणो के रूप मे सर्वत्र श्रीहरि ही विराजमान है, और भगवान नारायण हरि ही एकमात्र ज्ञातव्य तत्व हैं। पाँचो इद्रियो का प्रेरक जो विख्यात मन है वह भी श्रीहरि ही है। वे अविनाशी पुरुष नारायण अकर्ता, कर्ता, कार्य तथा कारण भी हैं। स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूतल और जल—इन सभी स्थानो मे और सम्पूर्ण लोको मे जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म होता है, वह सब नारायण की ही सत्ता से होता है। उस सगुण-निर्गुण विश्वात्मा पुरुष को कोई भी इन चरम चक्षुओ से नही देख सकता। वे ज्ञान से ही ज्ञातव्य हैं। वे स्थूल, सूक्ष्म और कारण

तीनों शरीर से रहित होकर भी सम्पूर्ण शरीरों में निवास करते हैं पर उनके कर्मो से लिप्त नही होते। वे योगात्मा श्री-हरि क्षेत्र (शरीर) को और शुभाशुभ कर्म रूप उनके कारणों को भी जानते हैं इसलिए क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। जो परमात्मा है, वह नित्य निर्गुण है, उसी को नारायण कहते हैं और वही सर्वात्मा पुरुष कहलाता है। जो लोकतत्र या सम्पूर्ण धाम का प्रकाशक है वह परम पुरुष ही वंदनीय परम तत्व है। वही ज्ञाता और वही ज्ञातव्य है, वही भोक्ता और वही भोज्य पदार्थ है, वही स्पर्श करने वाला और वही स्पर्श के योग्य वस्तु है, वही दृष्टा और वही दृष्टव्य है। सम्पूर्ण देवता मुनि उसी का भजन करते है।

'युधिष्ठिर! इसी प्रसंग मे जप की महत्ता पर एक प्राचीन घटना का उदाहरण दिया जाता है। एक बुद्धिमान, जप मे तत्पर रहने वाला, वेदो का पारंगत विद्वान ब्राह्मण हिमालय के निकटवर्ती पहाडों पर रहता था। उसके ज्ञानपूर्वक गायत्री के जप करने से देवी सावित्री ने उसे दर्शन दिया। उस समय ब्राह्मण गायत्री मंत्रों की आवृत्ति कर रहा था, इसलिए देवी के आने पर भी चुप ही बैठा रहा। जब जाप समाप्त हो गया, तब ब्राह्मण ने उठकर देवी के चरणो मे मस्तक रख साष्टाग प्रणाम किया और बोला :

'देवि! आज मेरा अहोभाग्य है कि आपने प्रसन्न हो मुझे दर्शन दिया। यदि आप मुझ पर सतुष्ट हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि मेरा मन जप में ही लगा रहे।'

'देवि बोली—'ब्रह्मर्षि! मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगी। तुम नियमपूर्वक एकाग्रचित्त होकर जप करो। तुम्हे ब्रह्मपद की प्राप्ति हो जायेगी।' देवी के चले जाने पर ब्राह्मण नियम-पूर्वक जप करता रहा।

'उसके जप से प्रसन्न होकर धर्म ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और बोला—'मै धर्म हूँ। तुम्हें इस जप का जो फल प्राप्त हुआ है, उसे मैं तुम्हें सुनाने आया हूँ। साधो! तुमने दिव्य लोकों पर

विजय प्राप्त की है। अव तुम अपने प्राणो का परित्याग कर पुण्य लोक मे चले जाओ।'

'ब्राह्मण ने कहा—'प्रभो! मैंने इस शरीर के साथ वहुत सुख-दु:ख उठाया है अत. इसे त्यागकर स्वर्ग मे जाने का मेरा उत्साह नही है।'

'धर्म वोला—'ब्राह्मण यदि तुम शरीर छोडना नही चाहते, तो काल, मृत्यु और यम की वातो पर विचार करो।'

'यमराज, काल और मृत्यु ने कहा—'ब्राह्मण! तुम्हे शुभ आचरणो द्वारा तपस्या का उत्तम फल प्राप्त हुआ है, अत तुम्हारे लिये स्वर्ग में जाने का समय आ गया है। हम लोग आज तुम्हे यहाँ से ले जाने के लिये उपस्थित हुए हैं।'

'ब्राह्मण ने पूछा—'देव! मैं आप लोगो की क्या सेवा करूँ?'

'इसी समय राजा इक्ष्वाकु भी उस स्थान पर आ पहुँचे। राजा इक्ष्वाकु ने उन सवको प्रणाम करके कुशल समाचार पूछा। ब्राह्मण ने भी राजा का आदर-सत्कार कर कहा—'महाराज! आपकी मैं क्या सेवा करूँ?'

'राजा ने कहा—'पूज्यवर! मैं क्षत्रिय राजा हूँ और आप उत्तम आचरण करने वाले ब्राह्मण है, इसलिये आपको मैं कुछ धन देना चाहता हूँ।'

'ब्राह्मण वोला—'राजन्! ब्राह्मण दो प्रकार के होते हैं और धर्म भी दो प्रकार का माना गया है—प्रवृत्ति और निवृत्ति। मैं निवृत्ति मार्ग का आचरण करने वाला ब्राह्मण हूँ। राजन्! कर्मनिष्ठ पुरुप को जिस प्रकार प्रवृत्ति धर्म की उपलब्धि होती है वही उसे अच्छा लगता है, उसी प्रकार जो ज्ञान मे निष्ठा रखने वाले हैं, उन्हे ज्ञान के सिवा दूसरी कोई वस्तु अच्छी नही लगती। वेदो के विद्वान, जो अत्यत वुद्धिमान हैं, वे मोक्ष मार्ग को ही चाहते हैं। सत्पुरुषो ने सदा इसी मार्ग को ग्रहण किया है, अत यही अनिन्द्य एव निर्दोप है। आप उसको दान दें

जो प्रवृत्ति मार्ग में हो। जैसे आप अपने धर्म मे तत्पर रहते है उसी तरह मै भी अपने धर्म से सतुष्ट हूँ। इस समय मै अपनी तपस्या द्वारा आपका कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ ?'

'राजा ने कहा—'ब्राह्मण देव ! हम लोग तो युद्ध की ही याचना किया करते है, पर यदि आप मेरा उपकार ही करना चाहते हैं तो आप अपने जप का फल मुझे दे दे।'

'ब्राह्मण बोला—'आपको मुझसे युद्ध की ही याचना करनी चाहिये थी।'

'राजा ने कहा—'विप्रवर ! ब्राह्मणों की वाणी ही वज्र के समान होती है, और क्षत्रिय बाहुबल से जीवन-निर्वाह करते है, अतः आपके साथ मेरा वाक्युद्ध स्थापित हुआ है।'

'ब्राह्मण बोला—'राजन् ! मैने जो जप किया है उसका उत्तम फल आप ग्रहण करे।'

'राजा ने कहा—'भगवन् ! मेरी याचना की तो पूर्ति हो गयी, पर यह तो बता दीजिये कि इसका फल क्या है ?'

'ब्राह्मण ने उत्तर दिया—'राजन् ! इस जप का फल क्या मिलेगा यह तो मै भी नही जानता। पर मैने जो कुछ जप किया था, उसका सब फल आपको दे दिया है। धर्म, यम, काल और मृत्यु इस बात के साक्षी है।'

'राजा ने कहा—'देव ! यदि आप मुझे अपने जप जनित धर्म फल नही बता सकते तो यह अज्ञात फल मेरे किस काम का ? मै सदिग्ध फल नही चाहता इसलिये इसे आप ही रखिये।'

'ब्राह्मण बोला—'राजन् ! मैंने आपको अपने जप का फल दे दिया है, इसलिए आपकी बात नही स्वीकार करूँगा। मैंने जप करते समय कभी फल की कामना नही की थी, अत इस जप का क्या फल होगा वह मै नही जानता। आपने कहा था 'दीजिये' और मैने कहा था 'दूँगा,' यदि इस तरह स्पष्ट बात करने पर भी आप वचन का पालन नही करेंगे तो आपको

असत्य का महान् पाप लगेगा। मैंने बिना सोचे-विचारे ही देने की प्रतिज्ञा कर डाली, अत उसी प्रकार आप भी बिना विचारे मेरा दिया हुआ जप का फल ग्रहण करे।'

'जो झूठ बोलता है, उसको न इस लोक मे सुख मिलता है न परलोक मे। न वह पूर्वजो का उद्धार कर सकता है, न भविष्य मे होने वालो का। सत्य के समान तप, यज्ञ, वेदाध्ययन, दान और नियम भी तारने वाले नही है। सत्य ही अविनाशी ब्रह्म है, सत्य ही नित्य तप है, सत्य ही यज्ञ है और सत्य ही सनातन वेद है। सत्य को सबसे श्रेष्ठ फल माना गया है। धर्म और सयम की सिद्धि सत्य से ही होती है। सत्य ही ओकार है। सत्य की ही सत्ता से सूर्य, अग्नि का प्रभाव और प्राणियो का जीवन है। सत्य पर ही स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है और यज्ञ, तप, वेद, मत्र और सरवस्ती सत्य के ही स्वरूप है। जहाँ सत्य है, वहाँ धर्म है और सत्य के बिना कोई भी शुभ कर्म नही हो सकता। जो देने की प्रतिज्ञा करके देना नही चाहता, और जो याचना तो करता है पर लेता नही है, वे दोनो ही मिथ्यावादी हैं।'

'राजा ने कहा! 'क्षत्रियो का धर्म तो प्रजा की रक्षा और युद्ध करना है। क्षत्रियो को दाता कहा गया है, फिर मै आप से दान कैसे ले सकता हूँ?'

'ब्राह्मण ने उत्तर दिया—'दान लेने के लिये मैंने आपसे अनुरोध नही किया था और न देने के लिये मैं आपके घर ही गया था। आपने स्वय यहाँ आकर याचना की है, अब कैसे अस्वीकार कर सकते है?'

'दोनो का विवाद सुनकर धर्म बोले—'आप दोनो शान्त हो। मैं साक्षात धर्म हूँ। ब्राह्मण देवता दान के फल से युक्त हो जाये और राजा सत्य के फल से। आप दोनो समान फल के भोगी है।'

'राजा ने कहा—'हे देव! मुझे स्वर्ग की इच्छा नही है। यदि ब्राह्मण देवता स्वर्ग मे जाना चाहें तो मेरे किए हुए पुण्य

फल को ग्रहण करे।'

'ब्राह्मण ने कहा—'राजन्! मैं निवृत्ति मार्ग का पथिक हूँ, आप से कोई दान लेना नही चाहता।'

'राजा बोला—'देव! यदि आपने अपने जप का फल दे ही दिया तो ऐसा कीजिये कि हम दोनों के जो भी पुण्य फल है उन्हें एकत्र करके हम दोनों समान-समान ही साथ-साथ भोगे। हम दोनो का उन पर समान अधिकार रहे।'

'इसी समय वहाँ दो पुरुष उपस्थित हुए। एक का नाम विरूप था, दूसरा विकृत। वे बारबार एक-दूसरे से झगड़ रहे थे। विकृत कह रहा था—'मेरा तुम पर कोई ऋण नही है और विरूप बोल रहा था मै तुम्हारा ऋणी हूँ।'

'विकृत ने कहा—'हम दोनों विवाद का निर्णय महाराज से करा ले, जिससे कि हममे से कोई भी दोष का भागी और निन्दा का पात्र न हो।'

'विरूप वोला—'पृथ्वीनाथ! मै इसके गोदान के फल का ऋणी हूँ, उसे मै आज लौटाना चाहता हूँ, किन्तु यह ले नही रहा है। राजर्षि! इसने धर्म की प्राप्ति के लिए तपस्वी ब्राह्मण को एक उत्तम गाय दी थी। मैंने इसके घर जाकर इससे उसी गोदान का पुण्य फल माँगा था। इसने शुद्ध हृदय से मुझे वह दे दिया था। तदनन्तर मैने भी अपनी शुद्धि के लिए दो दूध देने वाली गाये उत्तम वृत्ति वाले ब्राह्मण को श्रद्धापूर्वक दान दे दी। प्रभो! उसी गोदान का फल मैं इसे वापस करना चाहता हूँ। इसके एक गोदान का फल लेकर मै आज इसे दूना फल लौटाना चाहता हूँ। ऐसी परिस्थिति मे आप स्वय निर्णय कीजिये कि हम दोनों मे से कौन शुद्ध है और कौन दोषी? अब आप न्याय कर इस झगड़े का निपटारा कर दे और हम लोगों को धर्म के मार्ग पर स्थापित करे।'

'राजा ने कहा—'विकृत! जब यह तुम्हे तुम्हारा दिया हुआ ऋण लौटा रहा है, तब तुम उसे स्वीकार क्यो नही

करते ? मुझे तुम्हारा व्यवहार अनुचित जान पडता है, इसलिए तुम दोषी हो।'

'विकृत बोला—'राजर्षि ! मैंने इसे दान दिया था, अब वह दान इससे वापस कैसे लूँ ? आपकी दृष्टि मे यदि यह मेरा अपराध है, तो आप मुझे सहर्ष दड भोगने की आज्ञा दे।'

'राजा ने कहा—'जब तक तुम दोनो के विवाद का निपटारा नही हो जाता तब तक दोनो यहाँ से न जाना।' फिर उन्होने ब्राह्मण ने कहा—'द्विज श्रेष्ठ ! आपका और मेरा पुण्य हम दोनो के लिए सम्मिलित हो और हम दोनो उसे साथ-साथ उपभोग करे। इस उद्देश्य से आप भी मेरा दिया हुआ दान ग्रहण करें।'

'विरूप बोला—'राजन् ! हम दोनो काम और क्रोध है। हमने ही आपको इस कार्य मे लगाया है। आपने जो साथ-साथ फल भोगने की बात कही है, इससे आपको और ब्राह्मण देवता को एक समान लोक प्राप्त होगे। आप दोनो ही श्रेष्ठ और सुफल पुरुष है।'

'ब्राह्मण ने धर्म, यम, काल और मृत्यु की पूजा की और राजा से कहा—'राजर्षि ! मेरे जप के फल से सयुक्त हो आप श्रेष्ठ गति को प्राप्त कीजिये और आपकी आज्ञा लेकर देवी सावित्री के वरदान से मैं फिर जप मे लग जाऊगा। किन्तु यदि आपका आग्रह है कि हम साथ-साथ अपने पुण्य का फल भोग करे तो वह भी मुझे स्वीकार है।'

भीष्म ने कहा—'राजन् ! उन दोनो का ऐसा निश्चय होने के कारण उन्हे समान सद्गति मिली।'

## जाजली और तुलाधार

भीष्म बोले—'राजन् ! धर्म के विषय मे मैं तुम्हे एक और इतिहास सुनाता हूँ।

'प्राचीन काल मे जाजली नाम के एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। उन महातपस्वी जाजली ने कठिन तपस्या की। यद्यपि वे जल, गर्मी और सर्दी मे खड़े रहते थे, इससे उन्हे कष्ट का अनुभव तो होता था किन्तु उन्हे वास्तविक धर्म का ज्ञान नही हुआ। तपस्या की समाप्ति होने पर उन्हे दभ हो गया कि इस जगत में मेरे जैसा कोई मनुष्य नही है जिसमे जल, थल और नभ में विचरने की शक्ति हो।

'वर्षा ऋतु में भी वे आकाश के नीचे ही खड़े रहते थे, अतः उनके सिर के बाल बराबर भीगे रहने के कारण वे जटा के रूप में परिणत हो गये। महातपस्वी जाजली निराहार रहते और चेष्टा-शून्य होने के कारण सूखे पेड़ के समान जान पडते थे। राजन्! एक समय उनके सिर पर गौरैया पक्षी के एक जोडे ने अपने रहने के लिए घोंसला बना लिया। वे बड़े दयालु थे, इसलिए उन्हाने उन पक्षियों को अपनी जटाओं से हटाने या उड़ाने की कोई चेष्टा नही की। अतः वे पक्षी उस घोंसले में सुख से रहने लगे और समय आने पर अडे दिये। अडों से कुछ समय बाद बच्चे बाहर निकल आये और उड़ गये। तदनन्तर जाजली मुनि वहाँ से अन्यत्र चले गये। अपने मस्तक पर चिड़ियों के रहने की घटना को याद कर वे अपने को महान धर्मात्मा समझने लगे।

'किसी महामुनि ने उनसे कहा—'तुम्हें ऐसा अभिमान नहीं करना चाहिए। द्विज श्रेष्ठ! काशी मे महायशस्वी तुलाधार वणिक धर्म का पालन करते है, किन्तु वे भी ऐसा नही कहते।' उस महामुनि की बात सुनकर जाजली मुनि काशी नगर मे तुलाधार के पास पहुँचे। उन्होने तुलाधार को सौदा बेचते देखा। विविध पदार्थों के क्रय-विक्रय से वे जीवन-निर्वाह करते थे। ब्राह्मण को आते देखकर वे खडे हो गये और बड़े हर्ष से उन्होने ब्रह्मर्षि का स्वागत-सत्कार किया।

'तुलाधार बोला—'आप मेरे पास आ रहे है इसे मैं पहले

से ही जानता हूँ। आपने कठिन तपस्या की है और पक्षियो के पालन धर्म को वहुत निभाया है।'

'जाजली ने कहा—'वैश्य पुत्र ! तुम तो सव प्रकार के रस, गध, वनस्पति, औषधि, मूल और फल आदि वेचते हो, अत. तुम्हे यह धर्म मे निष्ठा रखने वाली वुद्धि कैसे प्राप्त हुई ? तुम्हे यह ज्ञान कैसे सुलभ हुआ ?'

'तुलाधार ने कहा—'जाजले ! समस्त प्राणियो का हित करना और सवके प्रति मैत्री भाव रखना ही उत्तम धर्म है। मैं उसी भावना से जीवन-निर्वाह करता हूँ। मैंने घास-फूस से यह घर तैयार किया है। मैं विविध वस्तुओ को दूसरो से खरीदकर वेचता हूँ और पूरा तौलता हूँ। मैं किसी से न अनुरोध करता हूँ न विरोध, न किसी से मेरा द्वेष है और न अनुराग। यही मेरा व्रत और नियम है। मैं आकाश की भाँति असग रहकर न तो दूसरे के कार्यो की प्रशसा करता हूँ न निदा ही। मैं सवके प्रति समता रखता हूँ इसलिये मिट्टी और स्वर्ण को समान समझता हूँ। मैं मन और इद्रियो के सयम द्वारा विषयो को देखकर भी नही देखता, केवल साक्षी रूप से रहता हूँ। जैसे वृद्ध, रोगी और दुर्वल मनुष्य विषय भोगो की स्पृहा नही रखते, उसी प्रकार मेरे मन से भी धन और विषय भोग की इच्छा दूर हो गयी है। जव मनुष्य समस्त प्राणियो के प्रति मन, वाणी और क्रिया द्वारा भी वुरे भाव नही रखता, तव वह मनुष्य ब्रह्म भाव को प्राप्त हो जाता है। मैं शास्त्रों और महात्माओ के वताये हुए मार्ग का अनुसरण करता हूँ। जैसे नदी की धारा मे वहता हुआ काठ अकस्मात किसी दूसरे काठ से जुड़ जाता है एव पृथक हो जाता है, इसी प्रकार ससार मे प्राणियो के भी परस्पर सयोग-वियोग होते रहते हैं। जो अभयदान का आचरण करता है वह सहायता देने वाला धनी, सौभाग्यशाली तथा श्रेष्ठ समझा जाता है। जो जप, तप, दान और ज्ञान द्वारा सम्पूर्ण भूतो को अपने से अभिन्न देखता है, वह ब्रह्म रूप हो जाता है। जो

स्वर्गादि की कामना से धर्म कार्य करते है वे स्वर्ग फलो को पाते है, किन्तु वे पुण्य क्षीण होने के पश्चात स्वर्ग से च्युत हो जाते है. इसलिये विज्ञ मनुष्य सकाम कर्मों की निदा करते है। धर्म का स्वरूप सूक्ष्म होने के कारण सबकी समझ मे नही आता, इसलिये सत्पुरुषों का आचरण देखने से धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

'जाजले! धर्म निष्प्रयोजन या निष्फल नही है। स्वर्ग और ब्रह्म की प्राप्ति के लिये ही धर्म की व्यवस्था की गई है। इस कार्य का हेतु या परिणाम क्या है, इस पर विचार करके ही धर्म को स्वीकार करना चाहिये। लोगो ने किया है, या कर रहे है यह जानकर उनका अधानुकरण नही करना चाहिये। शुभ कर्मो के द्वारा देवता सतुष्ट होते है। शास्त्रो का कथन है कि नमस्कार, स्वाध्याय, घृत और अन्न से भी देवताओं की पूजा की जाती है। जिस प्रकार आकाश से निर्मल जल की वर्षा होती है, उसी प्रकार शुद्ध भाव से किये हुए यज्ञ से धर्म की प्राप्ति होती है। जैसे जगत की भलाई के लिये ही शुभ सकल्पों से वृक्षो और लताओं मे फल-फूल लगते है, वैसे ही यज्ञ से फल की कामना न करने पर भी शुभ फल की प्राप्ति होती ही है, जो करने योग्य कर्मो को करना अपना कर्तव्य समझता है, उनका पालन न होने से भय मानता है और कर्तापन का अभिमान नही रखता, वह साधु पुरुष कहलाता है। निष्काम भाव से किये जाने वाले कर्म श्रेष्ठतम माने जाते है,अत:कर्मो के फल की भावना या कामना पर सयम-नियत्रण रखना आवश्यक है। सत्यभाषण, इद्रिय सयम और ईर्ष्या द्वेष से रहित नियमों का पालन करना यज्ञ ही है। ब्रह्म सर्व स्वरूप है, सम्पूर्ण देवता उसी के रूप है। वह ब्रह्म प्राणी मात्र में विराजमान है, इसलिये इनके तृप्त होने पर सम्पूर्ण देवता तृप्त हो जाते है। बहुत से मनुष्य ऐसे है, जिनका धर्म ही आधार है। वे धर्म को ही सुख मानते है और कर्तव्य कर्म दृढतापूर्वक करते है। वे स्तुति, निदा

और शोक से दूर रहते है और श्रद्धालु चित्त वाले है, अत. उनमें सर्वव्यापक परमात्मा सर्वात्मा रूप से विराजमान है। ज्ञानियो ने प्रजाहित की कामना से ही मानसिक यज्ञ का अनुष्ठान किया है। श्रेष्ठ मनुष्य स्वधर्म का पालन करते हुए भी अज्ञो को स्वर्ग मे पहुँचा देते है। जाजले! आत्मा ही प्रधान तीर्थ है, इसलिये तीर्थ सेवन के लिये देश-देश मे भटकने की आवश्यकता नही है। श्रद्धा सूर्य की पुत्री है। उसे विशुद्ध ज्ञानदायिनी, सावित्री, प्रसवित्री भी कहते हैं। श्रद्धा, मन और वाणी के दोषो को दूर कर मनुष्य के शुद्ध कर्मों की रक्षा करती है, इससे श्रद्धालु मनुष्य के पाप का क्षय हो जाता है। श्रद्धालु मनुष्य साक्षात धर्म का स्वरूप है। जो श्रद्धापूर्वक अपने धर्म मे स्थित रहता है, वही श्रेष्ठ मनुष्य माना गया है।

'घट के निर्माण काल मे जिस बुद्धि का उपयोग किया जाता है वह घट के निर्मित होने पर आवश्यक नही रहती। इसी प्रकार चित्त शुद्धि का लक्ष्य पूरा हो जाने पर नाना प्रकार के कर्मों की आवश्यकता नही रहती। काम, क्रोध, भय, निद्रा का परित्याग और वाणी का सयम करना चाहिये। ध्यान, स्वाध्याय, दान, सत्य, लज्जा, सरलता, क्षमा, वाहर-भीतर की पवित्रता, शुद्ध आहार और इद्रियो का सयम ये ही योग के साधन हैं। जो साधक विशुद्ध मन से कर्म-गति का अनुसधान करता है वह उसे अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। तदनन्तर ब्रह्म पद को प्राप्त कर वह उसी मे प्रतिष्ठित हो जाता है।

'जिसका चित्त योगयुक्त नही है उसे समत्व बुद्धि नही प्राप्त होती। योग के विना कोई सुख नही पाता। दु.खो से सम्वन्ध का त्याग और धैर्य ये दोनो ही सुख के कारण हैं। जव मनुष्य पुण्यात्माओ के संसर्ग मे रहते हैं तव उन्हे निर्मल बुद्धि प्राप्त होती है और पापियो के सग से पाप के भागी होते है। जैसे जल, अग्नि और चन्द्रमा की किरणो के ससर्ग से मनुष्य क्रमशः शीत, उष्ण और सुखदायी स्पर्श का अनुभव करता है,

उसी प्रकार वह पुण्यात्मा और पापियों के संग से पुण्य और पाप दोनों का स्पर्श प्रत्यक्ष अनुभव करता है। मनुष्य पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार भोजन, वस्त्र तथा अपने माता-पिता के द्वारा संचय किया हुआ धन प्राप्त करता है। ससार में जो मिलता है वह पूर्वकृत कर्मों के फल के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जिसने षट दोषो पर विजय प्राप्त कर ली है, जो जगत को सारहीन समझता है, वह सत्य-सम्पन्न मनुष्य सदा ही मुक्त है। वेदो में सत्यंवद, धर्मंचर, यजेत, जुहुयात इत्यादि वाक्यों द्वारा मनुष्य का कर्तव्य विधान किया गया है। वही धर्म का लक्षण है। जैसे विना बीज के कोई अकुर पैदा नही होता, उसी प्रकार पुण्य कर्म के बिना कोई सुखी, समृद्धिशाली नही हो सकता। इद्रियरूप घोडों से युक्त सूक्ष्म शरीर एक रथ है, ज्ञानकार बृत्तियाँ ही इस रथ के घोड़ों की बागडोर है। इन उपकरणो से युक्त रथ पर आरूढ हो जो मनुष्य यात्रा करता है वह बुद्धिमान है। जो मनुष्य इद्रियों की वाह्यवृत्तियो से रहित हो मन से ईश्वर की उपासना करता है वह श्रेष्ठ समझा जाता है। जो मनुष्य स्वयं जान-बूझकर पाप करने के पश्चात उसके प्रायश्चित के उद्देश्य से शुभ कर्म का अनुष्ठान करता है वह शुभ और अशुभ दोनों का पृथक-पृथक फल भोगता है। जैसे कच्चे घडे में रखा हुआ जल नष्ट हो जाता है परन्तु पकाये हुए घड़े में ज्यो का त्यों बना रहता है उसी प्रकार विशुद्ध अन्तःकरण मे शुभ कर्म निश्चल रहते है। धनधान्य के दान से धर्म के उद्देश्य को यत्नपूर्वक बचाये रखना चाहिये। जो अपनी शक्ति के अनुसार अतिथियों को जल या अन्न पवित्र भाव से अर्पण करता है, वह उत्तम फल पाता है। महात्मा राजा रन्ति देव अन्न-जल को पवित्र भाव से अर्पण करने के कारण परम सिद्धि को प्राप्त हुए। प्रत्येक मनुष्य देवता, पितर, अतिथि और कुटुम्बियों का ऋण लेकर जन्म लेता है, अतः उसे ऋण से मुक्त होने का यत्न करना चाहिये। धर्म का पालन करते हुए ही जो धन

प्राप्त होता है वही सच्चा धन है। जैसे सूर्य का सामीप्य प्राप्त होने से प्रत्येक वस्तु चमक उठती है, उसी प्रकार साधु पुरुषो के सतसग से नीच मनुष्य भी सद्‌गुणो से सुशोभित होने लगता है। श्वेत वस्त्र को जिस रग मे रगा जाये वह वैसा ही रूप धारण कर लेता है, इसी प्रकार मनुष्य जैसा सग करता है वैसा ही रग उसके ऊपर चढ जाता है।

'मनुष्य का सबसे वडा शत्रु अज्ञान है, जिससे आवृत्त और प्रेरित हो वह क्रूरतापूर्ण कर्म करने लगता है। आसक्ति का अभाव ही श्रेय का मूल कारण है और ज्ञान ही सबसे उत्तम गति है। किया हुआ तप और सुपात्र को दिया हुआ दान कभी नष्ट नही होते। जैसे तिल का तेल भिन्न-भिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पो से वासित हो अत्यन्त मनोहर गध ग्रहण करता है, वैसे ही शुद्ध चित्त मनुष्य का स्वभाव सत्पुरुपो के सग से सत्व गुण सपन्न हो जाता है। मनुष्य के लिये धर्म करने का कोई विशेप समय निश्चित नही है, क्योकि मृत्यु किसी की प्रतीक्षा नही करती। इसलिये उसे नित्य निरतर धर्म का आचरण करते रहना श्रेयष्कर है।

'सत्व गुण के लक्षण ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, स्वाभिमान, तप, सत्य, क्षमा, धैर्य, स्वच्छता, आत्मा का बोध है। रजोगुण के लक्षण असतोष, पश्चाताप, शोक, लोभ, अक्षमा, दमन करने की प्रवृत्ति, काम, क्रोध और ईर्ष्या है। तमोगुण के लक्षण अविवेक, मोह, प्रमाद, निद्रा, अभिमान, विपादऔर प्रीति का अभाव है।

'योगियो का ध्यान योग प्रधान कर्तव्य है। ध्यान दो प्रकार का होता है—एक तो मन की एकाग्रता, दूसरा प्राणायाम। प्राणायाम के भी दो भेद हैं—सगुण और निर्गुण। दोनो तरह की पूजा प्रभु-प्राप्ति के द्वार है।

' योगियो को चाहिये कि मन के द्वारा इद्रियो को विषयो से हटाए और अविचल हो जाए। जिसका मन सदा ध्यान मे सलग्न रहता है, ऐसे योगी के लिये यह व्रत है। ध्याननिष्ठ

योगी को अपने हृदय में भी परमात्मा का दर्शन होता है, जैसे सूर्य का आकाश मे।

'वेदो मे वर्णित प्रकृति, अव्यक्त, त्रिगुणमयी, जड़ और रचनात्मक है और पुरुष को ब्रह्म, पुरुषोत्तम, परमेश्वर, परमात्मा नाम से कहा गया है। उन दोनो के और भी नाम है।

'प्रकृति—विश्वा, अम्बा, वरुण, ज्ञान, अज्ञ, तप, सूर्य, अविद्या, अवेद्य, चला, क्षय।

'पुरुष—अविश्व, अश्व, मित्र, श्रेय, ज्ञाता, क, अतपा, अनिसूर्य, विद्या, वेद्य, निश्चल, अक्षय।

'क्रूर स्वभाव का परित्याग सबसे बड़ा धर्म, क्षमा सबसे बडा बल है। आत्मा का ज्ञान सबसे उत्कृष्ट ज्ञान और सत्य से बढकर कुछ है ही नही। जिससे प्राणियो का अत्यन्त हित होता हो वही सत्य है। जो सकल्पो को छोड चुका है, जो किसी वस्तु का सग्रह नही करता और जिसने सब कुछ त्याग दिया है वही विद्वान है। जो अनासक्त भाव से विषयो का अनुभव करता है, जिसका चित्त शान्त, निर्विकार और एकाग्र है, वह मुक्त है। वैराग्य मुक्ति का प्रधान कारण है और ज्ञान से ही वैराग्य प्राप्त होता है।

'परम पुरुष ने मनुष्य को उन्नति के पथ पर ले जाने वाली यह धर्म की मर्यादा स्थापित की है। देवताओं-पितरो की पूजा करनी चाहिये, यह उसी की आज्ञा है। ब्रह्मा, रुद्र, मनु, दक्ष, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, वसिष्ठ, परमेष्ठी, सूर्य, चन्द्रमा, कन्दर्प, क्रोध और विक्रित ये २१ प्रजापति उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए है तथा उसी परमात्मा की सनातन धर्म की मर्यादा का पालन एव पूजन करते है। इसके उद्देश्य से किये जाने वाले कार्यों से अभीष्ट वस्तुओ की प्राप्ति होती है।'

'इस प्रकार तुलाधार ने मुनि जाजली को नाना प्रकार के विषयो से युक्त बहुजन सम्मत अर्थ-बोधक उत्तम उपदेश दिये।'

# लक्ष्मी के निवास-स्थान

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! लक्ष्मी किन सत्पुरुषो के यहाँ निवास करती है ?''

भीष्म ने उत्तर दिया—'इस विषय पर मैं तुम्हे इन्द्र तथा लक्ष्मी का सवाद सुनाता हूँ।

'इन्द्र ने लक्ष्मी से पूछा—'पवित्र देवी ! तुम कौन हो ? और दैत्यराज वलि को त्यागकर कहाँ जा रही हो ?'

'लक्ष्मी वोली—'देव ! मुझे न तो विरोचन जानता है और न उसका पुत्र वलि ही। मुझे भूति, लक्ष्मी और श्री कहते हैं। देवताओ को भी मेरे विपय मे यथार्थ ज्ञान नही है। धाता या विधाता भी मुझे किसी कार्य मे नियुक्त नही कर सकते, किन्तु काल का आदेश मुझे मानना पडता है। काल इस समय वलि का परित्याग करने के लिये मुझे प्रेरित कर रहा है। मैं सत्य, दान, व्रत, तपस्या और धर्म म निवास करती हूँ। राजा वलि इन सवसे विमुक्त हो चुके है। पहले ये व्राह्मणो के हितैषी, सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे, किन्तु अव व्राह्मणो के प्रति इनकी दोष दृष्टि हो गयी है। पहले ये यज्ञ किया करते थे, किन्तु अव मोहित चित्त होकर अपना ही य[illegible]न कराने लगे हैं।

'जो धैर्य से विचलित नही होते और स्वर्ग प्राप्ति के साधनो मे सानन्द लगे रहते हैं, जो अध्ययन, यज्ञ-योग मे सलग्न रहते हैं, जो देवता, गुरु, पितर और अतिथियो की पूजा करते हैं. जो जितेन्द्रय, व्राह्मण भक्त, सत्यवादी हैं, जो श्रद्धालु, धीर, क्रोध को जीत चुके है, जो ईर्ष्या रहित और दूसरो के गुणो में दोप दृष्टि नही रखते, जो स्त्री, पुत्र, वधु-वाधवो और मित्रों का भरण-पोपण करते हैं, जो अमर्षवश कभी एक-दूसरे के प्रति लाग-डाँट नही रखते, जो दूसरो पर दया तथा अनुग्रह करते हैं और आचार-विचार से रहते हैं, जो सरल स्वभाव, दृढतापूर्वक भक्ति रखने वाले है, जो कृतज्ञ और मधुरभाषी हैं,

जो लज्जाशील हैं और व्रत नियमों का पालन करते है, जो पर्वो पर विशेष रूप से स्नान करते है, जो धर्म की चर्चा करते है और परिग्रह से दूर रहते है, जो अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, रोगी, स्त्री, त्रस्त, विषादग्रस्त और जिसका सर्वस्व लुट गया है, उसको सहायता देते है, जो परायी स्त्री से ससर्ग नही रखते और सब प्राणियों को अपने ही समान समझते है, जिनमे निद्रा, तन्द्रा, अप्रसन्नता, अविवेक, अप्रीति, विषाद और कामना आदि दोष नही होते, इस प्रकार के उत्तम गुण वालों के पास मैं रहती हूँ।

'जो बडे-बूढ़े, विद्वानों की बात पर व्यर्थ दोष निकालते है, जो नवयुवक वड़े-वूढ़े आने पर उठते नही और न प्रणाम या आदर-सत्कार करते है, जो वाप के रहते बेटा मालिक बन बैठता है, जो निंदित कर्मोंद्वारा धन उपार्जन करते है, जहाँ पिता-पुत्र और पति-पत्नी परस्पर अत्याचार करते है, जो भोजन, घृत और दूध को झूठे हाथ से छूते हैं, जो पशुओं को घर मे बाँध देते हैं और चारा-पानी से उनकी सेवा नही करते, जिसके घर मे दिन-रात कलह मचा रहता है, जहाँ वर्ण-शकर सतान होती है, जो दूसरे का धन हड़प लेते है, जहाँ माता-पिता बेटो से अन्न की भीख माँगते है और कष्ट से जीवन बिताते है, जो कृतघ्न, नास्तिक, पापाचारी, अभक्ष्य वस्तु खाने वाले और मनमाने आचरण करने वाले है, जो सूर्योदय के बाद दिन में और सूर्यास्त के पहले सोते है, जो गुरुजनों और बडे-बूढो की सेवा नही करते हे उनके यहाँ मेरा निवास नही है। जो आलस्य, अप्रसन्नता, कामना और षट दोषो से युक्त हैं उनके यहाँ मैं नही रहती हूँ। जो क्रोध, लोभ, शत्रुता, अभिमान, दीर्घसूत्री शठता से युक्त है, इस प्रकार नीच गुणवालो के पास में नही रहती हूँ।

'अब मैं तुममें निवास करूँगी। तुम उपरोक्त गुणों से युक्त रहना, नही तो तुम्हें मैं त्याग दूँगी। मैंने हजारो-लाखो व्यक्ति त्यागे हैं, क्योंकि उनके ऊपर दोषों का आवरण छा गया था

और वे धर्म से च्युत हो गये थे। मेरा एक पैर पृथ्वी पर, दूसरा जल मे, तीसरा अग्नि मे और चौथा ब्राह्मण भक्त, सत्यवादी श्रेष्ठ पुरुष के घर मे रहना है। मुझे तीनो लोको मे समस्त चराचर प्राणी प्राप्त करने की इच्छा मे उत्साहपूर्वक प्रयत्न करते रहते है। मुझे पद्मा, पद्ममालिनी, मेधा, स्थिति, सिद्धि, कान्ति, समृद्धि, स्वाहा, स्वधा, सस्तुति, नियति और स्मृति भी कहते है। युद्ध मे विजय पाने वाले पुण्यात्मा राजाओ की सेना के अग्र भाग मे ध्वजाओ पर उनके राज्य और नगरी मे धर्माचरण करने वाले श्रेष्ठ और दानशील पुरुष के निवास स्थान मे मै सदा रहती हूँ। जो विनयी, दयावान, धैर्यवान और शुद्ध कर्मो का आचरण करते है, जो कर्मपरायण, क्रोध-रहित, कृतज्ञ, दैव आराधना मे तत्पर तथा सत्वगुणो से युक्त, क्षमाशील, जितेन्द्रिय है, उनके यहाँ मैं निवास करती हूँ। आशा, श्रद्धा, धृति, शान्ति, विजित, सन्नति, क्षमा और वृत्ति ये आठ देवियाँ मेरे साथ सदा रहती है।'

## गौतम

भीष्म ने कहा—'राजन्! प्रत्येक काम को सोच-विचार कर करना चाहिए। इस सम्बन्ध मे मैं तुम्हे एक आख्यान सुनाता हूँ।

'महर्षि गौतम के एक महाज्ञानी पुत्र था, जिसका नाम चिरकारी था। वह कर्तव्य विषयो को भलीभाँति विचार कर सारे कार्य विलम्ब से किया करता था। वह चिरकाल तक सोता, जागता और विलम्ब से कार्य पूर्ण करता था, इसलिए लोग उसे आलसी समझकर चिरकारी कहते थे। एक दिन गौतम ने अपनी स्त्री के अपराध करने पर कुपित हो विना विचारे ही चिरकारी को आज्ञा दी—बेटा! तू अपनी माँ को मार डाल।

'इतना कह ब्रह्मर्षि गौतम वन में चले गये। पिता की यह आज्ञा पाकर चिरकारी धर्म सकट में पड गया। अपने स्वभाव के अनुसार देर तक सोचकर वह इस निर्णय पर पहुँचा कि पिता की आज्ञा का पालन भी हो जाय और माता का वध भी न हो। पिता की आज्ञा का पालन करना परम धर्म है और माता की रक्षा करना भी पुत्र का प्रधान धर्म है। माता का वध करके कौन पुत्र सुखी रह सकता है और पिता की आज्ञा की अवहेलना करके कौन प्रतिष्ठा पा सकता है ? माता, पिता दोनो ने ही मुझे जन्म दिया है अत मैं दोनो को ही अपनी उत्पत्ति का कारण मानता हूँ। अत. क्या करूँ जिससे मै अधर्म से बच जाऊँ। पिता अपने शील, सदाचार, कुल और गोत्र की रक्षा के लिए पुत्र की कामना करते है। पिता भरण-पोषण करने तथा शिक्षा देने के कारण पुत्र का प्रधान गुरु है इसलिए वह परम धर्म का साक्षात स्वरूप है। वेदो मे भी उसी को धर्म निश्चित किया गया है। पुत्र पिता का सम्पूर्ण प्रतिरूप है और पिता पुत्र का सर्वस्व है, इसलिए पिता के आदेश का पालन करना चाहिए। जो पिता की आज्ञा का पालन करते है उनके पाप नष्ट हो जाते है। पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सबसे बडी तपस्या है। पिता के प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न होते है। यदि पिना पुत्र से कभी कठोर वचन भी कह दे तो वे आशीर्वाद बन जाते है और यदि पिता पुत्र का अभिनन्दन करे तो पुत्र के पापो का प्रायश्चित हो जाता है। फूल डठल से, फल वृक्ष से अलग हो जाते है किन्तु पुत्र को पिता से कभी अलग नही होना चाहिए।

'फिर उसने विचार किया कि माता से यह पाँच भौतिक मनुष्य शरीर मुझे मिला है। इसके उत्पन्न करने मे माता ही मुख्य हेतु है। ससार के समस्त आर्त प्राणियो को सुख और सात्वना देने वाली माता ही है। जब तक माता जीवित रहती है तब तक पुत्र अपने को सनाथ समझता है और उसके न रहने

पर अनाथ हो जाता है और उसके लिए ससार सूना प्रतीत होने लगता है। पुत्र निर्धन होने पर भी माता उसे माता-अन्नपूर्णा का-सा व्यवहार देती है। पुत्र असमर्थ हो या समर्थ, दुर्बल हो या हृष्ट-पुष्ट, माता उसका पालन करती है। माता बच्चे को गर्भाशय मे धारण करने के कारण धात्री, जन्म देने के कारण जननी, पालन-पोषण करने के कारण अम्बा और वीर सतान की माँ होने के कारण वीरसू कही गयी है। माता ही बालक का निकटतम शरीर है अत कोई भी सचेतन मनुष्य अपनी माता की हत्या नही कर सकता। यदि कोई निर्बल एव निस्सहाय परायी स्त्री पर बलात्कार करे, तब स्त्री को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। स्त्री के लिए पति ही परम आदरणीय है। वही उसका सबसे बडा देवता माना गया है। उपरोक्त बातो का विचार कर वह इस निर्णय पर पहुंचा कि माता का गौरव पिता से भी बढकर है।

'विलम्ब करने का स्वभाव होने के कारण चिरकारी बहुत समय तक इस प्रकार सोचता-विचारता रहा। इतने मे उसके पिता वन से लौट आये। महाज्ञानी तपोनिष्ठ गौतम अपनी पत्नी के अनुचित वध पर विचार कर सतप्त हो रहे थे। वे दु.ख से आँसू बहाते हुए वेदाध्ययन और धैर्य के प्रभाव से अपने को सभाल कर इस प्रकार पश्चाताप कर रहे थे। अहो ! त्रिभुवन का स्वामी इद्र ब्राह्मण का रूप धारण कर मेरे आश्रम पर आया था। मैंने उसका स्वागत, अतिथि सत्कार किया और स्वय ही उसकी विधिवत पूजा की, परन्तु इद्र की विषय-लोलुपता के कारण दु खद घटना घटित हो गयी। उसमे मेरी स्त्री का कोई अपराध नही है। जिसे मैंने पत्नी कहकर अपने घर मे आश्रय दिया था, जो एक सती-साध्वी नारी थी, मैंने उसका वध करवा डाला। अब इस पाप से मेरा कैसे उद्धार होगा ? मैंने उदारबुद्धि चिरकारी को उसकी माता के वध के लिये आज्ञा दी थी। यदि उसने इस कार्य में भी विलम्ब कर अपने

नाम को सार्थक किया है, तो वही मुझे स्त्री हत्या के पाप से बचा सकता है।

'गौतम ने कहा—'बेटा चिरकारी! तेरा कल्याण हो। यदि आज भी तूने विलम्ब से कार्य करने के अपने स्वभाव का अनुसरण किया है तो नाम सफल है।' राजन्! इस प्रकार विचार करते हुए दु:खी महर्षि गौतम ने घर में प्रवेश किया। पिता को देखकर चिरकारी ने हथियार फेंक दिया और पृथ्वी पर गिर-कर साष्टाग प्रणाम किया। चिरकारी की माता लज्जा के मारे निश्चेष्ट खड़ी थी। यह देखकर उन्हे बड़ी प्रसन्नता हुई।

'उन्होने कहा—'बेटा चिरकारी! तू चिरकाल तक चिर जीवी बना रहे।' माता ने भी उसे अनेक आशीर्वाद दिये।

'चिरकाल तक सोच-विचार कर मित्रता जोड़नी चाहिये और जिसे मित्र बना लिया है उसे सहसा नहीं छोड़ना चाहिये। राग, दर्प, अभिमान, द्रोह, पापाचरण और किसी का अप्रिय करने में जो विलम्ब करता है उसकी प्रशसा की जाती है। अनु-मान से किये हुए अपराधो के विषय में पूर्ण सोच-विचार कर जो निर्णय करते है उनकी भी प्रशसा की जाती है।'

## नर-नारायण

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह! आप नर-नारायण के विषय में मुझे ज्ञान दे।'

भीष्म बोले—'परमेश्वर सम्पूर्ण जगत के आत्मा और सनातन देवता है। वे ही एक समय धर्म के पुत्र-रूप में प्रकट हुए थे। उनके नाम नर, नारायण, हरि और कृष्ण है। उनमें से अविनाशी नारायण और नर बद्रिकाश्रम में घोर तपस्या करने लगे। एक समय नारदजी घूमते घामते बद्रिकाश्रम आ पहुँचे। वे सोचने लगे कि भगवान नर और नारायण तपस्या मे स्थित हैं। ये दोनों धर्मस्वरूप, यशस्वी, बुद्धिमान तथा सम्पूर्ण

प्राणियो के पिता है। भला ये किस देवता का भजन कर रहे हैं, ऐसा सोचकर भगवान नारायण के प्रति भक्ति से प्रेरित हो वे उनके समीप गये। भगवान नर-नारायण ने नारदजी का विधि से पूजन किया।

'तदनन्तर प्रसन्न चित्त से नारदजी ने भगवान नारायण को नमस्कार किया और कहा—'भगवन्! आप अजन्मा, सनातन, सबके माता-पिता और पुरुषोत्तम हैं। हे देव! आप मे ही यह सम्पूर्ण जगत प्रतिष्ठित है। चारो आश्रमो के लोग आपकी ही प्रतिदिन पूजा करते है फिर आप किस देवता की पूजा कर रहे है?'

'भगवान बोले—'नारदजी! जो सूक्ष्म, अज्ञेय, अव्यक्त, अचल और ध्रुव है, जो इन्द्रियो, विषयो और सम्पूर्ण भूतो से परे है, वही सब प्राणियो का अतरात्मा है, वही क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, वही त्रिगुणातीत अविनाशी तथा पुरुष कहलाता है। उसीसे क्षेत्र त्रिगुणमय अव्यक्त प्रकृति की उत्पत्ति हुई है। वह ब्रह्म सम्पूर्ण प्राणियो के भीतर अतर्यामी रूप से स्थित रहता है पर सर्व-साधारण मनुष्य को दिखाई नही देता। वही सम्पूर्ण ज्ञान का ज्ञेय है। वह ब्रह्म दृश्य और अदृश्य सभी वस्तुओ मे व्याप्त है।

'ब्रह्म का सगुण रूप प्राणायाम द्वारा मन को निर्गुण मे स्थिर करने मे सहायक है। इसलिये प्राणायाम द्वारा मन को परमात्मा मे लगाना चाहिये। जगत का शासन करने वाला एक ही परमात्मा है दूसरा नही। जैसे जल निम्न स्थान की ओर ही प्रवाहित होता है उसी प्रकार उस शासक से प्रेरित हो प्राणी अपने कर्मों का वहन करता है।

'यह जगत काल रूपी नद है जिसमे वर्ष रूपी भवरे और महीने तरगें हैं। दिन-रात जल का प्रवाह है। षट दोष भयकर ग्राह हैं। यज्ञ-तप नौका है। सत्य भाषण और मोक्ष दोनो किनारे हैं। इसके प्रवाह मे पड़े हुए प्राणी यमलोक की ओर चले जा रहे है। धार्मिक मनुष्य ही प्रज्ञा रूप पतवार द्वारा इसे पार करते

हैं। कामनाओ से आसक्त, दोषो से परिपूर्ण, चचल चित्त वाले अज्ञानी सदेह मे रहने के कारण, काल नद को पार नही कर पाते। ध्यान, स्वाध्याय, दान, सत्य, सरलता, क्षमा और इद्रियो के निग्रह से तेज की वृद्धि होती है और पापो का नाश हो जाता है। इसलिए बुद्धिमान और श्रेष्ठ मनुष्य को सुकर्मो द्वारा नद या भवसागर पार होने का नित्य प्रयत्न करना चाहिये। प्रकृति ही गुणो की सृष्टि करती है। क्षेत्रज्ञ आत्मा तो उदासीन की भाँति उनको देखा करता है। वह स्वाधीन एव उनका अधिष्ठाता है। समस्त देवता, योगी और ज्ञानी उसी अनन्त अच्युत परमात्मा की उपासना करते है। कुछ विद्वान कहते हैं कि पुरुषार्थ, दैव और स्वभाव तीनो मिलकर ही कार्य साधक होते है और कर्म और उसके फल की प्राप्ति के हेतु भी ये तीनों ही है। परन्तु तप ही मनुष्य के कल्याण का मुख्य साधन है। तप का मूल है शम और दम। तप के प्रभाव से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

'जिसका पाप दान, अध्ययन, श्रद्धा, व्रत, सत्य, शौच और इद्रियनिग्रह से धुल गया है वह मन का दमन करके योग का अभ्यास करे। वह पवित्र एव एकान्त स्थान मे आसन पर बैठ जाय और मन मे किसी प्रकार की व्यग्रता न आने दे। अपनी नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि रखकर सम्पूर्ण दिशाओं की ओर दृष्टिपात न करे और ध्यानमग्न हो जाय। मन को दृढतापूर्वक स्थापित करना योग की सिद्धि का सूचक है, अतः सम्पूर्ण प्रयत्नों से मन को सदा स्थिर रखना चाहिये। फिर मन को सकल्पों से हटाकर आत्मा में स्थापित करे। जब मन सहित इद्रियाँ आत्मा में स्थिर हो जाती है तव प्राण और अपान वायु एक ही साथ वश मे हो जाते है और योग सिद्धि अटल हो जाती है। तत्पश्चात् प्राण को भली-भाँति रोककर परमात्मा का चिंतन करे। ऐसे योगाभ्यास परायण योगी का मन शीघ्र ही प्रसन्न हो जाता है। उसे परमात्म-तत्व का प्रकाश दिखाई

देता है और उसका साक्षात्कार हो जाता है, अत. उससे विरत होना नही चाहता। जैसे बादल की बूंदे पर्वत को चचल नही कर सकती, उसी प्रकार अनेक प्रकार के विक्षेप भी योगी को विचलित नही कर सकते। जो कोई उस परमात्मा को प्रणाम करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है। वही समस्त पदार्थों की उत्पत्ति का कारण सर्वसद्‌गुण सम्पन्न होकर भी निर्गुण कहलाता है। ज्ञान योग के द्वारा या जो सदा उसको भक्ति और प्रेमभाव से स्मरण करते हैं और अनन्य भाव से उसकी शरण लेते है वे उसके परमपद को प्राप्त हो जाते है। इसलिए सव प्राणियो को उसकी ही उपासना करनी चाहिये। वह सद्‌सत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनो नर-नारायण की उत्पत्ति का कारण है, इसलिये हम दोनो ही उसकी पूजा करते हैं।'

भीष्म पितामह वोले—'भगवान श्रीकृष्ण विना वादल के आकाश मे उदित सहस्र सूर्य के समान तेजस्वी है। वे इस ब्रह्माण्ड के स्वामी साधु पुरुषो और देवताओ के रक्षक, सर्वज्ञ, सव में ओतप्रोत और सर्वव्यापक है। वे ही परमात्मा इंद्रियो के प्रेरक, सर्वगुण सम्पन्न और महेश्वर है। भगवान श्रीकृष्ण ही अनन्त शेषनाग कहे गये है। जो भगवान श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करता है, उसे कीर्ति, विजय और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जव धर्म का ह्रास होता है। तव भगवान श्रीकृष्ण देवता या मानव के रूप मे अवतार ले धर्म की रक्षा और स्थापना करते है। मनुष्य को चाहिये वे मन, वाणी और कर्म से उन भगवान की उपासना करे। राजन् ! व्यासजी तथा वुद्धिमान नारदजी से सुनकर मैंने पूज्य श्रीकृष्ण के प्रभाव का यह वर्णन किया है। राजन् ! तुम अपनी हत्या कर लेने को अधिक महत्व दे रहे हो किन्तु ये सव राजा युद्ध में काल द्वारा मारे गये है और श्रीकृष्ण ही दण्डधारी सनातन काल हैं, अत. तुम्हे अपने स्वजनो के लिये शोक नही करना चाहिये। यदि तुम न्यायोचित

रीति से प्रजापालन मे कुशलतापूर्वक लगे रहोगे तो तुम्हे स्वर्ग-लोक प्राप्त होगा।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह ! जिनके स्मरण करने मात्र से मनुष्य ससार बधन से मुक्त हो जाता है उन सर्व समर्थ भगवान विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ। कुल श्रेष्ठ ! समस्त जगत में पूज्यतम परम आश्रय स्थान देव कौन है ? किस देव की स्तुति, गुण कीर्तन और पूजन करने से मनुष्य कल्याण की प्राप्ति कर सकता है ? आप समस्त धर्मों में किस धर्म को श्रेष्ठ मानते है तथा किसका तप करने से जीव जन्म-मरण रूप ससार बधन से मुक्त हो जाता है ?'

भीष्म बोले—'तात ! जो स्थावर जगम रूप ससार का स्वामी है, जो ब्रह्मादि देवों का देव है, जो देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न है, जो क्षर, अक्षर से श्रेष्ठ पुरुषोत्तम है, उसका सहस्र नामो द्वारा निरन्तर गुण कीर्तन करने से मनुष्य दु:खों से पार हो जाता है। उसी अविनाशी पुरुष का भक्ति से पूजन करने से, उसका ध्यान करने से तथा स्तवन एव नमस्कार-करने से मनुष्य भव-सागर से पार हो जाता है। जो विकार-रहित है, जो सर्वव्यापक है, जो सम्पूर्ण लोको का महेश्वर है, उस लोकाध्यक्ष देव की निरतर स्तुति करनी चाहिये। जो सबका हितकारी है, जो सब धर्मों को जानने वाला है, जो प्राणियों की कीर्ति बढाने वाला है, जो समस्त भूतो का उत्पत्ति स्थान एव ससार का कारण रूप है उस परमेश्वर का स्तवन करने से मनुष्य दु:ख से छूट जाता है। मैं सम्पूर्ण धर्मों मे इसी धर्म को बडा मानता हूँ कि मनुष्य कमलनयन भगवान वासुदेव का भक्तिपूर्वक स्तुतियों से सकीर्तन और अर्चन करे। राजन् ! जो परम महान तेज स्वरूप है, जो परम महान तप स्वरूप है, जो परम महान ब्रह्म है, जो सबका परम आश्रय है, जो तीर्थ आदि में परम पवित्र है, जो मगलों का भी मगल है, जो देवों का भी देव है, प्राणियो का अविनाशी पिता है, जिससे सम्पूर्ण

भूत प्रकट और लय होते है, जो ससार स्वामी है, उस भगवान विष्णु के हजार नाम पाप और ससार के भय को दूर करने वाले है। महान आत्मस्वरूप विष्णु के जो नाम गुण के कारण प्रवृत्त हुए हैं उनमें से जो-जो प्रसिद्ध हैं और जो मुनियो द्वारा सर्वत्र गाये गये है उन सब नामो का मैं पुरुषार्थ सिद्धि के लिये वर्णन करता हूँ। ये विष्णु सहस्रनाम से जगत में विख्यात हे।' फिर उन्होने कीर्तन करने योग्य भगवान के सहस्र नामो का राजा युधिष्ठिर को पूर्ण रूप से वर्णन किया और कहा— 'जो मनुष्य इस विष्णुसहस्रनाम का सदा भक्ति युक्त होकर श्रवण, कीर्तन या पठन-पाठन करता है उसका कही भी अशुभ नही होता। उसे धर्म, अर्थ, काम, यश और सन्तान की प्राप्ति होती है और वह आरोग्यवान, कान्तिवान, वलवान, रूपवान और सर्वगुण सम्पन्न हो जाता है। वह जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि के भय से छूट जाता है और आत्मसुख, क्षमा, धैर्य, स्मृति, श्री एव कीर्ति को पाता है। इसके पाठ से मनुष्य को क्रोध नही आता, ईर्ष्या उत्पन्न नही होती, लोभ नही होता और वुद्धि शुद्ध रहती है, इसलिये इस परम श्रेय विष्णुसहस्रनाम का प्रतिदिन पाठ करना चाहिये।'

युधिष्ठिर ने पूछा—'पितामह! प्रात.काल भगवान विष्णु और विष्णुसहस्रनाम के स्तोत्रो के अलावा किस मन्त्र का जप और किस देवता को प्रणाम करना चाहिये?'

भीष्म पितामह ने कहा—'राजन्! वेद मे भगवान शिव के ग्यारह नाम विख्यात हैं, उन नामो का कीर्तन और भगवान शिव को नमस्कार करना चाहिये। वे ग्यारह नाम इस प्रकार है. अजैकपाद्, अहिर्बुधन्य, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृ-रूप, त्रयम्बक, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवन और ईश्वर।

'इसी प्रकार सूर्य भगवान को नमस्कार करना चाहिये। ये आदित्य बारह कहलाते है: अश, भग, मित्र, जलेश्वर, वरुण, धाता, अर्यमा, जयन्त, भास्कर, त्वष्टा, पूषा, इद्र तथा विष्णु।

'आठ वसुओ को भी प्रणाम करना चाहियें, उनके नाम इस प्रकार है: धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास, नासत्य और दस्त्र दो अश्विनीकुमार कहलाते है वे भी नमस्कार के योग्य है।

'अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि ये सात और अरुधन्ती अत्यत तेजस्वी और उच्चकोटि के ऋषि और ऋषि पत्नी है। इन्हें भी नमस्कार करना चाहिये।'

## ब्राह्मण और नागराज

भीष्मजी एक और आख्यान सुनाने लगे—'युधिष्ठिर ! नेमिषारण्य मे गोमती के तट पर एक महान धर्मात्मा, बुद्धिमान और शास्त्रो का ज्ञाता पद्मनाभ का नाग रहता था। वह तप, इद्रिय-सयम, उत्तम आचार-विचार से सयुक्त और सदा स्वाध्याय मे लगा रहता था। वह यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला दानियो का शिरोमणि, क्षमाशील, सत्यवादी, शीलवान और जितेन्द्रिय था। वह अनुकूल वचन बोलता, सरल भाव से रहता, कर्तव्य और अकर्तव्य को जानता और समस्त प्राणियों के हित में लगा रहता था। एक धर्म के तत्व का जिज्ञासु ब्राह्मण विचित्र वनों, तीर्थो और सरोवरो को लॉघता हुआ उस नाग के घर पर पहुँचा।

'उस समय नागराज घर पर नही थे, इसलिये उनकी पतिव्रता पत्नी ने ब्राह्मण का विधिपूर्वक पूजन और स्वागत किया और कहा—'मेरे माननीय पतिदेव बाहर गए है, वे आते ही आपका दर्शन अवश्य करेगे।'

'ब्राह्मण बोला—'देवी! मैं उनके दर्शन करने का निश्चय कर ही यहाँ आया हूँ, अत: उनके आगमन की प्रतीक्षा करता हुआ गोमती के तट पर निवास करूँगा।' श्रेष्ठ ब्राह्मण गोमती नदी के तट पर निराहार रहकर कठोर नियमों का पालन और

जप करने लगा ।

'अतिथि सत्कार के लिये प्रसिद्ध नागराज के भाई-बंधु ब्राह्मण के पास जा उसकी पूजा करके बोले—'तपोधन ! आपको हमारे यहाँ अतिथि के रूप मे आये आज छ दिन हो गये, किन्तु अभी तक आप भोजन लेने के लिये हमे आज्ञा नही दे रहे है। आपका आतिथ्य करना हमारा कर्तव्य है, क्योकि हम सब गृहस्थ है। यहाँ रहकर आपने भोजन छोड दिया है, इससे हमारे धर्म मे वाधा आती है। वालक से लेकर वृद्ध तक हम सब इस बात से दु खित है। हम अतिथि एव वन्धुओ को अन्न देने से पहले भोजन नही करते ।'

'ब्राह्मण ने कहा—'आप लोगो के इस कथन से मैं तृप्त हो गया हूँ। आप लोग ऐसा समझे कि मैंने यहाँ आहार ही प्राप्त कर लिया है। नागराज के दर्शन के लिये ही यह मेरा सारा व्रत और नियम है, अत आप लोग घर लौट जाइये।' ब्राह्मण का यह आग्रह देख नागपत्नी परिवार सहित अपने घर लौट गई।

'कुछ समय वाद नागराज घर लौटे और उन्होने अपनी पत्नी से पूछा—'कल्याणि ! मेरे कथनानुसार तुम अतिथियो के पूजन मे तत्पर रही हो न ? मेरे वियोग ने तुम्हे शिथिल तो नही कर दिया है ? कही धर्म की मर्यादा-पालन मे तुम असफल या विमुख तो नही हो गयी हो ?'

'नागपत्नी ने कहा—'पतिदेव ! जब आप सदा धर्म पर स्थित रहते है, तब धर्म को जानती हुई भी मैं कैसे सन्मार्ग का त्याग कर कुमार्ग पर चल सकती हूँ। महाभाग ! देवताओ की आराधनारूप धर्मचर्या मे कोई कमी नही आयी है। अतिथियो के सत्कार मे भी मैं सदा आलस्य छोडकर लगी रहती हूँ, परन्तु यहाँ एक ब्राह्मण देवता पधारे है। वे मुझसे अपना कोई कार्य नही वता रहे है, केवल आपका दर्शन चाहते है। वे कठोर व्रत का पालन और वेदो का पारायण करते हुए गोमती के किनारे वैठे है। महाप्रज्ञ नागराज ! अव आपको वहाँ जाकर

ब्राह्मण देवता को दर्शन देना चाहिये।'

'नागराज बोला—'पवित्र देवी ! ब्राह्मण रूप मे तुमने किसका दर्शन किया है ? वे ब्राह्मण कोई मनुष्य है या देवता ? भला कौन मनुष्य मुझे देखने की इच्छा कर सकता है ? और यदि दर्शन की इच्छा करे भी तो कौन इस तरह आज्ञा देकर मुझे बुला सकता है ? यशस्विनी ! नाग महापराक्रमी और अत्यत वेगशाली होते है। वे देवताओ, असुरो और देवर्षियों के लिये भी वदनीय है, विशेषत मनुष्यो के लिये हमारा दर्शन सुलभ नही है।'

'नागपत्नी ने कहा—'नागराज ! उस ब्राह्मण की सरलता से तो मै यही समझती हूँ कि वह देवता नही है किन्तु आपका भक्त है। जैसे वर्षा के जल का प्रेमी प्यासा पपीहा पानी के लिये बादलो की ओर देखता रहता है उसी प्रकार वह ब्राह्मण दूसरा कार्य सिद्ध करने की इच्छा से आपका दर्शन चाहता है। उत्तम कुल मे उत्पन्न हुआ आपके समान कोई सद्गृहस्थ अतिथि की उपेक्षा नही कर सकता, अत आप आज इस ब्राह्मण देवता का दर्शन कीजिये। उसकी आशा भग कर अपने आपको भस्म न कीजिये। जो आशा लेकर शरण में आये हुए के आँसू नही पोछता, उसे पाप लगता है।'

'नागराज बोला—'साध्वि ! मुझमे जातीयता के कारण अभिमान नहीं है, किन्तु रोष भरा हुआ है। उसे भी अब तुमने अपनी वाणी रूपी अग्नि से जलाकर भस्म कर दिया है। मैं रोष से बढकर मोह में डालने वाला दूसरा कोई दोष नही देखता। इन्द्र से भी टक्कर लेने वाला प्रतापी दशानन रावण रोष के ही अधीन हो युद्ध में श्री रामचन्द्रजी के हाथों मारा गया था। महाबली राजा कीर्तवीर्य अर्जुन इन्द्र के समान पराक्रमी था परन्तु रोष के ही कारण परशुरामजी के द्वारा युद्ध में मारा गया। इसलिये आज तुम्हारी बात सुनकर तपस्या के शत्रु और कल्याण मार्ग को भ्रष्ट करने वाले इस क्रोध को मैंने पराजित

कर लिया है। अव मै वहाँ जाता हूँ जहाँ वे ब्राह्मण देवता विराजमान है। वे जो कहेंगे वही मै करूँगा। वे सर्वथा कृतार्थ होकर यहाँ से जायेंगे।'

'नागराज मन ही मन उस ब्राह्मण के कार्य का विचार करते हुए उसके पास गया और मधुर वाणी से वोला—'हे ब्राह्मण देव! आप मेरे अपराधो को क्षमा करे। मुझ पर रोष न करें। मैं आपसे पूछता हूँ कि आप यहाँ किस प्रयोजन को लेकर आये है ?'

'ब्राह्मण ने कहा—'मैं नागराज पद्म का दर्शन करने यहाँ आया हूँ। उन्हे कोई क्लेश न हो, सकुशल घर लौटकर आ जायें, इसके लिये योगयुक्त हो मैं वेदो का परायण कर रहा हूँ।'

'नाग वोला—'महाभाग! आपका आचरण वडा ही कल्याण-मय है। आप वडे ही साधु पुरुष है और सज्जनो पर स्नेह रखते हैं। ब्रह्मर्षि! मैं ही वह नाग हूँ जिससे आप मिलना चाहते है। आप मुझे इच्छानुसार आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?'

'ब्राह्मण ने कहा—'नागराज! मैं आपसे एक वात पूछना चाहता हूँ जिसे मैं स्वय नही जानता। मैं विषयो से निवृत्त हो परब्रह्म परमात्मा की खोज कर रहा हूँ तो भी गृह मे आसक्त हुए इस चचल चित्त की उपासना करता हूँ। आप चन्द्रमा की किरणो की भाँति सुखद एव गुणो से प्रकाशमान है। इस समय मेरे मन मे एक नया प्रश्न उठा है। पहले इसका समाधान कीजिये, फिर मैं आपसे अपना कार्य निवेदन करूँगा। मैंने सुना है कि आप भगवान सूर्य के भक्त हैं और वे आप पर प्रसन्न रहते हैं। भगवान सूर्य सारे भूमडल की प्रतिदिन परिक्रमा करते हैं इसलिये उन्होने कोई आश्चर्यजनक वात आपसे कही है तो वह मुझे भी सुनाइये।'

'नागराज वोला—'एक दिन भगवान भास्कर सम्पूर्ण लोकों को तपा रहे थे। उसी समय दूसरे सूर्य के समान एक तेजस्वी

पुरुष उन्हें दिखायी दिया जो सब ओर से प्रकाशित हो रहा था। जब वह अपने तेज से आकाश को चीरकर उनकी ओर बढ़ा, तब भगवान भास्कर ने उसके स्वागत के लिये अपनी दोनों भुजाएँ उसकी ओर बढा दी। वह तेज उनकी किरणों के समूह मे समा गया और एक ही क्षण में तेजोराशि के साथ एकाकार हो सूर्य रूप हो गया। यह आश्चर्यमयी घटना देखकर मैंने सूर्य देव से निवेदन किया कि जो दूसरे सूर्य के समान यहाँ आये, वे कौन थे ?

'सूर्यदेव ने उत्तर दिया—'यह उत्तम वृत्ति से जीवन निर्वाह के व्रत का पालन करने से सिद्धि को प्राप्त हुआ एक मुनि था। यह ब्राह्मण देवता फल-मूल का आहार कर और पानी पीकर सदा एकाग्रचित्त हो ध्यानमग्न रहता था। यह ब्राह्मण देवता संहिता के मन्त्रों द्वारा भगवान शकर का स्तवन और जप किया करता था, इसलिये यह स्वर्गलोक मे गया है। यह ब्राह्मण असग रहकर कामनाओ का त्याग कर एव शील वृत्ति से प्राप्त हुए अन्न को ही खाता था। ऐसे लोगो को जो उञ्छवृत्ति से उत्तम गति प्राप्त होती है वह न देवता, न गधर्व और न असुर ही पा सकते है।'

'ब्राह्मण ने कहा—'नागराज! इसे सुनकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। मेरे मन में जो अभिलाषा थी वह पूर्ण हो गई है। महामना! आपका कल्याण हो। अब मै यहाँ से चला जाऊँगा। यदि मेरे से आपका कुछ कार्य सिद्ध हो सके तो ऐसे अवसरों पर मेरा स्मरण करे।'

'नागराज बोला—'विप्रवर! आप जिस कार्य के लिये यहाँ आये हैं उसे तो बताइये ? मेरे द्वारा जब आपका कार्य सम्पन्न हो जाय, तब ही मेरी अनुमति ले अपने घर को जाइये। आपका मुझमें प्रेम है, इसलिये बटोही की तरह केवल मुझे देखकर ही चल देना आपके लिये उचित नही।'

'ब्राह्मण ने कहा—'आत्मज्ञानी नागराज! देवता भी

आपसे बढकर ज्ञानी नही है, यह सर्वथा यथार्थ है। मैं आप और समस्त प्राणी सदा जिसमे स्थित हैं वही आप हैं, वही मैं हूँ और जो मैं हूँ वही आप भी हैं। मैं निश्चय नही कर पा रहा था कि किस पुण्यमय साधन को अपनाऊँ? किन्तु अब वह सदेह दूर हो गया है। अब मैं सिद्धि प्राप्त करने के लिये उञ्छ व्रत का ही आचरण और ब्रह्म के नामो का तप करूँगा। मैं कृतार्थ हो गया हूँ। आपका कल्याण हो। अब मैं आपसे जाने की आज्ञा चाहता हूँ।'

'नागराज की अनुमति लेकर वह दृढ निश्चय वाला ब्राह्मण उनके उपदेश के अनुसार यम-नियमो का पालन करता हुआ जप करने लगा।'

## गौतमी, ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु, काल

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह! आपने नाना प्रकार से शान्ति के सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन किया है, परन्तु इन दृष्टान्तो को सुनकर भी स्वय ही किये गये अपराधो से मन को शान्ति कैसे मिल सकती है? वीरवर। बाणो मे भरे हुए आपके शरीर और इसके गहरे घावो को देख मैं बारबार अपने पापो का ही चिन्तन करता हूँ! पुरुषसिह! पर्वत से गिरने वाले झरने की तरह आपके शरीर से रक्त की धारा बह रही है, इसको देखकर मैं वर्षाकाल के कमल की तरह गला जाता हूँ। मेरे ही कारण समरांगण मे आपकी यह दशा हुई है। मैंने क्रोध और लोभ के वशीभूत हो यह निन्दनीय कर्म किया है इसलिये न जाने किस दुर्गति को प्राप्त होऊँगा। यदि मैं पहले ही युद्ध मे मारा जाता तो आपको इस प्रकार अन्यन्त पीडित और दुख से आतुर अवस्था मे नही देखता।'

भीष्म बोले—'महाभाग! जब तुम सदा परतन्त्र हो, तब अपने को शुभाशुभ कर्मों का कारण क्यों मानते हो? वास्तव में कर्मों का कारण क्या है यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म और इद्रियो

की पहुँच से बाहर है। इस विषय में विद्वान पुरुष गौतमी ब्राह्मणी, व्याध, सर्प, मृत्यु और काल के सवाद रूप एक उदाहरण दिया करते है।

'कुन्तीनन्दन ! पूर्वकाल मे गौतमी नाम की एक बूढी ब्राह्मणी थी। एक दिन उसके इकलौते बेटे को साँप ने डस लिया और उसकी चेतना-शक्ति लुप्त हो गयी। इतने ही में अर्जुन नाम के एक व्याध ने उस साँप को पकड़ लिया और उसे गौतमी के पास ले आया।

'व्याध ने पूछा—'यही वह नीच साँप है जिसने तुम्हारे पुत्र को मार डाला है। बताओ, मै किस तरह इसका वध करूँ ?'

'गौतमी ने कहा—'अर्जुन ! छोड दे इसे। होनहार को कोई टाल नही सकता। ससार में जो धर्माचरण करते है, वे भवसागर से पार हो जाते है, किन्तु जो पाप का बोझ ढोते है वे नरक समुद्र में डूब जाते है। इस सर्प को मार डालने से मेरा पुत्र जीवित नही हो सकता और इसके जीवित रहने पर भी तुम्हारी क्या हानि होगी ? ऐसी परिस्थिति मे प्राणी का अत कर कौन यमलोक मे जायेगा ?'

'व्याध बोला—'देवि ! मैं जानता हूँ कि प्राणियों को कष्ट में पडा देख वडे-बूढे दु:खी हो जाते है, परन्तु दु:खी मनुष्य पर ये उपदेश प्रभाव नही डाल सकते। शान्ति चाहने वाले मनुष्य काल को ही नाश का कारण मानते है, किन्तु जो बदला लेना जानते है वे शत्रु का नाश करके ही शोक छोडते है। दूसरे लोग श्रेय का नाश होने पर मोहवश सदा उसके लिये शोक करते है. अत. इस शत्रुरूप सर्प के मारे जाने पर तुम भी अपने पुत्र-शोक को त्याग देना।'

'गौतमी ने कहा—'धर्मात्मा मनुष्यो को कभी किसी तरह की हानि से भी पीडा नही होती। सज्जन सदा धर्म में ही लगे रहते है। मेरा यह बालक सर्वथा मरने ही वाला था, इसलिये इस धर्म की हत्या मैं नही चाहती हूँ। अतः तू भी दया का

आश्रय ले इस सर्प के अपराध को क्षमा कर और इसे छोड दे।'

'व्याध बोला—'देवि! इस सर्प को मार डालने से जो बहुतो का भला होगा, वही अक्षय लाभ है क्योंकि इसकी मृत्यु से बहुतेरे मनुष्यो की रक्षा होगी। अनेको की मृत्यु के लिये एक की रक्षा करना कदापि उचित नही है। धर्मज्ञ अपराधी को दण्ड देते है इसलिये यह पापी सर्प मार डालने योग्य है। वृत्रासुर का वध करके देवराज इद्र ने बहुतो का भला किया था। भगवान रुद्र ने नीच कर्म को रोकने के लिये दक्ष का गला कटवाया जिससे वह शुद्ध बुद्धि को प्राप्त हुआ।'

'सर्प ने कहा—'नादान अर्जुन! इस बालक की मृत्यु मे मेरा दोष नही है, मैं तो पराधीन हूँ। क्रोध और कामना के वशीभूत होकर मैंने बालक को नही डँसा है। मृत्यु ने मुझे इस कार्य के लिये प्रेरित एव विवश किया है अत. यदि इसमें कुछ अपराध है तो मृत्यु का है।'

'व्याध बोला—'ओ सर्प! यद्यपि तूने दूसरे के अधीन होकर यह पाप किया है तथापि तू भी तो इसमे कारण है ही। जैसे मिट्टी का बर्तन बनाते समय मनुष्य, दण्ड और चाक आदि को भी उसमे कारण माना जाता है उसी प्रकार तू भी इस बालक के वध मे कारण है। जो भी अपराधी हो वह मेरे लिये वध्य है। तू अपराधी है, क्योकि तू स्वय अपने आपको इसके वध का कारण बताता है।'

'सर्प ने कहा—'व्याध! जैसे मिट्टी का बर्तन बनाने मे दण्ड, चक्र आदि सभी कारण पराधीन होते हैं, उसी प्रकारमैं भी मृत्यु के अधीन हूँ। यदि तुम मानते हो कि दण्ड, चक्र आदि भी एक-दूसरे के प्रयोजक होते है इसलिये कारण ही हैं, किन्तु ऐसा मानने से एक-दूसरे को प्रेरणा देने वाला होने के कारण कार्य कारण भाव के निर्णय मे सदेह हो जाता है। यदि तुम किसी का अपराध समझते हो तो वह सारे कारणो के समूह

पर ही लागू होता है।'

'व्याध ने कहा—'सर्प ! यदि यह मान भी ले कि तू अपराध का न तो कारण है न कर्ता ही, तो भी इस बालक को तूने ही मारा है। तेरे मत के अनुसार यदि दुष्टतापूर्ण कार्य करके भी कर्ता उस दोष से लिप्त नही होता तब तो चोर और हत्यारे आदि अपराधी भी दोष के भागी नही होंगे अत. उन्हें दण्ड नही मिलना चाहिये।'

'सर्प बोला—'व्याध ! प्रेरक कर्ता रहे या न रहे, कर्ता के बिना क्रिया नही होती, इसलिये यहाँ यद्यपि मैं और मृत्यु समान रूप से हेतु है, किन्तु मृत्यु प्रेरक होने के कारण विशेष रूप से अपराधी है। वास्तव में विचार करने पर प्रेरणा करने के कारण मृत्यु ही प्राणियों के विनाश का कारण है। जैसे यजमान के यहाँ यज्ञ में ऋत्विज अग्नि मे आहुति डालते है किन्तु उसका फल उन्हे नही मिलता, इसी प्रकार इस अपराध का फल मुझे नही भोगना चाहिये।'

'जब सर्प ने बारबार अपने को निर्दोष बताया तब मृत्यु देवता भी वहाँ आ पहुँचा और बोला—'सर्प ! काल से प्रेरित होकर ही मैंने तुझे इस बालक को डँसने के लिये प्रेरणा दी थी, अतः इसके विनाश में न तो तू कारण है और न मै ही। जैसे हवा बादलों को इधर-उधर उड़ा ले जाती है, उसी भाँति मै भी काल के वश में हूँ। तीनो गुण भी काल की ही प्रेरणा से प्राणियों को प्राप्त होते है। पृथ्वी अथवा स्वर्ग मे जितने भी स्थावर जगम पदार्थ है सभी काल के अधीन है। प्रवृत्ति-निवृत्ति तथा उनके फल सब काल के ही स्वरूप है। सूर्य, चन्द्र, जल, वायु, इद्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, भाव और अभाव इत्यादि सभी काल के द्वारा ही रचे जाते है और काल ही इनका सहार करता है। यदि ऐसी स्थिति मे भी मुझ पर दोषारोपण हो सकता है, तब तो तू भी दोषी ही है।'

'सर्प ने कहा—'अर्जुन ! तुमने मृत्यु की बात सुन ली, अतः

मुझ निरपराध को दण्ड देना तुम्हारे लिये उचित नही।'

'व्याध बोला—'सर्प! मैंने तुम्हारी और मृत्यु दोनो की बात सुन ली है किन्तु इसमे तेरी निर्दोषता तो सिद्ध नही होती।'

'मृत्यु ने कहा—'व्याध! हम दोनो ही काल के अधीन होने के कारण उसका ही आदेश पालन करते है इसलिये तुम्हे हमारे ऊपर रोष नही करना चाहिये।'

'कर्मो का प्रायश्चित कराने के निमित्त काल ही सबको कुसमय की ओर ले जाता है। माता-पिता की सेवा, देवताओ की पूजा तथा अन्य सद्गुणयुक्त सदाचार भी बुरे दिनो मे किसी पुरुष के लिये सुखदायक नही होते। काल से पीडित हुए मनुष्य को विद्या, तप, दान, मित्र और बधु-बाधव भी कष्ट से नही बचा पाते। यदि कोई पुरुष अपने को ही कर्ता मानते है तो उनको भी उत्पन्न करनेवाला तथा उनकी उन्नति-अवनति का कारण काल ही है। काल की आज्ञा का उल्लघन करना किसी के लिये भी सम्भव नही है। जो अस्थिर को स्थिर और स्थिर को अस्थिर मानते हैं, उनके हृदय काल के प्रभाव से विपरीत भावना से ग्रस्त है। काल का सहयोग पाकर मनुष्य जिन कर्मो को करने से सुखी होता है, काल का सहयोग न रहने से उन्ही कर्मों से उसे दु ख की प्राप्ति होती है। जो काल की पकड मे आ चुका है उसको उससे छूटने का कोई उपाय नही है। सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान भूत भी काल के ही अधीन है। जीव प्रमाद मे पडकर सोते रहते हैं किन्तु काल उनके पाप-पुण्य का सकलन करते हुए जागता रहता है और समय आने पर मनुष्य को उन भोगो का भोग भोगना पडता है। काल से प्रेरित जीव अपने पाप और पुण्य कर्मो का फल भोगने के लिये नरक और स्वर्ग मे जाते है। वहाँ अपने कर्मो के फल का भोग भोगने के पश्चात काल की प्रेरणा से फिर इस ससार मे जन्म लेते हैं। दिन-रात और महीनो के चक्र चलते रहते हैं। इसी प्रकार

जन्म, मृत्यु और जरा आदि के क्रम चलते रहते है। किसी प्रकार इनकी निवृत्ति हो ही नही सकती। काल समस्त प्राणियों को अपने वेग से वहा लेता है और उन्हें कोई भी बचा नही सकता। मृत्यु के वश मे पडे हुए प्राणी को कोई बचा नही सकता और जिसकी आयु शेप है उसे कोई मार नही सकता। जन्म के समय से ही मृत्यु मनुष्य के पीछे लगी रहती है। आत्म-ज्ञान ही सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वो से छुटकारा दिलाने का साधन है। आत्म-ज्ञान ही वह सिद्धि है जो काल के प्रभाव को रोक सकती है।'

'तदनन्तर धार्मिक विषय मे सदेह उपस्थित होने पर काल भी वहाँ आ पहुँचा और व्याध से बोला—'व्याध ! न तो मै, न यह मृत्यु और न सर्प ही इस जीव की मृत्यु के अपराधी और प्रेरक है। इस बालक ने जो कर्म किया है वही इसकी मृत्यु मे प्रेरक हुआ है। हम सब तो कर्म के अधीन है। जीव अपने कर्म से ही सुख-दु.ख और सब कुछ पाता है। वह कर्म से ही जीता-मरता है। जैसे धूप और छाया दोनो नित्य निरन्तर एक-दूसरे से मिले रहते है उसी प्रकार कर्म और कर्ता एक साथ रहते है।

'दुष्कृत कर्म, मन, वाणी और क्रिया से होते है। पहले मन के द्वारा उसका चिन्तन होता है फिर वाणी द्वारा उसे प्रकाश मे लाया जाता है, तदनन्तर क्रिया द्वारा उसे सम्पन्न किया जाता है। मन से वाणी का और वाणी से शारीरिक पाप अधिक माना जाता है। दोषो को त्यागना मनुष्य को धर्माचरण के पथ पर ले जाता है। पापो से डरने से, निष्कपट धर्म का पालन करने से मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त करता है। ज्ञानी मनुष्यों के सम्पर्क से, धर्मोपदेश सुनकर इन्द्रियो का निग्रह करने से तथा सन्तोष और धैर्य धारण करने से दोषों का परित्याग होता है। अल्प बुद्धि मानव क्रूर कर्म करके अपने आपको नरकगामी बनाता है। वह यह नही समझता कि पुण्य कर्म सर्वथा उसके अधीन है, एव दुष्कर्मो को त्यागने से उत्तम गति प्राप्त होती है। दोष सयम को धर्म कहा गया है वह सबसे अधिक कल्याण-

कारी है। स्वधर्म पालन से, दान देने से, तप और शुभ कर्मों के आचरण से दोष नष्ट होते है। जैसे नौका नदी से पार होने का साधन है उसी प्रकार सत्य स्वर्गलोक मे पहुँचने की सीढी है। सत्य के पालन से मनुष्य दीर्घायु होता है। सत्य से कुलपरम्परा का पालन होता है। सत्य का आश्रय लेने से लोक मर्यादा का आचरण होता है।

'मनुष्य जिस स्थूल या सूक्ष्म शरीर से जो-जो कर्म करता है उसी शरीर से वह उस कर्म का फल भोगता है। कर्म कभी नष्ट नही होते। इन्द्रियाँ और मन—उस कर्म के साक्षी हैं। जैसे बछड़ा हजारो गौओ के बीच मे अपनी माता को पहचान लेता है उसी प्रकार पहले का किया हुआ कर्म भी कर्ता के पास जाकर उसका अनुसरण करता है।

'जो स्वेच्छा से असत् कर्म या पाप करता है उस कर्म का किसी तरह नाश नहीं होता, किन्तु असावधानी या दैवेच्छा से जो पाप बन जाता है वह दूसरे किसी श्रेष्ठ कर्म से नष्ट हो जाता है। यदि उद्देश्य कुटिलतापूर्ण न हो अपितु धर्म के गौरव से शुद्ध हो तो दोष की प्राप्ति नही होती। मनुष्य को जीवन मे पाप और पुण्य का फल मिलता ही है, इसलिये कभी उसे दु ख कभी सुख प्राप्त होता है। कर्मो का फल भोगने पर शरीर को बहुधा आत्मा त्याग देता है। कभी बचे हुए कर्मो का फल लेकर जीव दूसरी देह धारण कर पूर्व जन्म के कर्म फलों को सेवन करता है। आत्मा कर्म नही करता है। शरीर क्षीण होता है आत्मा नही। प्रकृति के गुणों से युक्त प्राणी द्वारा ही सदा कर्म किया जाता है। प्राणी का शरीर जैसे वात, पित्त और कफ से व्याप्त रहता है इसी प्रकार सत्व, रज और तम यह तीनो गुण उससे विद्यमान रहते हैं। सत्व सदा प्रकाशस्वरूप माना गया है। रजोगुण दु ख रूप और तमोगुण मोह बताया गया है। ज्योति या तेज के द्वारा रात्रि का अंधकार नष्ट हो जाता है, परन्तु तम ज्योतियों के प्रकाश से भी दीप्त नही होता।

विद्वानों ने जनहित की कामना से ज्ञान द्वारा ही घोर तम का नाश बताया है। जीव की इन तीनों गुणों के प्रभाव से कर्म में प्रवृत्ति होती है, इसलिये समस्त शुभाशुभ कार्यारम्भ गुणमय है।

'आत्मा व्यग्रतारहित, अकर्ता और अविनाशी है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, मन, यम, बुद्धि, दिन-रात और आत्मा ये सदा एक साथ मनुष्य के धर्म पर दृष्टि रखते है। यद्यपि निष्प्राण शरीर का सब परित्याग कर देते हैं पर मनुष्य के किये हुए कर्मों के अनुसार धर्म-अधर्म ही उसके साथ जाते है। जो मनुष्य पापकर्म के वशीभूत होता है वह नरक में गिरता है। परन्तु जो अज्ञानवश अधर्म करने पर पश्चाताप और प्रायश्चित करता है वह अधर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। जो कार्य मनुष्य को अच्छा नही लगता वह दूसरे के प्रति भी नही करना चाहिये। वेद, ज्ञान, कर्तव्य और अकर्तव्य, वाच्य और अवाच्य का बोध करानेवाला है। सुकर्म करने से कीर्ति और बुरे से अपयश मिलता है। वेद में तीन पवित्र कर्म बताये है—द्रोह न करना, दान देना, और सत्य बोलना। उनमें दान ही सबसे कल्याणकारी है। जो मनुष्य यज्ञ, दान और तपस्या मे सलग्न रहते है वे ही पुण्य कर्म करनेवाले है। दानी स्वय पूजित और सम्मानित होकर दूसरों का पूजन और सम्मान कराते है।'

'गौतमी ब्राह्मणी ने कहा—'अर्जुन! मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार ही फल मिलता है। यह बालक अपने कर्मों से ही प्रेरित हो काल के द्वारा विनाश को प्राप्त हुआ है। मैंने भी वैसा ही कर्म किया था जिससे मेरा पुत्र मर गया, अतः काल और मृत्यु अपने-अपने स्थान पर पधारें और तू इस सर्प को छोड़ दे।'

भीष्मजी बोले—'युधिष्ठिर! इस उपाख्यान को सुनकर शान्ति धारण करो, शोक में न पडो। काल का ही यह सारा कार्य समझो जिससे रणभूमि में अनेक भूपाल मारे गये है।'

# दान,श्राद्ध, गंगा, दैवी और आसुरी सम्पदा

युधिष्ठिर ने कहा—'पितामह ! अब मुझे दान, श्राद्ध, गगा और देवी-आसुरी सम्पदा के बारे मे उपदेश दें।'

भीष्म बोले—'राजन्! सम्पूर्ण प्राणियो को अभय दान देना, सकट के समय उन पर अनुग्रह करना, याचक को उसकी अभीष्ट वस्तु देना और प्यासे को पानी पिलाना उत्तम दान है। जिस दान को देकर प्रत्युपकार की भावना न हो, वह दान ही श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ मनुष्य को दान देने से दाता पापमुक्त हो जाता है। जो याचक का अपनी शक्ति के अनुसार सत्कार नही करता वह दोषी है। जो दीन, दु.खी और दुर्बलो को कर्तव्य मानकर सहायता देता है वह पुण्यात्मा कहलाता है। यज्ञ और दान दोनो ही मनुष्य को पवित्र करने वाले कर्म हैं, किन्तु जो दान दक्षिणा से युक्त है वह यज्ञो से भी बढकर है। विद्वानो को दान देने से, उनकी पूजा करने से, दाता को यज्ञ का फल प्राप्त होता है। सब दानो से बढकर भूमि का दान है, क्योकि पृथ्वी अचल और अक्षय है। शास्त्रो का सिद्धान्त है कि जैसा दान किया जाता है उसका वैसा ही फल मिलता है, अत. श्रद्धापूर्वक योग्य व्यक्ति को समयानुसार दान करने से पाप नष्ट हो जाते है। जो मनुष्य ऐसा समझे कि मैं धर्मात्मा हूँ, मैं बलवान हूँ, मैं राजा हूँ और दीनो की उपेक्षा करके स्वय ही उपभोग करता है वह नरक मे गिरता है।

'युधिष्ठिर ! मेरी यह धारणा है कि अन्न और जल के दान से बढकर दूसरा कोई दान नही हैं क्योकि अन्न और जल से ही सब प्राणी जीवन धारण करते है। जल से अन्न की उत्पत्ति मानी गई है, इसलिये जल-दान का भी बडा महत्व है। दान के समय यदि क्रोध आ जाये तो वह दान के फल को नष्ट कर देता है, इसलिये श्रद्धा से दान करना चाहिये। वेद मन्त्रो से सदा पवित्र होने के कारण हव्य और कव्य नष्ट नही होते हैं। यदि

दाता निष्काम भाव से दान देते है तब देवता और पितर उन्हें सादर ग्रहण करते है। धर्मात्मा श्रोत्रियों को दिया हुआ हव्य-कव्य प्रज्वलित अग्नि मे डाली हुई आहुति के समान सफल होता हैं। स्वधर्म का पालन करने वाला ब्राह्मण या तपस्वी दोनो ही दान देने योग्य सुपात्र है। जो सदाचार के ही भक्त है, जिनके घर में सदाचार का ही पालन होता है, जिन्हे सदाचार का ही बल है, जिन्होने सदाचार का ही आश्रय ले रखा है, उनको दिया हुआ दान महान फल की प्राप्ति कराने वाला है। जो दान, तपस्या और सत्य के द्वारा धर्म का अनुष्ठान करते है, जो क्षमावान, धीर, धर्म कार्य के लिये उद्यत रहने वाले है, जो अनासक्त हो वस्त्र, आभूषण, भोजन, फल, अन्न-दान करते हैं, उनके कार्य कुटुम्ब की वृद्धि मे सहायक होते है। दान देने के समय ऊँकार सहित पुण्याह वाचन करना चाहिये।

'देवता, पितर, अग्निहोत्र सम्बन्धी कार्यो मे दिये हुए दान का महान फल होता है। जिस मनुष्य को जो प्रिय लगे उसे उसी वस्तु का सदा दान करना चाहिये। पुण्य क्षेत्रो में तथा पुण्य के अवसरों पर जो दान दिया जाता है वह अत्यन्त शुभकारक है। गौएँ परम पवित्र है, अतः गौओ का दान भी श्रेष्ठ माना गया है। कुआँ, धर्मशाला, देवस्थान, गौशाला आदि का निर्माण या जीर्णोद्धार भी उत्तम दान ही कहलाता है। विद्यादान, रोगियों को औषधि प्रदान करना भी श्रेष्ठ दान ही है। वृक्ष छाया, फल और फूल प्रदान करने वाले है इसलिये उनकी रक्षा और लगाने का कार्य भी पुण्यमय दान के सदृश ही है। जो मनुष्य जन्म से ही कल्याणमय गुणो से सम्पन्न होते है, यह उनके पूर्व जन्म की तपस्या और दान का ही फल है।

'श्राद्ध—कर्म धन, यश और पुत्र की प्राप्ति कराने वाले हैं, अतः विधि के साथ उनका अनुष्ठान करना चाहिये। सभी तिथियों मे श्राद्ध करने से पितर प्रसन्न होते हैं। श्राद्ध-वेत्ताओं ने श्राद्ध कल्प मे जो हविष्य नियत किये है वे सबके सब

काम्य है। जो वेद का ज्ञाता अथवा उपदेशक है, जो श्रोत्रिय नियमपूर्वक व्रत का पालन करने वाला, सत्यवादी, धर्मशील, अपने कर्तव्य मे तत्पर है, वह पात्र श्राद्ध कर्मों के लिये उपयुक्त है। अत. इन्हे दिया हुआ श्राद्ध मे दान अक्षय होता है।

'जिसके श्राद्ध के भोजन मे मित्रो की प्रधानता रहती है, उनके श्राद्धकर्म पितरो और देवताओ को तृप्त नही करते। श्राद्ध के लिये शास्त्रो मे जो फल-मूल आदि भोज्य पदार्थ वताये गये हैं उन सवका ही प्रयोग करना चाहिये। श्राद्ध में पहले अग्नि को भोजन अर्पण करना चाहिये। पहले माता-पिता को पिण्ड देना चाहिये, फिर दादा-दादी को। पिता, पितामह और प्रपितामह—इनके रूप मे तीनो पिण्डो मे ब्रह्म को ही स्थित जानना चाहिये।

'राजन् ! धर्म का मूल है चित्त की शुद्धि और यश का मूल है धर्म। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम सुख है। सम्पूर्ण धर्मशास्त्रो मे अहिंसा को परम पद वताया गया है। धर्म और अधर्म पहले मन मे ही आते है। यदि मन को वश में कर लिया जाय तो स्वर्ग मिलता है, नही तो नरक की प्राप्ति अवश्यम्भावी है। शरणागत की रक्षा करने से जो महान फल प्राप्त होता है, उसके विषय मे तुम्हे एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ।

'एक समय एक वाज कवूतर को मार रहा था। वह कवूतर वाज के डर से भाग कर राजा शिवि उशीनर की गोद मे छिप गया। राजा उशीनर ने पक्षी को आश्वासन देकर कहा—'अण्डज ! शान्त रह ! यहाँ तुझे कोई भय नही है। वता तुझे यह भय कहाँ और किससे प्राप्त हुआ है ? तूने क्या अपराध किया है ? जिससे तू वेसुध-सा हो रहा है। अव तू मेरी शरण में आ गया है अत तुझे कोई भी पकडने का साहस नही करेगा।'

'इतने मे ही वाज भी वहाँ आ गया और वोला—'राजन् ! विधाता ने इस कवूतर को मेरा भोजन नियत किया है। मैंने वड़े प्रयत्न से इसे प्राप्त किया है अत आप मेरे इस आहार को

आश्रय देकर विघ्न न डालिये। मैं बड़ी दूर से इसके पीछे पड़ा हुआ हूँ। मेरे पखों और पजों से यह घायल हो चुका है अतः ऐसी दशा में आप इसकी रक्षा न करे। नरश्रेष्ठ ! आप अपने देश में रहने वाले मनुष्यों की ही रक्षा के लिये राजा बनाये गये है। भूख से पीड़ित पक्षी के आप स्वामी नही है। यदि आप में शक्ति हो तो आपकी आज्ञा भग करने वाले शत्रुओ तथा इद्रियों के विषयों पर पराक्रम प्रकट कीजिये, किन्तु पक्षियों पर अपने बल का प्रयोग न कीजिये। यदि धर्म के लिये आप इस कबूतर की रक्षा करना चाहते है तो मुझ भूखे पक्षी पर भी आपको सहानुभूति रखनी चाहिये।'

'बाज की बात सुनकर राजर्षि उशीनर को बडा आश्चर्य हुआ और वे उससे इस प्रकार बोले—'बाज ! तुम्हारी भूख मिटाने के लिये मैं तुम्हे किसी दूसरे पशु का माँस प्रस्तुत कर दूंगा किन्तु मैं शरणागत का त्याग नही कर सकता।'

'बाज ने कहा—'राजन् ! मैं दूसरे का माँस नही खाऊँगा। सनातन काल से मेरे लिये जो खाद्य नियत किया गया है वही मुझे मिलना चाहिये। निष्पाप नरेश ! यदि आपको इस कबूतर पर बड़ा स्नेह है तो आप मुझे इसके बराबर अपना ही माँस तौल कर दे दीजिये।'

'राजा बोला—'बाज ! तुमने मुझ पर बडा अनुग्रह किया है। मैं ऐसा ही करूँगा।' तदनन्तर राजा ने अपना माँस काटकर तुला पर रखना आरम्भ कर दिया। यह देखकर अत पुर की रानियो, मन्त्रियो, बधु-बाधवों, सत्पुरुषों और भृत्य-जनो मे हाहाकार मच गया। यद्यपि राजा शीघ्रता से अपने माँस द्वारा उस तराजू को भरते थे तथापि वह माँस-राशि उस कबूतर के वजन के बराबर नही होती थी, अतः राजा माँस काटने का प्रयास छोडकर स्वय ही उस तराजू पर चढ गये।

'यह देखकर आकाशवाणी हुई—'राजन् ! तुमने शरणागत के लिये सर्वस्व निछावर कर दिया है इसलिये तुमने इस पुण्य

कर्म के प्रभाव से सनातन दिव्यलोक को प्राप्त किया है।'

भीष्मजी ने कहा—'युधिष्ठिर ! जो सदाचारी, धीर, सत्य-प्रतिज्ञ और शुद्ध हृदयवाला प्राणियो पर दया रखता है वह अपने पुण्य कर्म से ससार मे विख्यात हो जाता है। ज्ञानवान मनुष्य द्वारा किया हुआ थोडा-सा धर्म भी महान वन जाता है और अज्ञानपूर्वक किया हुआ धर्म भी निष्फल हो जाता है।

'मनुष्य सदाचार से आयु, सम्पत्ति, अत्र परत्र मे कीर्ति पाता है। सदाचार ही धर्म का लक्षण है। सच्चरित्रता ही श्रेष्ठ मनुष्य की पहचान है। श्रेष्ठ मनुष्य जैसा बरताव करते हैं वही सदाचार कहलाता है। मनुष्य जितेन्द्रिय न होने पर भी श्रद्धा-मात्र से पवित्र हो जाता है। यज्ञ, होम, दैव कार्य की सिद्धि ब्राह्मणो के अधीन नही है, वह तो दैव की प्रसन्नता से ही होती है। जो देवता, पिता, गुरुजन, अतिथि, गौ, श्रेष्ठ पुरुप और माता-पिता का मन, वाणी एव क्रिया द्वारा पूजन करते हैं, वे वास्तव मे भगवान विष्णु की ही आराधना करते है।'

**गंगा**—भागीरथी गगा जिन प्रदेशो के मध्य से होकर वहती है वे प्रदेश पुण्य की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। गगा के सेवन से मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त करता है। मरने पर जिनकी हड्डियाँ गगाजी मे डाली जाती है उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। मन, वाणी और क्रिया द्वारा पाप करने वाला मनुष्य भी गगाजी का दर्शन करने से सद्भाव को प्राप्त होते हैं। गगाजल की अजलि देने से दैव और पितर भी प्रसन्न होते हैं। जैसे देवताओ मे सूर्य एव चन्द्र श्रेष्ठ माने जाते है, उसी प्रकार सरिताओ मे गगाजी सवसे उत्तम मानी जाती है। इसलिये गगाजी सर्वदा पवित्र मानी जाती हैं। गगाजी में पापी स्नान करके गगाजल को अपवित्र कर देते हैं, उसे गगातट पर रहने वाले ब्रह्मत्व को प्राप्त तप रत ऋषि-मुनि और ब्राह्मण स्पर्श मात्र से ही पुन पवित्र कर देते हैं क्योंकि उनकी तपस्या ही धन है। वे वेदों के ज्ञाता तथा वेदोक्त धर्म का ही आश्रय लेते है। वे

भोजन के पहले देवताओं की पूजा करते हैं और क्षमाशील रहते हैं। वे विधिवत यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। वे जितेन्द्रिय और मन को वश में रखने वाले हैं। वे धर्म, पृथ्वी और गौओं की पूजा करते हैं। वे नित्य निरन्तर समस्त प्राणियो पर प्रसन्न-चित्त हो वेदो के स्वाध्याय मे सलग्न रहते है। वे उत्तम व्रत का पालन करने वाले मननशील सत्य प्रतिज्ञ है। जो भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले तपस्या में सलग्न रहते है वे धन, सुख और दु.ख की चिन्ता नही करते। वे ममता प्रतिद्वद्वियों से रहित, प्रवचन कुशल और ब्रह्मवादी है। वे नाना प्रकार के व्रतो का पालन करने वाले स्वभावत: पुण्यात्मा है। ऐसे ससार में सर्वश्रेष्ठ अज्ञानान्धकार का नाश करने वाले ऋषि-मुनियों को सब प्रणाम करते हैं।

'जहाँ गगाजी पूर्व या उत्तर की ओर बहती है, जहाँ गगाजी का दूसरी नदियों में सगम होता है, जहाँ गगाजी का समुद्र के साथ सयोग हुआ है वे स्थान श्रेष्ठ तीर्थ है। गगाजी के दोनों तटो पर मनीषी मनुष्यों ने जिस स्थान का सेवन किया है वह उत्कृष्ट तीर्थ है। तपस्या, पापनाश और बाहर-भीतर की शुद्धि के लिये पुण्य तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य का कल्याण होता है।

**दैवी और आसुरी सम्पदा**—ससार मे दो प्रकार के प्राणी होते है, एक देवभाव से और दूसरे असुर भाव से आश्रित। जो मनुष्य मन, वाणी और क्रिया द्वारा सदा सबके प्रतिकूल ही आचरण करता है वह असुर है। वे हिसक, चोर, धूर्त, परस्त्री-गामी, नीच कर्मपरायण, शौच और मगलाचार से रहित, अपवित्र, दूसरों पर कलक लगाने वाले है। जो दैवी प्रकृति वाले मनुष्य है, वे मन, वाणी और क्रिया द्वारा सदा सबके अनुकूल रहते हैं। जो शौच, सरलता में तत्पर रहते हैं, जो धीर दूसरो का धन अपहरण नही करते और समस्त प्राणियों के प्रति समभाव रखते है वे मनुष्य पवित्र है। जो धार्मिक, मधुर-

भापी है और कभी मन से भी अयोग्य कार्य नही करते वे धर्मात्मा हैं। जो दरिद्र होने पर भी याचक को शक्ति अनुसार दान देते है, जो आस्तिक सदा बडे-बूढो की सेवा करते है और प्रतिदिन पुण्य कर्म मे सलग्न रहते है वे पुण्यात्मा हैं। जो ममता और अहकार से शून्य, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, क्रोध, लोभ, मद और मात्सर्य से रहित और परोपकारी हैं, वे साधु समान है। जगत मे सारा चराचर समुदाय शुभाशुभ है। इनमे जो शुभ कर्म करने वाले है वे दैव और अशुभ आचरण करने वाले असुर है। इद्रियाँ सदा जीर्ण और आयु सदा नष्ट होती जाती है। मौत सामने खडी है। मनुष्य सदा शारीरिक और मानसिक व्याधियो से पीडित रहता है। वह अपने मनोरथो की पूर्ति का उपाय सोचता रहता है और कामनाओ से तृप्त नही होता, उसी समय उसे मृत्यु उठा ले आती है अत आसुरी स्वभाव त्याज्य है।

'सम्पूर्ण ससार मे मोक्ष के अतिरिक्त जरा और मृत्यु की निवृत्ति नही होती। मनुष्य न तो धन से, न रसायन प्रयोग से, न राज्य से, न यज्ञ एव तप से और न विद्या-लाभ से जरा-मृत्यु को लाघ सकता है। जब शरीर की मृत्यु निश्चित और अटल है और यहाँ पल भर भी ठहरना काल के अधीन है, तब आसुरी स्वभाव का त्यागना ही श्रेयष्कर है। इस प्रकार सदा सभी पदार्थो और जीवन की अनित्यता का चिन्तन करने से मनुष्य दैवी स्वभाव का होकर उसके मन मे वैराग्य उदय हो जाता है और वह जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त होने का प्रयत्न करता है। मुक्ति के प्रयत्नो द्वारा मनुष्यो की सद्गति हो जाती है और वह दु ख से छूट जाता है।

'शौच दो प्रकार का माना गया है। एक वाह्य और दूसरा आभ्यन्तर, जिसे मानसिक सुकृत कहते हैं। शरीर को शुद्ध रखना, आचमन करना वाह्य शौच है। वाहर-भीतर की शुद्धता से ही भजन, तप, स्वाध्याय, दान देने की प्रवृत्ति और

सत्य भाषण होता है। कृतज्ञ मनुष्यो के लिये गुरुजनो का सत्कार करना आवश्यक है। अध्यापक, माता और पिता, बड़ा भाई, मामा, श्वसुर और भय से रक्षा करने वाला स्वामी भी गुरुजन कहे गये है। जो गुरुजनो से कलह, विवाद, छल, कपटव्यवहार नही करता और आलस्य छोडकर उनकी आज्ञा का पालन करता है, वह पुण्यात्मा है। जो गुरुजनों से द्रोह करते है उनसे बढकर पापाचारी इस ससार में दूसरा कोई नहीं है। संकल्प से, दृष्टि से, न्यायोचित वचन से, स्पर्श से और सयोग से गुरुजनो से प्रीति होती है। यज्ञ और तप का फल मनुष्य को वैसा लाभ नही पहुँचाता जैसा गुरुजनो का आशीर्वाद। सभी आश्रमों मे गुरुजनो की सेवा के बिना कोई भी धर्म सफल नही होता, इसलिये क्रोधरहित और सरल भाव से उनकी सेवा करनी चाहिये।

'मनुष्य को शुभ कर्म करना और अशुभ से दूर रहना चाहिये।'

## भीष्म पितामह की स्वर्ग-यात्रा

राजा युधिष्ठिर को कुरुकुल शिरोमणि भीष्मजी के बताए हुए पचास दिन के समय का स्मरण हो आया। वे बधु-बाधवो को ले कुरुक्षेत्र मे शान्तनुनन्दन भीष्मजी के पास जा पहुँचे। उस समय बुद्धिमान व्यास, देवर्षि नारद और असित देवल ऋषि भीष्म पितामह के पास बैठे थे। अनेक देशो के नरेश जो युद्ध-भूमि मे आहत नही हुए थे, वे महात्मा भीष्म की रक्षा कर रहे थे। कुन्तीकुमार ने पहले पितामह को प्रणाम किया, उसके बाद व्यास आदि ब्राह्मणो को मस्तक झुकाया।

सर शय्या पर सोये हुए भरतश्रेष्ठ भीष्मजी से धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार बोले—'महाबाहो! मैं आपकी सेवा मे उपस्थित हूँ। प्रभो! मेरे पास आचार्य, ऋषि, सब भाई और

भगवान श्रीकृष्ण भी यहाँ उपस्थित है।' भीष्मजी ने आखे खोल-कर सम्पूर्ण भारतवशियो को देखा। फिर प्रवचनकुशल वल-वान भीष्म ने युधिष्ठिर की विशाल भुजा हाथ मे लेकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहा—'कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! सौभाग्य की वात है कि तुम, ऋषि-मुनि, बधु-वाधव और भगवान श्री-कृष्ण यहाँ उपस्थित है। सहस्र किरणो से सुशोभित भगवान सूर्य अव दक्षिणायन से उत्तरायण लौट चुके है। इन तीखे अग्र-भाग वाले वाणो की शय्या पर शयन करते आज मुझे अठावन दिन हो गये। इस समय चन्द्रमा के अनुसार माघ शुक्ला अष्टमी प्रतीत होती है। तुम धर्म को अच्छी तरह जानते हो और अर्थ तत्व का भी तुमने भलीभाँति निर्णय किया है। तुमने अनेक शास्त्रो का ज्ञान रखनेवाले विद्वान ब्राह्मणो की सेवा की है और उनके सत्सग से लाभ उठाया है इसलिये तुम्हारे मन में सब प्रकार के सन्देह मिट गये होगे ?'

फिर उन्होने धृतराष्ट्र से कहा—मनुजेश्वर! तुम्हे बीती घटनाओ पर शोक नही करना चाहिये, क्योकि जो कुछ हुआ है वह अवश्यम्भावी था। ये पाण्डव जैसे राजा पाण्डु के पुत्र है वैसे ही धर्म की दृष्टि से तुम्हारे भी। ये सदा गुरुजनो की सेवा मे सलग्न रहते हैं। तुम भी धर्म में स्थित रहकर अपने पुत्रो के समान ही इनका पालन करना। धर्मराज युधिष्ठिर का हृदय बहुत ही शुद्ध है। ये सदा तुम्हारी आज्ञा के अधीन रहेगे। तुम्हारे पुत्र वडे दुरात्मा, क्रोधी, लोभी, ईर्ष्या के वशीभूत तथा दुराचारी थे, अत उनके लिये तुम्हे शोक नही करना चाहिये।'

मनीषी धृतराष्ट्र से ऐसा कहकर कुरुवशी भीष्म ने महावाहु भगवान श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा—'देव देवेश्वर! देवता और असुर सभी आपके चरणो मे मस्तक झुकाते हैं। नारायण देव! आप वासुदेव, हिरण्यात्मा, पुरुष, सविता, विराट, जीवात्मा और सनातन परमात्मा है, आपको मेरा नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आप मेरा उद्धार करें और मुझे जाने की आज्ञा दें।

आप ही जिनके परम आश्रय हैं, उन पाण्डवों की भी आपको सदा रक्षा करनी चाहिये। मैंने दुर्बुद्धि दुर्योधन से कहा था कि जहां श्रीकृष्ण हैं, वहां धर्म है, और जहाँ धर्म है उस पक्ष की जय होगी। इसलिये दुर्योधन! तुम भगवान श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डवो के साथ संधि कर लो। इस प्रकार बारबार कहने पर भी उस मद बुद्धि ने मेरी बात नही मानी और सारी पृथ्वी के वीरों का नाश कराकर अन्त मे वह स्वय भी काल के गाल मे चला गया। हे माधव! अब आपकी आज्ञा से मै इस शरीर का परित्याग करूँगा, जिससे मुझे परमगति प्राप्त होगी।'

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'महातेजस्वी भीष्मजी! मै आपको सहर्ष आज्ञा देता हूँ, आप वसुलोको मे जाइये। इस लोक मे आपके द्वारा अणु मात्र भी पाप नही हुआ है।' गगानन्दन भीष्म ने पाण्डवो और धृतराष्ट्र से कहा—'तुम्हें सदा सत्य, धर्म का पालन करना चाहिये क्योंकि सत्य ही सबसे बडा बल है। तुम लोगो को सबके साथ कोमल व्यवहार करना, सदा अपने मन और इन्द्रियो को वश मे रखना तथा धर्मनिष्ठ एव तपस्वी होना चाहिये।' ऐसा कहकर बुद्धिमान भीष्म ने सब सुहृदो को गले से लगाकर आशीर्वाद दिया। तदनन्तर कुरुश्रेष्ठ शान्तनु-नन्दन चुप हो गये और अपने आपको भगवान श्रीकृष्ण मे विलीन कर दिया। यह देख उपस्थित सज्जनों की आँखो से प्रेम के अश्रु बह निकले और सबने भीष्म पितामह की जय ध्वनि करते हुए उनके लिये मगल कामनाएँ की। देवताओ ने दुन्दुभियाँ बजाईं और फूलों की वर्षा की। सिद्धो और ऋषियों को बडा हर्ष हुआ और वे भीष्मजी को साधुवाद देने लगे। भगवान श्रीकृष्ण ने पाडवों और उनके सुहृदो का शोक दूर करने एव धैर्य धारण करने की शिक्षा दी और कहा कि भीष्मजी उत्तम लोक में गये है। सब कुरुश्रेष्ठ भीष्मजी की अंतिम क्रिया करने के पश्चात अपने-अपने घर चले गये।

जब राजा युधिष्ठिर भीष्मजी को गगाजी मे जलाञ्जली

दे वाहर निकले, उस समय उनके नेत्रो से आँसुओ की धारा वह रही थी और उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ शोक से व्याकुल थी। वे व्याध के वाणो से विधे हुए गजराज के समान गिर पडे, किन्तु भगवान श्रीकृष्ण की प्रेरणा से भीमसेन ने उन्हें पकड लिया।

भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—'राजन् ! आपको ऐसा अधीर नही होना चाहिये।'

राजा धृतराष्ट्र ने कहा—'कुरुवश के सिह कुन्तीनन्दन ! उठो और जो कार्य शेष रह गया है उसे पूर्ण करो। तुमने क्षत्रिय धर्म के अनुसार पृथ्वी पर विजय पायी है। अव तुम अपने भाइयो और सुहृदो के साथ इसे भोगो। तुम्हारे लिए शोक करने का कोई कारण नही है। शोक तो मुझको और गाधारी को करना चाहिये, जिनके सौ पुत्र स्वप्न मे प्राप्त हुए धन की भाँति नष्ट हो गये। मुझे दु ख है कि मैंने परम हितैपी महात्मा विदुर के हितकर वचनो पर ध्यान नही दिया, इसलिये आज अत्यन्त सतप्त हो रहा हूँ। धर्मात्मा विदुर ने मुझसे कहा था कि यदि आप अपने कुल का कल्याण चाहते है तो इस मदवुद्धि दुष्टात्मा दुर्योधन का परित्याग कर धर्मात्मा युधिष्ठिर को उनके राज्य पर अभिपिक्त कीजिये। मैंने पापी दुर्योधन का ही अनुसरण किया, क्योकि मेरी वुद्धि मद हो गयी थी। नरेश्वर ! दु.ख में डूवे हुए हम दोनो वूढे माता-पिता की ओर देखो।' वुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र के ऐसा कहने पर भी मेधावी युधिष्ठिर चुप ही रहे।

भगवान श्रीकृष्ण वोले—'यदि मनुष्य मरे हुए प्राणियो के लिये मन मे शोक करता है तो उसका वह शोक पहले के मरे हुए पितामहो को भारी सताप मे डाल देता है। इसलिये अव आप यज्ञो के अनुष्ठान द्वारा देवता और पितरो को तृप्त कीजिये। आपने भीष्मजी से राजधर्म का वर्णन सुना है और श्रीकृष्ण द्वैपायनव्यास, देवर्षि नारद और विदुरजी से कर्तव्य का उपदेश श्रवण किया है। महाराज ! शोक त्याग दीजिये,

क्योकि जो कुछ हुआ है वैसी ही होनहार थी। युद्ध मे जो वीर मारे गये है उन्हे आप नही देख सकते।'

युधिष्ठिर ने कहा—'गोविन्द आपका जो मेरे ऊपर प्रेम है, वह मुझे अच्छी तरह ज्ञात है। आपका स्नेह और सौहार्द सदा ही मुझ पर कृपा करते रहे है। इसलिये कृपासिधो! मै आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।'

## अश्वमेध-यज्ञ

व्यासजी ने कहा—'युधिष्ठिर! मनुष्य काल से प्रेरित होकर ही भले-बुरे काम करता है, अत. तुम्हें युद्ध-भूमि मे मरे हुओ के लिये शोक नही करना चाहिये। यदि तुम अपने आपको ही युद्धरूपी पापकर्म का प्रधान हेतु मानते हो तो वह पाप जिस प्रकार नष्ट हो सकता है वह उपाय करो। पुरुषसिह! पापाचारी मनुष्य यज्ञ, दान और तपस्या से ही पवित्र होते है। जैसा विधिवत् यज्ञ दशरथनन्दन श्रीराम और शकुन्तलानन्दन राजा भरत ने किया था उसी प्रकार तुम भी करो। राजन्! इस विषय में मैं तुम्हे करन्धम के पौत्र मरुत का वृत्तान्त सुनाता हूँ :

'अविक्षित के पुत्र मरुत मे प्रजा का अनुराग था। उन्होंने मन मे यज्ञ का सकल्प कर वृहस्पतिजी से कहा—'गुरुदेव! आपने कुछ समय पहले मुझे यज्ञ करने की आज्ञा दी थी, उस यज्ञ को मैं अव प्रारम्भ करना चाहता हूँ। आपके कथनानुसार मैने यज्ञ की सब सामग्री एकत्र कर ली है। मैं आपका पुराना यजमान हूँ इसलिये मेरा यह यज्ञ आप करवा दीजिये।'

'वृहस्पतिजी ने कहा—'अब मै देवराज इन्द्र का पुरोहित हो गया हूँ इसलिये तुम्हारा यज्ञ नही कराऊँगा।' ऐसा निराशा-पूर्ण उत्तर पाकर महाराज मरुत बड़े खिन्न मन घर लौट आये। मार्ग मे उन्हें देवर्षि नारद का दर्शन हुआ। राजा मरुत ने उन्हे

विधिवत् प्रणाम किया और वृहस्पतिजी से जो उनकी वार्तालाप हुई थी, उसे उन्होने उनको वताया ।

'नारदजी बोले—'राजन् ! खेद न करो। वृहस्पतिजी के भाई सवर्त वड़े तेजस्वी हैं, वे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारा यज्ञ करा देंगे। वे इस समय वाराणसी मे महेश्वर विश्वनाथ के दर्शन करने पागल के समान वेष धारण कर गए हुए हैं।'

'राजा मरुत महर्षि सवर्त के पास गए और वहुत अनुनय विनय द्वारा उन्होने उन्हे यज्ञ करवाने के लिये राजी कर लिया।

'महर्षि सवर्त ने कहा—'राजन् ! यज्ञ करने के पहले तुम्हे धन की वडी राशि इकट्ठी करनी होगी, इसलिए तुम हिमालय की तराई मे जाकर भगवान शकर की आराधना करो। कुवेर भगवान शकर की आज्ञा से तुम्हे धन देंगे।' राजा मरुत्त महर्षि सवर्त की आज्ञा से हिमालय के निकट गये और भगवान शकर की इस प्रकार स्तुति की—'भगवन् ! आप अतर्यामी है एव भक्तो को अभीष्ट वर प्रदान करने वाले है, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे त्रिनेत्रधारी ! आप कल्याणकारी, भवसागर से पार उतारने वाले तीर्थ स्वरूप है। हे देवाधिदेव ! आप ससार की उत्पत्ति, पालन, सहार, कामनाओ की वृष्टि करने वाले धर्मस्वरूप है। हे पशुपते ! आप अजन्मा, सवके स्वामी, तेजस्वी, अग्नि स्वरूप हैं, मै आपको नमस्कार करता हूँ। हे मृगचर्म धारणकरने वाले महादेव ! आपको मेरा प्रणाम है। हे पिनाकधारी त्र्यम्बक ! आप वरदान देने वाले है। हे विश्वेश्वर ! आप ही रुद्र, शिव हैं। हे गौरीश एव शरणागत वत्सल महादेव ! आपको मेरा प्रणाम है। हे शम्भु । आप सर्वव्यापी, त्रिगुणरहित निर्मल है, मैं आपकी शरण मे आया हूँ। अध्यात्म तत्व का विचार करने वाले ज्ञानी मनुष्य मोक्ष तत्व मे जिसकी स्थिति मानते हैं तथा तत्वमार्ग मे परिनिष्ठत योगीजन अविनाशी कैवल्य पद को जिनका स्वरूप समझते हैं और आसक्ति शून्य समदर्शी महात्मा जिन्हें सर्वत्र समान रूप से स्थित समझते हैं,

उन निर्गुण परमात्मा शिव की मैं शरण लेता हूँ। जो भक्तो के लिये सुलभ और विमुख रहने वालो के लिये दुर्लभ है उन सर्व-कल्याणी भगवान की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।' भगवान शकर की स्तुति करने से राजा मरुत्त को धन प्राप्त हो गया। इस कथा को सुनकर पाण्डवों ने भी भगवान शिव की आराधना आरम्भ कर दी और यज्ञ करने का निर्णय लिया।

इस सुविचार से भगवान श्रीकृष्ण भी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने राजा युधिष्ठिर से कहा—'धर्मराज! कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सरलता ब्रह्म की प्राप्ति का। यही ज्ञान का विषय है। जिसने अपने कर्तव्य-कर्मों को पूरा नही किया है, उसने अपने ही शरीर के भीतर बैठे शत्रुओ पर विजय नही पाई है। केवल राज्य आदि बाह्य पदार्थों का परित्याग करने से ही सिद्धि प्राप्त नही होती, किन्तु जो अनासक्त हो पदार्थों में ममत्व की दृष्टि नही रखता, वह ही महान भय से छुटकारा पाता है। कोई भी प्रवृत्ति कामना के बिना नहीं होती और समस्त कामनाएँ मन से ही प्रकट होती हैं। जिसका मन कामनाओं में आसक्त है, उसे ससार में दु.ख मिलता है। योगी मनुष्य अभ्यास से योग को ही मोक्ष का मार्ग निश्चय कर कामनाओ का नाश कर डालता है। कामनाओ का निग्रह ही धर्म है और वही मोक्ष का मूल है। राजन्! आपको अपने मन के साथ युद्ध कर उस पर विजयी होना चाहिये। तभी योग के द्वारा परब्रह्म को प्राप्त करोगे। महाराज! आप अश्वमेघ यज्ञो का अनुष्ठान कीजिये और अपनी उस कामना को धर्म में लगा दीजिये जिससे उत्तम कीर्ति और परलोक में श्रेष्ठ गति मिलेगी।'

भगवान श्रीकृष्ण की हितकर शिक्षा से महाराज युधिष्ठिर यज्ञ का अनुष्ठान करने की तैयारी करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से बोले—'निष्पाप कुरुनन्दन! यहाँ मेरे रहने का जो प्रयोजन था वह अब पूरा हो गया। अब मैं द्वारिका

जाना चाहता हूँ इसलिये यदि तुम उचित समझो तो महात्मा राजा युधिष्ठिर से मेरा यह प्रस्ताव कहो।' भगवान श्रीकृष्ण के कथन से अर्जुन मन मे दु खित हुए। महाराज युधिष्ठिर ने भी भगवान श्रीकृष्ण का खिन्न मन से प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण कुन्ती, विदुर और पाण्डवो से सत्कारपूर्वक विदा ले हस्तिनापुर से चल पडे।

युधिष्ठिर ने व्यासजी से कहा—'भगवन् ! जब आपको अश्वमेघ यज्ञ आरम्भ करने का ठीक समय जान पडे, तब आप मुझे उसकी दीक्षा दे।'

व्यासजी बोले—'धर्मराज ! आगामी चैत्र की पूर्णिमा को यज्ञ को सम्पूर्ण किया जाएगा। जो अश्व चुना जाय, उसे शास्त्रीय विधि के अनुसार छोडो। वह तुम्हारे दीप्तमान यश का विस्तार करता हुआ सुरक्षित रूप से पृथ्वी पर भ्रमण करेगा। राजन् ! अर्जुन सब धनुर्धारियो में श्रेष्ठ, सहनशील, धर्म और अर्थ मे कुशल तथा सम्पूर्ण विद्याओ मे प्रवीण है अत: वे ही इस घोडे के पीछे-पीछे जायेंगे। कुन्तीकुमार ! भीमसेन अमित पराक्रमी और अत्यत तेजस्वी है। नकुल मे भी वे ही गुण हैं। ये दोनो ही राज्य की रक्षा करने मे पूर्ण समर्थ हैं अत. वे राज्य के कार्य देखे। कुरुनन्दन ! सहदेव कुटुम्ब पालन सबधी समस्त कार्यो की देख-भाल करे।'

कुरुतिलक युधिष्ठिर ने सारा कार्य उसी प्रकार सम्पन्न किया और अर्जुन को आदेश दिया—'हे महाबाहो ! अश्व की रक्षा के समय जो राजा तुम्हारा विरोध करे, उससे जहाँ तक हो सके युद्ध न करना। मेरे इस यज्ञ करने का समाचार राजाओ को बताते हुए उन्हे यथासमय यज्ञ मे पधारने का निमत्रण भी देना।'

व्यासजी एव ऋत्विजो ने राजा युधिष्ठिर को विधिपूर्वक अश्वमेघ यज्ञ की दीक्षा दी और यज्ञ के लिये चुने हुए अश्व को शास्त्रीय विधि के अनुसार छोडा। अर्जुन प्रसन्नता के साथ

धर्मराज की आज्ञा से इस अश्व के पीछे-पीछे चले। मार्ग में सज्जन पुरुष अर्जुन की विजय और उनके कुशलपूर्वक शीघ्र लौटने की कामना कर रहे थे। धर्मराज की आज्ञा से अर्जुन के साथ बहुत-से वेदों के पारगत ब्राह्मण और शूरवीर क्षत्रिय भी थे। वह अश्व पहले तो उत्तर दिशा की ओर बढ़ा फिर पूर्व की ओर। जो वीर महाभारत-युद्ध में पाण्डवों द्वारा परास्त किये गये थे या मारे गये थे उनके पुत्रों ने अर्जुन का सामना किया किन्तु वे विफल रहे। त्रिगर्तों से वज्रदत्त से अर्जुन को भयानक युद्ध करना पड़ा किन्तु वह परास्त हो गया। जब मणिपुर नरेश बभ्रुवाहन ने सुना कि पिता अर्जुन मेरे राज्य में अश्व के पीछे आये हैं तब वह ब्राह्मणों को और बहुत-सा धन लेकर बड़ी विनय के साथ उनके दर्शन के लिये नगर से बाहर निकला, किन्तु बुद्धिमान अर्जुन ने उसका आदर नहीं किया।

वे कुपित होकर बोले—'बेटा, तेरा यह व्यवहार क्षत्रिय धर्म के विपरीत है। मैं महाराज युधिष्ठिर के अश्व की रक्षा करता हुआ मेरे राज्य के भीतर आया हूँ, किन्तु तू मुझसे युद्ध नहीं करता। तूने संसार में अभी तक कोई पुरुषार्थ नहीं किया है। यदि मैं खाली हाथ तेरे पास आता तो तेरा इस प्रकार व्यवहार ठीक था।'

अर्जुन की अपने पुत्र बभ्रुवाहन के प्रति ऐसी कटु बाते नाग-कन्या उलूपी जो अर्जुन की पत्नी थी, सहन न कर सकी और बभ्रुवाहन से धर्म-सम्मत बोली—'बेटा मैं तुम्हारी विमाता हूँ। तुम मेरी आज्ञा का पालन करो, इससे तुम्हें महान धर्म की प्राप्ति होगी। तुम्हारे पिता धर्मज्ञ कुरुकुल के श्रेष्ठ वीर अर्जुन इस समय युद्ध के मद मे उन्मत्त हो रहे है, अत. इनके साथ तुम अवश्य युद्ध करो। ऐसा करने से वे तुम पर प्रसन्न होगे।' माता के द्वारा इस प्रकार अमर्ष दिखलाने पर महातेजस्वी राजा बभ्रुवाहन ने युद्ध करने का निश्चय किया और अर्जुन का सामना करने के लिये आगे बढा। उसने अपने पिता पार्थ

द्वारा सुरक्षित उस अश्व को पकड़ लिया और सैकडों वाणों द्वारा अर्जुन को वीध डाला।

इस पर महातेजस्वी अर्जुन ने अपने पुत्र की प्रशसा करते हुए उससे कहा—'महावाहु चित्रागदा कुमार ! तुम धन्य हो। वत्स, तुम्हारा यह पराक्रम देखकर मैं तुम पर वहुत प्रसन्न हूँ। अव मैं तुम पर वाणो की वर्षा करने वाला हूँ। तुम सावधान एव स्थिर हो जाओ।' ऐसा कहकर अर्जुन ने वभ्रुवाहन पर नाराचो की वर्षा आरम्भ कर दी किन्तु वभ्रुवाहन ने विजली के समान तेजस्वी उन समस्त नाराचो को अपने वाणो द्वारा टुकडे-टुकडे कर दिये। कुन्तीपुत्र अर्जुन अपने पुत्र के पराक्रम से वहुत प्रसन्न थे, इसलिये उन्होंने उसे अधिक पीडा नही दी, किन्तु वलवान वभ्रुवाहन पिता को युद्ध मे विरत मानकर वाणो द्वारा पीडा देने लगा। उसने वालोचित अविवेक के कारण परिणाम पर विचार किये विना ही एक तीखे वाण द्वारा अपने पिता की छाती मे गहरा आघात पहुँचाया। उस अत्यन्त दुःखदायी वाण ने पाण्डु पुत्र अर्जुन के मर्म स्थान को वेध दिया, इससे कुरुनन्दन अर्जुन मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। राजा वभ्रुवाहन वडे पराक्रम और अभय से लड़ा, पर अर्जुन के वाणो द्वारा वह भी घायल हो चुका था, अतः पिता को अचेत देख वह भी मूर्छित हो गया।

पति को अचेत और पुत्र को भी सज्ञा-शून्य देखकर शोक से सतप्त हो दिव्यरूप धारिणी नागकन्या उलूपी जो सामने खडी थी चित्रांगदा से वोली—'वहन ! देखो हम दोनो के स्वामी अचेत होकर पृथ्वी पर सो रहे हैं। तुम्हारी ही प्रेरणा से मेरे वेटे ने समर विजयी अर्जुन की यह दशा की है। वहन ! तुम तो आर्य धर्म को जानने वाली और पतिव्रता हो। यदि ये हमारे पति सर्वथा तुम्हारे अपराधी हो तो भी आज तुम इन्हे क्षमा कर दो। शुभे ! यद्यपि मेरा पुत्र भी पृथ्वी पर निस्तेज पड़ा है तो भी मैं उसके लिये शोक नही करती हूँ, किन्तु मुझे

अपने पतिदेव के लिये शोक है जिनका हमने यहाँ इस प्रकार आतिथ्य सत्कार किया है। बहन ! तुम्हे शोक या पश्चाताप नही हो रहा है इसका क्या कारण है ?' चित्रांगदा अर्जुन को सबोधन कर फिर बोली—'प्राणेश्वर ! मैने तुम्हारा यज्ञ पशु छोड़ दिया है, अत. इसकी रक्षा के लिये तुम उठो और इसके पीछे-पीछे जाओ। कुरुनन्दन ! मेरे और पाण्डवो के प्राण तुम्हारे ही अधीन है फिर तुम यहाँ पृथ्वी पर क्यों सो रहे हो ? बहन उलूपी ! मृत्यु के वश में पड़ा हुआ मेरा यह बालक चाहे सदा के लिये भूमि पर सोता रह जाये, किन्तु निद्रा के स्वामी अरुणनयन अर्जुन अवश्य जीवित हों यही उत्तम है। विधाता ने पति और पत्नी का सम्बन्ध सर्वदा और अटूट बनाया है। इस महत्व को समझो और ऐसा कोई उपाय करो जिससे तुम्हारा भी इनके साथ स्थापित किया हुआ सम्बन्ध सत्य एव सार्थक रहे। बहन ! मै पति और पुत्र से वचित होकर दु.ख में डूब रही हूँ अतः सबके देखते-देखते मैं आमरण अनसन करूँगी,' और वही उपवास का सकल्प लेकर चुपचाप बैठ गयी।

कुछ समय पश्चात राजा बभ्रुवाहन को चेत हुआ। उसने देखा, माता पति के साथ मरने का निश्चय करके बैठी है। इससे उसे अत्यत दु ख हुआ और उसने अपनी शोकग्रस्त माता से कहा—'मेरे अपराध को क्षमा करो। संग्राम मे किसी के लिये, जिनका सामना करना नितान्त कठिन है, जो सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं, उन्ही मेरे पिता अर्जुन की मैंने अज्ञान के आवरण से ऐसी दशा कर दी। माता ! मुझे धिक्कार है कि ऐसा कुकर्म करने पर भी मेरी छाती नही फटती। मैं अत्यन्त पापी, क्रूर और समरागण में पिता की हत्या करने वाला हूँ अतः इन असीम पापों का नाश करने के लिये मुझे कौन-सा प्रायश्चित करना चाहिये। नागकुमारी माता ! अब मै इस शरीर को धारण नही कर सकता। मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि मै भी उसी मार्ग पर जाऊँगा जहाँ पिताजी गये है, क्योंकि

उनके बिना मेरा जीवन असम्भव है।'

पिता के शोक से सतप्त हुआ मणिपुर नरेश बभ्रुवाहन अपनी माता के साथ आमरण उपवास व्रत लेकर बैठ गया। यह देख उलूपी सजीवनी मणि जो नागो के जीवन की आधारभूत है ले आई और बभ्रुवाहन से बोली—'बेटा! उठो, शोक न करो। ये अर्जुन तुम्हारे द्वारा परास्त नही हुये हैं। ये तो सग्राम मे अपने पुत्र का बलबुद्धि जानना चाहते थे। ये तो मनुष्य और इन्द्र सहित सभी देवताओ के लिये भी अजेय है। यह तो मैंने तुम्हारे यशस्वी पिता धनजय का प्रिय करने के लिये ही मोहिनी माया दिखलायी थी। पुत्र! मेरे पास जो दिव्य मणि है वह नागराजो को जीवित किया करती है। तुम इसे अपने पिता की छाती पर रख दो, वे स्वस्थ हो जायेंगे।'

माता उलूपी की आज्ञा से निष्पाप, अमित तेजस्वी बभ्रुवाहन ने अपने पिता पार्थ की छाती पर स्नेहपूर्वक वह मणि रख दी। उस मणि के प्रभाव से शक्तिशाली अर्जुन देर तक सोकर जगे हुए की भाँति आँख मलते हुए पुन उठ खडे हुए। बभ्रुवाहन ने उनके चरणो मे प्रणाम किया और अर्जुन ने भी उसको हृदय से लगाकर उसका मस्तक सूँघा।

अर्जुन ने देखा, बभ्रुवाहन की शोकाकुल माता चित्रागदा उलूपी के साथ खडी है। अर्जुन ने नागकन्या उलूपी से पूछा—'देवी! यह सारा समरागण शोक, विस्मय और हर्ष से युक्त क्यो दिखायी देता है? यहाँ स्त्रियो के आने का क्या कारण है?'

नागराज कन्या हँसती हुई-सी बोला—'प्राणवल्लभ! पहले तो मैं आपके चरणो मे सिर रखकर प्रणाम करती हूँ। यदि मुझसे कोई दोष हो गया हो तो आप मुझ पर क्रोध न करे, क्योकि मैंने जो कुछ किया है वह सब आपकी प्रसन्नता के लिये ही किया है। प्राणेश्वर! आपने महाभारत युद्ध मे शान्तनुनन्दन भीष्म पितामह को शिखण्डी को आगे करके उन्हे अधर्मपूर्वक मारा है, उस पाप का अब प्रायश्चित हो गया। उसकी

शाति किये विना ही यदि आप प्राणों का परित्याग करते तो उस पाप कर्म के प्रभाव से निश्चय ही आपको नरक में जाना पड़ता। महामते ! पूर्व काल में गगातट पर वसुओं और गगाजी ने आपको शाप दिया था कि वीर अर्जुन की मृत्यु उनके पुत्र के हाथ होगी। यह सुनकर मेरी सारी इद्रियाँ व्यथित हो उठी और मैंने अपने पिताजी से सारा वृतान्त कह दिया। पिताजी को यह अशुभ समाचार सुनकर वडा दु ख हुआ और वे वसुओं के पास जाकर वारवार आपके अपराध की क्षमा याचना करने लगे।

'तव वसुगण वोले—'महाभाग नागराज! मणिपुर का नवयुवक राजा वभ्रुवाहन अर्जुन का पुत्र है, यदि वह युद्ध भूमि में अपने वाणों द्वारा उन्हे पृथ्वी पर गिरा देगा तव अर्जुन हमारे शाप से मुक्त हो जायेगा।' मेरे पिता ने मुझसे यह बात कही थी। तव से मैंने इसीके अनुसार चेष्टा की है और आपको शाप से मुक्त किया है। प्राणेश्वर ! देवराज इन्द्र भी आपको युद्ध में परास्त नही कर सकते। पुत्र तो आपकी आत्मा ही है। किन्तु शाप के कारण इसके हाथ से यहाॅ आपकी पराजय हुई है।'

अर्जुन ने प्रसन्न चित्त से कहा—'प्रिय उलूपी ! तुमने जो यह कार्य किया है वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। पुत्र वभ्रुवाहन ! आगामी चैत्र मास की पूर्णिमा को महाराजा युधिष्ठिर का यज्ञ सम्पन्न होगा। तुम अपनी दोनो माताओ और मन्त्रियो के साथ अवश्य हस्तिनापुर आना।'

वभ्रुवाहन ने कहा—'धर्मज्ञ ! आपकी आज्ञा से मै अश्वमेघ महायज्ञ में अवश्य उपस्थित होऊँगा और ब्राह्मणो को भोजन परोसने का काम करूँगा। मेरी प्रार्थना पर आप अपनी इन दोनो धर्मपत्नियों के साथ मेरे नगर मे प्रवेश करे और एक रात सुखपूर्वक वहाॅ निवास करे क्योकि वह भी आपका ही घर है।'

अर्जुन वोला—'चित्रागदा कुमार ! तुम जानते हो कि मै

दीक्षा ग्रहण कर विशेष नियमो का पालन करता हुआ विचर रहा हूँ। इसलिये तुम्हारे नगर में प्रवेश नही करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं घोडे के पीछे जाता हूँ।' तदनन्तर बभ्रुवाहन ने अपने पिता अर्जुन की विधिवत् पूजा की और वे अपनी दोनों भार्याओ की अनुमति लेकर वहाँ से चल दिये।

दैवयोग से घोडा हस्तिनापुर की तरफ चल दिया। रास्ते मे राजगृह नामक नगर मे राजा मेघसन्धि ने धनजय पर आक्रमण कर दिया। दोनों मे घमासान युद्ध हुआ, पर मगध नरेश थोड़ी देर मे ही बलहीन हो गया। अर्जुन ने उसे सात्वना देते हुए कहा—'वत्स ! तुमने क्षत्रिय धर्म का पूरा-पूरा प्रदर्शन किया है। अब अपने घर जाओ। भूपाल ! तुम अभी बालक हो। इस समरागण मे तुमने जो पराक्रम दिखाया है, यही तुम्हारे लिये बहुत है। राजन् ! महाराजा युधिष्ठिर का आदेश है कि चैत्र मास की पूर्णिमा को अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर तुम हस्तिनापुर अवश्य आना।' सहदेव पुत्र मेघसन्धि ने अर्जुन की आज्ञा शिरोधार्य की और उनका विधिवत् पूजन किया।

तदनन्तर अश्व चेदीराज शिशुपाल के पुत्र शरमन की राजधानी मे पहुँचा। वहाँ शरमन ने पहले तो अर्जुन से युद्ध किया किन्तु परास्त होने पर उनकी पूजा की। वीर अर्जुन ने उसे भी हस्तिनापुर आने का निमन्त्रण दिया।

दक्षिण देश मे महाबली शत्रुमर्दन चित्रागद नरेश से अर्जुन का भयकर युद्ध हुआ किन्तु वह भी परास्त हो गया। उसे भी अर्जुन ने सात्वना देकर हस्तिनापुर आने का निमत्रण दिया। फिर उन्होने निषादराज एकलव्य के पुत्र को परास्त किया और उसके द्वारा भी पूजित हुए। अर्जुन का द्रविड, आन्ध्र, रौद्र, महाषिक और कोलाचल के प्रान्तो मे रहने वाले वीरो के साथ भी युद्ध हुआ। उन सबको मृदुल पराक्रम से ही जीत कर वे सौराष्ट्र, गोकर्ण और प्रभास क्षेत्र से होते हुए द्वारिकापुरी मे जा पहुँचे। वहाँ पाण्डवो के मामा वसुदेव और राजा उग्रसेन

अर्जुन से बड़ी प्रसन्नतापूर्वक मिले।

उन दोनों से विदा ले अर्जुन अश्व के पीछे फिर चले जो पंचनद प्रदेश मे होता हुआ गान्धार में जा पहुँचा। वहाँ शकुनि-पुत्र के साथ किरीटधारी अर्जुन का घोर युद्ध हुआ। गान्धार राजमाता अत्यन्त भयभीत हो मन्त्रियों के साथ उत्तम अर्घ्य लेकर रणभूमि मे उपस्थित हुई। उसने अपने व्यग्रतारहित एव रणोन्मत्त पुत्र को युद्ध करने से रोका और वीर अर्जुन को प्रिय वचनों द्वारा प्रसन्न किया। सामर्थ्यशाली अर्जुन ने भी मामी का सम्मान किया और शकुनि के पुत्र को सांत्वना देते हुए कहा—'महाबाहुवीर! तुमने जो मुझसे युद्ध करने का विचार किया, यह मुझे प्रिय नही लगा क्योकि तुम तो मेरे भाई ही हो। राजन्! मैंने माता गान्धारी और पिता धृतराष्ट्र का तुमसे सम्बन्ध याद कर युद्ध में तुम्हारी उपेक्षा की है, इसलिये तुम अभी तक जीवित हो।अब हम लोगो मे ऐसा व्यवहार नही होना चाहिये। तुम आगामी चैत्र मास की पूर्णिमा पर अश्वमेध यज्ञ देखने हस्तिनापुर अवश्य आना।' यह सुन शकुनि पुत्र ने उनका सम्मान किया और उन्हें सहर्ष विदा दी। गान्धार देश से अश्व हस्तिनापुर पहुँचा। अर्जुन ने राजधानी मे पहुँच कर गुरुजनों को प्रणाम किया और उन्होने भी उन्हे बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिये।

अर्जुन के अद्भुत पराक्रम को सुनकर युधिष्ठिर के हर्ष की सीमा न रही। माघ महीने की शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि एव पुष्प नक्षत्र का योग के दिन महाराज युधिष्ठिर ने भाइयो से अश्वमेध यज्ञ के लिये सामग्री जुटाने और व्यवस्था करने की आज्ञा दी। उन्होने उन मित्र राजाओ को निमन्त्रण भेजा जो भाँति-भाँति के रत्न और अस्त्र-शस्त्र लेकर हस्तिनापुर मे उपस्थित हुए। राजा युधिष्ठिर ने उन अतिथियो का अलौकिक सत्कार किया। उस महायज्ञ मे बहुत से वेदवेत्ता मुनि, वेदपाठी ब्राह्मण भी पधारे थे। भीमसेन के द्वारा अपूर्व सुन्दर यज्ञशाला

निर्मित की गई थी। प्रतिदिन वडी सख्या मे ब्राह्मणो को स्वादिष्ट भोजन कराया जाने लगा। तदनन्तर भगवान श्रीकृष्ण, वलदेवजी, सात्यकि, प्रद्युम्न, गद, निशठ, साम्ब तथा कृतवर्मा आदि वृष्णि वशी हस्तिनापुर पहुँचे। महाराज युधिष्ठिर ने उन सवका उत्तम सत्कार किया। वभ्रुवाहन भी अपनी दोनो माताओ, मन्त्रियो सहित राजधानी हस्तिनापुर मे पहुँचे। पाण्डवो सहित द्रौपदी ने उन सवका वहुत सत्कार किया और नाना प्रकार की भेंट अर्पित की। वभ्रुवाहन और उनकी माताओं ने भगवान श्रीकृष्ण, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और पाण्डवो की विधिवत पूजा की और उनसे अनेक आशीर्वाद प्राप्त किये।

तदनन्तर महर्षि व्यास ने युधिष्ठिर को यज्ञ कार्य करने की आज्ञा दी। धर्मराज युधिष्ठिर से वेदो के ज्ञाता सर्वज्ञ याजको ने यज्ञ के सम्पूर्ण कर्म किये और करवाये। यज्ञ मडप मे अग्नि चयन के लिये चार स्थान वने थे। उनमे प्रत्येक वेदी गरुड के समान आकार की सुवर्णमय पखो से युक्त वनी थी। मनीषी याजको ने देवताओ की विधिवत पूजा की और व्यासजी ने यज्ञ को पूर्ण किया। युधिष्ठिर और पाण्डवो ने ब्राह्मणो, मुनि, याजको और दीन-दुखियो को वहुत दान देकर सतुष्ट किया।

तत्पश्चात राजा युधिष्ठिर ने अपने राज्य की सम्पूर्ण भूमि व्यासजी को दान दे दी। उसे उन्होने ग्रहण कर युधिष्ठिर से कहा—'राजन् ! तुम्हारी दी हुई इस पृथ्वी को मैं पुन. तुम्हारे ही अधिकार मे छोड़ता हू। तुम मुझे इसके वदले कुछ धन दे दो, क्योकि ब्राह्मण धन के ही इच्छुक होते है राज्य के नही।'

महामना युधिष्ठिर ने कहा—'विप्रवरो ! अश्वमेध महायज्ञ में पृथ्वी की दक्षिणा देने का विधान है, अत. अर्जुन के द्वारा जीती हुई यह सारी पृथ्वी मैंने ऋत्विजो को दे दी है। अव मैं वन मे चला जाऊँगा। आप लोग चातुर्होत्र यज्ञ के प्रमाणानुसार पृथ्वी के चार भाग करके इसे आपस मे वाँट ले। द्विजश्रेष्ठ ! मैं ब्राह्मणो का धन नही लेना चाहता। मेरे भाइयो का भी ऐसा

ही निश्चय है।' इस महान त्याग की बात को सुनकर सबके हर्ष से रोंगटे खड़े हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'भारत श्रेष्ठ पाण्डवो! तुमने बहुत ही उत्तम निश्चय किया है। तुम धन्य हो।' यही शब्द ब्राह्मण समूह के मुंह से भी निकले।

मुनिवर व्यासजी ने युधिष्ठिर की प्रशसा करते हुए कहा—'राजन्! तुमने तो यह पृथ्वी मुझे दे ही दी किन्तु अब मै इसे वापस करता हूँ। तुम इन ब्राह्मणों को इसके बदले धन दे दो और पृथ्वी अपने पास ही रखो।

भगवान श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज! भगवान व्यास जैसा कहते है वैसा ही तुम्हे करना चाहिये।' यह सुन कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर भाइयो सहित बहुत प्रसन्न हुए और ब्राह्मणो को सतोषप्रदायक उचित धन देकर विदा किया। महातेजस्वी व्यासजी ने दक्षिणा के रूप मे जो धन प्राप्त किया था वह उन्होने बड़े आदर से कुन्ती को भेट कर दिया। श्वसुर की ओर से प्रेमपूर्वक मिली हुए धन राशि को पाकर कुन्ती देवी बडी प्रसन्न हुई और उसके द्वारा उन्होने सामूहिक पुण्य कार्य किये। राजा युधिष्ठिर यज्ञ के अत मे भाइयो से सम्मानित हो अवभृथ स्नान करके पापरहित हो गये। उन्होने आये हुए अतिथि राजाओ को उत्तम भेट देकर विदा किया। उन्होने वीर बभ्रुवाहन को भी प्रचुर धन दे अपने राज्य मे लौटने की आज्ञा दी। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति की और उन्हें भी परिवार सहित विदा किया। उस यज्ञ मे जो निमन्त्रित आये थे, वे आनन्द विभोर हो रहे थे क्योकि जिसकी जैसी इच्छा थी वही उसको मिलता था, इसलिये इच्छा व कामना के तृप्त होने पर वे अपने-अपने घर लौट गए।

# श्रद्धापूर्वक दान सबसे उत्तम

महाराज युधिष्ठिर के महान दान से चारो ओर जय-जय ध्वनि हो रही थी। इसी समय उनकी सभा मे एक नेवला जिसकी आँखें नीली थी और शरीर का आधा भाग सुनहरा था, आया और कहा—'राजन्! तुम्हारा यह यज्ञ एक उञ्छवृत्ति-धारी उदार ब्राह्मण के सेरभर सत्तू दान करने के बराबर भी नही हुआ है।'

नेवले की बात सुन समस्त श्रेष्ठ ब्राह्मणो को बडा आश्चर्य हुआ। ब्राह्मणो ने उससे पूछा—'नेवले! इस यज्ञ मे तो साधु पुरुषो का ही समागम हुआ है। तुम कहाँ से आ रहे हो? तुम मे कौन-सा बल और कितना शास्त्र ज्ञान है? तुम कौन हो? हमे अपना परिचय दो। तुम इस यज्ञ की निन्दा क्यो करते हो? हमने नाना प्रकार की सामग्रियो द्वारा यह यज्ञ पूर्ण किया है। इस यज्ञ मे शास्त्रसम्मत और न्याययुक्त प्रत्येक कर्तव्य कर्म का यथोचित पालन किया गया है। इसमे पूजनीय पुरुषो की विधि-वत पूजा हुई है और मन्त्रो द्वारा अग्नि मे आहुतियाँ दी गई है। महाराजा युधिष्ठिर ने निष्काम भाव से देने योग्य वस्तुओ का दान किया है। यह सब होने पर भी तुमने यहाँ क्या देखा या सुना है जिससे इस यज्ञ पर आक्षेप लगाते हो?'

नेवला बोला—'विप्र वृन्द! मैंने आप लोगो से मिथ्या या घमड मे आकर कोई बात नही कही है। मैंने सब सत्य ही कहा है। मैंने उपरोक्त वृत्त करने वाले ब्राह्मण के सम्बन्ध मे जो कुछ देखा और अनुभव किया है वह उत्तम एव अद्भुत है। उस दान के प्रभाव से उस द्विजश्रेष्ठ ने पत्नी, पुत्र, पुत्रवधु सहित स्वर्ग-लोक को प्राप्त किया है। वहाँ जिस तरह मेरा यह आधा शरीर स्वर्ण रूप बन गया, वह सब प्रसग मैं आप लोगो को बताता हूँ।

'द्विज श्रेष्ठो! कुछ समय पहले धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र मे बहुत से

धर्मज्ञ महात्मा और ब्राह्मण रहते थे। वे उञ्छवृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करते थे। वे शुद्ध आचरण जितेन्द्रिय तपस्या में सलग्न रहते थे। एक समय वहाँ भयंकर दुर्भिक्ष पडा। एक ब्राह्मण के पास अन्न का सग्रह नही था अतः वह भूख से सतप्त रहने लगा। एक दिन ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष में दोपहर के समय ब्राह्मग सपरिवार अन्न लाने के लिये चला। यद्यपि वे सब भूख, गर्मी और परिश्रम से पीड़ित थे किन्तु उन्हें अन्न नही मिला। एक आगन्तुक ने उन्हें एक सेर जौ अर्पण किया। उन्होंने उस जौ से सत्तू तैयार किया और जप तथा नैत्यिक नियम पूर्ण करके अग्नि में विधिपूर्वक आहुति देने के पश्चात उस सत्तू को बाँटकर खाने का प्रयत्न करने लगे। उसी समय एक ब्राह्मण अतिथि उनके यहाँ आया। उस अतिथि को प्रणाम कर उन्होने उससे उसका मगल पूछा और कहा—'भगवन्! अर्घ्य, पाद्य, आसन और यह सत्तू आपकी सेवा मे प्रस्तुत है। इन्हे आप स्वीकार कर हमे कृतार्थ करे। ब्राह्मण ने जो अपने भाग का सत्तू उस अतिथि को अर्पण किया था वह उसने खा लिया किंतु उससे वह सतुष्ट नही हुआ।

'ब्राह्मण पत्नी ने कहा—'नाथ! यह मेरे भाग का सत्तू भी इन्हे दे दीजिये जिससे कि ब्राह्मण देवता इच्छानुसार तृप्ति लाभ कर यहाँ से पधारे।' गृहस्थ ब्राह्मण ने विचार किया कि यह मेरी वृद्धा स्त्री अत्यन्त दुर्बल, क्षुधा से पीडित, थकान से काँप रही है। इस तपस्विनी के शरीर मे चमडे से ढकी हुई हड्डियो का ढांचा मात्र रह गया है, ऐसी अवस्था में इससे उसके भाग का सत्तू अतिथि को नही देना चाहिये।

'ब्राह्मण बोला—'शोभने! अपनी स्त्री की रक्षा और पालन-पोषण करना तो कीट-पतग और पशु का भी कर्तव्य है अतः तुम्हें ऐसी बात नही करनी चाहिये। जो पुरुष होकर भी स्त्री के द्वारा अपना पालन-पोषण और देह रक्षण करता है, वह मनुष्य दया का पात्र है। वह उज्ज्वल कीर्ति से भ्रष्ट हो जाता

है और उसे उत्तम लोक नही मिलते। धर्म, काम, अर्थ-सम्बन्धी कार्य, सेवा सुश्रूषा तथा वश-परम्परा की रक्षा सब स्त्री के ही अधीन है। जो पुरुष स्त्री की रक्षा करना अपना कर्तव्य नही समझता या रक्षा करने मे असमर्थ है, वह महान अपयश का भागी होता है और उसे नरक मे जाना पडता है।'

'ब्राह्मणी ने कहा—'पतिदेव! स्त्रियो का सत्य, धर्म, स्वर्ग तथा उनकी सारी अभिलाषा पति के ही अधीन है। पति के सयोग से ही वश-परम्परा चलती है। स्त्रियो के लिये पति ही सबसे बडा देवता है। आप पालन करने के कारण मेरे पति, भरण-पोषण करने से भर्ता और पुत्र प्रदान करने के कारण वर-दाता है। इसलिये यह मेरे हिस्से का सत्तू अतिथि देवता को अर्पण कीजिये। जैसी मेरी स्थिति है वैसी ही आपकी भी है।' पत्नी के आग्रह पर ब्राह्मण ने पत्नी के हिस्से का भी सत्तू अतिथि देवता को दे दिया। अतिथि उस सत्तू को भी खा गया, किन्तु असन्तुष्ट ही रहा।

'पुत्र बोला—'पिताजी! आप मेरे हिस्से का यह सत्तू भी अतिथि देवता को दे दीजिये। मैं इसे पुण्य मानता हूँ। साधु पुरुषो का कथन है कि पुत्र को अपने माता-पिता का यत्नपूर्वक पालन-पोषण करना चाहिये। सनातन श्रुति भी यही कहती है। प्राण धारण मात्र से तप हो सकता है अत' प्राण ही परम धर्म है।'

'पिता ने कहा—'बेटा! पुत्र को जन्म देकर ही पिता अपने को कृतकृत्य मानता है। बच्चो की भूख प्रबल होती है। मैं तो बूढा हूँ, अत. भूखा रहकर भी प्राण धारण कर सकता हूँ। जीर्ण अवस्था हो जाने के कारण मुझे भूख अधिक कष्ट नही देती। मैं तो दीर्घ काल तक तपस्या कर चुका हूँ, इसलिये अब मुझे मरने का भय भी नही है।'

'पुत्र बोला—'तात! मैं आपका पुत्र हूँ, पुरुष का त्राण करने के कारण ही सतान को पुत्र कहा है, अत आप अपने

आत्माभूत पुत्र के द्वारा अपनी रक्षा कीजिये।'

'पिता ने कहा—'बेटा ! तुम शील, धर्म, आचरण, इंद्रिय-सयम में मेरे ही समान हो। तुम्हारे इन गुणो की मैंने अनेक बार परीक्षा की है।' यह कह उसने पुत्र के हिस्से का सत्तू भी अतिथि देवता को हँसते-हँसते परोस दिया। वह सत्तू खाकर भी अतिथि देवता का पेट न भरा। यह देखकर ब्राह्मण सकोच में पड़ गया।

'उनकी पुत्रवधू भी बडी सुशीला थी। उसने बडी प्रसन्नता से अपने श्वसुर से कहा—'पूज्यवर ! आपके पुत्र से मुझे सतान प्राप्त होगी। पुत्र के द्वारा मनुष्य पितृ-ऋण से छूटकर उन लोको मे जाते है जहाँ शोक नही करना पडता। जैसे धर्म सयुक्त अर्थ और काम स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले है तथा जैसे आह्व-नीय, आर्हपत्य और दक्षिणाग्नि ये तीनों स्वर्ग प्राप्त कराने के साधन है उसी प्रकार पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र ये त्रिविध सतानें स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली है। आप मेरे परम पूज्य है। मेरे हिस्से का सत्तू भी आप अतिथि देवता को अर्पित कीजिये।'

'श्वसुर बोला—'बेटी ! हवा, धूप, व्रत और आचार का पालन करने से तुम कान्तिहीन और दुर्बल हो गई हो। क्षुधा के कष्ट से तुम्हारा चित्त अत्यत व्याकुल है। तुम्हें ऐसी दशा मे देखकर तुम्हारा सत्तू मैं कैसे अतिथि को अर्पण करूँ ? तुम्हारा सत्तू लेने से अधर्म होगा, इसलिये कल्याणि ! तुम्हे ऐसी बात नही करनी चाहिये।'

'पुत्रवधू ने कहा—'भगवन् ! आप मेरे गुरु देवता है। मेरा शरीर, प्राण और धर्म बडों की सेवा के लिये ही है। आपके प्रसाद से मुझे उत्तम लोकों की प्राप्ति हो सकती है अत आप मुझे भक्त मानकर यह सत्तू अतिथि को दे दीजिये।'

'श्वसुर बोला—'बेटी ! तुम सती, साध्वी, धर्मशीला और सदाचार पालन करने वाली नारी हो, अतः तुम्हारा दिया हुआ सत्तू मै अवश्य अतिथि को देता हूँ।'

'चौथे भाग का सत्तू खाकर ब्राह्मण महात्मा बड़ा प्रसन्न हुआ। उस श्रेष्ठ द्विज के रूप मे साक्षात धर्म ही वहाँ उपस्थित थे। वे ब्राह्मण से बोले—'द्विजश्रेष्ठ! तुमने अपनी शक्ति के अनुसार धर्मपूर्वक न्यायोपार्जित शुद्ध अन्न का दान मुझे दिया है इससे तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ। भूख मनुष्य की बुद्धि को मद कर देती है, इसलिये वह धीरज खो बैठता है और उसके धार्मिक विचार मिट जाते है। जब मनुष्य मे दान विषयक रुचि जाग्रत होती है, तब उसके धर्म का ह्रास नही होता। मनुष्य के लिये न्यायपूर्वक धन उपार्जन कर उसे सत्पात्र को अर्पण करना ही श्रेष्ठ कर्म है। साधारण समय में दान देने की अपेक्षा उत्तम समय पर दान देना अच्छा है किन्तु श्रद्धा का महत्व काल से भी बढकर है। स्वर्ग का द्वार मनुष्य मोह, क्रोध और लोभवश देख नही पाते, किन्तु जो जितेन्द्रिय है वे दान के प्रभाव से उस द्वार को देखते हैं। निर्धन राजा रतिदेव जल का ही दान कर पाये थे, इससे वे स्वर्ग लोक में गये। तात! अन्यायपूर्वक प्राप्त हुए द्रव्य की बडी राशि दान देने से भी धर्म को उतनी प्रसन्नता नही होती, जितनी न्यायपूर्वक श्रद्धा से दिये हुए थोडे से अन्न-दान से होती है। ब्राह्मण! मै धर्म हूँ, मेरी प्रसन्नता से तुम स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू के साथ शीघ्र ही स्वर्ग मे चले जाओगे।' इतना कह धर्म अतर्धान हो गये और ब्राह्मण सपरिवार स्वर्ग सिधारा।'

नेवले ने कहा—'तदनन्तर मै बिल से बाहर आया और पृथ्वी पर पड़े हुए सत्तू के कणों को सूँघा, आचमन से गिरे हुए जल और अर्पण किये हुए पुष्पों से मेरा स्पर्श हुआ। उसी के प्रभाव से मेरा यह आधा शरीर स्वर्ण के रूप का हो गया। ब्राह्मणो! अब मैं इस चिन्ता मे हूँ कि मेरे शरीर का शेष भाग भी स्वर्ण के रूप का कैसे हो। इसी उद्देश्य से बडे हर्ष और उत्साह के साथ मैं अनेक यज्ञ स्थलो मे जाता हूँ। महाराज युधिष्ठिर के इस यज्ञ की प्रशसा सुन बड़ी आशा लगाकर मैं

यहाँ आया था, किन्तु मेरा यह आधा शरीर स्वर्ण रूप नही हुआ। ब्राह्मणो! इसीसे मैंने दुःखी मन से हँसकर कहा था कि यह यज्ञ ब्राह्मण के दिये हुए सेर भर सत्तू के बराबर भी नही है।'

उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से ऐसा कह वह नेवला वहाँ से चला गया। इस पर ब्राह्मणों ने भी निश्चय किया कि न्यायोपार्जित वस्तु का श्रद्धापूर्वक दान करना अति उत्तम है।

## पाण्डवों का महाप्रस्थान

महाभारत युद्ध के कई वर्षो पश्चात् राजा युधिष्ठिर को अपशुकन दिखायी देने लगे। बिजली की गडगडाहट के साथ प्रचण्ड आँधी चलने लगी। दिशाएँ कुहरे से आच्छादित रहने लगीं। आकाश से उल्कापात होने लगा। उदय काल से ही सूर्य तेजोहीन प्रतीत होते थे। बहुत-से भयसूचक उत्पात दिखायी देने लगे, जो हृदय को उद्विग्न कर देने वाले थे।

अर्जुन द्वारका गये हुए थे। कई महीने बीत जाने पर भी वह वहाँ से लौटकर नही आये। उन्होंने भीमसेन से कहा—'भीम! अर्जुन को हमने द्वारका इसलिए भेजा था कि वहाँ श्रीकृष्ण क्या कर रहे है, इसका पता लगा आये और सबधियो से मिल भी आये। सात महीने बीत गये, पर वह अब तक नही लौटे, इसका कारण मैं नही समझ पा रहा हूँ। कही देवर्षि नारद द्वारा बतलाया हुआ भगवान श्रीकृष्ण की लीला समाप्ति का समय तो नही आ गया? मेरा हृदय अधीर हो रहा है और तरह-तरह की चिन्ताओ ने मुझे घेर रखा है।'

युधिष्ठिर ऐसा कह ही रहे थे कि अर्जुन द्वारका से लौटकर आये। उन्होने देखा कि अर्जुन का शरीर निस्तेज है और उनकी आँखो से आँसू बह रहे है। युधिष्ठिर ने चिन्तातुर हो उनसे पूछा—'भाई! द्वारकापुरी में यादव सकुशल तो है?

प्रभु वलराम तो आनन्द से है ? भगवान श्रीकृष्ण और सभी आत्मीय कुशल से हैं न ? तुम स्वय कुशल से हो न ? तुम श्री-हीन से दिखलाई पड रहे हो, तुम्हारा किसी ने अपमान तो नही किया ? मुझे विश्वास है कि तुमने कोई ऐसा निन्दनीय काम नही किया होगा, जो तुम्हारे योग्य न हो। हो न हो, अपने परम-प्रिय सुहृदय श्रीकृष्ण के विछोह से अपने को तुम शून्य मान रहे हो। इसके सिवा ऐसा कोई दूसरा कारण तो नही दीखता, जिससे तुम्हे इतनी मानसिक पीडा हो ?'

अर्जुन श्रीकृष्ण के विरह से कृश हो रहे थे। उन्ही के चिन्तन मे वह ऐसे डूब रहे थे कि वडे भाई के प्रश्नो का तुरन्त कुछ भी उत्तर न दे सके। भगवान ने उनके साथ जो मित्रता, अभिन्नहृदयता और प्रेम से भरे व्यवहार किये थे, उनकी याद उन्हे रह-रहकर आ रही थी, किन्तु वडे कष्ट से उन्होने अपने शोक के वेग को रोका और उत्तर दिया—'महाराज ! आज श्रीकृष्ण से मेरा विछोह हो गया है। मेरे जिस प्रवल पराक्रम की वडे-वड़े देवता भी आश्चर्य से प्रशसा किया करते थे, उसे श्रीकृष्ण ने मुझसे छीन लिया। उनके आश्रय से स्वयवर मे राजाओ के तेज को हरण कर मैंने द्रौपदी को प्राप्त किया था। उनके सान्निध्य मात्र से देवताओ सहित इन्द्र को भी जीतकर मैंने खाण्डव-वन अग्निदेव को भेंट किया और मय दानव की निर्माण की हुई सभा प्राप्त की। भीमसेन ने उन्हीकी शक्ति से जरासध का वध किया, जिसकी मृत्यु के पश्चात वहुत से वदी किये गए राजाओ को मुक्त कर दिया गया था। महा-रानी द्रौपदी कौरवो के अत्याचार से आँसू भरकर जव श्रीकृष्ण के चरणो मे गिर पडी, तव उन्होने उसके सामने ही उस घोर अपमान का वदला लेने की प्रतिज्ञा कर उन धूर्तो की स्त्रियो की ऐसी दशा कर दी कि वे विधवाएँ ही हो गई। वनवास के समय हमारे वैरी दुर्योधन के षड्यत्र से दस हजार शिष्यो के साथ भोजन करने वाले महर्षि दुर्वासा ने हमे जव दुस्तर सकट

में डाल दिया था, उस समय उन्होंने द्रौपदी के पात्र में बची हुई शाक की पत्ती का भोग लगाकर हमारी रक्षा की थी। उनके ऐसा करते ही नदी में स्नान करती हुई मुनि-मडली को प्रतीत हुआ, मानो उनकी तो बात ही क्या, सारा त्रिलोक तृप्त हो गया है। उनके प्रताप से मैंने युद्ध में भगवान शकर को प्रसन्न कर उनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया। उनकी कृपा से मैं इसी शरीर से स्वर्ग गया और देवराज इन्द्र की सभा में उनके बराबर के आसन पर बैठने का मुझे सम्मान मिला।

'महाराज ! भीष्म, द्रोण आदि महारथियों से सचालित कौरवो की सेना अजेय थी, परन्तु उनका आश्रय ग्रहण कर अकेले ही मैंने उसे परास्त किया और राजा विराट का सारा गोधन उन्हे वापस दिलाया था। कुरुक्षेत्र में कौरवों की सेना भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य तथा अन्य वीरों से शोभित थी। उसके सामने मेरे आगे-आगे चलकर वे अपनी दृष्टि से ही उन महारथी यूथपतियो की आयु, मन, उत्साह और बल को हर लिया करते थे। जैसे दैत्यों के अस्त्र-शस्त्र भगवद्-भक्त प्रह्लाद का स्पर्श तक नही करते थे, वैसे ही द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, भूरिश्रवा, शल्य और जयद्रथ आदि के शस्त्र मुझे छू तक न सके। यह सभी श्रीकृष्ण के भुजदण्डों की छत्रछाया में रहने का ही प्रभाव था। श्रेष्ठपुरुष ससार से मुक्त होने के लिये जिनके चरण-कमलो का सेवन करते हैं और अपने आप तक को जिनके लिए निछावर कर देते है, ऐसे भगवान को मुझ दुर्बुद्धि ने अपना सारथि तक बना डाला। महाराज ! जो मेरे हृदय ही थे, उन्ही पुरुषोत्तम भगवान से मैं आज विहीन हो गया हूँ। श्रीकृष्ण की पत्नियों को मै द्वारका से अपने साथ ला रहा था, परन्तु मार्ग मे दुष्ट भीलो ने मुझे एक अबला की भाँति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा न कर सका। वही मेरा गाण्डीव धनुष है, वे ही वाण, वही रथ है, वे ही घोड़े और वही मैं रथी अर्जुन हूँ, परन्तु श्रीकृष्ण के बिना ये सब एक ही क्षण में निस्तेज हो गये।

'द्वारकावासी ब्राह्मण के शापवश मोहग्रस्त हो गये। मदिरापान से उन्मत्त हो वे आपस मे ही एक-दूसरे से भिड पडे और नष्ट हो गये। उनमें केवल चार-पाँच ही बचे हैं। वास्तव में यह सर्वशक्तिमान भगवान की ही लीला है। युदुवशियो से भगवान ने दूसरे राजाओ का सहार कराया। तत्पश्चात यदुवशियो से ही यदुवश का नाश करा उन्होने पूर्ण रूप से पृथ्वी का भार उतार दिया। भगवान श्रीकृष्ण ने मुझे जो शिक्षाएँ दी थी, वे देश, काल और प्रयोजन के अनुकूल तथा हृदय के ताप को शात करने वाली थी। उनका स्मरण आते ही मेरा चित्त विकल हो जाता है।'

इस प्रकार प्रगाढ प्रेम से भगवान श्रीकृष्ण के चरणारविन्दो का चिन्तन करते-करते अर्जुन की चित्त-वृत्ति अत्यन्त निर्मल और प्रशात हो गई। उन्हे युद्ध के प्रारम्भ मे भगवान के द्वारा उपदेश किया हुआ गीता-ज्ञान पुन स्मरण हो आया। ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति से माया का आवरण भग हो जाने के कारण उन्हे गुणातीत अवस्था प्राप्त हो गई। कुन्ती ने अर्जुन के मुख से यदुवशियो के विनाश और भगवान के परमधाम-गमन की बात सुन ससार से अपना मुँह मोड लिया। भगवान के स्वधाम प्रयाण और यदुवश के सहार का वृत्तान्त सुन निश्चलमति युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण का निश्चय किया। भगवान श्रीकृष्ण ने जिस दिन अपने मानव देह का उत्सर्ग कर इस पृथ्वी से प्रयाण किया, उसी दिन यहाँ कलियुग आ धमका। महाराज युधिष्ठिर से कलियुग का प्रसार छिपा न रहा। उन्होने देखा कि देश, नगर, घरो और प्राणियो मे लोभ, असत्य, छल, हिसा आदि अधर्मों की वृद्धि हो रही है। अपने विनयी पौत्र परीक्षित को हस्तिनापुर के सम्राट पद पर अभिषिक्त कर युधिष्ठिर ने गृहस्थाश्रम के धर्म से मुक्ति ले सन्यास ग्रहण किया। पाण्डवो और देवी द्रौपदी ने अगो से आभूषण उतारकर वल्कल वस्त्र धारण कर लिये। उन्होने ब्राह्मणो और

गुरुजनों की विधिवत् पूजा की और महायात्रा के लिये प्रस्थान किया। पाण्डवों के साथ एक कुत्ता भी यात्रा में चला। ये सब योगमुक्त थे। हृदय मे परब्रह्म का ध्यान करते हुए उन्होंने उत्तर दिशा की यात्रा की। भीमसेन, अर्जुन आदि भी श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति का निश्चय कर अपने बड़े भाई के पीछे-पीछे चल दिये। पाण्डवों के हृदय मे भगवान श्रीकृष्ण के चरण-कमलों के ध्यान से भक्तिभाव उमड़ आया और उनकी वुद्धि सर्वथा परिशुद्ध हो भगवान के उस स्वरूप में अनन्य भाव से स्थिर हो गई, जिसे निष्पाप पुरुष ही प्राप्त कर सकते है।

वे अनेक तीर्थों में स्नान करते और महात्माओं का दर्शन करते थे। अर्जुन ने अपने दिव्य गाण्डीव धनुष तथा अक्षय तरकस का परित्याग नहीं किया था किन्तु अग्निदेव के कहने पर उन्होने दिव्य आयुधों को जल में फेक दिया। सयम और योग से पूर्ण पाण्डव महापर्वत हिमालय के निकट पहुँच गये और उन्होंने पर्वतों मे श्रेष्ठ महागिरि मेरु का दर्शन किया। धर्मपरायण एव नियमो का पालन करने वाले पाण्डव शीघ्रता से हिमालय पर चल रहे थे। उनमें से द्रुपदकुमारी कृष्णा का मन योग से विचलित हो गया, अतः वह लडखडाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

उसे नीचे गिरी देख महाबली भीमसेन ने धर्मराज से पूछा—'परंतप! महारानी द्रौपदी ने कभी कोई पाप नहीं किया था, फिर किस कारण से यह गिर गई है?'

युधिष्ठिर ने कहा—'पुरुषप्रवर! उसके मन में अर्जुन के प्रति पक्षपात था। आज वह उसी का फल भोग रही है।' ऐसा कह द्रौपदी की ओर देखे बिना ही भारतभूषण बुद्धिमान, धर्मात्मा युधिष्ठिर मन को एकाग्र कर आगे बढ गये।

कुछ समय बाद विद्वान सहदेव भी धराशायी हो गये।

भीमसेन ने पूछा—'भैया! यह तो सदा हम लोगों की सेवा किया करता था और इसमें अहकार का नाम भी नही

था। दैव! यह माद्रीनदन सहदेव किस दोष के कारण ऐसी स्थिति मे पहुँचा है?'

युधिष्ठिर बोले—'यह राजकुमार सहदेव किसी को अपने समान विद्वान् या बुद्धिमान् नही समझता था इसलिये इसकी यह दशा उस दोष के कारण हुई है।' ऐसा कह युधिष्ठिर और शेष भाई सहदेव को वही छोड आगे बढे। द्रौपदी और भाई सहदेव के वियोग से आर्त हो बधु-प्रेमी शूरवीर नकुल भी गिर गये।'

भीमसेन ने कहा—'महाराज! ससार में जिसके रूप की समानता करने वाला कोई नही था, तो भी जिसने अपने धर्म मे त्रुटि नही आने दी और जो सर्वदा हम लोगो की आज्ञा पालन मे तत्पर रहता था, वह हमारा प्रिय बन्धु क्यो पृथ्वी पर गिर गया।

युधिष्ठिर बोले—'भीमसेन! नकुल के मन मे सदा रूप का घमण्ड रहता था इसलिये यह पृथ्वी पर गिरा है। जिसका जैसा कर्म है वह उसका फल अवश्य भोगता है।' द्रौपदी, सहदेव और नकुल के गिरने से श्रेष्ठ पाण्डुपुत्र अर्जुन शोक से सतप्त हो स्वय भी गिर पडे।

इन्द्र के समान तेजस्वी दुर्द्धर्ष वीर पुरुषसिह अर्जुन जब पृथ्वी पर गिरकर प्राण त्यागने लगे तब भीमसेन ने करुणा-युक्त हो राजा युधिष्ठिर से पूछा—'भैया! अर्जुन सत्यवादी, बडो को सम्मान देने वाले, आज्ञाकारी थे। वे ऐसी दशा को क्यो प्राप्त हुए है?'

युधिष्ठिर ने कहा—'भीमसेन! इन्हे अपनी शूरता का अभिमान था। इन्होंने कहा था कि मैं एक ही दिन मे शत्रुओं का नाश कर दूंगा, किन्तु ऐसा नही कर पाए। अर्जुन ने सम्पूर्ण धनुर्धरो का अपमान भी किया था, उन्ही दोषो से इनकी यह दशा हुई है। अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को ऐसा नही कहना चाहिये।' यो कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़े। इतने

में ही भीमसेन भी गिर पड़े।

उन्होंने राजा युधिष्ठिर को पुकार कर पूछा—'मै आपका प्रिय भीमसेन यहाँ गिर पड़ा हूँ, मेरी तरफ एक बार तो देखिये। मेरे इस पतन का क्या कारण है ?'

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'भीम ! तुम बहुत खाते थे और अपने बल की चर्चा और गर्व किया करते थे। इसी दोष से तुम्हें धराशायी होना पडा है।' यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही आगे चल दिये। वह कुत्ता भी बराबर उनका अनुसरण करता रहा।

तदनन्तर देवराज इद्र युधिष्ठिर के पास आकर बोले—'कुन्तिनंदन ! तुम इस रथ पर सवार हो स्वर्ग में चले जाओ।' धर्मराज युधिष्ठिर ने भाइयों के शोक में संतप्त होने के कारण इन्द्र के प्रस्ताव को स्वीकार नही किया और बोले—'देवेश्वर ! मेरे प्रिय भाई और द्रौपदी मार्ग में गिर पड़े है उनके बिना मैं अकेला स्वर्ग में नही जाऊँगा।'

इन्द्र ने कहा—'भारत श्रेष्ठ ! तुम्हारे सभी भाई और साध्वी द्रौपदी स्वर्ग में पहुँच गये हैं। वहाँ चलने पर वे तुम्हें मिलेगे। वे मानव शरीर का परित्याग करके ही स्वर्ग में जा सके है किन्तु तुम इस शरीर मे वहाँ जा सकोगे।'

युधिष्ठिर बोले—'देवराज ! यह कुत्ता मेरा बड़ा भक्त है। इसने सदा ही मेरा साथ दिया है अतः इसे भी मैं स्वर्ग में ले जाना चाहता हूँ। ऐसा न करने से मैं निष्ठुरता के पाप से दोषी माना जाऊँगा।'

इन्द्र ने कहा—'राजन् ! तुम्हें अमरता, मेरी समानता, स्वर्ग सुख, पूर्ण लक्ष्मी और बहुत बडी सिद्धि प्राप्त हुई है, अतः तुम इस कुत्ते का मोह छोड़ दो और मेरे साथ चलो।'

युधिष्ठिर बोले—'देवराज ! किसी आर्य पुरुष के द्वारा निम्न श्रेणी का काम करना अधर्म कहलाता है ! मुझे ऐसी

लक्ष्मी, ऐश्वर्य नही चाहिये जिसके कारण भक्त का त्याग करना पड़े।'

इन्द्र ने कहा—'धर्मराज! कुत्ते के लिये स्वर्ग मे स्थान नही है। सोच-विचार कर काम करो। हठ करने से क्रोध उत्पन्न होता है, जिसके प्रभाव से पुण्य का नाश माना गया है, तुम इस कुत्ते को यहाँ छोड दो। ऐसा करने से तुम्हे निर्दयता का दोष नही लगेगा।'

युधिष्ठिर बोले—'महेन्द्र! भक्त का त्याग करने वाले के पाप का कभी अत नही होता। ससार में भक्त का त्याग ब्रह्म हत्या के समान माना गया है, अत. अपने सुख के लिये मैं इस कुत्ते का त्याग नही करूँगा। जो डरा हुआ हो, भक्त हो, आर्त-भाव से शरण मे आया हो, दुर्बल हो, अपने प्राण बचाना चाहता हो, ऐसे प्राणी का परित्याग प्राण जाने पर भी नही करना चाहिये।'

इन्द्र ने कहा—'वीरवर! दान, यज्ञ, स्वाध्याय और पुण्य कर्म पर यदि कुत्ते की दृष्टि पड जायें तब उनके फल का नाश हो जाता है। इसलिये इस कुत्ते का त्याग कर दो अन्यथा तुम्हें स्वर्ग प्राप्त नही होगा। वीर! तुमने अपने सहोदर भाई और प्रिय द्रौपदी का भी परित्याग किया है फिर इस कुत्ते को नही त्यागते? इससे मोह करना अच्छा नही है।'

युधिष्ठिर बोले—'भगवन्! ससार मे मरे हुए मनुष्य के साथ न किसी का मेल रहता है न विरोध। प्रिय द्रौपदी और अपने भाइयो को जीवित करना मेरे वश की बात नही है अतः मर जाने पर ही मैंने उनका त्याग किया है, जीवित अवस्था में नही। शरण मे आये हुए को भय देना, स्त्री का वध करना, ब्राह्मण का धन लूटना और मित्रों के साथ द्रोह करना—ये चार अधर्म भी एक साथ यदि तुला मे रखे जायें और भक्त का त्याग दूसरी ओर हो, तो मेरी दृष्टि मे भक्त का त्याग उन चारो से भी भारी है।'

युधिष्ठिर का यह कथन सुनकर धर्मराज जो कुत्ते के रूप में थे, वडे प्रसन्न हुए और वोले—'राजेन्द्र ! तुम अपने सदाचार, वुद्धि और दया के कारण उत्तम पुरुष हो। बेटा ! पूर्वकाल में भी वन मे रहते समय एक वार मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, जवकि तुम्हारे सभी भाई पानी पीने का उद्योग करते हुए मारे गये थे। उस समय तुमने अपने सगे भाई भीम और अर्जुन को छोडकर नकुल के जीवन का दान माँगा था। इस समय भी भक्त कुत्ते के कारण तुमने स्वर्ग का परित्याग करने का निश्चय किया है, इसलिये स्वर्ग मे भी तुम्हारे समान कोई नही है। उपरोक्त कारणो से तुम्हें अपने इसी शरीर से अक्षय लोकों की प्राप्ति हुई है।' ऐसा कहकर वे युधिष्ठिर को विमान पर वैठाकर स्वर्गलोक पधारे।

युधिष्ठिर ने कहा—'देववर ! मेरे भाइयो और द्रौपदी को शुभ या अशुभ जो भी स्थान प्राप्त हुआ हो, उसीको मैं भी पाना चाहता हूँ। उन्हे छोड़कर दूसरे लोकों मे जाने की मेरी इच्छा नही है।'

देवराज इन्द्र ने कहा—'महाराज ! तुम अपने शुभ कर्मो द्वारा स्वर्गलोक में निवास करो। मनुष्य लोक के स्नेह पाश को क्यो स्मरण करते हो ? तुम्हें जो उत्तम सिद्धि प्राप्त हुई है, वह तुम्हारे भाइयों को नही मिली।'

बुद्धिमान युधिष्ठिर बोले—'दैत्यसूदन ! अपने भाइयों के बिना मुझे वहाँ रहने का उत्साह नही है। मै बुद्धिमती, सत्वगुणसम्पन्ना द्रौपदी और मेरे भाई जहाँ गये हैं वही रहूँगा। मै स्वर्ग के सुखों को देखना भी नही चाहता।'

देवराज इन्द्र ने उन्हे स्वर्ग में राजा दुर्योधन को दिखाया, जो देवताओ सहित श्रेष्ठ नरेशों द्वारा पूजित होकर वहाँ निवास करता था और कहा—'इसने युद्ध में अपने शरीर की आहुति दे उत्तम गति पायी है। तुम्हें दुर्योधन से अधिक सत्कार मिलेगा इसलिये अपना हठ छोड़ दो।'

युधिष्ठिर बोले—'देवेश्वर। जिसके कारण हमने सुहृदों और बधुओ का युद्ध मे सहार कर डाला, जिसने हम लोगो को वन मे अत्यन्त क्लेश पहुँचाया, जिसने हमारी धर्मपरायण पत्नी द्रौपदी का भरी सभा मे गुरुजनो के सामने अपमान किया, उस लोभी और पापी दुर्योधन और उसके साथियो के साथ मै इस पुण्य लोक मे नही रहूँगा। मैं दुर्योधन को देखना भी नही चाहता हूँ, अतः मैं वहाँ रहूँगा जहाँ मेरे भाई और प्रिय द्रौपदी हैं।'

देवराज इद्र ने हँसकर कहा—'राजन्! स्वर्ग में रहने पर पहले का वैर विरोध शान्त हो जाता है। तुम्हे दुर्योधन के प्रति अयोग्य विचार मन में नही करना चाहिये। तुम्हें इसके किये हुए अपराधो को भुला देना चाहिये। तुम दुर्योधन से सम्मान-पूर्वक मिलो।'

राजा युधिष्ठिर बोले—'देव श्रेष्ठ। जिसके कारण हमारी क्रोधाग्नि मे हजारो निरपराध वीर भस्म हो गये, जो धर्म का नाम भी नही जानता था, जिसने जीवन भर सुहृदो के साथ द्रोह किया, उस पापी दुर्योधन को यदि यह सनातन वीरलोक प्राप्त हुआ है तो जो वीर,महात्मा, व्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ मेरे भाई हैं उन्हे कौन-से लोक प्राप्त हुए है? मैं उसी मे निवास करना चाहता हूँ। मैं माता कुन्ती के दानवीर पुत्र महात्मा कर्ण और वीर अभिमन्यु और हमारे स्वजन जो समरागण मे मारे गये हैं उन्हे यहाँ क्यो नही देखता हूँ? यदि उन्हे यह शुभ एव अक्षय लोक नही प्राप्त हुआ है तब मैं भी यहाँ उनके बिना नही रहूँगा। अपने भाइयो से पृथक् रहकर मुझे इस स्वर्ग लोक मे दुःख ही मिलेगा अतः जहाँ मेरे भाई हैं वही मेरे लिये स्वर्ग है।'

देवेन्द्र ने कहा—'वत्स। यदि उन सबमे तुम्हारा ऐसा अनुराग है तो मेरा दूत तुम्हे वही ले जायेगा।' आगे-आगे देवराज की आज्ञा से उनका दूत चलता था पीछे-पीछे राजा युधिष्ठिर। वे दोनो उस स्थान की ओर चले जहाँ पुरुषप्रवर भीमसेन आदि थे। वे दोनो ऐसे दुर्गंधमय मार्ग पर जा पहुँचे जहाँ पापी ही

यातना भोगने के लिये आते-जाते थे। उस मार्ग पर अधकार छाया हुआ था। मार्ग हड्डियो, केश और कीडो से भरा हुआ था। कौवे, गीध आदि पक्षी मुर्दो का मॉस खा रहे थे। धर्मराज युधिष्ठिर मन ही मन बहुत चिन्ता करते हुए उसी मार्ग के बीच से निकले, जिसका दृश्य अमगलकारी, वीभत्स दिखाई देता था। आगे चलकर उन्होने देखा कि खौलते हुए पानी से भरी हुई एक नदी है जिसे पार करना अति कठिन है। उसके दूसरे किनारे पर छुरों की धार के समान पत्तो से परिपूर्ण वन है। वहॉ गरम-गरम बालू बिछी है और पत्थर की चट्टानो से अग्नि निकल रही है। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने यह भी देखा कि वहॉ पापाचारी जीवों को बडी कठोर यातनाएँ दी जाती है। ऐसा भयानक दृश्य देखकर उन्होने देवदूत से कहा :

'भैया ! ऐसे मार्ग पर हम लोगो को कितनी दूर और चलना है, यह कौन-सा लोक है ? मेरे भाई और सती द्रौपदी कहॉ है ?'

देवदूत ने कहा—'धर्मराज ! यही तक आपको आना था। देवराज ने मुझे आज्ञा दी थी कि जब युधिष्ठिर थक जाये तब उन्हें वापस लौटा लाना अतः आपको लौटना है।' युधिष्ठिर वहॉ की दुर्गंध से घबडा गये थे। उन्हे मूर्छा-सी आने लगी थी, इसलिये उन्होंने लौटने का निश्चय किया। शोक और दुर्गंध से पीडित धर्मात्मा युधिष्ठिर ज्योंही वहॉ से लौटने लगे, त्योही उन्हें चारो ओर से आर्त मनुष्यो की दीनवाणी सुनाई दी।

'धर्मनन्दन ! हे राजर्षि ! हे पवित्र पाण्डव युधिष्ठिर ! आप हम लोगों पर कृपा करने के लिये दो घडी यही और ठहर जाइये। आप पुण्यात्मा महापुरुष के आते ही यहाँ परम पवित्र हवा चलने लगी है। इससे हम लोगो को बडा सुख मिल रहा है। नृपश्रेष्ठ ! आज दीर्घकाल के पश्चात आपका दर्शन पाकर यहाँ की यातनायें हमें कष्ट नही दे रही है और हम सुख का अनुभव कर रहे है।' दीनतापूर्वक वचन कहने वाले उन प्राणियों की पुकार सुन दयालु राजा युधिष्ठिर वही खडे हो गये।

उन्होने देवदूत से कहा—'इन वेचारो को वडा कष्ट हो रहा है। ये लोग कौन हैं और किसलिये यहाँ रहते हैं ?'

देवदूत वोला—'प्रभो ! ये कर्ण, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, द्रौपदी और द्रौपदी के पुत्र हैं।'

यह सुन राजा युधिष्ठिर के मन मे वडा सताप हुआ और वे कहने लगे कि दैव का यह कैसा विधान है। मेरे इन स्वजनो ने कौन-सा ऐसा पाप किया था कि जिसके प्रभाव से वे इस दुर्गंधपूर्ण स्थान में निवास करते हैं। जहाँ तक मुझे विदित है ये सव तो पुण्यात्मा ही थे। दुर्योधन और उनके साथियो ने तो कभी पुण्य कर्म किया भी नही था फिर भी वे सम्मानित और लक्ष्मी से सम्पन्न हुए हैं। क्या मैं सोता हूँ या जागता हूँ ? मुझे चेत है या नही ? क्या यह मेरे चित्त का विकार है या मन का भ्रम। शोक के आवेश से युक्त हो राजा युधिष्ठिर इस तरह नाना प्रकार से विचार करने लगे और उनकी इद्रियाँ चिन्ता से व्याकुल हो गयी।

उन्होने देवदूत से कहा—'महामते ! आप लौट जाइये। मेरे यहाँ ठहरने से मेरे दु:खी सुहृदो को सुख मिलता है अत: मैं यही ठहरूँगा। धर्मराज युधिष्ठिर को उस स्थान पर खड़े हुए दो ही घड़ी वीतने पायी थी कि इन्द्र, धर्म आदि मुख्य देवता वहाँ उपस्थित हुए। उनके आते ही वहाँ का सारा अधकार दूर हो पापयातना गृह भी अदृश्य हो गया।

तदनन्तर देवराज इन्द्र ने युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हुए कहा—'धर्मराज युधिष्ठिर ! तुम्हें अक्षय लोक प्राप्त हुए हैं। अव आपको अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नही है, क्योकि तुम्हें वहुत वडी सिद्धि मिली है। तुम्हे जो नरक देखना पड़ा है इसके लिये क्रोध न करो। समस्त राजाओं को नरक निश्चय ही देखना पड़ता है। तात ! मनुष्य के जीवन में शुभ और अशुभ कर्मों की दो राशियाँ सचित होती ही हैं। जो पहले शुभ कर्मों का फल भोगता है, उसे पीछे नरक मे अवश्य जाना

पड़ता है, परन्तु जो पहले नरक का कष्ट भोग लेता है वह पीछे स्वर्ग में जाता है। जिसके पाप-कर्म अधिक हैं वह पहले स्वर्गों के सुख भोग लेता है। नरेश्वर! मैंने तुम्हारे कल्याण की इच्छा से तुम्हें पहले ही नरक का दर्शन कराने के लिये वहां भेज दिया था। राजन्! तुमने युद्धक्षेत्र में छल से द्रोणाचार्य को उनके पुत्र की मृत्यु का विश्वास दिलाया था इसलिये मैंने भी तुम्हें छल से ही नरक का दृश्य दिखलाया है। जैसे तुम यहां लाये गये थे, उसी प्रकार भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी—ये सभी छल से नरक के निकट लाये गये थे। पुरुष-सिंह! अब वे सभी पापों से मुक्त हो गये हैं। जो तुम्हारे पक्ष के राजा युद्ध में मारे गये हैं वे सभी स्वर्ग में पहुँच गये हैं। तुम जिनके लिये सदा संतप्त रहते हो, उन सम्पूर्ण शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ दानवीर कर्ण को भी परम सिद्धि मिली है। तुम उनके लिये शोक त्याग दो। तुम्हारे भाइयों को भी अपने-अपने योग्य स्थान प्राप्त हुआ है। उन सबकी सद्गति के विषय में अब तुम्हें चिन्ता नही करनी चाहिए। कुरुनन्दन! पहले तुमने कष्ट का अनुभव कर लिया, अब से तुम मेरे साथ रहकर रोग-शोक से रहित हो स्वच्छन्द विहार करो और अपने किये हुए पुण्य-कर्मों, तपस्या और दान का फल भोगो। पुण्य सलिला आकाश गंगा और मंदाकिनी के पवित्र जल में स्नान करने से तुम्हें शोक, संताप और वैरभाव से छुटकारा मिल जायेगा। तुम्हारे भाई और साध्वी द्रौपदी को तुमने मेरी माया द्वारा नरक में कष्ट भोगते देखा है, किन्तु वे नरक में रहने के योग्य नहीं हैं।'

देवराज के कहने पर राजा युधिष्ठिर ने परम पावन देव नदी गंगाजी में स्नान किया और अपने मानव शरीर को वही त्याग दिया। तदनन्तर राजा युधिष्ठिर उस स्थान पर जा पहुँचे, जहाँ कुरुश्रेष्ठ भीम और अर्जुन थे। उन्होंने देखा कि भगवान श्रीकृष्ण अपने ब्रह्म-विग्रह से सम्पन्न हैं। तेजस्वी वीर अर्जुन उनकी आराधना में लगे हुए हैं। उन दोनों ने युधि-

ष्ठिर को उपस्थित देखकर उनका यथावत सम्मान किया। इसके बाद उनकी दृष्टि श्रेष्ठ कर्ण पर पडी जो बारह आदित्यो के साथ विराजमान थे। कुरुनन्दन युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव को अश्विनी कुमारो के साथ बैठे देखा। तदनन्तर उन्होंने कमलो की माला से अलकृत साध्वी द्रौपदी को देखा जो अपने तेज से स्वर्ग को प्रकाशित कर रही थी।

देवराज इन्द्र ने कहा—'राजन् ! जो यह पवित्र गधवाली मालाओ से सुशोभित देवी दिखाई दे रही है वह साक्षात भगवती लक्ष्मी है। ये ही अयोनि सम्भूता द्रौपदी के रूप मे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई थी। देखो, महाधनुर्धर वीर अभिमन्यु चन्द्रमा के साथ विराजमान है और शान्तनुनन्दन राजा भीष्म वसुओ के साथ। इसी प्रकार द्रोणाचार्य बृहस्पति के साथ बैठे है। तुम्हारे पक्ष के भूपाल गधर्वो, यक्षो और पुण्यजनों के साथ है। ये सब अपने कर्मो का फल भोगने यहाँ आये हैं।

'भरतनन्दन ! यह सारा परिचय मैंने तुम्हे सुनाया है। जो तुम्हारा पवित्र चरित्र सुनेगा और कार्यो का अनुसरण करेगा, उसको उत्तम गति मिलेगी। भगवान की आराधना और उत्तम आचरण करने वालो को नरक मे नही जाना पडता और उसे प्रभधाम प्राप्त हो जाता है। इसलिए मानव देह जो सब प्राणियो मे श्रेष्ठ है उसे पाकर शुभ कर्म ही करने चाहिये।'

अब भगवान श्रीकृष्ण को बार-बार प्रणाम कर इस कथा-रूपी अमृत को मैं समाप्त करता हूँ। आशा है, इसको पढ़कर पाठक लाभ उठायेगे और मेरी त्रुटियो पर ध्यान नही देंगे।

०००